शिवयोगिशिवाचार्यविरचितः

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

श्रीमरितोण्टदार्यविरचिततत्त्वप्रदीपिकाख्यसंस्कृतव्याख्यया
'प्रबोधिनी' मैथिलीव्याख्यया च संवलितः



मैथिलीव्याख्याकार :
प्रो० डॉ. शशिनाथ झाः

शैव भारती शोध प्रतिष्ठान
डी.३५/७७, जंगमवाडीमठ, वाराणसी - २२१००१

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शोध-प्रकाशन-ग्रन्थमाला ८९

शिवयोगिशिवाचार्यविरचितः

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

श्रीमरितोण्टदार्यविरचिततत्त्वप्रदीपिकाख्यसंस्कृतव्याख्यया

'प्रबोधिनी' मैथिलीव्याख्यया व संवलितः

मैथिलीव्याख्याकारः

प्रो० डॉ० शशिनाथ झाः

प्राचार्यः, व्याकरणविभागाध्यक्षः,

कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालयः

दरभंगा (बिहारः)

प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

डी० ३५/७७ जङ्गमवाडी मठ, वाराणसी-२२१००१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक :

शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्

डी. ३५/७७ जङ्गमवाड़ी मठ

वाराणसी- २२१००१

दूरभाष : (०५४२) २४५०५४६

ISBN : 978-93-82639-29-9

© शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्

प्रथम संस्करण २०१८

मूल्य : रू ४००/-

अक्षर संयोजन : **श्री अरुण कुमार यादव**
कटहलबाड़ी, दरभंगा (बिहार)

मुद्रक : **मित्तल आफसेट**
सुन्दरपुर, वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Series No. 89

ŚRĪSIDDḤĀNTAŚIKḤĀMAöIH

of Śivayogī Śivācārya
With Tattvapradīpikā Sanskṛta Commentary
By Srī Maritontadārya

&

Prabodhinī Maithili Commentary

By

Prof. Dr. Shashi Nath Jha
Professor & Head Vyakarnbibhag
K.S.D.Sanskrit University, Darbhanga (Bihar).

SHAIVA BHARATISHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath, Varanasi-221001

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Published by :
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath,
Varanasi-221001
Phone : (0542) 2450546

© Shaiva Bharati Shodha Pratishthanam

First Published : 2018

ISBN : 978-93-82639-29-9

Price : 400/-

Laser Typeset at : Arun Kumar Yadav
Kathalbari, Darbhanga (Bihar)

Printed at : **Mittal Offset**
Sunderpur, Varanasi

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ ॐ नमः पञ्चजगद्गुरुभ्यो नमः ॥

शैव भारती शोध प्रतिष्ठान के संस्थापक श्रीकाशीविश्वाराध्य
ज्ञानसिंहासनाधीश्वर श्री 1008 जगद्गुरु
डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महाराजजी का



शुभाशीर्वचन

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान.... के वें ग्रन्थपुष्प के रूप में 'प्रबोधिनी' मैथिली भाषात्मक व्याख्या के साथ श्रीसिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थ का शिवार्पण करते हुए हम अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। कामेश्वर सिंह-दरभंगा-सस्कृत विश्वविद्यालय के व्याकरण विभागाध्यक्ष प्रोफेसर एवं साहित्य अकादेमी से भाषासम्मान प्राप्त विद्वान् डॉ० शशिनाथ झा ने इस ग्रन्थ पर 'प्रबोधिनी' नामक मैथिली व्याख्या लिखकर इसकी उपादेयता को बढ़ा दिया है। अभी तक अनेक विद्वानों ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि का संस्कृत, हिन्दी, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, मराठी, उड़िया, अवधी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कार्य किया है, लेकिन पूर्वीभारत की समृद्ध भाषा मैथिली में इसका अनुवाद कार्य अभी तक नहीं हुआ था ।

गतवर्ष विद्वद्वर डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी एवं डॉ० कमलेश झा ने इस ग्रन्थ के मैथिली अनुवाद करने हेतु डॉ० शशिनाथ झा के नाम का प्रस्ताव रखा । शैवभारती शोध संस्थान के प्रस्तुत कार्य सम्बन्धी अनुरोध को डॉ० झा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और तन्मयता से इसमें लगकर इन्होंने इस गुरुतर कार्य को पूरा कर लिया । पण्डित झाजी ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि के मूल श्लोकों की व्याख्या लिखते समय कुछ विशिष्ट स्थलों पर जहाँ तत्त्वदीपिकाख्य संस्कृत व्याख्या में विशेष बातें लिखीं गईं हैं उनको भी प्रबोधिनी व्याख्या में साररूप से समाविष्ट किया है ।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के शक्तिविशिष्टाद्वैतवेदान्ताचार्य परीक्षा में एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के धर्मागम आचार्य परीक्षा में पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है । अतः इसकी अधिक से अधिक व्याख्या एवं समालोचना से उन वर्गों के छात्रों का लाभ सुनिश्चित है । मैथिली भाषा हिन्दी प्रभावित क्षेत्रों में समझी जाती है । इसके कवि विद्यापति (1400 ई.) से सभी परिचित हैं । इस दृष्टि से भी यह व्याख्या महत्त्वपूर्ण है । इसके लिए आचार्य शशिनाथ झाजी भूरि-भूरि प्रशंसा के पात्र हैं ।

हम कामना कहते हैं कि प्रोफेसर शशिनाथ झा स्वस्थ रहकर आजीवन ऐसे ही संस्कृत-साहित्य की सेवा करते हुए राष्ट्रिय साहित्य की समृद्धि में योगदान देते रहें । उसी प्रकार हमारी आकांक्षा है कि भगवान् विश्वनाथ, माता अन्नपूर्णा एवं श्रीजगद्गुरु विश्वाराध्यजी की असीम कृपा आपके समस्त परिवार के ऊपर सदैव बनी रहे ।

शाके- 1939 इत्याशिषः

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

विषयानुक्रमणी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रस्तावना

(महास्वामी श्रीजगद्‌गुरु चन्द्रशेखर शिवाचार्यजी द्वारा हिन्दीमे लिखित प्रस्तावनाक **मैथिली अनुवाद**)

भारतीय धर्मपरम्परामे वीरशैव धर्म एक सनातन धर्म मानल जाइत अछि । एहि धर्मक संस्थापक पाँच आचार्य छथि । हुनका सभकेँ श्रीजगद्‌गुरु पञ्चाचार्य कहल जाइत छनि । श्रीसिद्धान्तशिखामणि एक वीरशैवधर्मग्रन्थ थिक, अतः एहि प्रसंगमे जगद्‌गुरु पञ्चाचार्यक संक्षेपमे परिचय दैत श्रीजगद्‌गुरु रेणुकाचार्यजी एवं श्रीसिद्धान्तशिखामणिक बारेमे विस्तृत विवरण आवश्यक प्रतीत होइत अछि । हम आगू चलिकए उपर्युक्त विषय पर यथासम्भव प्रकाश देब । ओहिसँ जिज्ञासु लोकक जिज्ञासाक प्रचुर मात्रामे समाधान भए सकत ।

भारतीय धर्मदर्शनमे वीरशैवधर्मदर्शनक एक विशिष्ट स्थान छैक । एकर स्थापना रेणुक, दारुक, घण्टाकर्ण, धेनुकर्ण एवं विश्वकर्ण नामक पाँच प्रमुख शिवगण शिवक आदेशानुसार कएलनि । एही पाँचो गणकेँ श्रीजगद्‌गुरु पञ्चाचार्य कहल जाइत अछि । ई पाँचो आचार्य भूलोकमे क्रमशः आन्ध्रप्रदेशक कोल्लीपाकी क्षेत्रक सोमनाथ, मध्यप्रदेशक उज्जैनमे स्थित वटक्षेत्रक सिद्धेश्वर, आन्ध्रप्रदेशक श्रीशैलक्षेत्रक मल्लिकार्जुन एवं उत्तर प्रदेशक काशीक्षेत्रक विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्गमे प्रकट भेलाह । ओ लोकनि धर्मस्थापनाक निमित्त रम्भापुरी (कर्नाटक), उज्जैन (मध्यप्रदेश), श्रीशैलपीठ (आन्ध्रप्रदेश), ओखीमठ (उत्तराञ्चल) तथा काशी (उत्तरप्रदेश) क्षेत्रमे पाँच धर्मपीठक स्थापना कएलनि । ई पाँच पीठ वीरशैव धर्मक राष्ट्रिय पीठ मानल जाइत अछि । एहि पाँचो

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पीठक आचार्यलोकनि पाँच महर्षिकेँ सूत्ररूपमे वीरशैव धर्म दर्शनक उपदेश देलथिन। एहिमे रम्भापुरी पीठक श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्यजी महर्षि अगस्त्यजीकेँ पडविडिसूत्रक, उज्जैन पीठक जगद्गुरु श्री दारुकाचार्यजी दधीचि महर्षिकेँ वृष्टिसूत्रक, हिमवत्केदार पीठक जगद्गुरु श्रीघण्टाकर्णाचार्यजी व्यास महर्षिकेँ लम्बनसूत्रक, श्रीशैलपीठक जगद्गुरु श्रीधेनुकर्णाचार्यजी सानन्द महर्षिकेँ मुक्तागुच्छसूत्रक आ काशीपीठक जगद्गुरु श्रीविश्वकर्णाचार्यजी महर्षि दुर्वासाकेँ पञ्चवर्णसूत्रक उपदेश देलनि। एहि विषयमे–

पञ्चाननमुखोद्भूतान् पञ्चाक्षरमनूपमान्।
पञ्च सूत्रकृतो वृन्दे पञ्चाचार्यन् जगद्गुरून्॥

(पञ्चमुख सदाशिवक पाँच मुँहसँ आविर्भूत भए 'न–मः–शि–वा–य' एहि पञ्चाक्षरक समान स्वरूपवाला पाँच सूत्रक रचना कएनिहार जगद्गुरु पञ्चाचार्य केँ नमस्कार)– ई परम्परागत श्लोक सुप्रसिद्ध अछि।

एहिमे काशीपीठक जगद्गुरु विश्वकर्णाचार्यजीक द्वारा महर्षि दुर्वासाकेँ उपदिष्ट पञ्चवर्णमहासूत्रकेँ भाष्य ओ हिन्दीव्याख्याक संग ईसवी सन् २००५ मे काशी जङ्गमवाड़ी मठक शैवभारती शोध प्रतिष्ठानक द्वारा प्रकाशित कएल जा चुकल अछि। एहि शोधसंस्थाक निदेशक राष्ट्रियपण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदीजी अत्यन्त परिश्रमसँ हिन्दी अनुवादक संग ओकर सम्पादन कएलनि अछि। आशा अछि, आनो आचार्यक द्वारा उपदिष्ट अवशिष्ट चारि सूत्रक संशोधन ओ सम्पादनो शीघ्रे सम्पन्न होएत।

रम्भापुरी पीठक जगद्गुरुक द्वारा महर्षि अगस्त्यकेँ पडविडिसूत्रक संग आगमोक्त वीर शैव सिद्धान्तक जे उपदेश कएल गेल छल तकर संग्रह श्रीशिवयोगी शिवाचार्य कएलनि अछि। इयेह ग्रन्थ आइ श्रीसिद्धान्तशिखामणि नामसँ प्रसिद्ध अछि।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि वीरशैवधर्मदर्शन सभक प्रतिपादक एक अद्वितीय संस्कृत ग्रन्थ मानल जाइत अछि। जेना वेदान्त-प्रस्थानत्रयीमे उपनिषद् सभक सारभूत श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्णक द्वारा उपदिष्ट भेलो पर ओ महर्षि व्यासक द्वारा लिपिबद्ध कएल गेल तहिना जगद्गुरु रेणुकाचार्यजीक

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्वारा महर्षि अगस्त्यजीकेँ उपदिष्ट वीरशैवसिद्धान्तकेँ शिवयोगी शिवाचार्य नामक सुप्रसिद्ध वीरशैव आचार्य रेणुकागस्त्यसंवादक रूपमे लिपिबद्ध कएलनि । जहिना श्रीमद्भगवद्गीता सभ उपनिषद्क सारसर्वस्व थिक तहिना श्रीसिद्धान्तशिखामणि कामिकादि-वातुलान्त २८ सिद्धान्तागमक सारभूत थिक ।

एकैस परिच्छेदमे उपनिबद्ध श्रीसिद्धान्तशिखामणिमे प्राय: १४०० श्लोक अछि । एहि ग्रन्थक पहिल परिच्छेदसँ चारिम परिच्छेद तक मङ्गलाचरण, कविक वंशवर्णन, कैलासपर्वतवर्णन, जगद्गुरु रेणुकाचार्यजीक लिङ्गावतारक वर्णन ओ महर्षि अगस्त्यजीक आश्रम आदिक वर्णन कएल गेल अछि । एकैसम परिच्छेदमे विभीषणक प्रार्थनाक अनुसार श्रीलङ्कामे जगद्गुरु रेणुकाचार्यजीक द्वारा तीन कड़ोर शिवलिङ्गक युगपत् स्थापना करबाक महिमा वर्णित अछि। एहि ग्रन्थक पाँचम परिच्छेदसँ बीसम परिच्छेद तकक भागमे वीरशैव धर्मदर्शनक षट्स्थलसिद्धान्त एक सए एक(१०१) स्थलक रूपमे बहुत विस्तारसँ प्रतिपादित कएल गेल अछि ।

श्रीसिद्धान्तशिखामणिए एहन पहिल ग्रन्थ थिक जाहिमे वीरशैव षट्स्थल सिद्धान्तकेँ एकोत्तरशत स्थलक रूपमे शास्त्रोक्तरीत्या प्रतिपादित कएल गेल अछि । आन शैवागम सबमे षट्स्थलक केवल नामोल्लेख तथा ओकर सिद्धान्तकेँ प्रतिपादित कएल गेल अछि, किन्तु श्री शिवयोगी शिवाचार्यजी आगमोक्त षट्स्थल सिद्धान्तकेँ आधार मानैत ओहि षष्ट्स्थल सभकेँ १०१ स्थलमे विस्तृत कए एक अपूर्व एवं अद्भुत पद्धतिसँ ओहि सबहिक विवेचन कएलनि अछि । अत: षट्स्थलक एकोत्तरशत स्थलक रूपमे प्रथम विवेचक श्रीशिवयोगी शिवाचार्ये मानल जाइत छथि ।

ग्रन्थनाम रहस्य– श्रीरेणुकागस्त्यसंवादात्मक एहि ग्रन्थक श्रीसिद्धान्तशिखामणि नाम कएल गेल अछि । एकर रहस्य ई थिक जे 'कामिक' सँ लए 'वातुल' धरि शिवोपदिष्ट २८ आगम शैवागम सिद्धान्तागमक नामसँ प्रसिद्ध अछि (सिद्धान्तशब्द: पङ्कजादि-शब्दवत् योगरूढ्या शिवप्रणीतेषु कामिकादिषु दशाष्टादश-तन्त्रेषु प्रसिद्ध:'' –रत्नत्रयम्- पृ.- ५) ।एहि सिद्धान्तागमसभक उत्तरभागमे **वीरशैव** सिद्धान्त प्रतिपादित अछि । एहि तरहेँ सिद्धान्तागमक उत्तरभागमे प्रतिपादित वीरशैवसिद्धान्तकेँ श्रीशिवयोगी शिवाचार्य अपन विशिष्ट रचनाशैलीमे संगृहीत कएलनि अछि । ई संगृहीत सिद्धान्त शिखामणि अर्थात्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिरोरत्नक समान होएबाक कारण, एकरा सिद्धान्तशिखामणि कहल जाइत अछि । एही अर्थक समर्थन करैत ग्रन्थकार स्वत: कहलनि अछि–

सर्वेषां शैवतन्त्राणामुत्तरत्वान्निरुत्तरम् ।
नाम्ना प्रतीयते लोके यत्सिद्धान्तशिखामणि: ।।

अत: आगमप्रतिपादित अनेक सिद्धान्तमे वीरशैव सिद्धान्त एक शिखामणिसदृश होएबाक कारण प्रस्तुत ग्रन्थमे प्रतिपादित अछि । तेँ एहि ग्रन्थकेँ सिद्धान्तशिखामणि कहल गेल अछि ।

ग्रन्थकार ओ हुनक काल– ग्रन्थकार श्री शिवयोगी शिवाचार्य एहि ग्रन्थक पहिल परिच्छेदमे श्लोक सं० १३ सँ २० पर्यन्त अपन वंशक वर्णन कएलनि अछि । एहि वर्णनसँ ई ज्ञात होइछ कि हिनक वंशमे बहुत पहिनहि शिवयोगी नामक एक महान् योगी उत्पन्न भेल छलाह । हुनक वंशमे मुद्ददेव नामक आचार्य भेलाह । तनिक सिद्धदेव नामक सुपुत्र छलथिन । हुनका पुन: शिवयोगी नामक पुत्र उत्पन्न भेलथिन । इयेह शिवयोगी एहि ग्रन्थक रचयिता शिवयोगी शिवाचार्य थिकाह ।

(ग्रन्थकारक वंशवृक्ष)

शिवयोगी
|
मुद्ददेव
|
सिद्धनाथ
|
शिवयोगी (सिद्धान्तशिखाणिक रचयिता)

एहि वंशवर्णनसँ शिवयोगी शिवाचार्यक देश ओ कालक बारेमे स्पष्टरूपसँ किछुओ पता नहि चलैत अछि । १७म शताब्दीमे वर्तमान कर्नाटकक **मरितोण्टदार्य** नामक एक विद्वान् एहि ग्रन्थ पर तत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत व्याख्या लिखलनि । ओ अपन व्याख्याक अवतरिणकाक प्रारम्भमे– "अत्र कलिकालप्रवेशानन्तरं लोकहितार्थं रेणुकगणेश्वर इति प्रसिद्धो रेवणसिद्धेश्वर: कुम्भसम्भवाय वीरशैवागमशास्त्रमुपदिष्टवन्त: । तदनन्तरं

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रेवणसिद्धेश्वरदृष्टिगर्भसम्भूत–सिद्धरामेश्वरसम्प्रदायप्रसिद्धः सकलनिगमागमपारगः शियोगीश्वर इत्यभिधानवान् कश्चिन्माहेश्वरस्तद्रेणुकागस्त्यसंवादं निर्विघ्नेन स्वशिष्यान् बोधयितुं स्वमनसि कृतसंकल्पः सिद्धान्तश्रेष्ठनिगमागमैक्य-गर्भीकारलक्षण–स्वेष्टदेवता–नमस्कारस्वरूपं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं सप्तभिः श्लोकैर्निबध्नाति''[1] –एहि अवतरणिकामे ग्रन्थकार शिवयोगी शिवाचार्यकेँ श्रीसिद्धरामेश्वरजीक सम्प्रदायसँ सम्बद्ध, अर्थात् हुनक वंशज मानल गेल अछि, किन्तु मरितोण्टदार्यजीक ई उक्ति तर्कसंगत नहि प्रतीत होइछ ।

महाराष्ट्र प्रान्तक सोलापुरमे १२वीं शताब्दीमे श्रीसिद्धरामेश्वर नामक एक महान् शिवयोगी आचार्य भेलाह । हुनक पिताक नाम मुद्दगौडा छलनि । एतए शिवयोगी शिवाचार्य अपन पूर्वजसबमे एकक नाम मुद्ददेव कहलनि अछि । ओम्हर मुद्दगौडाक पुत्र सिद्धराम छलाह । एतए मुद्ददेवक पुत्र सिद्धनाथ छथिन । एहि तरहेँ नामसाम्यक कारण सम्भवतः मुद्ददेवकेँ मुद्दगौडा बूझिकए ओ सिद्धनाथकेँ सिद्धराम बूझिकए मरितोण्टदार्यजीक मनमे भ्रम भए गेल होएतनि । वस्तुतः सोलापुरक श्रीसिद्धरामेश्वरक वंशक संग श्री शिवयोगी शिवाचार्यक कोनो सम्बन्ध नहि भए सकैत छनि । कर्नाटकक वीरशैव विद्वान् डॉ० ज०च०नि०[2] ओ एन०आर० करिबसव शास्त्री[3] आदि विद्वान् श्रीमरितोण्टदार्यजीक विचारसरणिकेँ विसङ्गत मानलनि अछि ।

ग्रन्थक कालनिर्णयमे दासगुप्तक अनवधानता– डॉ०एम०एन० दासगुप्त भारतीय दर्शनशास्त्रक बहुत पैघ इतिहासज्ञ मानल जाइत छथि । ओ अपन ''A History of Indian Philosophy", Vol. No. 5, पेज 44 पर श्रीसिद्धान्तशिखामणिक कालक बारेमे लिखबा काल कहलनि अछि– ''श्रीसिद्धान्तशिखामणिमे श्रीबसवेश्वरजीक नामक उल्लेख भेलासँ ई ग्रन्थ श्रीबसवेश्वरक बादक तथा श्रीकरभष्यमे श्रीसिद्धान्तशिखामणिक उल्लेख भेलासँ ई श्रीपति पण्डिताराध्यजीसँ पहिनेक रचना भए सकैत अछि ।'' परन्तु श्रीदासगुप्तक मतक अपेक्षा एहि दू व्यक्तिक युक्तिक आधारो पर

१. सि०शि०, पृ.– १ एवं २
२. कन्नडमणिकान्तिपीठिका– पृ.– १६ सँ २०, (ई. सन् १९५१) ।
३. सि०शि०, कन्नड प्रस्तावना, पृ.– ५ (ई. सन् १९२१) ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीसिद्धान्तशिखामणिक काल श्रीकरभाष्यक अपेक्षा प्राचीन मानब अधिक युक्त थिक । परन्तु श्रीसिद्धान्तशिखामणिक मूल शलेकमे कतहु श्रीबसवेश्वरक उल्लेख नहि भेटैत अछि, किन्तु श्रीमरितोण्टदार्यकृत तत्त्वदीपिका व्याख्याक अवतरणिकामे वीरभद्राचार एवं बसवेश्वराचारक प्रतिपादन कएल गेल अछि ।[४]

एहिसँ ई सिद्ध होइत अछि कि श्रीसिद्धान्तशिखामणिक तत्त्वप्रदीपिका व्याख्याक कर्ता श्रीमरितोण्टदार्य श्रीबसवेश्वरक परवर्ती छलाह, मूल-लेखक शिवयोगी शिवाचार्य नहि । श्रीदासगुप्तजी सम्भवत: सिद्धान्तशिखामणिक कालनिर्णयक सन्दर्भमे मूलग्रन्थ तथा ओकर व्याख्यामे भेद नहि बुझबाक कारण अनवधानता कए बैसलाह ।

एहिठाम एक तथ्य बुझि लेबाक चाही कि महात्मा बसवेश्वर अपन एक वचनमे श्रीसिद्धान्तशिखामणिक–

प्रसादाद् देवताभक्ति: प्रसादो भक्तिसम्भव: ।
यथैवाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाङ्कुर: ।।

एहि श्लोककेँ प्रमाणरूपमे उद्धृत कएलनि अछि[५] । ई श्लोक सिद्धान्तशिखामणिक नवम परिच्छेदक ३६म श्लोक थिक । एहिसँ अतिरिक्त १२ शताब्दीक चन्नबसवेश्वर आदि सन्त जातिवादक निराकरणक प्रसङ्गमे–

शिवभक्तिसमावेशे क्व जातिपरिकल्पना ।
इन्धनेष्वग्निदग्धेषु को वा भेद: प्रकीर्त्यते ।।
(सि०शि० ११, ५५)

सिद्धान्तशिखामणिक एहि श्लोककेँ प्रमाणरूपमे उद्धृत कएने छथि । अत: शिवयोगी शिवाचार्य १२म शताब्दीसँ पहिनहि विद्यमान छलाह, ई स्पष्टरूपसँ सिद्ध होइत अछि ।

एकर अतिरिक्त श्रीपति पण्डिताराध्य विरचित श्रीकरभाष्यमे[६]

---

४. सि०शि०, ३-३६, तत्त्वप्रदीपिकाव्याख्या पृ.- १८५, (वीरशैवसाहित्य संशोधन मण्डल, सोलापुर, ई. १९९०) ।

५. 'बसवेश्वर के वचन'- भाग-१, पृ.- १०७, कर्नाटक विश्वविद्यालय-प्रकाशन, ई. १९७६

६. ब्रह्मसूत्र- श्रीकरभाष्य- १-१-१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीसिद्धान्तशिखामणिक सप्रमाण उल्लेख होएबाक कारण एहि ग्रन्थकारक समय श्रीपति पण्डिताराध्यसँ पूर्व मानए पड़त । श्रीपति पण्डिताराध्यक कार्यकालक बारेमे भारतीय दर्शनशास्त्रक सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय पण्डित बलदेव उपाध्यायजी[७] ख्रीष्ट सन् १०६० ई. मानने छथि ओ श्रीकरभाष्यमे श्रीरामानुजाचार्यजीक तथा हुनक श्रीभाष्यक उल्लेख होएबाक कारण श्रीपतिजी श्रीरामानुजाचार्यसँ परवर्ती सिद्ध होइत छथि । भारतक भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्‌जी रामानुजाचार्यक काल ख्रीष्ट सन् १०२७ ई. मानलनि अछि ।[८]

काशीपीठक पूर्वजगद्‌गुरु वीरभद्र शिवाचार्यजी[९] तथा टी.एस. नारायण शास्त्रीजी[१०] श्रीकरभाष्यक काल प्राचीन शिलाशासनक आधारपर क्रमशः ख्रीष्टसन् १०६४ ई. तथा १०७२ ई. मानने छथि । एहि सभ विद्वानक विचार सभसँ श्रीपति पण्डिताराध्यजीक काल निश्चित रूपसँ ११म शताब्दी सिद्ध होइत अछि । हिनका द्वारा लिखित श्रीकरभाष्यमे उल्लिखित श्रीसिद्धान्तशिखामणिक रचयिता श्रीशिवयोगी शिवाचार्यजीकेँ ओहूसँ पूर्ववर्ती अवश्य मानबाक चाही । एहिसँ अतिरिक्त श्रीसिद्धान्तशिखामणिमे श्री शिवयोगी शिवाचार्य कहलनि अछि–

येन रक्षावती जाता शिवभक्तिः सनातनी ।
बौद्धादिप्रतिसिद्धान्त-महाध्वान्तांशुमालिना ।।

एहि श्लोकमे 'बौद्ध आदि प्रतिसिद्धान्तसँ शिवभक्तक रक्षाक लेल प्रस्तुत ग्रन्थक रचना कएलनि'–ई बात हिनक उपर्युक्त वचनसँ सिद्ध होइत अछि । भारतमे बौद्ध धर्मक प्रबल प्रचारक समय ६००-८०० ईस्वी मानबाक चाही । अतः सिद्धान्तशिखामणिक रचनाकालो ६००-८०० ईस्वी मानबाक

---

७. भारतीदर्शन, पृ.- ४६९, चौखम्बा ओरिएन्टालिया, ई. सन्- १९७६

८. Indian Philosophy, Vol. No.-2, Page No. 665, Published by D.R. Bhagi, Bombay- 1977 A.D.

९. श्रीकरभाष्य चतुःसूत्रीपीठिका, पृ.- ४, जङ्गमवाड़ीमठ, वाराणसी, प्रकाशन ई. सन् १९५६

१०. The Indian Review, Vol. No. 16, May 1915, Page No. 5

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाही । एहि तरहेँ सिद्धान्तशिखामणिक रचनाकाल लगभग आठम शताब्दी मानबामे कोनो अनौचित्य नहि अछि ।

शिवयोगी शिवाचार्यक देशविचार– श्रीसिद्धन्तशिखामणिक रचनाकार श्रीशिवयोगी शिवाचार्य अपन वंशक वर्णन करबाक समयमे कतहु अपन गाम वा प्रदेशक नामनिर्देश नहि कएने छथि । अतः हुनक देशक विषयमे निश्चितरूपसँ कहब कठिन अछि, तथापि मैसूरक वे०पं० काशीनाथ शास्त्रीजी ओ डॉ०ज०च०नि० महोदय शिवयोगी शिवाचार्यजी कर्नाटक-प्रदेशक रहलाह, ओहूमे बीजापुरजिलाक साटोली ग्रामनिवासी रहलाह'' –एहि प्रकारेँ हुनक स्थानक प्रतिपादन कएलनि अछि ।[११]

श्रीसिद्धान्तसिखामणिक टीकाकार– वीरशैवक धर्मग्रन्थक रूपमे प्रख्यात श्रीसिद्धान्तशिखमणिक ऊपर संस्कृत, कन्नड़, हिन्दी, मराठी, तेलुगु, अंग्रेजी, ओड़िया, अवधी आदि भाषामे अनेक विद्वान् व्याख्या लिखलनि अछि । वीरशैव धर्मदर्शनक कोनो आन संस्कृत ग्रन्थक एतेक भाषामे व्याख्या नहि अछि । एहिसँ एहि ग्रन्थक महत्ता ओ लोकप्रियता सिद्ध होइत अछि ।

१७म शताब्दीमे वर्तमान सोसले रेवणाराध्य नामक कन्नड विद्वान् एहि ग्रन्थक ऊपर 'सिद्धार्थबोधिनी' नामक कन्नड व्याख्याक रचना कएलनि । तकरा बाद १७म शताब्दीमे श्रीमरितोण्टदार्यजी 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक संस्कृत व्याख्याक रचना कएलनि । तत्पश्चात् मैसूरक आस्थानविद्वान् लिं एन.आर. करिबसव शास्त्रीजी, मैसूरेक लिं.पं. काशीनाथ शास्त्रीजी, एम्.एल्. नागण्णजी, बीजापुरक ज्ञानयोगाश्रमक संस्थापक श्रीमल्लिकार्जुन स्वामीजी आदि बीसम शताब्दीक विद्वान् कन्नडभाषामे अपन-अपन शैलीमे व्याख्या लिखलनि अछि ।

कर्नाटकक चित्रदुर्गक एस्.एम्. सिद्दय्या नामक विद्वान् श्रीसिद्धान्तशिखामणिक ऊपर कन्नडभाषामे 'भामिनीषट्पदी' नामक कन्नड छन्दमे पद्यरूपमे व्याख्या लिखने छथि । ई एक विलक्षण कृति अछि । बंगलोरविश्वविद्यालयक भूतपूर्व संस्कृतविभागाध्यक्ष डॉ० एम्० शिवकुमार स्वामीजी १९६८ ई.मे श्रीसिद्धान्तशिखामणिक चुनल श्लोक पर अंग्रेजी अनुवादक कए एकरा 'श्रीरेणुकगीता'क नामसँ प्रकाशित कएलनि अछि ।

---

११. सिद्धान्तशिखामणि– प्रस्तावना, पृ.– ७, काशीनाथग्रन्थमाला, मैसूर, ई. सन् १९७२

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इयेह विद्वान् मरितोण्टदार्यजीक व्याख्याक संग मूल सम्पूर्ण ग्रन्थक अंग्रेजीभाषामे विस्तृत अनुवाद कएलनि जकर प्रकाशन काशीक जङ्गमवाड़ीपीठक शैवभारतीशोध प्रतिष्ठानक द्वारा भए चुकल अछि ।

महात्मागान्धी काशी विद्यापीठक कन्नडप्राध्यापक लिङ्गैक्य श्री ष०ब्र०डॉ० श्रीपति पण्डिताराध्य शिवाचार्य हिरेजेवरगी (शान्त शर्मा हिरेमठ) श्रीसिद्धान्तशिखामणिक 'भावमञ्जूषा' नामक हिन्दी व्याख्या लिखने छलाह, किन्तु हुनक अकालमृत्यु होएबाक कारणे ओ समग्री लुप्त भए गल । ओकर प्रकाशन नहि भेनाइ खेदक बात थिक । तकर बाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालयक संस्कृत विभागक पूर्व आचार्य पं० राधेश्याम चतुर्वेदी श्रीसिद्धान्तशिखामणि पर 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या लिखि कए हमर शैवभारती शोधप्रतिष्ठान कें प्रकाशनार्थ समर्पित कएलनि । ई० सन् २००६ मे महाशिवरात्रिक पर्वक उपलक्ष्यमे आयोजित विद्वत्सभामे ओकर शिवार्पण कए हम अपार हर्षक अनुभव कएल । श्रीसिद्धान्तशिखामणिक राष्ट्रभाषामे अनूदित भेलासँ उत्तरभारतीय जनताक लेल एकर बहुत महत्त्व होएत । एहि लेल पं० राधेश्याम चतुर्वेदी प्रशंसाक पात्र छथि ।

कर्नाटकक सुप्रसिद्ध संशोधक एवं बहुत पैघ साहित्यरचनाकार डॉ० ज०नि० (निडुमामिडिसंस्थानक श्री ष०ब्र०डॉ० चन्नबसवराज देशिकेन्द्र महास्वामीजी) महोदय श्रीसिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थपर 'जीवनसिद्धान्त' नामसँ विस्तृत विवेचनात्मक व्याख्या लिखलनि अछि जे छओ भागमे १९६९-१९७० इस्वीमे प्रकाशित भए कर्नाटकमे विद्वन्मान्य भए गेल अछि ।

हम अपन पूर्वाश्रममे श्रीसिद्धान्तशिखामणिक ऊपर कन्नड भाषामे प्रवचन करैत रहलहुँ । धीरे-धीरे ओहि ग्रन्थक १०१ स्थलपर फूट-फूट प्रवचनग्रन्थ प्रकाशित करबाक इच्छा भेल । 'श्रीसिद्धान्तशिखामणिप्रभे' नामसँ ई सन् १९८९ तक एकर छओ भाग प्रकाशित भए गेल । काशीजङ्गमवाडी मठक पीठाधीश्वर भेलाक बाद हम अवशिष्ट सब स्थलपर प्रवचन लिखिकए पूरा १०१ स्थलकें दू बृहद्भागमे (१७४९ पृ.) ई० सन् २००० मे छपबा कए पहिल बेर प्रकाशित कराओल ।

कन्नडभाषामे प्रकटित प्रवचन शैलीक ई दुनू भाग अतिशय लोकप्रिय

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भेलाक कारण एखन तक एकर तीन संस्करण बहार भए चुकल आ २००६ इसवीमे एकर चारिम संस्करण प्रकाशित भेल । एहि दुनू भागक संकलनकार्यमे काशीजङ्गमवाडी मठक वरिष्ठ शोधछात्र ओ बबलेश्वर बृहन्मठक पट्टाध्यक्ष श्री ष०ब्र० डॉ० महादेव शिवाचार्य स्वामीजीक महत्त्वपूर्ण योगदान रहल, अत: ओहो साधुवादक पात्र छथि ।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि पर आधृत हमर प्रवचनकेँ सोलापुरक मराठी वीरशैव साहित्यक बहुत पैघ विद्वान् डॉ०शे०दे० परसारकर संग्रह कए मराठी भाषामे अनुवाद कएलनि । ओहि मराठी प्रवचनक संग्रह 'जन्महा अखेरचा' नामसँ प्रकाशित भेल । तकरो एखन धरि तीन संस्करण बहार भए गेल अछि । एहि तरहेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणिमे प्रतिपादित वीरशैवदार्शनिक सिद्धान्तकेँ लोककेँ बुझएबाक लेल अनेक विद्वान् विभिन्न भाषामे टीका, व्याख्या ओ प्रवचनादि लिखिकए वीरशैवसाहित्यक संवर्धनमे अपन बहुत पैघ योगदान कएने छथि ।

श्रीसिद्धान्तशिखामणिपर आधृत शोधप्रबन्ध– एक दार्शनिक ग्रन्थ होएबाक कारण श्रीसिद्धान्तशिखामणिक ऊपर एक समीक्षात्मक अध्ययन करबाक इच्छा हमरा मनमे भेल । १९७३ ईस्वीमे वेदान्ताचार्य परीक्षामे उत्तीर्ण भेलाक पश्चात् सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालयक तत्कालीन वेदान्तविभागाध्यक्ष स्वर्गीय पं० देवस्वरूपमिश्रक मार्गनिर्देशनमे– ''श्रीसिद्धान्तशिखामणेर्दर्शनान्तरीय-सिद्धान्तै: सह समीक्षा'' विषयपर अनुसन्धानकार्य १९७४ मे प्रारम्भ भेल । ई० सन् १९८४मे अनुसन्धानकार्य पूर्ण भेल । बादमे ई० सन् १९८९ मे शैवभारती भवन जङ्गमवाडीमठक द्वारा एकर प्रकाशन भेल । एकर प्रकाशनक लेल केन्द्रसरकारक मानवसंसाधन विकास मन्त्रालयक शिक्षाविभाग द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त भेल छल । **'श्रीसिद्धान्तशिखामणि समीक्षा'** नामक ई शोधप्रबन्ध सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयक वेदान्तविभागमे शक्तिविशिष्टाद्वैत वेदान्ताचार्यक एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालयक संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान–संकायक धर्मविज्ञान विभागक आचार्य परीक्षाक लेल पाठ्यग्रन्थक रूपमे स्वीकृत अछि ।

काशीजङ्गमवाडीमठीय जगद्गुरु विश्वाराध्य गुरुकुलक शोधछात्र श्री ष०ब्र०डॉ० सिद्धराम पण्डिताराध्य शिवाचार्य (सिद्धराम देव हिप्परगी) काशी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दू विश्वविद्यालयक संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान संकायक वेदान्तविभागमे प्रोफेसर पण्डित सुधांशुशेखर वागचीजीक मार्गनिर्देशनमे 'श्रीसिद्धान्तशिखामणि एवं श्रीमद्भगवद्गीताक तुलनात्मक अध्ययन' कए डाक्टरेट उपाधि प्राप्त कएलनि। एहि शोधप्रबन्धमे श्रीसिद्धान्तशिखामणि एवं श्रीमद्भगवद्गीताक तात्त्विक सिद्धान्तक तुलना कएल गेल अछि।

श्रीसिद्धान्तशिखामणि पर राष्ट्रिय संगोष्ठी– दिनाङ्क १५ अक्टूबरसँ १७ अक्टूबर १९९७ तक काशीजङ्गमवाडी मठमे 'श्रीसिद्धन्तशिखामणिक विविध आयाम पर विचार विमर्श' नामक एक राष्ट्रस्तरीय शास्त्रसङ्गोष्ठीक आयोजन भेल छल। ओहिमे पूरा भारतवर्षक विभिन्न प्रान्तसँ बीस प्रमुख विद्वान् भाग लेने छलाह। एहि गोष्ठीमे विद्वानक निबन्धवाचन तथा ओहि पर चर्चा भेल। एहि सभ विषयकेँ 'सिद्धान्तशिखामणिमीमांसा' नामक शोधग्रन्थक रूपमे जङ्गमवाडी मठक शैव भारती शोधप्रतिष्ठानक द्वारा ईस्वी सन् २०००मे प्रकाशित कएल गेल। एहि प्रकारेँ अनेक विद्वान् श्रीसिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थक ऊपर व्याख्यान, प्रवचन, संशोधन आदि कार्य कए दार्शनिक क्षेत्रमे एकर महत्ताकेँ बुझओलनि अछि।

श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्यजीक लिङ्गोद्भवलीला– शिवक आदेशानुसार वीरशैवधर्मक संस्थापक श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्य भूलोकमे शिवलिङ्गसँ प्रकट भेलाह, ई विषय शिवागम सभमे प्रतिपादित अछि। श्रीसिद्धान्तशिखामणिक तेसर ओ चारिम परिच्छेदमे श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्यजीक लिङ्गोद्भवलीला वर्णित अछि। तकर अनुसार एक बेर कैलासमे भगवान् शिवक सभा चलि रहल छल। ताहिकाल भगवान् शिव ताम्बूल-प्रसाद देबाक लेल रेणुक-गणेश्वरक आह्वान कएल। ओहि आह्वानसँ प्रसन्न रेणुक गणेश्वर शीघ्रतामे 'लगमे बैसल दारुक गणेश्वरकेँ नाँघिकए शिवजीक लग पहुँचि गेलाह। ई देखि तमसाएल शिवजी रेणुक-गणेश्वरकेँ भूलोकमे जन्म लेबाक आदेश देलनि।

ओहि समय रेणुक-गणेश्वर भगवान् शिवक प्रार्थना कएलनि– 'हे भगवान्! अपनेक आदेशसँ हम भूलोक जएबा लेल तैयार छी, मुदा सामान्य मनुष्य जकाँ हमरा जन्म नहि लेबए पड़ए, अपने एहन कृपा कएल जाए'। एहि प्रार्थनासँ सन्तुष्ट शिवजी बजलाह– 'हे रेणुक! तोँ कनिको भयभीत

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहि होअह । भूलोकक त्रिलिङ्गदेश (आन्ध्र प्रदेश)मे विद्यमान सुप्रसिद्ध श्रीशैलक्षेत्रक उत्तर दिस 'कोल्लिपाकि' नामक एक क्षेत्र अछि । ओतए हम सोमेश्वर लिङ्गक नामसँ विद्यमान छी । तोँ ओहि लिङ्गसँ प्रकट भए जाह । तखन तोरा मानुषभावक स्पर्श नहि होएतहु । एहि प्रकारेँ तोँ लिङ्गोद्भव भए सम्पूर्ण मानव जातिक कल्याणक लेल हमरा द्वारा उपदिष्ट वेदवेदान्तसम्मत शिवाद्वैत सिद्धान्त अर्थात् वीरशैवसिद्धान्तक स्थापना करबह' । शिवक आदेशानुसार रेणुक-गणेश्वर ओहि सोमेश्वर शिवलिङ्गसँ दिव्यदेहधारी भए प्रकट भेलाह । ओही घटनाकेँ जगद्गुरु रेणुकाचार्यजीक लिङ्गोद्भवलीला कहैत छैक ।

मार्कण्डेय महर्षिकेँ यमक भयसँ मुक्त करबाक लेल जेना शिव एक स्थावर लिङ्गसँ प्रकट भेल छलाह एवं प्रह्लादकेँ अनुगृहीत करबाक लेल नृसिंहभगवान् जेना राजमहलक खाम्हसँ प्रकट भेल छलाह, तहिना जगद्गुरु रेणुकाचार्यजी लोकोद्धारक लेल श्रीसोमेश्वर शिवलिङ्गसँ प्रकट भेलाह । जन्म ओ प्राकट्यमे बहुत पैघ भिन्नता छैक । जन्म लेबाक लेल जन्मसँ पहिने जनक ओ जननीक सहविद्यमानता नितान्त जरूरी होइत छैक, किन्तु प्रकट होएबाक लल जननी-जनकक आवश्यकता नहि होइत अछि । जे लोकनि योगसिद्ध होइत छथि से अस्तित्वसँ पहिने विद्यमान रहै छथि । ओ जतए चाहथि ततए प्रकट होएबाक क्षमता रखैत छथि । श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्य शिवेक समान अणिमा आदि अष्टसिद्धिक धनी छलाह । अतः भूलोकमे शिवलिङ्गसँ हुनक प्रकट होएब आश्चर्यक बात नहि थिक ।

महर्षि पतञ्जलिक 'ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत् तद्धर्मानभिघातश्च' (यो.सू. ३-४५) एहि योगसूत्रमे ओ 'यथा परमाणुत्वं प्राप्तो वज्रादीनामप्यन्तः प्रविशति'- एहि भोजवृत्तिमे कहल गेल अछि जे योगसामर्थ्यक द्वारा अणिमादि अष्टसिद्धिकेँ प्राप्त कएनिहार योगी अणुरूप धारण कए अत्यन्त कठिनसँ कठिन वज्रादिओ मे प्रविष्ट भए पुनः प्रकट भए सकैत छथि ।

एहन अलौकिक घटना सभ सामान्य जनताकेँ असम्भव जकाँ लगैत छैक, मुदा योगसिद्धक लेल ई सहज घटना मानल जाइत अछि । काशीमे विशुद्धानन्द नामक एक दिव्य योगी २०म शताब्दीमे भेल छलाह । महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराजजी हुनक परम शिष्य रहलाह । एक बेर योगसामर्थ्यक चर्चा करैत विशुद्धानन्दजी 'जात्यन्तरपरिणाम' एहि विषय पर प्रकाश दैत

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहलनि जे एकजातिक वस्तुकेँ दोसर जातिमे परिवर्तित कएल जा सकैत अछि । ई सुनि पं. गोपीनाथ कविराजक– 'ई कोना सम्भव होएत' ? एहन तर्क प्रस्तुत कएला पर विशुद्धानन्दजी अपन हाथमे स्थित एक गुलाबक फूलकेँ योगसामर्थ्यसँ हुनक (गोपीनाथक) इच्छाक अनुसार लाल बन्धूक-कुसुमक रूपमे परिवतित कए देखाए देलथिन । एहि विषयक चर्चा पं० गोपीनाथ कविराजजी कल्याण मासिकक योगाङ्कक पृ.- ७४८ मे 'सूर्यविज्ञान' नामक लेखमे कएने छथि ।

काशीक सुप्रसिद्ध तैलङ्गस्वामीजी २८० वर्ष तक जीवित रहि कए अनेक लीला कएलनि । हुनक लीलाक बारेमे श्री राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय नामक लेखक २८-१-१९८३मे एतुक्का प्रसिद्ध दैनिक 'आज' अकबारमे एक लेख लिखने छलाह । हुनका अनुसार एक ब्रिटिश अधिकारी तैलंग स्वामीजीकेँ नाङ्ट घुमबाक कारणेँ जहलमे बन्द कए देलकैन । मुदा, दोसर दिन ताला बन्द रहलो पर तैलङ्गस्वामीजी बहार भए गेल छलाह । एहि तरहेँ पूरा देशमे योगक चामत्कारिक घटना घटैत आएल अछि । अतः साक्षात् शिवक सान्निध्यमे रहएवाला एक शिवगण श्रीरेणुक-गणेश्वरक शिवक समान अणिमादि अष्टसिद्धिसँ युक्त होएबाक कारण लिङ्गोद्भवलीला एक सहज सम्भवनीय घटना थिक ।

श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्य द्वारा त्रिकोटि शिवलिङ्गस्थापनलीला– श्रीसिद्धान्तशिखामणिक अन्तिम २१म परिच्छेदमे त्रिकोटि-शिवलिङ्गस्थापन-लीलाक वर्णन आएल अछि । ओहि परिच्छेदक सारांश ई थिक– लङ्काधिपति रावण नओ कोटि लिङ्गक स्थापना करबाक संकल्प कएने छल । अपन जीवनकालेमे ओ छओ कोटि लिङ्गक स्थापना कए लेलक । श्रीरामक सङ्ग युद्ध करैत-करैत स्वर्गकेँ प्राप्त करैत रावण अपन छोट भाए विभीषणकेँ बजाए अपन शेष संकल्पकेँ पूरा करबाक भार सोंपलक । एके मुहूर्तमे तीन कोटि शिवलिङ्गक स्थापना करबाक लेल विभीषण बहुत दिन धरि चिन्तित रहला।

ओही समय पर श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्यजी महर्षि अगस्त्यकेँ शिवाद्वैत सिद्धान्तक उपदेश करबाक बाद व्योममार्गसँ श्रीलङ्कानगरी आबि पहुँचलाह । श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्यजीक श्रीलङ्कामे पहुँचबाक समाचार सुनि कए विभीषण

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुनका लग अएलाह आ हुनका गौरवक संग अपन राजमहलमे लए गेलाह । ओतए हुनक वैभवक सङ्ग पादपूजा कए हुनका अपन जेठ भाए रावणक सङ्कल्प सुनओलथिन । ओहि समय जगद्गुरु रेणुकाचार्यजी रावणक संकल्पकेँ पूर्ण करबाक लेल एकहि समयमे तीन कोटि गुरुरूप धारण कए तीन कोटि शिवलिङ्गक स्थापना कएलनि ।

एहि तरहेँ जगद्गुरु रेणुकाचार्य अपन योगसिद्धिसँ अपनहि समान तीन करोड़ आचार्यक रूप धारण कए अपन महिमा देखओलनि ।

एहि तरहेँ श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्य भूलोकमे सोमेश्वर लिङ्गसँ आविर्भूत भए महर्षि अगस्त्यकेँ शिवाद्वैत सिद्धान्तक उपदेश देलनि । बादमे श्रीलङ्कामे त्रिकोटि शिवलिङ्गक स्थापना कए अपन महती शक्तिक प्रदर्शन कएलनि । अवतारक प्रयोजन पूर्ण भेलाक पश्चात् रेणुकाचार्य पुनः ओही सोमेश्वर शिवलिङ्गमे अन्तर्हित भए गेलाह ।

एहि प्रकार श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्य लोककल्याण एवं वीरशैव धर्मक स्थापनाहेतु अवतीर्ण भए लोककेँ अपन महिमाक भान करओलनि आ महर्षि अगस्त्यकेँ शिवाद्वैत सिद्धान्तक ज्ञान देलनि । ओ ज्ञान श्रीशिवयोगी शिवाचार्यक संगृहीत भए आइ श्रीसिद्धान्तशिखामणिक रूपमे सभक लेल सुलभ भए गेल अछि । ई ग्रन्थ वीर शैवधर्मक प्रमुख आकरग्रन्थ मानल जाइत अछि ।

—श्रीजगद्गुरु चन्द्रशेखरशिवाचार्य महास्वामीजी

संवत् २०६२ जङ्गमवाडी मठ, वाराणसी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भूमिका

श्रीसिद्धान्तशिखामणि वीरशैवागमधर्मक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ थिक । एहिमे धर्मक संग-संग शैवदर्शन सेहो समाहित अछि । 'दर्शन'मे संसारक वास्तविकताक संग ओकर उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय, जीव, सुखक जिज्ञासा, आत्मतत्त्वनिरूपण क्रममे सकल तत्त्वक निरूपण आदिक संग जीवनक चरम लक्ष्य मोक्षक प्रतिपादन रहैछ । ई सब विषय एहि ग्रन्थमे प्रसंगवश कम-वेशी मात्रमे आएल अछि । अतः तकरा स्पष्ट बुझबाक लेल एतए शैवदर्शनक तत्त्वसभक संक्षिप्त विवरण देल जा रहल अछि ।

दर्शनतत्त्व

वस्तुतः एकमात्र तत्त्व 'शिव' छथि जे चित्, चैतन्य, ज्ञानमय, स्वतन्त्र, परिपूर्ण आत्मतत्त्व, परमेश्वर ओ परमशिव कहबैत छथि । ई संसारक सकल जड़-चेतनमे अवस्थित होइतो अखण्ड एक छथि । सकल चिन्मय ओ अचिन्मय पदार्थ हुनके सँ आविर्भूत होइत अछि आ तेँ हुनके रूप थिक । ओ विराट् थिकाह । ई संसार हुनक उन्मीलन (प्रकाश) मात्र थिक । उन्मीलन पूर्वसँ स्थिते वस्तुक होइछ । घरमे स्थित रहले पर व्यक्ति बहार भए सकैछ, शून्य घरसँ नहि । एहिना संसारक नाश हुनका द्वारा सभवस्तुक निमीलन (अपनामे मिलाएब) थिक ।

शैवदर्शनमे शिवक स्वभावकेँ 'विमर्श' कहल गेल अछि जे शिवसँ अभिन्न हुनक शक्ति थिक । एकरे उन्मुखता 'इच्छा' कहबैछ । तेँ आत्मास्वरूप शिव इच्छामय अर्थात् ज्ञान क्रिया इच्छासँ युक्त छथि । शैवदर्शन शिव-शक्तिक सामरस्य (समरसता)क कारण अद्वैत थिक । अद्वैत अभेद थिक आ से दुनूक सत् मानले पर सम्भव अछि । विमर्शाख्य हुनक नित्या

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शक्ति सत् हुनकासँ अभिन्न अछि, दुनू एकाकार छथि । जहिना शिवक विना शक्ति निराधार नहि रहि सकैत छथि तहिना शक्तिक बिना शिव जड़वत् भए जएताह ओ किछु नहि कए सकताह । विमर्शशक्ति सृष्टिदशामे विश्वाकार, स्थितिदशामे विश्वप्रकाशिनी आ संहारदशामे आत्मसात्कारिणी होइत शिवमे अकृत्रिम अहम्भावस्वरूपा थिक । एकरे कारण शिव ईश्वर ओ चेतन छथि । इएह चित् चैतन्य परावाक् स्फुरणयुक्त होइछ । ई संसार शिवक शक्तिएक विस्तृत रूप थिक । एहि शक्तिकेँ शिव अपनामे स्वेच्छासँ अभिव्यक्त कएने छथि । वस्तुतः हुनका सँ ई भिन्न नहि थिक । विमर्शशक्तिक मुख्य पाँच स्वरूप अछि जाहिसँ निर्विकार शिवमे विभिन्न धर्मक प्रादुर्भाव होइछ–

(१) चित् शक्ति– प्रकाशात्मिका – शिवमे स्वप्रकाशत्व

(२) आनन्द शक्ति– आनन्दात्मिका – आनन्दमय शिव

(३) इच्छा शक्ति– कार्यक भावना – संसारक सृष्टि स्थिति प्रलय

(४) ज्ञान शक्ति– ज्ञानमयी – ज्ञानस्वरूप शिव

(५) क्रिया शक्ति– कार्यकारिणी – शिवक स्वेच्छया रूप धारण

एहि तरहेँ शैवदर्शनक मूल एक तत्त्व शिव-शक्त्यात्मक परमशिव भेलाह । स्थूल दृष्टिसँ ई दू तत्त्व भेल– (१) परमशिव ओ (२) शक्ति । केवल शिवमे किछु नहि, शक्तिक प्रकाशमे केवल 'हम' बुझाइछ । एहि शक्तिमे जखन उन्मेष होइछ तँ सृष्टि आ निमेष होइछ तँ प्रलय होइछ । एही उन्मेषक कारण 'सदाशिव' आविर्भूत होइत छथि जे शैवदर्शनक तेसर तत्त्व थिकाह । एहि स्थितिमे इच्छाशक्तिक प्रधानताक कारणेँ 'पुरुष'केँ अहमस्मि (हम छी), एकर प्रतीति होइछ । अर्थात् अव्यक्त संसारक भान होमए लगैछ ।

चारिम तत्त्व थिकाह 'ईश्वर' । हिनक अभिव्यक्ति भेला पर स्पष्ट रूपमे संसार भासित भए जाइछ । एहि काल ज्ञानशक्तिक प्रधानता रहैछ । एहिमे 'ई हम छी', एकर भान होइछ जाहिमे 'ई' अंश प्रधान आ 'हम' अंश गौण रहैछ ।

पाँचम तत्त्व थिक सद्विद्या जकरा शुद्धविद्या सेहो कहल जाइछ । एहि काल 'ई हम छी'क प्रतीतिमे एकरूपता भए जाइछ । 'ई' एवं 'हम' मे भेद हटि जाइछ । एहिमे क्रियाशक्तिक प्रधानता रहैछ ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छठम तत्त्व थिक **माया** । ई अज्ञान स्वरूपे थिक, परमतत्त्वक अधीन रहैत हुनके लीलासँ आविर्भूत होइछ ओ विलीन भए जाइछ । अज्ञानक उदय भेलो पर परमेश्वरमे कोनो विकृति नहि अबैछ । मायाक खेल ओ ओहिसँ सृष्टि त परमशिवक विलासमात्र थिक । ओ तँ आप्तकाम आत्माराम थिकाह । हुनका कोनो इच्छा नहि छनि । जगत् सँ हुनका कोनो प्रयोजन नहि छनि । मायासँ आच्छादित पुरुष (जीव) अपन ज्ञानमय स्वरूपकेँ बिसरि जाइ छथि । अहम् (पुरुष), इदं (प्रकृति), अस्मि (थिकहुँ) एहिरूपेँ जड़ प्रकृतिमे स्वक अनुभव करए लगैत छथि । माया पञ्चकञ्चुकक उपादान कारण थिक । पुरुष मायासँ मुग्ध भए कर्मकेँ अपन बुझए लगैत छथि, सांसारिक भए सुखदुःखानुभव करए लगैत छथि ।

सातमसँ एगारहम तत्त्व थिक मायाक पाँच कञ्चुक (कुर्त्ता)– कला, विद्या, राग, काल, नियति । स्वतन्त्र होइतो परमशेवर अपन इच्छासँ संकुचित भए मायाक पाँच कञ्चुक रूपमे अभिव्यक्त होइत छथि । तखन ओहि सँ बहुत संसारी पुरुष अल्पज्ञ, अल्पक्रिय, अल्परूप, अल्पशक्ति तथा अनित्यक रूपमे रहैत छथि । शिवलिङ्गक आराधनासँ तत्त्वज्ञान पाबि ओ पाँचो कञ्चुककेँ फाड़ि मुक्त होइत छथि, अपन असली सर्वज्ञादि रूपकेँ चिन्हैत छथि ।

बारहम तत्त्व पुरुष थिकाह जे सर्वज्ञ चैतन्य होइतो मायाकञ्चुकसँ बद्ध भए अल्पज्ञ भए जाइत छथि । ई कर्मफलक भोक्ता, किञ्चित्कर्ता, अनादि बद्ध, अविद्योपाधिक कारण अपना-अपना कर्मक अनुसार मनुष्यादि रूपमे भ्रमण करैत रहैत छथि । ई आत्मा थिकाह जे शरीर, इन्द्रिय ओ बुद्धि सँ भिन्न छथि । आत्मा अनश्वर छथि । ई ज्ञान ओ वैराग्ययुक्त शिवध्यानसँ मुक्त होइत छथि ।

तेरहम तत्त्व थिक **प्रकृति** । ई महत् (बुद्धि)सँ लए पृथ्वी धरि तेइस तत्त्वक मूल कारण थिक । ई सत्त्व-रजस्-तमस् एहि तीनू गुणक समान मात्रासँ युक्त थिक । ई अचेतन अकर्त्री थिक । चेतनक क्रियासँ क्रियाशील होइछ ।

चौदहम सँ सोलहम तत्त्व अछि अन्तःकरण जे तीन अछि–

(१) बुद्धि– निश्चयात्मक ज्ञान, स्वच्छ, चैतन्यक प्रतिबिम्बक ग्रहण करएवाला ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२) अहङ्कार– 'हम छी' –एकर अभिमान ।

(३) मन– संकल्प-विकल्पात्मक विचारयुक्त ।

एकर बाद पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच तन्मात्रा ओ पाँच भूत मिलाए शैवदर्शनमे ३६ तत्त्व मानल गेल अछि । यथा– श्रोत्र, त्वक्, चक्षुः, जिह्वा ओ घ्राण- ई पाँच ज्ञानेन्द्रिय; वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ– ई पाँच कर्मेन्द्रिय । शब्द, स्पर्श, रूप, रस ओ गन्धक पृथक् पृथक् केवल (आनसँ मिश्रित नहि) अपन तत्त्व तन्मात्रा कहबत अछि । एही पाँचो तन्मात्रासँ पञ्च भूत आकाश, वायु, अग्नि, जल ओ पृथिवीक उत्पत्ति होइछ । ई तत्त्वक उत्पत्तिक्रम परमेश्वरसँ पृथ्वीपर्यन्त थिक । एकर विपरीत संहारक्रममे पृथ्वीक विलय जलमे, जलक अग्निमे, अग्निक वायुमे, वायुक आकाशमे– एहि क्रमसँ सभक परमशेवरमे विलय भए जाइछ ।

वीरशैवधर्म

शैवागम धर्मदर्शन बहुत व्यापक अछि । एकर प्रत्यभिज्ञादर्शन, वीरशैवागम आदि अनेक सम्प्रदाय अछि । श्रीसिद्धान्तशिखामणि वीरशैवागमक मान्य ग्रन्थ थिक । वीरशैवसम्प्रदायेक नामान्तर **लिङ्गायत सम्प्रदाय** थिक । एहिमे मूल तत्त्व शिवलिङ्गकेँ मानल गेल अछि । ओहीसँ जगतक उत्पत्ति होइछ ओ ओहीमे विलय होइत अछि । एहि सम्प्रदायमे लिङ्गधारण एक महत्त्वपूर्ण कृत्य थिक । दीक्षित शिष्यक समक्ष गुरु शिव लिङ्गक पूजा कए ओकरा शैवीकला सँ युक्त कए लेथि । तखन ओहि लिङ्गमे शिष्यक प्राणप्रतिष्ठा तथा शिष्यमे लिङ्गक प्राणप्रतिष्ठा कए दुनूकेँ एक बना लेथि । ओ शिष्य आजीवन ओहि लिङ्गसँ पृथक् नहि होइत छथि । प्रतिदिन पूजा करैत छथि । ई बाह्य प्रस्तरादि लिङ्गधारण भेल । एकर अभ्यास सँ आन्तर शिवलिङ्गधारण करक चाही । अपन मूलाधार, हृदय वा भौँहक बीचमे ज्योतिर्लिङ्गक अनुसन्धान (दृढ़ भावना) करक चाही ।

एहि सम्प्रदायमे कोटि-कोटि शिवलिङ्गक ध्यान, पूजन, स्थापनक महत्त्व कहल गेल अछि । लिङ्ग तीन प्रकारक कहल गेल अछि–

(१) स्थूल शिवलिङ्ग– स्वर्ण, रजत, ताम्र, स्फटिक ओ पाथरसँ बनल लिङ्ग स्थूल लिङ्ग भेलाह । हिनक ध्यान-पूजन बाह्य पूजन भेल । एहन लिङ्गक

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धारण शिर, कण्ठ, हृदय ओ बाहु पर करक चाही ।

(२) **सूक्ष्म शिव लिङ्ग**– प्राणवायुस्वरूप भावनात्मक लिङ्ग सूक्ष्म थिक जकर धारण मन्त्रपूर्वक ध्यानसँ मूलाधार, हृदय ओ भ्रूमध्यमे करक चाही ।

(३) **परात्पर लिङ्ग**– ई तृप्तिलिङ्ग कहबैत छथि जे परम शिवात्मक भेलासँ ध्यानगम्ये छथि । हिनक धारण आत्मस्वरूप करबे थिक ।

धार्मिक ग्रन्थ

श्रीसिद्धान्तशिखामणि वीरशैवक धार्मिक ग्रन्थ थिक । एहिमे वीरशैवाचारक विशद वर्णन अछि । नवधा भक्ति, पूजोपचार, दीक्षा, गुरुक महत्त्व, लिङ्गधारण, लिङ्गपूजन, भस्म-रुद्राक्षधारणमहत्त्व, पञ्चाक्षरमन्त्रक जप, शिवयोगी एवं हुनक महत्त्व, लिङ्गस्थापन, अनुष्ठान, शैवाचार इत्यादि विषयक सांगोपांग विवेचन एहि ग्रन्थमे भेल अछि ।

आगम ग्रन्थ–

एहि दर्शनकेँ शैवागम कहल गेल अछि । एहिमे वातुलादि कामिक पर्यन्त २८ आगमक सारांकन कएल गेल अछि । मुदा वेद, उपनिषद्, पुराण आदिक प्रति परम आदरभाव राखल गेल अछि । तथापि ई शास्त्र सब प्रकारक लोककेँ सरल रीतिक साधनाक लेल प्रवृत्त होएबाक कारण आगम (तन्त्र) थिक । वैदिक कर्मकाण्ड सामान्य लोक लेल बहुत कठिन अछि एवं ओहि कर्मक अधिकारी सभ वर्ण नहि भए सकैछ, जखन कि आगमशास्त्र (तन्त्रशास्त्र) उदारवादी होइछ । शैवसाधनाक अधिकार मानवमात्रकेँ छैक । लिङ्गार्चन स्त्री-शूद्रादि सब कए सकैछ । तन्त्रक चारू पादक एतए अनुसरण कएल गेल अछि– (१) **ज्ञान**– एकर महत्त्व एतए प्रचुर रूपमे देल गेल छैक । (२) **क्रिया**– एतए लिङ्गार्चन क्रियाक विधान अछि आ कहल गेल अछि जे अग्निहोत्र आदि एकर शतांशो नहि अछि । समस्त क्रियाक त्याग कए केवल लिङ्गपूजा करी । (३) **योग**– एतए भक्तियोग एवं जपयोगक महत्त्व देखाओल गेल अछ । (४) **चर्या**– आचरणक नाम चर्या थिक । शिवयोगीक आचरणक निर्देश तँ सम्पूर्ण ग्रन्थमे भरल अछि । एहिमे दीक्षा, गुरुसेवा, लिङ्गपूजा, लिङ्गधारण, भस्मधारण, रुद्राक्षधारण आदि अबैछ ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एहि ग्रन्थक निर्देशानुसार साधारणसँ साधारणो लोक लिङ्गपूजन आदिसँ शिवसायुज्य प्राप्त कए सकैछ, विज्ञजनक तँ कथे कोन ?

प्रस्तुत मैथिली व्याख्या–

एहि शास्त्रीय शिवसाधनामय ग्रन्थक मैथिली व्याख्या कए एकहि यत्न सँ अनेक फलप्राप्तिक अनुभव भए रहल अछि–

(१) शिवलिङ्गक पर्याप्त चिन्तनसँ पावनतत्त्वक अनुभव भए रहल अछि।

(२) एहि वीरशैवागमशास्त्रक गहन चिन्तनक अवसर पाओल ।

(३) मैथिली भाषाकेँ अमूल्य शास्त्रीय उपहार देल ।

एहि कार्यक प्रेरणादायक श्री काशीविश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर श्री १००८ जगद्गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजीक प्रमाणपूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करैत छी जे अत्यन्त व्यस्त रहितहुँ हम हुनक आदेशपालनार्थ एहि कार्यमे हुनके आशीर्वादसँ सफल भए सकलहुँ ।

आशा अछि जे शिवभक्तगण एहि ग्रन्थकेँ पढ़ि लाभान्वित भए सकताह ।

गुरुपूर्णिमा, शाके १९३९
दरभङ्गा

–डॉ०पं० श्री शशिनाथ झा
प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष
स्नातकोत्तर व्याकरणविभाग
का.सिं.द. संस्कृत विश्वविद्यालय
दरभङ्गा (बिहार)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

श्रीशिवयोगिशिवाचार्यविरचितः

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

श्रीमरितोण्डदार्यरचिततत्त्वप्रदीपिकाख्यया संस्कृतटीकया, आचार्य-
शशिनाथझाकृत 'प्रबोधिनी' मैथिलीव्याख्यया च संवलितः

प्रथमः परिच्छेदः

तत्त्वप्रदीपिका

श्रीनाथः सोममूर्तिर्जयति परशिवस्त्र्यम्बकस्ताररूपः
स्वच्छश्रीब्रह्मरन्ध्रस्थितसितजलप्रोद्यदब्जत्रिकोणे ।
इच्छाज्ञानक्रियाख्ये त्रिविधलिपिमये हक्षलार्णाग्रपार्श्वे
कृत्स्नार्णौन्मुख्यबिन्दौ चिदचिदुदयकृद्दृक्क्रियाङ्घ्रिद्वयाढ्यः ॥

अनेकविधसिद्धान्तशिखामणिमनायम् ।
श्रीवीरशैवसिद्धान्तमेकोत्तरशतस्थलम् ॥
रेणुकागस्त्यसंवादं निगमागमविश्रुतम् ।
प्रदीपयति गुप्तार्थमुद्धृत्य शिवयोगिराट् ॥

अत्र कलिकालप्रवेशानन्तरं लोकहितार्थं रेणुकगणेश्वर इति प्रसिद्धो रेवणसिद्धेश्वरः कुम्भसम्भवाय वीरशैवशास्त्रमुपदिष्टवान् । तदनन्तरं रेवणसिद्धेश्वरदृष्टिगर्भसम्भूतसिद्धरामेश्वरसम्प्रदायप्रसिद्धः सकल- निगमागमपारगः शिवयोगीश्वर इत्यभिधानवान् कश्चिन्माहेश्वरः तद्रेणुकागस्त्यसंवादं निर्विघ्नेन स्वशिष्यान् बोधयितुं स्वमनसि कृतसकल- सिद्धान्तश्रेष्ठनिगमागमैक्यगर्भीकार-लक्षणस्वेष्टदेवतानमस्काररूपमङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं सप्तभिः श्लोकैर्निबध्नाति-

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवस्तुतिः

त्रैलोक्यसम्पदालेख्य-समुल्लेखनभित्तये ।
सच्चिदानन्दरूपाय शिवाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

जगद्रूपमायिकसम्पच्चित्रसमुल्लेखनाधारभित्तिरूपाय सच्चिदानन्दस्वरूपाय जीवविलक्षणाय ब्रह्मणे वेदान्तप्रतिपाद्याय शिवाय शिवसिद्धान्तप्रसिद्धपरमशिवाय नम इत्यर्थः ॥ १ ॥

समरसता शिव-शक्तिमे, घोँटल सक्कर दुग्ध ।
करइत छी वन्दन तनिक, जे चैतन्य विशुद्ध ॥

स्वर्ग, मर्त्य, पाताल– एहि तीनू लोकक सम्पत्तिक लेखा लिखबाक भीत (आधारस्वरूप देवाल) रूपी सत् (सदा विद्यमान), चित् (चैतन्य, ज्ञानमय) ओ आनन्दस्वरूप ब्रह्म (सर्वव्यापक) शिवकेँ नमस्कार करैत छी ॥ १ ॥

ब्रह्मेति व्यपदेशस्य विषयं यं प्रचक्षते ।
वेदान्तिनो जगन्मूलं तं नमामि परं शिवम् ॥ २ ॥

ब्रह्मेति व्यपदेशस्य परब्रह्मेति शब्दस्य वेदान्तिनो यं परमात्मानं विषयमर्थं प्रचक्षते, तं जगत्कारणं परशिवं शिवसिद्धान्तप्रसिद्धपरमशिवं नमामीत्यर्थः ॥ २ ॥

वेदान्तीलोकनि जनिका ब्रह्मपदसँ व्यवहारक विषय कहैत छथि, संसारक मूल ओहि परम शिवकेँ नमस्कार करैत छी ॥ २ ॥

यस्योर्मिबुद्बुदाभासः षट्त्रिंशत्तत्त्वसञ्चयः ।
निर्मलं शिवनामानं तं वन्दे चिन्महोदधिम् ॥ ३ ॥

शिवादिक्षित्यन्त-षट्त्रिंशत्तत्त्वसमूहो यस्य परशिवाख्यचित्समुद्रस्य ऊर्मिबुद्बुदाभासो घृतकाठिन्यन्यायेनैकदेशे तरङ्गादिवदाभाति, निर्मलं मलत्रयरहितं शिवनामानं तं चिन्महोदधिं वन्दे नमस्करोमीत्यर्थः ॥ ३ ॥

(वीरशैव सम्प्रदायक) छत्तीस तत्त्वक समूह, जनिक तरंगक बुनबुन्नाक समान बुझाइत अछि, शिवनामसँ प्रसिद्ध ओहि निर्मल चित्समुद्र (चैतन्यक सागर)केँ प्रणाम करैत छी ॥ ३ ॥

यद्भासा भासते विश्वं यत्सुखेनानुमोदते ।
नमस्तस्मै गुणातीतविभवाय परात्मने ॥ ४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'[1] इति श्रुतेर्विश्वं यस्य परब्रह्मणः प्रकाशेन प्रकाशते, 'अस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति'[2] इति श्रुतेः यत्परब्रह्मसुखेनानुमोदते, तस्मै मायिकसत्त्वरजस्तमोगुणातीविभवाय परमात्मने शिवाय नम इत्यर्थः ॥ ४ ॥

जनिक तेजसँ संसार प्रकाशित होइत अछि आ जनिक सुखसँ आनन्दित होइत अछि ओहि गुणातीत विभववाला (सत्त्व-रज-तमोगुणसँ रहित ऐश्वर्यवाला) परमात्मा (परम शिव)केँ प्रणाम करैत छी ॥ ४ ॥

सदाशिवमुखाशेषतत्त्वोन्मेषविधायिने ।
निष्कलङ्कस्वभावाय नमः शान्ताय शम्भवे ॥ ५ ॥

मयूराण्डरसन्यायेन[3] स्वविमर्शशक्तिसामरस्यापन्नसदाशिवादि-भूम्यन्तषट्त्रिंशत्तत्त्वविकासकारिणे विश्वदोषरहितस्वरूपाय सुखभोक्त्रे सुखधात्रे शम्भवे नम इत्यर्थः ॥ ५ ॥

सदाशिवसँ लए पृथ्वी तक सभ (छत्तीसो) तत्त्वकेँ विकसित (अभिव्यक्त) करएवाला दोषरहित शान्त शिवकेँ नमस्कार करैत छी ॥ ५ ॥

स्वेच्छाविग्रहयुक्ताय स्वेच्छावर्तनवर्तिने ।
स्वेच्छाकृतत्रिलोकाय नमः साम्बाय शम्भवे ॥ ६ ॥

'स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रः' इति श्रुतेर्भक्तानुग्रहार्थं स्वेच्छा-कल्पित-दिव्यमङ्गलविग्रहयुक्ताय स्वच्छन्दचारिणे स्वेच्छाशक्तिनिर्मित- लोकत्रयाय पार्वतीपतये परशिवाय नम इत्यर्थः ॥ ६ ॥

अपन इच्छासँ शरीर धारण करएवाला, अपन इच्छासँ व्यवहार करएवाला एवं अपन इच्छासँ तीनू लोकक रचना करएवाला साम्ब (अम्बा = पार्वती सहित) शम्भुकेँ नमस्कार करैत छी ॥ ६ ॥

यत्र विश्राम्यतीशत्वं स्वाभाविकमनुत्तमम् ।
नमस्तस्मै महेशाय महादेवाय शूलिने ॥ ७ ॥

---

१. कठोपनिषद् २ । ५ । १५ । २. बृ०उ० ४ । ३ । ३२ ।

३. यथा मयूरनाम्नः पक्षिणोऽस्य रसे नानाविधरागवद्वर्हमयं शरीरं प्रच्छन्नं भवति, कालक्रमेण बहिराविर्भवति तथैव शिवस्य विश्वोत्तीर्णतादशायां सर्वं वैचित्र्यमयं जगत् परमशिवे प्रच्छन्नं सत् तिष्ठति, कालक्रमेण चाविर्भवति ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यत्र वेदागमप्रसिद्धपरब्रह्माख्यपरशिवे, अनुत्तमं विश्वतः श्रेष्ठं स्वाभाविकममायीयमीशत्वमुमामहेश्वरत्वं विश्राम्यति,

घृतकाठिन्यवन्मूर्त्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा ।
शिवाभिधेन सैवास्ति शिव एव हि सा सदा ।।

इति सूतगीतोक्तेस्तादात्म्यं भजते, तस्मै महेश्वराय 'तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्' इति श्रुतेर्ब्रह्मादिकारणेश्वराय महादेवाय अपरिमितप्रकाशरूपाय शूलिने इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिमयत्रिशूलिने परमशिवाय नम इत्यर्थः । अनेनायं सिद्धान्तो निर्विशेषब्रह्माद्वैतलक्षण इत्यनुसन्धेयः । एवंविधश्लोकसप्तकप्रतिपादितं वस्तु तत्परं ब्रह्म स एकः 'स एको रुद्रः स ईशानः, स भगवान्, स महेश्वरः, स महादेवः'[१] इत्यथर्वशिर- उपनिषदुक्तप्रकारेणैकमेवेति शिवाद्वैतशास्त्रप्रवीणै- रवगन्तव्यम् ॥ ७ ॥

जतए ईशत्व विश्राम लए लैछ अर्थात् जे सर्वोपरि ईश छथि, जे स्वभावसँ सर्वोत्तम छथि ताहि शूलधारी महेश (महादेव)कें नमस्कार करैत छी ।। ७ ।।

एवं वेदागमसम्मत्या सप्तभिः श्लोकैः शिवं नमस्कृत्य तथैव वेदागमादिप्रसिद्धनित्यसमवेतशिवशक्तिं पञ्चभिः श्लोकैः प्रस्तौति–

शक्तिस्तुतिः

यामाहुः सर्वलोकानां प्रकृतिं शास्त्रपारगाः ।
तां धर्मचारिणीं शम्भोः प्रणमामि परां शिवाम् ॥ ८ ॥

वेदागमादिशास्त्रपारङ्गताः शिवज्ञानिनो यां परशिवसमवेतशक्तिं सर्वलोकानां प्रकृतिं मूलकारणीभूतज्ञानक्रियासामरस्यात्मिकामाहुः, तां शम्भो- र्धर्मचारिणीं धर्मस्वरूपां परां सर्वोत्कृष्टां शिवां भवानीं प्रणमामीत्यर्थः ॥ ८ ॥

शास्त्रपारंगत विद्वान् जनिका सबलोकक प्रकृति (मूल कारण) कहैत छथि, शिवक धर्मपत्नी ओहि परा शिवाकें प्रणाम करैत छी ।। ८ ।।

यया महेश्वरः शम्भुर्नामरूपादिसंयुतः ।
तस्यै मायास्वरूपायै नमः परमशक्तये ॥ ९ ॥

यया स्वसमवेतशक्त्या महेश्वरो ब्रह्मादिसर्वकारणेश्वरः शम्भुः शिवः 'शक्तो यया शम्भुर्भुक्तौ मुक्तौ च पशुगणस्यास्य' इति तत्त्वप्रकाश- वाक्यानुसारेण नामरूपक्रियाविशिष्टो[२] जीवानां भुक्तिमुक्तिप्रदः स्यात्, तस्यै मायास्वरूपायै

---

१. अथर्वउ० २ । ३ ।

२. अस्ति भाति प्रियं नाम रूपं चेत्यंशपञ्चकम् ।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपमथ द्वयम् ।। (पञ्चदशी)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'मायां तु प्रकृतिं बिन्द्यान्मायिनं तु महेश्वरम्'[1] इति श्रुतेः प्रतिस्फुरणगत्या जगदुपादानकारणीभूतसत्त्वजस्तमोगुणात्ममायाख्यमूल-प्रकृत्यै परमशिव-समवेतनित्यशक्त्यै नम इत्यर्थः ॥ ९ ॥

जनिका कारणेँ महेश्वर नाम-रूप आदि (गुण क्रिया संख्या आदि)सँ युक्त भए शम्भु कहबैत छथि अथवा जनिका कारण नाम-रूप आदिसँ युक्त शम्भु महेश्वर कहबैत छथि, मायास्वरूप ओहि परमशक्तिकेँ नमस्कार करैत छी ॥ ९ ॥

शिवाद्यादिसमुत्पन्न-शान्त्यतीतपरोत्तराम् ।
मातरं तां समस्तानां वन्दे शिवकरीं शिवाम् ॥ १० ॥

शिवात् परशिवादाद्यादिपटगतशुक्लत्ववत् पूर्वं समुत्पन्ननिवृत्तिप्रतिष्ठाविद्या शान्तिशान्त्यतीतकलापरकुण्डलिनीशक्त्यपेक्षया उत्तरां श्रेष्ठां समस्तानां मातरं शिवकरीं मङ्गलकरीं तां शिवां सर्वमङ्गलां नमामीत्यर्थः ॥ १० ॥

शिवक आदि स्वरूपसँ सृष्टिक आदि मे उत्पन्न, शान्तिक उत्कृष्टतासँ ऊपर स्थित, कल्याणकारिणी शिवाकेँ प्रणाम करैत छी जे समस्त चराचर जगतक माता थिकीह ॥ १० ॥

इच्छाज्ञानादिरूपेण या शम्भोर्विश्वभाविनी ।
वन्दे तां परमानन्द-प्रबोधलहरीं शिवाम् ॥ ११ ॥

शम्भोः परमेश्वरस्य या समवेतशक्तिः, इच्छाज्ञानादिरूपेण-

परास्य शक्तिर्विमला वितर्का स्वाभाविकी रुद्रसमानधर्मिणी ।
ज्ञानक्रियेच्छादिसहस्ररूपा तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥[2]

इति श्रुतेरिच्छादिरूपेण विश्वभाविनी विश्वप्रकाशिनी, तां परमानन्दप्रबोधलहरीं चिदानन्दोल्बणां शिवां वन्दे इत्यर्थः ॥ ११ ॥

जे शिवक इच्छा-ज्ञानादि रूपसँ संसारक विस्तार करैत छथि, ताहि परमानन्दप्रबोधक लहरि स्वरूपा शिवाकेँ प्रणाम करैत छी ॥ ११ ॥

अमृतार्थं प्रपन्नानां या सुविद्याप्रदायिनी ।
अहर्निशमहं वन्दे तामीशानमनोरमाम् ॥ १२ ॥

---

१. श्वे०उ० ४।१०

२. शिवसंहिता

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अमृतार्थं मुक्त्यर्थं प्रपन्नानां शरणागतानां या शिवसमवेतशक्तिः सुविद्याप्रदायिनी 'वेदान्तवाक्यजा विद्या' इति सूतसंहितोक्तेस्तत्त्वमस्यादि-वेदान्तमहावाक्यप्रकाशितशिवजीवैक्यविद्याप्रदायिनी, तां शिवप्राणकान्तामहर्निशं वन्दे नमस्करोमीत्यर्थः । 'अनन्या स्याच्छिवा सैव वस्तुतो मूर्तिरैश्वरी' इति पौष्करवचनादेतत्पञ्चसूत्रप्रतिपादितां शक्तिं शिवाभेदेनैव परामृशेदिति ॥ १२ ॥

अमृतक लेल शरणमे आएल व्यक्तिकेँ सुविधा प्रदान करएवाली शिवक मनोरमा (भवानी)केँ दिन-राति हम प्रणाम करैत छी ।। १२ ।।

ग्रन्थकारवंशवर्णनम्

एवं संग्रहेण पार्वतीपरमेश्वरौ नमस्कृत्याऽनन्तरमष्टभिः श्लोकैः शिवयोगिवंशानुगताचार्यान् प्रकटयति–

कश्चिदाचारसिद्धानामग्रणीः शिवयोगिनाम् ।
शिवयोगीति विख्यातः शिवज्ञानमहोदधिः ॥ १३ ॥

शिवयोगिनां मध्ये अग्रणीः श्रेष्ठः, शिवज्ञानमहोदधिः शिवज्ञानस्य समुद्रः, कश्चिद् रेवणसिद्धेश्वरदृष्टिगर्भसम्भूतसिद्धरामेश्वरः, आचारसिद्धानां सदाचारसम्पन्नानां वंशे शिवयोगीति विख्यातः, आसीदित्यर्थः ॥ १३ ॥

आचारसिद्ध शिवयोगीसबमे अग्रगण्य शिवसम्बन्धी ज्ञानक महासागर एक व्यक्ति शिवयोगी नामसँ प्रसिद्ध छलाह ।। १३ ।।

शिवभक्तिसुधासिन्धु-जृम्भणामलचन्द्रिका ।
भारती यस्य विदधे प्रायः कुवलयोत्सवम् ॥ १४ ॥

यस्य शिवयोगीति प्रसिद्धस्य सिद्धरामेश्वरस्य भारती वाक् शिवभक्तिसुधासमुद्रवर्धनस्यामलचन्द्रिकाप्राया आधिक्येन कुवलयोत्सवं भूमण्डलाख्यनीलोत्पलस्योत्सवं विदधे कृतवतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

जनिक शिवभक्तिरूपी आनन्दक उछालक लेल निर्मल चन्द्रिकाक समान वाणी प्रायः कुवलयक (पृथ्वीमण्डलक अथवा कुमुदिनीक) उत्सव करैत छल ।। १४ ।।

तदेव विवृणोति–

तस्य वंशे समुत्पन्नो मुक्तामणिरिवामलः ।
मुद्ददेवाभिधाचार्यो मूर्धन्यः शिवयोगिनाम् ॥ १५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य सिद्धरामेश्वरस्य वंशे शिववेदिनां शिवज्ञानिनां मध्ये मूर्धन्यः श्रेष्ठो मुद्ददेवाख्याचार्यो निर्मलमुक्तामणिरिव समुत्पन्नः, उद्भूतवानित्यर्थः ॥ १५ ॥

तनिक वंशमे निर्मल मुक्तामणिक समान मुद्ददेव नामक आचार्य भेलाह जे शिवयोगीमे मूर्धन्य छलाह ॥ १५ ॥

मुद्दानात् सर्वजन्तूनां प्रणतानां प्रबोधतः ।
मुद्ददेवेति विख्याता समाख्या यस्य विश्रुता ॥ १६ ॥

सर्वप्राणिनां सन्तोषदानात् प्रणतानां प्रबोधनाद् मुद्ददेवेति यस्यान्वर्थ-रूढिभ्यां विख्याता समाख्या विश्रुता लोकप्रसिद्धेत्यर्थः ॥ १६ ॥

नम्र भए समागत सभ जन्तुकें मुद् (आनन्द) दए प्रबुद्ध करबाक कारण हिनक नाम मुद्ददेव (मुद् ददातीति मुद्दः) प्रसिद्ध भेल ॥ १६ ॥

तस्यासीन्नन्दनः शान्तः सिद्धनाथाभिधः शुचिः ।
शिवसिद्धान्तनिर्णेता शिवाचार्यः शिवात्मकः ॥ १७ ॥

तस्य मुद्ददेवस्य, शुचिः पवित्रः, शान्तः रागद्वेषरहितः, शिवात्मकः शिवस्वरूपः, शिवसिद्धान्तनिर्णेता त्रिपदार्थचतुष्पादयुक्तशिवागमार्थ- निर्णायकः, शिवसमयस्थापनाचार्यः, सिद्धनाथाभिधः सिद्धरामेश्वराभिधा- संयुक्तः सिद्धनाथाचार्याख्यो नन्दनः कुमार आसीदभवदित्यर्थः ॥ १७ ॥

हुनक पुत्र सिद्धनाथ भेलथिन, जे शान्त, पवित्र, शिवसिद्धान्तक निर्णयकर्ता शिवस्वरूप शिवाचार्य छलाह ॥ १७ ॥

वीरशैवशिखारत्नं विशिष्टाचारसम्पदम् ।
शिवज्ञानमहासिन्धुं यं प्रशंसन्ति देशिकाः ॥ १८ ॥

विशिष्टाचारसम्पदं सदाचारसम्पन्नं शिवज्ञानमहासिन्धुं यं सिद्धनाथाचार्यं देशिका आचार्या वीरशैवशिखारत्नं वीरशैवानां शिरोमणिं श्रेष्ठं सन्तं प्रशंसन्ति कथयन्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥

देशिक (आगमाचार्य) लोकनि हुनका वीरशैवागमचूड़ामणि, विशिष्ट आचारसम्पन्न, शिवसम्बन्धी ज्ञानक सागर कहि हुनक प्रशंसा करैत छलथिन ॥ १८ ॥

यस्याचार्यकुलाज्जाता सतामाचारमातृका ।
शिवभक्तिः स्थिरा यस्मिन् जज्ञे विगतविप्लवा ॥ १९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सतां सत्पुरुषाणां आचारमातृका यस्य सिद्धनाथाचार्यस्य आचार्यकुलाद् आचार्यवंशाद् जाता, विगतविप्लवा विगतदोषा शिवभक्तिरष्टविधा यस्मिन् स्थिरा यज्ञे जातेत्यर्थः ॥ १९ ॥

जनिक आचार्यकुलमे उत्पन्न तथा सज्जनक आचारक जननी शिवभक्ति जनिक विषयमे विघ्न-बाधारहित भए स्थिर भए रहए लागल ॥ १९ ॥

तस्य वीरशिवाचार्य-शिखारत्नस्य नन्दनः ।
अभवच्छिवयोगीति सिन्धोरिव सुधाकरः ॥ २० ॥

वीरशैवशिखामणेस्तस्य सिद्धनाथाचार्यस्य नन्दनः कुमारः, सिन्धोः समुद्रस्य सुधाकर इव शिवयोगीति आसीत् प्रसिद्धो जात इत्यर्थः ॥ २० ॥

ओहि वीरशिवाचार्यशिरोमणिक पुत्र शिवयोगी नामक भेलथिन जेना समुद्रसँ चन्द्रमा उत्पन्न भेल छलाह ॥ २०॥

अथैतच्छास्त्रसंग्रहकर्ताऽयं शिवयोगी द्वादशसूत्रैः स्वानामप्रशंसापूर्वकं शास्त्रावतारक्रमं निरूपयति–

चिदानन्दपराकाशशिवानुभवयोगतः ।
शिवयोगीति नामोक्तिर्यस्य याथार्थ्ययोगिनी ॥ २१ ॥

यस्य आचार्यस्य 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म',[1] 'आकाशशरीरं ब्रह्म'[2] इत्यादिश्रुतेश्चिदानन्दपराकाशरूपशिवानुभवयोगात् शिवयोगीति नामोक्तिर्याथार्थ्ययोगिनी यथार्थेन संयुक्ता भवतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

चिदानन्द पराकाश जे शिव तनिक अनुभव सँ ई युक्त छलाह, तेँ हिनक नाम शिवयोगी अर्थक अनुरूप भेल ॥ २१ ॥

शिवागमपरिज्ञान-परिपाकसुगन्धिना ।
यदीयकीर्तिपुष्पेण वासितं हरितां मुखम् ॥ २२ ॥

उक्तलक्षणशिवागमपरिज्ञानपरिपाकसुगन्धिना यदीयकीर्तिपुष्पेण यस्याचार्यस्य कीर्तिकुसुमेन हरितां दिशां मुखं वासितं पोषितमित्यर्थः ॥ २२ ॥

शैवागमशास्त्रक परिपूर्ण ज्ञानक परिपाकक सुगन्धियुक्त जनिक यशरूपी फूलसँ सभ दिशा सुगन्धित छल ॥ २२ ॥

---

१. तै० उ० २।१।१   २. तै०उ० १।६।२

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

येन रक्षावती जाता शिवभक्तिः सनातनी ।
बुद्धादिप्रतिसिद्धान्त-महाध्वान्तांशुमालिना ॥ २३ ॥

बौद्धादिशिवसमयप्रतिकूलसिद्धान्तान्धकारचण्डकिरणेन येनाचार्येण सनातनी शिवभक्ती रक्षावती जाता रक्षिताऽभूदित्यर्थः ॥ २३ ॥

बुद्ध, जिन आदिक प्रतिकूल सिद्धान्त रूपी घोर अन्हारक लेल सूर्यस्वरूप एहि शिवयोगीक द्वारा सनातनी शिवभक्ति सुरक्षित भेल ॥ २३ ॥

स महावीरशैवानां धर्ममार्गप्रवर्तकः ।
शिवतत्त्वपरिज्ञान-चन्द्रिकावृतचन्द्रमाः ॥ २४ ॥

शिवतत्त्वज्ञानरूपचन्द्रिकावृतचन्द्रमाः स शिवयोगी महावीरशैवानां धर्ममार्गप्रवर्तकः, तदीयाचारमार्ग एव वर्तनवानित्यर्थः ॥ २४ ॥

ओ महावीर शैवक धर्ममार्गक प्रवर्तक भेलाह, कियेक तँ स्वयं शिवतत्त्वक परिपूर्णज्ञानरूपी चन्द्रिकासँ युक्त चन्द्रस्वरूप छलाह ॥ २४ ॥

आलोक्य शैवतन्त्राणि कामिकाद्यानि सादरम् ।
वातुलान्तानि शैवानि पुराणान्यखिलानि तु ॥ २५ ॥

कामिकादि-वातुलान्तशैवतन्त्राणि शैवान्यखिलानि पुराणानि च प्रीतियुक्तं यथा भवति तथा आलोक्य ॥ २५ ॥

ओ 'कामिक'सँ आरम्भ कए 'वातुल' तक सकल शैवशास्त्रक तथा सभ पुराणक सादर अवलोकन कए– (वीरशैव महाशास्त्रक रचना कएलनि) ॥ २५ ॥

वेदामार्गाविरोधेन विशिष्टाचारसिद्धये ।
असन्मार्गनिरासाय प्रमोदाय विवेकिनाम् ॥ २६ ॥

वैदिकमार्गाविरोधेन सदाचारसिद्धये दुर्जनजैनबौद्धादिशास्त्रमार्ग-निरासाय वेदागमविवेकिनां सन्तोषाय ॥ २६ ॥

वेदमार्गक अविरोधपूर्वक (अनुकूल) विशिष्ट आचरक (आचरणक) सिद्धिक लेल, असत्मार्गक (कुमार्गक) दूर करबाक लेल एवं विवेकीलोकनिक आनन्दक लेल– (वीरशैवागमक रचना कएलनि) ॥ २६ ॥

सर्वस्वं वीरशैवानां सकलार्थप्रकाशनम् ।
अस्पृष्टमखिलैर्दोषैरादृतं शुद्धमानसैः ॥ २७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वीरशैवानां सर्वस्वं समस्तार्थप्रकाशकं समस्तदोषैरसंस्पृष्टं शुद्धमानसैर्निगमागमज्ञानिभिरादृतं सम्पोषितम् ॥ २७ ॥

वीरशैवक सर्वस्व, सकल अर्थक प्रकाशक, सकलदोषरहित, शुद्ध-अन्तःकरणवाला विद्वनक द्वारा आदर प्राप्त– (जे वीरशैवागम, तकर रचना कएलनि) ॥ २७ ॥

तेष्वागमेषु सर्वेषु पुराणेष्वखिलेषु च ।
पुरा देवेन कथितं देव्यै तन्नन्दनाय च ॥ २८ ॥

पूर्वोक्तागमपुराणेषु शिवेन देव्यै तन्नन्दनाय षण्मुखायानुगृह्य कथितम् ॥ २८ ॥

ओहि पूर्वोक्त आगम ओ पुराणादिमे वर्णित शैवतत्त्वकेँ बहुत प्राचीन कालमे भगवान् शिव पार्वतीकेँ एवं तनिक पुत्र कार्तिकेयकेँ कहने छलथिन ॥ २८ ॥

तत्सम्प्रदायसिद्धेन रेणुकेन महात्मना ।
गणेश्वरेण कथितमगस्त्याय पुनः क्षितौ ॥ २९ ॥

तत्सम्प्रदायसिद्धेन महात्मना रेणुकगणाधीश्वरेण पुनः क्षितावगस्त्याय कथितम् ॥ २९ ॥

ओहि शैवसम्प्रदायमे सिद्ध महात्मा गणेश्वर रेणुक पृथ्वी पर अगस्त्यकेँ ई शास्त्र कहलथिन ॥ २९ ॥

वीरशैवमहातन्त्रमेकोत्तरशतस्थलम् ।
अनुग्रहाय लोकानामभ्यधात् सुधियां वरः ॥ ३० ॥

एकोत्तरशतस्थलं पिण्डादिज्ञानशून्यान्तैरेकोत्तरशतस्थलं वीरशैवसिद्धान्तं लोकानामनुग्रहाय निर्मलज्ञानिनां मध्ये श्रेष्ठः शिवयोगिनाम्ना प्रख्याताचार्यः, अभ्यधात् संग्रहेण प्रकटितवानित्यर्थः ॥ ३० ॥

विद्वानमे श्रेष्ठ शिवयोगी लोक पर कृपा कए एक सौ एक विषयवाला एहि वीरशैव महातन्त्रक प्रवचन कएलनि ॥ ३० ॥

सर्वेषां शैवतन्त्राणामुत्तरत्वान्निरुत्तम् ।
नाम्ना प्रतीयते लोके यत्सिद्धान्तशिखामणिः ॥ ३१ ॥

यद् वीशैवतन्त्रं सर्वेषां शैवतन्त्राणामुत्तरत्वाद् निरुत्तरं स्वस्मादुत्तररहितं सत् सिद्धान्तशिखामणिरिति नाम्ना लोके प्रतीयते प्रतिभातीत्यर्थः ॥ ३१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समस्त शैवतन्त्रक बादमे बनबाक कारण (हुनक प्रवचन कएल) ई ग्रन्थ सर्वोपरि एवं सकल आक्षेपसँ रहित भए लोकमे सिद्धान्तशिखामणि नाम सँ प्रसिद्ध भेल । शैवसिद्धान्त (निर्णय)क जे शिखा ताहिमे लगाओल मणि स्वरूप (सर्वोपरि) ई ग्रन्थ थिक ॥ ३१ ॥

अनुगतसकलार्थे शैवतन्त्रैः समस्तैः
प्रकटितशिवबोधाद्वैतभावप्रसादे ।
विदधतु मतिमस्मिन् वीरशैवा विशिष्टाः
पशुपतिमतसारे पण्डितश्लाघनीये ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीसिद्धान्तशिखामणौ प्रथमः परिच्छेदः ॥ १ ॥



समस्तैर्वीरशैवतन्त्रैरनुगतसमस्तरहस्यार्थे प्रकटितशिवाद्वैतज्ञान-समरसभावप्रसन्नतायुक्ते शिवसिद्धान्तसारे विद्वद्भिः स्तूयमानेऽस्मिन् सिद्धान्तशिखामणौ विशिष्टाः श्रेष्ठा वीरशैवा वीरशैवाचार्या मतिं विदधतु कुर्वन्त्वित्यर्थः ॥ ३२ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां अनुक्रमवर्णननामकः प्रथमः परिच्छेदः ॥ १ ॥



हे विशिष्ट वीरशैवलोकनि ! सकल शैवतन्त्रक तत्त्वकेँ अपना अन्दर राखएवाला, शिवज्ञानक अद्वैतभावक आनन्द देबएवाला, पशुपतिमतक (पाशुपतदर्शनक) सारस्वरूप एवं पण्डितगणसँ प्रशंसनीय एहि ग्रन्थमे अपन बुद्धि लगबैत जाउ ॥ ३२ ॥

एहि तरहेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणिक अनुक्रमवर्णन नामक पहिल परिच्छेदक विद्यावाचस्पति पं० शशिनाथझाकृत– 'प्रबोधिनी' मैथिली व्याख्या पूर्ण भेल ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीयः परिच्छेदः

अथ शिवयोगिनामाचार्यः सूत्रद्वयेन निगमागमसम्मत्या पार्वतीपरमेश्वरौ प्रणमति–

सच्चिदानन्दरूपाय सदसद्व्यक्तिहेतवे ।
नमः शिवाय साम्बाय सगणाय स्वयम्भुवे ॥ १ ॥

सदसंद्व्यक्तिहेतवे भावाभावमण्डलप्रपञ्चाविर्भावकारणाय भवानीपतये प्रमथगणसहिताय स्वयम्भुवे अयोनिजाय सच्चिदानन्दरूपाय शिवाय नम इत्यर्थः ॥ १ ॥

सच्चिदानन्द स्वरूप, सत् (भाव = परमशिव) ओ असत् (अभाव = प्रातिभासिक एवं व्यावहारिक संसार) एहि दुनूक अभिव्यक्ति = प्रकाशक कारण, गणसहित, स्वयम्भू तथा साम्ब (अम्बा = पार्वती सहित) शिवकेँ प्रणाम करैत छी ॥ १ ॥

सदाशिवमुखाशेष–तत्त्वमौक्तिकशुक्तिकाम् ।
वन्दे माहेश्वरीं शक्तिं महामायादिरूपिणीम् ॥ २ ॥

सदाशिवादिभूम्यन्त–षट्त्रिंशत्तत्त्वमौक्तिकोत्पत्तिशुक्तिरूपां शुद्धविद्याख्यमहामायाप्रकृतिरूपिणीं शिवसमवेतशक्तिं भवानीं वन्दे नौमीत्यर्थः ॥ २ ॥

सदाशिव आदि सकल तत्त्वक मोतीक शुक्ति (सितुआ) रूपी महामाया आदि रूप धारण कएनिहारि माहेश्वरीशक्तिक वन्दना करैत छी ॥ २ ॥

अथ विश्वसृष्टिक्रममुपपादयितुं चतुर्भिः सूत्रैर्वस्तुनिर्देशं करोति–

अस्ति सच्चित्सुखाकारमलक्षणपदास्पदम् ।
निर्विकल्पं निराकारं निरस्ताशेषविप्लवम् ॥ ३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सच्चिदानन्दस्वरूपं चिह्नशून्यपदास्पदं भेदरहितम् आकारशून्यं निवारितसकलोपप्लवम् ॥ ३ ॥

(शिव नामक परब्रह्म) सत् चित् आनन्द रूप, लक्षण सँ पर (अगम्य), निर्विकल्प, निराकार, सब प्रकारक दोष सँ रहित छथि ॥ ३ ॥

परिच्छेदकथाशून्यं प्रपञ्चातीतवैभवम् ।
प्रत्यक्षादिप्रमाणानामगोचरपदे स्थितम् ॥ ४ ॥

विच्छिन्नप्रसङ्गरहितमप्राकृतवैभवरूपसाद्यभावेन प्रत्यक्षप्रमाणागम्यम् अत एवानुमानाद्यगम्यम्, तेषामपि प्रत्यक्षमूलत्वात् परिच्छिन्नत्वाच्च ॥ ४ ॥

ओ विभागरहित, प्रपञ्च (विस्तार)सँ रहित और प्रत्यक्षादि प्रमाण सँ अगोचर (जानल नहि जाएवाला) छथि ॥ ४ ॥

स्वप्रकाशं विराजन्तमनामयमनौपमम् ।
सर्वज्ञं सर्वगं शान्तं सर्वशक्ति निरङ्कुशम् ॥ ५ ॥

स्वप्रकाशेनैव[1] प्रकाशमानं जननमरणादिदोषरहितम्, उपमातीतं सर्वज्ञं सर्वानुस्यूतं रागद्वेषरहितं सर्वसामर्थ्यम् अनर्गलं निरोधरहितमिति यावत् ॥ ५ ॥

ओ स्वयं प्रकाशित होइवाला, निष्कलुष, निरुपम, सर्वज्ञ, सबतरि रहएवाला, शान्त, सर्वशक्तिमान् ओ निरंकुश (ककरो सँ नियन्त्रित नहि) छथि ॥ ५ ॥

शिवरुद्रमहादेव-भवादिपदसंज्ञितम् ।
अद्वितीयमनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ ६ ॥

शिवरुद्राद्यनेकपदसंज्ञितं द्वितीयशून्यमवाच्यं नित्यं परं ब्रह्म अस्ति, अस्तीत्यङ्गीकरणीयम्, अन्यथा जगदान्ध्यप्रसङ्गात्,

असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत् ।
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेन ततो विदुः ॥[2]

इति श्रुतेः ॥ ६ ॥

ओ शिव, रुद्र, महादेव, भव इत्यादि नामवाला, अद्वितीय, अनिर्देश्य (जनिक निर्देश कए देखाएब सम्भव नहि) तथा सनातन (अनादिकालसँ विद्यमान) परब्रह्म थिकाह ॥ ६ ॥

---

१. स्वप्रकाशत्वं नाम स्वस्य प्रकाशकत्वे सति परप्रकाशकत्वम् ।

२. तै० उ० २ । ६ । १

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथैकविधक्रियाशक्तिमतः परब्रह्मणः सकाशात् 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्'[१] इति श्रुतेर्बीजाङ्कुरन्यायेन विश्वसृष्टिप्रकारं दर्शयति–

तत्र लीनमभूत् पूर्वं चेतनाचेतनं जगत् ।
स्वात्मलीनं जगत्कार्यं स्वप्रकाश्यं तदद्भुतम् ॥ ७ ॥

तत्र तस्मिन्नुक्तलक्षणे परब्रह्मणि चराचरमयं विश्वं पूर्वं सृष्टेः प्राग् लीनम् अनुभयेन्द्रियगोचरत्वेन तादात्म्येन स्थितं तदद्भुतमाश्चर्यम् । अनन्तरमिति शेषः, स्वात्मलीनं स्वात्मशक्तिलीनं जगद् योग्योपादानान्तरराहित्येन स्वप्रकाश्यं द्वितीयस्याभावात् स्वेनैव प्रकाश्यं सत् कार्यमुभयेन्द्रियगोचरत्वेन कर्तुं योग्यमभूदित्यर्थः ॥ ७ ॥

हुनकहिमे पूर्वकालमे ई सम्पूर्ण चराचर जगत् (संसार) लीन (एकाकार) छल । बादमे स्वयं परब्रह्मक द्वारा ई जगत् अपन शक्तिमे लीन होइत स्वयं अद्‌भुत कार्यरूप मे परिणत भेल ॥

मन एवं ज्ञानेन्द्रिय एहि दुनूक द्वारा बाह्य विषयक ज्ञान भेल उभय ज्ञानेन्द्रियगोचर ॥ ७ ॥

अथ घृतकाठिन्यन्यायेन विश्वसृष्ट्युन्मुखीभूतशिवशक्तिस्वरूपं सूत्रषट्केन प्रदर्शयति–

शिवाभिधं परं ब्रह्म जगन्निर्मातुमिच्छया ।
स्वरूपमादधे किञ्चित् सुखास्फूर्तिविजृम्भितम् ॥ ८ ॥

शिवाख्यं परं ब्रह्म विश्वसृष्ट्यर्थं स्वेच्छया सुखबाहुल्योच्छूनं किंञ्चित् स्वरूपमङ्गीचकारेत्यर्थः ॥ ८ ॥

शिव नामक परब्रह्म संसार बनएबाक इच्छा सँ आनन्दक अधिकतासँ परिपूर्ण कोनो स्वरूप (आकार) ग्रहण कएलनि । निराकार ब्रह्म साकार भए गेलाह ॥ ८ ॥

तत्स्वरूपं कुलके[२](विशेषके)नाह–

निरस्तदोषसम्बन्धं निरुपाधिकमव्ययम् ।
दिव्यमप्राकृतं नित्यं नीलकण्ठं त्रिलोचनम् ॥ ९ ॥

निरस्तजरामरणादिसकलदोषसम्बन्धं स्वातिरिक्ताविद्याद्युपाधिशून्यं

---

१. छा०उ० ६ । २ । १

२. द्वाभ्यां तु युग्मकं ज्ञेयं त्रिभिर्ज्ञेयं विशेषकम् ।
कलापकं चतुर्भिः स्यात्तदूर्ध्वं कुलकं स्मृतम् ॥ (स्तु०कु०टी०)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाशरहितमत एव नित्यं कालत्रयाबाध्यमित्यर्थः । अप्राकृतं प्रकृतिसम्बन्धरहितं नीलकण्ठं त्रिलोचनम् ॥ ९ ॥

हुनक ओ रूप दोषसँ असम्बद्ध, निरुपाधि (बाहरी प्रभावसँ रहित), अविकारी, नित्य दिव्य, अलौकिक, नीलकण्ठ ओ त्रिलोचन छल ॥ ९ ॥

चन्द्रार्धशेखरं शुद्धं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
शुद्धमुक्ताफलाभासमुपास्यं गुणमूर्तिभिः ॥ १० ॥

चन्द्रखण्डशेखरं शुद्धं पवित्रं शुद्धस्फटिकसङ्काशं निर्मलमुक्तामणिप्रभं गुणमूर्तिब्रह्मादिभिरुपास्यम् ॥ १० ॥

ओ मस्तकपर अर्धचन्द्रवाला, शुद्ध, शुद्धस्फटिकक समान स्वच्छ, शुद्ध मोतीक समान चमकैत आ अपन गुणसँ बनल मूर्त्ति सब (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र)सँ उपास्य भेलाह ॥ १० ॥

विशुद्धज्ञानकरणं विषयं सर्वयोगिनाम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥ ११ ॥
अप्राकृतगुणाधारमनन्तमहिमास्पदम् ।

दिव्यं स्तुत्यं निर्मलज्ञानमयचक्षुरादिकरणप्रपञ्चं योगिनां प्रत्यक्षं कोटिसूर्यप्रकाशं चन्द्रकोटिसमाभासमप्राकृतानन्तकल्याणगुणाश्रयमतिदुर्घट-कारिताद्यनेकमहिमाधारं किञ्चित् स्वरूपमादध इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ११ ॥

ओ विशुद्ध ज्ञानक करण (असाधारण कारण), सब योगीक ध्यानक विषय, करोड़ो सूर्यक समान तेज पसारैत, करोड़ो चन्द्रक समान कान्ति धरैत, अलौकिक गुणक आधार बनैत अनन्त महिमासँ युक्त भेलाह ॥ ११ ॥

अथ शिवस्य शक्तिस्वरूपं प्रकटयति–

तदीया परमा शक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा ॥ १२ ॥
समस्तलोकनिर्माण-समवायस्वरूपिणी ।

तदीया परशिवसम्बन्धिनी परमा शक्तिः परारूपा विमर्शशक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा, अस्तीति शेषः ॥ १२ ॥

हुनक परमा (सर्वोपरि) शक्ति, सत् चित् आनन्दस्वरूपा आ सकल लोकक निर्माणक समवाय (मूलतत्त्व) रूप छथि ॥ १२ ॥

तदिच्छयाऽभवत् साक्षात्तत्स्वरूपानुसारिणी ॥ १३ ॥

---

१. सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञा आहुः षडङ्गानि महेश्वरस्य ॥ वायु पु०)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'अहमस्मि' इति श्रुतेः अस्मिन् प्रकाशे नन्दामीत्यनुत्पन्नमलोल्ला-साकर्मकाक्रमोत्तमस्फूर्तिरूपापि समस्तलोकनिर्माणे पूर्वोक्तप्रकारेण 'नासतो विद्यते भावः'[1] इतिभगवदुक्तेः स्वात्मन्यण्डरसन्यायेनाहमित्यविभाग- परामर्शात्मनानुभयेन्द्रियगोचरत्वेन स्थितस्य विश्वस्येदन्तालक्षणविभाग- परामर्शमयसृष्टिलीलायां स्वस्वातन्त्र्यमहिम्ना भेदाभेदं प्रतिपाद्य वृक्षगतफलपुष्पादिन्यायेन विकाररहित्येन समवायस्वरूपिणी उपादानकारणीभूता भवति । पुनः स्वान्तराकर्षणलक्षण-संहारलीलाया तदिच्छया कूर्मभङ्गिन्यायेन स्वकिरणायमानज्ञानक्रियाशक्तिद्वारा सर्वं स्वात्मन्याकृष्य साक्षादपरोक्षेणाहमिति तत्स्वरूपानुकारिणी शिवाभिन्नस्वरूपिणी अभवत्, भवतीत्यर्थः । न च भेदाभेदयोर्विरोध इति वाच्यम्, तद्भेदस्य स्वातन्त्र्यपरिकल्पितत्वात्, स्वाभाविकभेदाभेदयोरेव विरोधात्, समानसत्ताकयोरिति यावत्, भगवतः शक्तेरघटनघटनापटीयस्त्वात् । तदेतदग्रे तत्र तत्र स्फुटीभविष्यतीति नैष (नात्र) विस्तरः । देवः क्रीडाशील इत्यर्थः ॥ १३ ॥

जे हुनके (परमशिवेक) इच्छा सँ साक्षात् हुनके स्वरूपानुसार रूपवाली प्रकट भेलीह । परमशिवक शक्ति अतिविलक्षण छथि । ओ मूल रूपमे अक्रम रहैतो आदिकालमे मयूराण्डरसन्याससँ संसारकेँ अपन भीतरमे अपनासँ अभिन्न रूपमे धारण करैत छथि । अर्थात् मयूरक अण्डाक भीतर रसमे अव्यक्तरूपसँ मयूर रहैत छथि आ बादमे फोड़ला पर व्यक्त होइत अछि। तहिना शक्तिक भीतर अव्यक्तरूपसँ संसार रहैत अछि । तकरबाद क्रमशः आकार धारण करैत व्यक्त होइत अछि, जेना बीजमे स्थित वृक्ष व्यक्त होइत क्रमसँ पत्र, शाखा, पुष्प, फलसँ युक्त गाछ भए जाइत अछि, मुदा 'अयमेकोवृक्षः' रूपेँ एकाकार प्रतीत होइछ, तहिना विविध पदार्थ रहनहुँ 'ई एक संसार थिक' ई एकाकार ज्ञान होइछ । तकर बाद जेना काछु स्वेच्छासँ अपन अङ्गकेँ समेटि भीतर कए लैछ तहिना शक्तिओ एहि संसारकेँ अपना अन्दर समेटि लैछ । ई सृष्टि-संहारक खेल परमेश्वर स्वेच्छासँ अपन स्वतन्त्र शक्तिक द्वारा करैत छथि । हुनक अपन शक्ति असम्भवो के सम्भव करबामे समर्थ छनि ॥ १३ ॥

एवं शिवशक्तिस्वरूपं निरूप्याथ 'स ऐक्षत लोकानसृजत'[2] 'यथापूर्वमकल्पयत्'[3] इत्यादिश्रुत्युक्तप्रकारेण सृष्टक्रमं निरूपयति—

जगत्सिसृक्षुः प्रथमं ब्रह्माणं सर्वदेहिनाम् ।
कर्तारं सर्वलोकानां विदधे विश्वनायकः ॥ १४ ॥

---

१. भ० गीता २ । १६ २. ऐ०उ० १ । १-२ ३. ऋ० सं० १० । १९० । ३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोकानां चतुर्दशभुवनानां देहिनां तत्तल्लोकमाश्रित्य विद्यमानानां प्राणिनामित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् । अस्मिन्नर्थे– 'विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्' इति याजुषश्रुतिः ॥ १४ ॥

ओ संसारक नियन्ता संसारक सृष्टि करबाक इच्छासँ सबसँ पहिने सकल प्राणीक ओ सकल लोकक कर्ता ब्रह्माकेँ बनओलनि ।। १४ ।।

अथ– 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै'[1] इति श्वेताश्वतरश्रुत्यर्थं प्रकटयति–

तस्मै प्रथमपुत्राय शङ्करः शक्तिमान् विभुः ।
सर्वज्ञः सकला विद्याः सानुग्रहमुपादिशत् ॥ १५ ॥

शक्तिमान् समवेतशक्तिमानित्यर्थः । अनुग्रहेण सहितं यथा भवति तथा वेदादिसकलशास्त्रमुपदिष्टवानित्यर्थः ॥ १५ ॥

सर्वत्र शक्तिमान् भगवान् शंकर अपन ओहि प्रथम पुत्र(ब्रह्मा)केँ सब विद्याक उपदेश कृपापूर्वक देलनि ।। १५ ।।

समस्तलोकान्निर्मातुं समुद्यमपरोऽभवत् ।
कृतोद्योगोऽपि निर्माणे जगतां शङ्कराज्ञया ।
अज्ञातोपायसम्पत्तेरभवन्माययावृतः ॥ १६ ॥

स्पष्टम् ॥ १६ ॥

शंकरक आज्ञासँ ओ (ब्रह्मा) सबलोककेँ बनएबामे लागि गेलाह, परन्तु संसारक निर्माणप्रयास कएलहुँ पर तकर उपायकेँ नहि जनबाक कारण नहि कए सकलाह आ माया सँ झँपाए गेलाह अर्थात् माया हुनक ज्ञानकेँ झाँपि अज्ञानमय कए देलक ।। १६ ।।

विधातुमखिलान् लोकानुपायं प्राप्तुमिच्छया ।
पुनस्तं प्रार्थयामास देवदेवं त्रियम्बकम् ॥ १७ ॥

ओ समस्त लोककेँ बनएबाक लेल उपाय प्राप्त करबाक इच्छासँ फेरो ओही देवाधिदेव त्र्यम्बकक प्रार्थना करए लगलाह ।। १७ ।।

अथ तत्प्रार्थनप्रकारं दर्शयति–

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते करुणाकर ।
अस्मदादिजगत्सर्व-निर्माणनविधिक्षम ॥ १८ ॥

---

१. श्वे०उ० ६ । १८

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपायं वद मे शम्भो जगत्स्रष्टः ! जगत्पते ।
सर्वज्ञः सर्वशक्तिस्त्वं सर्वकर्ता सनातनः ॥ १९ ॥

अत्रोपायकथने सर्वज्ञ इत्यादिकं हेतुगर्भविशेषणम् ॥ १९ ॥

हे देवदेवेश करुणाकर ! अहाँकेँ नमस्कार करैत छी । हे संसारक सृष्टिकरएवाला संसारक पति ! अहाँ हमरालोकनि सहित-सम्पूर्ण संसारक निर्माण करबामे समर्थ छी । तेँ एकर उपाय कहू । अहाँ सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सभक कर्ता ओ सनातन (अनादिकालसँ अनन्तकाल तक रहएवाला) छी ॥ १८-१९ ॥

इति सम्प्रार्थितः शम्भुर्ब्रह्मणा विश्वनायकः ।
उपायमवदत् तस्मै लोकसृष्टिप्रवर्तनम् ॥ २० ॥
उपायमीश्वरेणोक्तं लब्ध्वाऽपि चतुराननः ।
न समर्थोऽभवत् कर्तुं नानारूपमिदं जगत् ॥ २१ ॥

विश्वनिर्माणे शिवेन लब्धोपायवानपि ब्रह्मा न समर्थोऽभवत् । कुत इत्यत्र हेतुगर्भविशेषणम्–नानारूपमिति । जगतो नानारूपत्वादिति भावः ॥ २१ ॥

एहि प्रकारेँ ब्रह्माक द्वारा प्रार्थना कएल गेला पर सांसारक संचालक शम्भु हुनका लोकसृष्टि करबाक उपाय कहलथिन ॥ २० ॥

चतुर्मुख ब्रह्मा ईश्वरक कहल उपाय केँ पाबिओ कए एहि अनेक रूपक संसारक रचना करबामे समर्थ नहि भेलाह ॥ २१ ॥

अथ तत्प्रकारं वर्णयति–

पुनस्तं प्रार्थयामास ब्रह्मा विह्वलमानसः ।
देवदेव महादेव जगत्प्रथमकारण ॥ २२ ॥

अतो विह्वलमानसो भययुक्तमानसः सन् पुनः शिवं प्रार्थयामासेत्यर्थः ॥ २२ ॥

नमस्ते सच्चिदानन्द स्वेच्छाविग्रहराजित ।
भव शर्व महेशान सर्वकारणकारण ॥ २३ ॥
भवदुक्तो ह्युपायो मे न किञ्चिज्ज्ञायतेऽधुना ।

भव सर्वलोकोत्पादक, शर्व सर्वसंहारक, सर्वकारणकारण बिन्दुमायादिसर्वकारणकारणेत्यर्थः ॥ २३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकर बाद व्याकुल चित्त भेल ब्रह्मा फेर ओहि शिवसँ प्रार्थना कएलनि– हे देवदेव महादेव ! संसारक आदिकारण ! ।। २२ ।।

अहाँकेँ नमस्कार करैत छी । हे सच्चिदानन्द स्वेच्छासँ शरीरधारण कएनिहार ! भव ! शर्व (सृष्टिक संहार करए = समेटएवाला) ! महेशान (महान् प्रभु) ! सब कारणोक कारण ! अहाँक कहल उपाय केँ एखन हम किछुओ नहि बुझि सकलहुँ ।। २३ ।।

तर्हि किं कर्तव्यमित्यत्राह–

सृष्टिं विधेहि भगवन् प्रथमं परमेश्वर ।
ज्ञातोपायस्ततः कुर्यां जगत्सृष्टिमुमापते ।। २४ ।।

स्पष्टम् ।। २४ ।।

हे परमेश्वर ! भगवन् ! अहाँ पहिने सृष्टि करू । हे उमापते ! सृष्टिक उपाय जानि कए तखन हम सृष्टि कए सकब ।। २४ ।।

अथ– 'प्रजाः सृजेति निर्दिष्टश्चन्द्रमौलिर्विरिञ्चिना ।
ससर्ज मनसा रुद्रानात्मतुल्यान् महेश्वरान् ।
नीलकण्ठांस्त्रिनेत्राश्चं जटामुकुटमण्डितान् ।।
इत्याद्यदित्यपुराणवचनानुसारेण सृष्टवानित्याह–

इत्येवं प्रार्थितः शम्भुर्ब्रह्मणा विश्वयोनिना ।
ससर्जात्मसमप्रख्यान् सर्वगान् सर्वशक्तिकान् ।। २५ ।।

स्पष्टम् ।। २५ ।।

एहि तरहेँ जखन विश्वक कारण ब्रह्मा शम्भुकेँ प्रार्थना कएलनि तखन शम्भु अपन समान सबठाम गेनिहार सब शक्तिसँ सम्पन्न प्रमथ नामक अपन गणक सृष्टि कएलनि ।। २५ ।।

प्रबाधपरमानन्द–परिवारहितमानसान् ।
प्रमथान् विश्वनिर्माण–प्रलयापादनक्षमान् ।। २६ ।।

स्पष्टम् ।। २६ ।।

ओ प्रमथ सब प्रबोधक कारण परम आनन्दसँ परिपूर्ण मन सँ युक्त तथा संसारक निर्माण एवं प्रलय करबामे सिद्धहस्त छलाह ।। २६ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेषु प्रमथवर्गेषु सृष्टेषु परमात्मना ।
रेणुको दारुकश्चेति द्वावभूतां शिवप्रियौ ॥ २७ ॥

स्पष्टम् ॥ २७ ॥

जखन परमात्मा शिव प्रमथगणक सृष्टि कएलनि त ओहिमे रेणुक ओ दारुक ई दुनू हुनक अत्यन्त प्रिय भेलाह ॥ २७ ॥

अथ तद्गणेश्वरयोर्माहात्म्यं पञ्चभिः श्लोकैः प्रकटयति–

सर्वविद्याविशेषज्ञौ सर्वकार्यविचक्षणौ ।
मायामलविर्निर्मुक्तौ महिमातिशयोज्ज्वलौ ॥ २८ ॥

स्पष्टम् ॥ २८ ॥

ई दुनू सब विद्याक विशेषज्ञ, सब काजमे पटु, माया प्रयुक्त मलसँ रहित आओर महिमासँ अत्यन्त उज्ज्वल छलाह ॥ २८ ॥

आत्मानन्दपरिस्फूर्ति-रसास्वादनलम्पटौ ।
शिवतत्त्वपरिज्ञान-तिरस्कृतभवामयौ ॥ २९ ॥

मायामलविनिर्मुक्तौ मायाशक्तिपरिकल्पिताणवादिमलत्रयसम्बन्धरहितावित्यर्थः ॥ २९ ॥

तथा अपन आनन्दक परिस्फूर्त्तिसँ प्राप्त रसक आस्वादमे मग्न एवं शिवतत्त्वक ज्ञान सँ सांसारिक व्याधि सँ मुक्त छलाह ॥ २९ ॥

नानापथमहाशैव-तन्त्रनिर्वाहतत्परौ ।
वेदान्तसारसर्वस्व-विवेचनविचक्षणौ ॥ ३० ॥

स्पष्टम् ॥ ३० ॥

तथा अनेक मार्गवाला महान् शैवतन्त्रक नियमक पालनमे तत्पर एवं वेदान्ततत्त्वक विवेचनमे पारंगत विद्वान् छलाह ॥ ३० ॥

नित्यसिद्धौ निरातङ्कौ निरङ्कुशपराक्रमौ ।
तादृशौ तौ महाभागौ सम्वीक्ष्य परमेश्वरः ॥ ३१ ॥

नित्यसिद्धौ नित्यभूतसिद्धिमन्तौ, स्पष्टमन्यत् ॥ ३१ ॥

समर्थौ सर्वकार्येषु विश्वासपरमाश्रितौ ।
अन्तःपुरद्वारपालौ निर्ममे नियतौ विभुः ॥ ३२ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

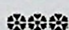
नियतौ शुद्धात्मानौ एवंरूप-रेणुकदारुकौ विभुः स्वतन्त्रः परमेश्वरः, अन्तःपुरद्वारपालौ निर्ममे निर्मितवानित्यर्थः ॥ ३२ ॥

तथा नित्यसिद्ध, आतंकरहित, अनियन्त्रित पराक्रमवाला छलाह । एहि तरहक ओहि दुनू महानुभावकेँ देखि परमेश्वर व्यापक शिव अन्तःपुरक (ड्यौढ़ीक) नियत द्वारपाल बनाए देलथिन जे दुनू सब काज मे समर्थ ओ परम विश्वासपात्र छलाह ॥ ३१-३२ ॥

अथ तौ रेणुकादारुकौ शिवसेवां चक्रतुरित्याह–

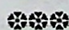
गणेश्वरौ रेणुक-दारुकावुभौ
विश्वासभूतौ नवचन्द्रमौलेः ।
अन्तःपुरद्वारगतौ सदा तौ
वितेनतुर्विश्वपतेस्तु सेवाम् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीसिद्धान्तशिखामणौ रेणुकादारुकावतरणं नाम द्वितीयः परिच्छेदः ॥ २ ॥



स्पष्टम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां रेणुक-दारुकावतरणं नाम द्वितीयः परिच्छेदः ॥ २ ॥



प्रथम गणक अधिपति रेणुक और दारुक ई दुनू नवचन्द्रचूडामणि शिवक विश्वासपात्र भए सतत अन्तःपुरक द्वार पर रहि विश्वपति शिवक सेवा करए लगलाह ॥ ३३ ॥

एहि तरहेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणिक रेणुक-दारुकावतरण नामक द्वितीय परिच्छेदक विद्यावाचस्पति पं० श्रीशशिनाथझाकृत 'प्रबोधिनी' मैथिली व्याख्या पूर्ण भेल ॥



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तृतीयः परिच्छेदः

अथात्र शिवयोगिनी रेणुकस्य भूलोकावतरणप्रसङ्गकथनार्थं प्रथममष्टभिः श्लोकैः कैलासवर्णनं करोति–

कदाचिदथ कैलासे कलधौतशिलामये ।
गन्धर्व-वामनयना-क्रीडामौक्तिकदर्पणे ॥ १ ॥

अथ रेणुकावतरणानन्तरं कदाचिद् रजतमयपाषाणप्रदेशे गन्धर्ववनिता-क्रीडाया मौक्तिकदर्पणे ॥ १ ॥

(एतय पहिने आठ श्लोकमे कैलासपर्वतक वर्णन, तकर बाद पन्द्रह श्लोकमे महादेवक वर्णन आ तकर बाद तेरह श्लोकमे पार्वतीक वर्णन अछि। एहि कुल छत्तीस श्लोकक एके वाक्य अछि, कारण क्रियापद अन्तिम (छत्तीसम श्लोक)मे अछि– 'अभजन्'। पाँच वा अधिक पद्यक एकवाक्यरूपेँ अन्वय भेला पर ओहि पद्यसमूहक नाम 'कुलक' होइछ। एहि वाक्यक सारांश अछि– 'कैलास पर उमाक संग बैसल परमेश्वर केँ हुनक परिवारवर्ग सेवा करैत छलथिन।')

एक समय कैलस पर्वत पर शिव बैसल छलाह जे पर्वत चानीक पाथरमय छल आ गन्धर्वक स्त्रीगणक खेलएबाक मोतीक लेल दर्पण बनल छल ॥ १ ॥

मन्दार-बकुलाशोक-माकन्दप्रायभूरुहे ।
मल्लीमरन्दनिष्यन्द-पानपीनमधुव्रते ॥ २ ॥

मन्दारमाकन्दादिनानावृक्षवति मल्लिकाकुसुममकरन्दस्रवणपानपरिपुष्ट-भ्रमरे ॥ २ ॥

ओहि पर मन्दार (आक वा कल्पवृक्ष), बकुल (भालसरी), अशोक, माकन्द आदि गाछ भरल छल आ चमेलीफूलक रसक सार भागक पानसँ

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परिपुष्ट भौँरा सभ गुनगुनाइत छल ।। २ ।।

कुङ्कुमस्तबकामोद-कूलङ्कषहरिन्मुखे ।
कलकण्ठकुलालाप-कन्दलद्रागबन्धुरे ।। ३ ।।

कुङ्कुमकुसुमगुच्छामोदभरितकूलस्पृशन्नदीप्रवाहवति कोकिलसमूहरव-बाहुल्योद्भवपञ्चमस्वरमनोहरे ।। ३ ।।

दहो दिस कुंकुम फूलक गुच्छाक उत्कट सुगन्धसँ परिपूर्ण छल आ कोइलीसभक ध्वनिस्वरूप पञ्चम रागसँ कमनीय (मनोहर) छल ।। ३ ।।

किन्नरीगीतमाधुर्य-परिवाहितगह्वरे ।
सानन्दवरयोगीन्द्र-वृन्दालङ्कृतकन्दरे ।। ४ ।।

किन्नरस्त्रीगीतमाधुर्यप्रवाहितगुहाप्रदेशे सानन्दगणेशमुख्यशिवयोगि-समूहालङ्कृतप्रदेशभागवति ।। ४ ।।

ओहि पर्वतक गुफामे किन्नर स्त्रीसभक गीतक माधुर्य व्याप्त छल । कन्दरा सभ ब्रह्मानन्दक अनुभववाला श्रेष्ठयोगीक समूह सँ शोभित छल ।। ४ ।।

हेमारविन्दकलिका-सुगन्धिरसमानसे ।
शातकुम्भमयस्तम्भ-शतोत्तुङ्गविराजिते ।। ५ ।।

हेमारविन्दकलिकामोदरसभरितमानसरोवरे स्वर्णमयस्तम्भशतौन्नत्यप्रकाशमाने ।। ५ ।।

ओतए सोनाक कमलक कलीक सुगन्ध रससँ युक्त मानसरोवर छल । सोनक बनल सैकड़ो ऊँच-ऊँच खाम्ह विराजमान छल ।। ५ ।।

माणिक्यदीपकलिका-मरीचिद्योतितान्तरे ।
द्वारतोरणसंरूढ-शङ्खपद्मनिधिद्वये ।। ६ ।।

मणिप्रदीपकलिकाकारशिखामयूखप्रकाशितान्तःपुरे द्वारतोरणस्तम्भ-संलग्नशङ्खपद्मनिधिद्वये ।। ६ ।।

भीतरी भाग माणिक्य स्वरूप दीपक किरणसँ प्रकाशमान तथा द्वारक तोरण पर शंख ओ पद्म दुनू निधि संलग्न छल ।। ६ ।।

मुक्तातारकितोदार-वितानाम्बरमण्डिते ।
स्पर्शलक्षितवैदूर्य-मयभित्तिपरम्परे ।। ७ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुक्तामणिरचितनक्षत्रवन्महावितानपटालङ्कृते स्पर्शवेद्युपलक्षित-वैदूर्यरत्नमयभित्तिश्रेणिमति ॥ ७ ॥

मोती जटित विशालवस्त्रक चनबासँ शोभित छल । भीत पर वैदूर्य मणि (नीलम) सभ जटित छल जे स्पर्शे टा सँ लक्षित होइत छल ॥ ७ ॥

सञ्चरत्प्रमथश्रेणी-पदवाचालनूपुरे ।
प्रवालवलभीशृङ्ग-शृङ्गारमणिमण्डपे ॥ ८ ॥

सञ्चरत्प्रमथपादप्रदेशकूजत्कटके प्रवालवलभीमुख्यशृङ्गारमणि-मण्डपे ॥ ८ ॥

ओतए टहलैत प्रमथगणक पएरक नूपुर झनकैत रहैत छल आ मूङासँ बनल चार एवं चोटीसँ शोभित मणिमय मण्डप विराजैत छल ॥ ८ ॥

सिंहासनमध्यस्थितं परमेश्वरं पञ्चदशभिः श्लोकैर्वर्णयति–

वन्दारुदेवमुकुट-मन्दाररसवासितम् ।
रत्नसिंहासनं दिव्यमध्यस्तं परमेश्वरम् ॥ ९ ॥

नमनशीलत्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवतामुकुटकल्पप्रसूनसुमनोहरं नवरत्न-मयसिंहासनं तन्मण्डपमध्ये भाति ॥ ९ ॥

(आब १५ श्लोकमे महादेवक वर्णन) ओहि कैलास पर्वत पर वन्दना करैत देवगणक मुकुटक मन्दार फूलक रससँ सुगन्धित दिव्य रत्नसिंहासन पर बैसल परमेश्वर महादेवकेँ हुनक परिजन सेवित करैत छलथिन्ह ॥ ९ ॥

तमास्थानगतं देवं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
त्रय्यन्तकमलारण्य-विहारकलहंसकम् ॥ १० ॥

तत्र विद्यमानः परमेश्वरः कीदृश इत्यत्राह–देवमित्यादिना । क्रीडाशीलः सर्वलोकेशो वेदान्तमयकमलसमूहविहारराजहंसः ॥ १० ॥

ओहि सभामण्डपमे सब लोक एवं देवक अधिपति महादेव बैसल छलाह जे वेदान्त (त्रयी = ऋग्यजुःसामवेद, तकर अन्त उपनिषद् = वेदान्त) रूपी कमलवनमे विहार कएनिहार राजहंस स्वरूप लगैत छला ॥ १० ॥

उदारगुणमोंकार-शुक्तिकापुटमौक्तिकम् ।
सर्वमङ्गलसौभाग्य-समुदायनिकेतनम् ॥ ११ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्यागशील ॐकारशुक्तिकापुटमौक्तिकः सर्वमङ्गलसौभाग्यसमूह-स्थानभूतः ॥ ११ ॥

ओ उदार, ओंकार रूपी सितुआमे सम्पुटित मोती स्वरूप तथा मंगलदायक सौभाग्यक भड़ार छलाह ॥ ११ ॥

संसारविषमूर्च्छालु-जीवसञ्जीवनौषधम् ।
नित्यप्रकाशनैर्मल्य-कैवल्यसुरपादपम् ॥ १२ ॥

संसारविषमूर्च्छितजीवसञ्जीवनौषधः स्वप्रकाशेनैव निर्मलः परमुक्तिप्रदान-कल्पद्रुमः ॥ १२ ॥

ओ संसार रूपी विषसँ मूर्च्छित होबएवला जीवक लेल संजीवन औषध, नित्यप्रकाश निर्मलता एवं मोक्षक लेल देववृक्ष छलाह ॥ १२ ॥

अनन्तपरमानन्द-मकरन्दमधुव्रतम् ।
आत्मशक्तिलतापुष्यत्-त्रिलोकीपुष्पकोरकम् ॥ १३ ॥

अपारपरमानन्द-रसास्वादनमधुव्रतः स्वसमवेतशक्तिकल्पलतापुष्यल्लोक-त्रयकुसुमकोरकः ॥ १३ ॥

ओ अनन्त परमानन्द स्वरूप मकरन्द (पुष्परस)क भ्रमर एवं आत्मशक्ति रूपी लत्तीक फुलाइत तीनू लोक रूपी फूलक कली छलाह ॥ १३ ॥

ब्रह्माण्डकुण्डिकाषण्ड-पिण्डीकरणपण्डितम् ।
समस्तदेवताचक्र-चक्रवर्तिपदे स्थितम् ॥ १४ ॥

ब्रह्माण्डसमूहलोलीकरणप्रवीणो नारायणादिसकलदेवतासमूह-चक्रवर्ती ॥ १४ ॥

ओ ब्रह्माण्डरूपी कुड़नी (छोट घैल)क काँच खण्ड सभकेँ जोड़बामे कुशल एवं सब देवताक चक्रवर्तीक पद पर प्रतिष्ठित छलाह ॥ १४ ॥

चन्द्रबिम्बायुतच्छाया-दायादद्युतिविग्रहम् ।
माणिक्यमुकुटज्योति-र्मञ्जरीपिञ्जराम्बरम् ॥ १५ ॥

चन्द्रायुतप्रभास्पर्धमानतेजा मुकुटगतनवरत्नज्योतिर्मञ्जरी-विचित्राम्बरः ॥ १५ ॥

ओ दस हजार चन्द्रबिम्बक आभाक सदृश चमकैत शरीरसँ युक्त एवं

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

माणिक्य जटित मुकुटक ज्योति स्वरूप मज्जर सँ पिरौंछ सनक वस्त्रसँ युक्त छलाह ।। १५ ।।

चूडालं सोमकलया सुकुमारबिसाभया ।
कल्याणपुष्पकलिका-कर्णपूरमनोहरम् ।। १६ ।।

कोमलकन्दाभसोमकलाशिरोभूषणः परममङ्गलसुमकुड्मलकर्णाभरणमनोहरः ।। १६ ।।

ओ कोमल कमलतन्तुक समान चन्द्रकला (द्वितीयाक चन्द्रमा)सँ युक्त चूड़ा (माँथ पर बान्हल केश) केँ धारण कएने छलाह तथा कल्याण रूपी फूलक कलीक कर्णफूल पहिरने सुन्दर लगैत छलाह ।। १६ ।।

मुक्तावलयसम्बद्ध-मुण्डमालाविराजितम् ।
पर्याप्तचन्द्रसौन्दर्य-परिपन्थिमुखश्रियम् ।। १७ ।।

मुक्ताप्रकरवलितमुण्डमालाविराजितः पूर्णचन्द्रसौन्दर्यपरिपन्थिमुखश्रीः ।। १७ ।।

ओ मोतीक मालामे गाँथल मुण्डसमुदायसँ शोभित छलाह तथा अत्यन्त सुन्दर चन्द्रमाक सुन्दरतासँ स्पर्धा (संघर्ष) करएवाला मुखक शोभासँ युक्त छलाह ।। १७ ।।

प्रातःसंफुल्लकमल-परियायत्रिलोचनम् ।
मन्दस्मितमितालाप-मधुराधरपल्लवम् ।। १८ ।।

प्रातःप्रफुल्लकमलपर्यायत्रिलोचनः, मन्दस्मितपरिमितवचोविलासमनोहराधरपल्लवः ।। १८ ।।

हुनक तीनू आँखि भोरक फुलाएल कमलक समानार्थक छलनि आ पल्लवसनक ठोर मन्द-मुसुकाइत अतुलनीय वचनसँ मधुर छलनि ।। मूलश्लोकमे वेदक समान प्रयोग 'परियाय' पर्यायक स्थान मे भेल अछि जेना त्र्यम्बक केँ त्रियम्बक कहल जाइछ ।। १८ ।।

गण्डमण्डलपर्यन्त-क्रीडन्मकरकुण्डलम् ।
कालिम्ना कालकूटस्य कण्ठनाले कलङ्कितम् ।। १९ ।।

कपोलाभोगपर्यन्त-चलन्मकरकुण्डलः कालकूटकालिम्ना कलङ्कितकण्ठनालः ।। १९ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओ मकराकृत कुण्डल पहिरने छलाह जे हुनक गलफर तक झुलैत छलनि आ हुनक कण्ठनालमे कालकूटविषक कारी रंग चमकि रहल छलनि ॥ १९ ॥

मणिकङ्कणकेयूर-मरीचिकरपल्लवैः ।
चतुर्भिः संविराजन्तं बाहुमन्दारशाखिभिः ॥ २० ॥

मणिमयकङ्कणकेयूरप्रकाशमानकरपल्लवचतुष्कः, बाहुकल्पद्रुम-भासमानः ॥ २० ॥

ओ मणिमय कंकण (कंगना) ओ केयूर (बाँहिक भूषण)क चमक सँ परिपूर्ण हाथ रूपी पल्लवसँ युक्त, कल्पवृक्षक डारिक संमान चारि बाँहिसँ शोभित छलाह ॥ २० ॥

गौरीपयोधराश्लेष-कृतार्थभुजमध्यमम् ।
सुवर्णब्रह्मसूत्राङ्कं सूक्ष्मकौशेयवाससम् ॥ २१ ॥

उमापयोधरालिङ्गनकृतार्थवक्षःस्थलः, कनकमयब्रह्मसूत्राङ्कितः, अतिसूक्ष्मदुकूलाम्बरः ॥ २१ ॥

हुनक दुनू भुजाक मध्यभाग (छाती) गौरीक पयोधरक संश्लेषसँ कृतार्थ छलनि । ओ सोनाक जनेउ आ पातर रेशमी वस्त्र पहिरने छलाह ॥ २१ ॥

नाभिस्थानावलम्बिन्या नवमौक्तिकमालया ।
गङ्गयेव कृताश्लेषं मौलिभागावतीर्णया ॥ २२ ॥

नाभिपर्यन्तगतनवमौक्तिकमालया मस्तकावतीर्णया गङ्गयेव कृतालिङ्गनः ॥ २२ ॥

ओ नाभिस्थान तक लटकैत नवीन मोतीमालाक समान गङ्गासँ जेना आलिङ्गित होथि, जे हिनक माथसँ नीचाँ उतरैत छलीह ॥ २२ ॥

पदेन मणिमञ्जीर-प्रभापल्लवितश्रिया ।
चन्द्रवत्स्फाटिकं पीठं समावृत्य स्थितः पुरः ॥ २३ ॥

मणिमयनूपुरप्रकाशपल्लवितश्रिया पादेन सिंहासनस्य पुरतश्चन्द्रकान्तमयफलकमावृत्य वर्तमान इत्यर्थः ॥ २३ ॥

ओ मणिमय घुघरूक कान्तिसँ पल्लवक शोभावला पएर केँ चन्द्रमाक समान स्फटिकरचित पीठपर राखि बैसल छलाह ॥ २३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं महेश्वरं वर्णयित्वाऽथ तद्वामाङ्कसंस्थितां भवानीं त्रयोदशसूत्रैर्वर्णयति-

वामपार्श्वनिवासिन्या मङ्गलप्रियवेषया ।
समस्तलोकनिर्माण-समवायस्वरूपया ॥ २४ ॥

तद्वामपार्श्ववर्तिनी माङ्गल्येनासेचनकरूपवती सकललोकसृष्टावुपादानकारणीभूता ॥ २४ ॥

(पावर्तीक वर्णन आगूक तेरह श्लोकसँ)-

ओहि परमेश्वरक वाम भागमे भगवती उमा विराजमान छलथिन जे मङ्गलकारी प्रिय वेशकेँ धारण कएने छलीहि आ सकल लोकक निर्माणमे समवाय कारण छलीहि ॥ २४ ॥

इच्छाज्ञानक्रियारूप-बहुशक्तिविलासया ।
विद्यातत्त्वप्रकाशिन्या विनाभावविहीनया ॥ २५ ॥

इच्छाज्ञानक्रियादिबहुशक्तिविलासवती आत्मविद्याप्रकाशिनी शिवेनाविनाभूता ॥ २५ ॥

ओ इच्छा-ज्ञान-क्रिया रूप अनेकशक्तिसँ युक्त, शुद्ध विद्यातत्त्वक प्रकाशिका तथा शिवक संग नियतरूपसँ (विनाभावसँ रहित = अविनाभव = अनिवार्य रूपेँ) सम्बद्ध छथि ॥ २५ ॥

संसारविषकान्तार-दाहदावाग्निलेखया ।
धम्मिल्लमल्लिकामोद-झङ्कुर्वद्भृङ्गमालया ॥ २६ ॥

संसारविषविपिनदाहदावाग्निराजिः, धम्मिल्लमल्लिकामोदझङ्कुर्वदलिमालिका ॥ २६ ॥

ओ संसाररूपी विषस्वरूप वनकेँ जरबैक लेल दावाग्निक ज्वालास्वरूप छलीहि एवं हुनक केशपाशमे बान्हल वेली फूलक सुगन्धक कारण भौँरा समूह झंकार करैत छल ॥ २६ ॥

सम्पूर्णचन्द्रसौभाग्य-संवादिमुखपद्मया ।
नासामौक्तिकलावण्य-नाशीरस्मितशोभया ॥ २७ ॥

पूर्णचन्द्रकान्तिविवदन्मुखपङ्कजा नासामौक्तिकलावण्यबाहुल्यच्छुरितमन्दस्मितकान्तिमती ॥ २७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुनक मुख पूर्णचन्द्रक सौन्दर्यकेँ तिरस्कृत करैत छल आ नाक मे पहिरल मोतीक अत्यन्त सौन्दर्यसँ युक्त एवं मन्दहाससँ सुशोभित छल ।। २७ ।।

मणिताटङ्करङ्गान्त-र्वलितापाङ्गलीलया ।
नेत्रद्वितयसौन्दर्य-निन्दितेन्दीवरत्विषा ।। २८ ।।

रत्नखचितताटङ्करङ्गमण्डपमध्यलास्यमानापाङ्गलीला नयनद्वयसौन्दर्य-निन्दितेन्दीवरश्रीः ।। २८ ।।

ओ मणिक ताटंक (कर्णफूल) रूपी रङ्गमंच पर कटाक्षविक्षेप कए रहल छलीहि आ अपन दुनू नेत्रक सौन्दर्यसँ नीलकमलक शोभाकेँ निन्दित बना रहल छलीहि ।। २८ ।।

कुसुमायुधकोदण्ड-कुटिलभ्रूविलासया ।
बन्धूककुसुमच्छाया-बन्धुभूताऽधरश्रिया ।। २९ ।।

मारकार्मुककुटिलभ्रूलताविलासवती बन्धूककुसुमकान्ति-बन्धुराधरश्रीः ।। २९ ।।

ओ कामदेवक शस्त्र धनुषक समान कुटिल भौँहक विलास सँ युक्त एवं मधुरीफूलक समान ठोरक शोभासँ भूषित छलीह ।। २९ ।।

कण्ठनालजितानङ्ग-कम्बुबिब्बोकसम्पदा ।
बाहुद्वितयसौभाग्य-वञ्चितोत्पलमालया ।। ३० ।।

कण्ठनालजितानङ्गजयशङ्खनिनादवती बाहुद्वितयसौभाग्यन्यक्कृतो-त्पलमालिका ।। ३० ।।

ओ अपन कण्ठनालक ध्वनिसँ कामदेवक शंखध्वनिक सम्पदा केँ जीति लेने छलीहि आ दुनू भुजाक सौन्दर्यसँ नीलकमलकेँ तिरस्कृत कए रहल छलीहि ।। ३० ।।

स्थिरयौवनलालवण्य-शृङ्गारितशरीरया ।
अत्यन्तकठिनोत्तुङ्ग-पीवरस्तनभारया ।। ३१ ।।

स्थिरयौवनलावण्यालङ्कृतकलेवरा अत्यन्तकठिनोत्तुङ्गस्तन-भारवती ।। ३१ ।।

ओ स्थिर यौवनक सौन्दर्यसँ सम्पूर्ण शरीरकेँ शृंगारमय कएने तथा अत्यन्त कठोर उन्नत पुष्ट स्तनक भारसँ युक्त छलीहि ।। ३१ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मृणालवल्लरीतन्तु-बन्धुभूतावलग्नया ।
शृङ्गारतटिनीतुङ्ग-पुलिनश्रोणिभारया ॥ ३२ ॥

कमलनालतन्तुनिभातिसूक्ष्ममध्यप्रदेशा शृङ्गारतरङ्गिणीतुङ्गपुलिनश्रोणिभारविराजिता ॥ ३२ ॥

हुनक डाँर कमलनालक तन्तुक समान क्षीण छलनि आ शृंगार रूपी नदीक ऊँच तटक समान नितम्ब भरिगर छल ॥ ३२ ॥

कुसुम्भकुसुमच्छाया-कोमलाम्बरशोभया ।
शृङ्गारोद्यानसंरम्भ-रम्भास्तम्भोरुकाण्डया ॥ ३३ ॥

कुसुम्भकुसुमकान्तिमत्कोमलाम्बरशोभमाना शृङ्गारोद्यानसम्भ्रमरम्भास्तम्भायमानोरुकाण्डा ॥ ३३ ॥

ओ कुसुमक फूलक समान रंगक कोमल वस्त्रसँ शोभित तथा श्रृंगारक बाड़ीक केराक थम्ह सनक जाँघवाली छलीहि ॥ ३३ ॥

चूतप्रवालसुषमा-सुकुमारपदाब्जया ।
स्थिरमङ्गलश्रृङ्गार-भूषणालङ्कृताङ्गया ॥ ३४ ॥

चूतपल्लवमनोहरसुकुमारपदाब्जा स्थिरमाङ्गल्यभूषणालङ्कृताङ्गी ॥ ३४ ॥

हुनक चरणकमल आमक कोमल नवीन पल्लवक समान सुन्दर सुकुमार तथा अङ्ग स्थिरमंगल श्रृंगारवाला आभूषणसँ युक्त छलनि ॥ ३४ ॥

हारनूपुरकेयूर-चमत्कृतशरीरया ।
चक्षुरानन्दलतया सौभाग्यकुलविद्यया ॥ ३५ ॥

मुक्ताहारमञ्जीरकेयूरचमत्कृतशरीरिणी नयनानन्दलतिका सौभाग्यस्य कुलविद्यारूपिणी ॥ ३५ ॥

हुनक शरीर पर हार, नूपुर (पायल) आ केयूर (बाँही) शोभित छल, आँखि आनन्दक लत्तीक समान लगैत छल। एहि तरहेँ ओ सौभाग्य-कुलदेवताक स्वरूप छलीहि ॥ ३५ ॥

उमया सममासीनं लोकजालकुटुम्बया ।
अपूर्वरूपमभजन् परिवाराः समन्ततः ॥ ३६ ॥

लोकसमूहकुटुम्बिनी-एवंरूपयोमया दिव्यकन्यकया सह दिव्यसिंहासने

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समासीनमपूर्वरूपं परमेश्वरं समन्तान्नारायणादित्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवता अभजन्नित्यर्थः ॥ ३६ ॥

लोकसमूह स्वरूप कुटुम्बवाली ओहि उमाक संग अपूर्वरूपवाला भगवान् शिव बैसल छलाह, जनिक परिवार हुनका चारू दिससँ सेवा कए रहल छल ॥ ३६ ॥

एवं पार्वतीपरमेश्वरौ वर्णयित्वाग्रे विंशतिसूत्रैस्ताभिर्देवताभिर्विधीयमानां सेवां वर्णयति–

पुण्डरीकाकृतिं स्वच्छं पूर्णचन्द्रसहोदरम् ।
दधौ तस्य महालक्ष्मीः सितमातपवारणम् ॥ ३७ ॥

श्वेतकमलवन्निर्मलं पूर्णचन्द्रसहोदरं श्वेतच्छत्रं महालक्ष्मीस्तस्य परमेश्वरस्य धृतवतीत्यर्थः ॥ ३७ ॥

आब आगू २० श्लोकमे देवगण द्वारा पार्वती परमेश्वरक सेवाक वर्णन प्रस्तुत अछि–

महालक्ष्मी हुनक (पार्वती-परमेश्वरक) छत्र उठाओने छलथिन जे छत्र उजरा कमल सन स्वच्छ एवं पूर्णचन्द्रक अत्यन्त समान छल ॥ ३७ ॥

तन्त्रीझङ्कारशालिन्या सङ्गीतामृतविद्यया ।
उपतस्थे महादेवमुपान्ते च सरस्वती ॥ ३८ ॥

कूजन्नवरत्नमयकङ्कणसमूहयुक्तहस्तेनोपनिषद्भास्वरमण्डलतन्त्री-झङ्कारशोभमानसङ्गीतरसविद्यया सरस्वती समीपे महादेवं सेवितवतीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

लगमे सरस्वती वीणाक झंकारसँ युक्त संगीतरूपी अमृत विद्याक द्वारा महादेवक उपासना करए लगलीह ॥ ३८ ॥

झणत्कङ्कणजातेन हस्तेनोपनिषद्वधूः ।
ओंकारतालवृन्तेन वीजयामास शङ्करम् ॥ ३९ ॥

कूजन्नवरत्नमयकङ्कणसमूहयुक्तहस्तेनोपनिषद्वधूः ॐकारव्यजनेन शिवं वीजयामासेत्यर्थः ॥ ३९ ॥

उपनिषद् रूपी बहुड़िया झनकैत अपन कगनावला हाथसँ ओंकाररूपी पंखासँ शंकरकेँ हौंकए लगलीह ॥ ३९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चलच्चामरिकाहस्ता झङ्कुर्वन्मणिकङ्कणाः ।
आसेवन्त तमीशानमभितो दिव्यकन्यकाः ॥ ४० ॥

दिव्यकन्यका इन्द्राणीप्रभृतिदेवस्त्रिय इत्यर्थः । स्पष्टमन्यत् ॥ ४० ॥

ओहि ईशान (महादेव)केँ चारू भरसँ दिव्यकन्याक गण हाथसँ चामर डोलबैत आ मणिमय कगनाकेँ झनकबैत सेवा करए लगलथिन ॥ ४० ॥

चामराणां विलोलानां मध्ये तन्मुखमण्डलम् ।
रराज राजहंसानां भ्रमतामिव पङ्कजम् ॥ ४१ ॥

विलोलानां चामराणां मध्ये शिवस्य मुखमण्डलं भ्रमतां राजहंसानां मध्ये कमलमिव रराजेत्यर्थः ॥ ४१ ॥

डोलैत चामर सभक बीचमे महादेवक मुखमण्डल तेना शोभए लगलनि जेना टहलैत राजहंससभक बीच कमल हो ॥ ४१ ॥

मन्त्रेण तमसेवन्त वेदाः साङ्गविभूतयः ।
भक्त्या चूडामणिं कान्तं वहन्त इव मौलिभिः ॥ ४२ ॥

साङ्गविभूतयः शिक्षाद्यङ्गविशिष्टा ऋगादिवेदपुरुषा उपनिषद्भाग-रूपमस्तकैस्तं परमेश्वरं कान्तं चूडारत्नमिव वहन्तः सन्तः प्रणवमन्त्रेण भक्त्या असेवन्तेत्यर्थः ॥ ४२ ॥

अपन छबो अंग (व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द) रूपी विभूतिक संग वेद, मन्त्रसँ शंकरक सेवा करए लगलाह जेना भक्तिपूर्वक अपना माँथपर प्रिय चूड़ामणि केँ धारण कएने होथि ॥ ४२ ॥

तदीयायुधधारिण्यस्-तत्समानविभूषणाः ।
अङ्गभूताःस्त्रियः काश्चिदासेवन्त तमीश्वरम् ॥ ४३ ॥

वेदपुरुषायुधधारिण्यस्तत्समानविभूषणा अङ्गदेवतास्तं शिवमासेव-न्तेत्यर्थः ॥ ४३ ॥

हुनक (महादेवक) अस्त्र धारण कएनिहारि समान विभूषण वाली दिव्य स्त्रीगण ओहि महादेवक सेवा करए लगलथिन ॥ ४३ ॥

आप्ताधिकारिणः केचिदनन्तप्रमुखा अपि ।
अष्टौ विद्येश्वरा देवमभजन्त समन्ततः ॥ ४४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमाप्ताधिकारिणः केचिदनन्तसूक्ष्मशिवोत्तमैकनेत्रैकरुद्रत्रिमूर्ति-श्रीकण्ठशिखण्डिसंज्ञका अष्टविद्येश्वराः परमेश्वरमभितोऽसेवन्त इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

हुनक किछु खास (निकटतम) अधिकारीगण अनन्त आदि आठ विद्येश्वर (अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्त्ति, श्रीकण्ठ ओ शिखण्डी) सेहो चारू भरसँ महादेवक सेवा करए लगलाह ॥ ४४ ॥

ततो नन्दी महाकालश्चण्डो भृङ्गी रिटिस्ततः ।
घण्टाकर्णः पुष्पदन्तः कपाली वीरभद्रकः ॥ ४५ ॥
एवमाद्या महाभागा महाबलपराक्रमाः ।
निरङ्कुशमहासत्त्वा भेजिरे तं महेश्वरम् ॥ ४६ ॥

स्पष्टम् ॥ ४५-४६ ॥

तखन नन्दी, महाकाल, चण्ड, भृंगी, रिटि, घंटाकर्ण, पुष्पदन्त, कपाली, वीरभद्र आदि प्रमथगण महाभाग हुनक सेवामे लागि गेलाह जे महाबली, महापराक्रमी, निरंकुश, महासत्त्व छलाह ॥ ४५-४६ ॥

अथ प्रमथगणान् पञ्चभिः सूत्रैर्वर्णयति–

अणिमादिकमैश्वर्यं येषां सिद्धेरपोहनम् ।
ब्रह्मादयः सुरा येषामाज्ञालङ्घनभीरवः ॥ ४७ ॥

अणिमाद्यष्टैश्वर्यं येषां प्रमथगणानां सिद्धेः सकाशात्तुच्छम्, ब्रह्मादयः सुरा येषां आज्ञालङ्घने भयशीला इत्यर्थः ॥ ४७ ॥

आब ५ श्लोकसँ प्रमथगणक वर्णन भए रहल अछि–

ओहि प्रमथगणक सिद्धिक समक्ष अणिमादि (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व) आठो सिद्धि तुच्छ छल । ब्रह्मा आदि देवतो हिनका सभक अज्ञा टारबामे डराइत छलाह ॥ ४७ ॥

मोक्षलक्ष्मीपरिष्वङ्ग-मुदिता येऽन्तरात्मना ।
येषामीषत्करं विश्व-सर्गसंहारकल्पनम् ॥ ४८ ॥

अन्तर्मुखीभूतबुद्ध्या मोक्षलक्ष्म्यालिङ्गने मुदिताः येषां विश्वसृष्ट्यादि-कल्पनमीषत्करं तुच्छमित्यर्थः ॥ ४८ ॥

ओसभ अपन अन्तरात्मामे मोक्षलक्ष्मीक आलिंगनसँ आनन्दित छलाह ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेँ हुनका सबहिक लेल संसारक सृष्टि एवं संहार साधारण कार्य छल ॥ ४८ ॥

ज्ञानशक्तिः परा येषां सर्ववस्तुप्रकाशिनी ।
आनन्दकणिका येषां हरिब्रह्मादिसम्पदः ॥ ४९ ॥

येषां ज्ञानशक्तिः सर्ववस्तुप्रकाशिनी वरा श्रेष्ठा, ब्रह्मादीनां सम्पदो येषाम् आनन्दकणिकाः, लेशा इत्यर्थः ॥ ४९ ॥

हुनका सभक परा ज्ञानशक्ति समस्त वस्तुकें प्रकाशित करएवाली छल तथा ब्रह्मा विष्णु आदिक सम्पत्ति हुनका सभक लग आनन्दक कणामात्र छल ॥ ४९ ॥

आकाङ्क्षन्ते पदं येषां योगिनो योगतत्पराः ।
काङ्क्षणीयफलो येषां सङ्कल्पः कल्पपादपः ॥ ५० ॥

शिवयोगतत्परा योगिनो येषां पदं काङ्क्षन्ते अपेक्षन्ते, येषां सङ्कल्पः कामितार्थफलयुतकल्पपादप इत्यर्थः ॥ ५० ॥

योगमे तत्पर योगी लोकनि हुनक चरणक आकांक्षा करैत छथि । हुनक संकल्पे मनोवाञ्छित फल देबएवाला कल्पवृक्ष थिक ॥ ५० ॥

कर्मकालादिकार्पण्य-चिन्ता येषां न विद्यते ।
येषां विक्रमसन्नाहा मृत्योरपि च मृत्यवः ॥ ५१ ॥
ते सारूप्यपदं प्राप्ताः प्रमथा भेजिरे शिवम् ॥

सञ्चितादिकर्म-भूतादिकाल-कामप्रभृत्युद्भूतकार्पण्यचिन्ता येषां न विद्यते, येषां पराक्रमप्रसङ्गा मृत्योरपि मृत्यवः, सारूप्यपदं प्राप्तास्ते प्रमथा हरं भेजिरे । 'भज' सेवायामिति धातुः ॥ ५१ ॥

जनिका कर्म (संचित, प्रारब्ध ओ क्रियामाण) एवं काल आदिसँ उत्पन्न दुःखक चिन्ता नहि, जनिक पराक्रमपूर्ण कार्य मृत्युक मृत्यु होइछ से प्रमथगण भगवान् शिवक सारूप्य पदकेँ प्राप्त कएने शिवक सेवामे निरत छलाह ॥ ५१ ॥

ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्राद्या विश्वतन्त्राधिकारिणम् ।
आयुधालङ्कृतप्रान्ताः परितस्तं सिषेविरे ॥ ५२ ॥

ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रप्रभृतित्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवाः स्वकीयायुधालङ्कृत-श्रेणियुग्माः, विश्वसृष्टावधिकारवन्तं तं शिवं परितः सिषेविर इत्यर्थः ॥ ५२ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मा विष्णु इन्द्र आदि तैंतीस कोटि देवगण अपन-अपन शस्त्रसँ सुसज्जित भए विश्वविस्तारक अधिकारी ओहि भगवान् शिवक पूर्णरूपसँ सेवा कए रहल छलाह ॥ ५२ ॥

आदित्या वसवो रुद्रा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ।
दानवा राक्षसा दैत्याः सिद्धा विद्याधरोरगाः ।
अभजन्त महादेवमपरिच्छिन्नसैनिकाः ॥ ५३ ॥

आदित्या द्वादशादित्याः, अष्टौ वसवः, एकादश रुद्राः, कुबेरप्रभृतियक्षाः, हाहाप्रभृतिगन्धर्वाः, अश्वमुखादिकिन्नराः, बाणादिदानवाः, रावणादिराक्षसाः, तारकादिदैत्याः, आदिनाथादिसिद्धाः, मणिभद्रादि- विद्याधराः, शेषाद्युरगाः, अविच्छिन्नसैनिकाः सन्तो महदेवमभजन्त इत्यर्थः ॥ ५३ ॥

आदित्य (१२), वसु (८), रुद्र (११), यक्ष (कुबेर आदि) गन्धर्व, किन्नर (अश्वमुख आदि), दानव (बाणासुर आदि), राक्षस (रावण आदि), दैत्य (तारक आदि), सिद्ध, विद्याधर, नाग– ई सब असंख्य सैन्यबलसँ युक्त भए महादेवक सेवा कए रहल छलाह ॥ ५३ ॥

वसिष्ठो वामदेवश्च पुलस्त्यागत्स्यशौनकाः ।
दधीचिर्गौतमश्चैव सानन्दशुकनारदाः ॥ ५४ ॥
उपमन्युभृगुव्यास-पाराशरमरीचयः ।
इत्याद्या मुनयः सर्वे नीलकण्ठं सिषेविरे ॥ ५५ ॥

वसिष्ठ, वामदेव, पुलस्त्य, अगस्त्य, शौनक, दधीचि, गौतम, सानन्द, शुकदेव, नारद, उपमन्यु, भृगु, व्यास, पराशर, मरीचि– इत्यादि मुनिगण नीलकण्ठ शिवक सेवा कए रहल छलाह ॥ ५४-५५ ॥

पार्श्वस्थपरिवाराणां विमलाङ्गेषु बिम्बितः ।
सर्वान्तर्गतमात्मानं स रेजे दर्शयन्निव ॥ ५६ ॥

लगमे स्थित उपर्युक्त सकल परिवारक निर्मल अंगमे प्रतिबिम्बित भगवान् शिव अपनाकेँ सभक भीतर विराजमान देखबैत शोभित छलाह ॥ ५६ ॥

अथ परमेश्वरस्य राजव्यापारं दशभिः सूत्रैः प्रदर्शयति–

क्षणं स शम्भुर्देवानां कार्यभागं निरूपयन् ।
क्षणं गन्धर्वराजानां[1] गानविद्यां विभावयन् ॥ ५७ ॥

१. गन्धर्वाणां राजा गन्धर्वराजः तेषाम् । अत्र समासान्तः टच्प्रत्ययो जातोऽस्ति ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आब १० श्लोकमे परमेश्वरक राज्यकरबाक व्यवस्था प्रदर्शित अछि—

भगवान् शम्भु छनहिं देवतासभक कार्यभागक निरूपण करैत छनहिंमे गन्धर्वराज सभैक गानविद्याक भावना करैत छलाह ॥ ५७ ॥

ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैः क्षणमालापमाचरन् ।
क्षणं देवमृगाक्षीणां लालयन्नृत्यविभ्रमम् ॥ ५८ ॥

कखनो क्षण भरिक लेल ब्रह्मा विष्णु आदिक संग बात करैत छलाह तँ कखनहुँ देवस्त्रीसभक नृत्यक प्रशंसा करैत छलाह ॥ ५८ ॥

व्यासादीनां क्षणं कुर्वन् वेदोच्चारेषु गैरवम् ।
विदधानः क्षणं देव्या मुखे बिम्बाधरे दृशः ॥ ५९ ॥

स्पष्टम् ॥ ५९ ॥

ओ छनहिं वेदक उच्चारणमे व्यास आदि ऋषिक श्रेष्ठताक प्रतिपादन करैत छनहिं मे देवी उमाक मुख पर विम्बसमान अधरमे दृष्टि लगबैत छलाह ॥ ५९ ॥

हास्यनृत्यं क्षणं पश्यन् भृङ्गिणा परिकल्पितम् ।
नन्दिना वेत्रहस्तेन सर्वतन्त्राधिकारिणा ॥ ६० ॥
अमुञ्चता सदा पार्श्वमात्माभिप्रायवेदिना ।
चोदितां वासयन् कांश्चिद् विसृजन् भ्रूविलासतः ।
सम्भावयंस्तथा चान्यानन्यानपि नियामयन् ॥ ६१ ॥

भ्रूसंज्ञया कांश्चिद्विसृजन् प्रेषयंस्तथान्यान् सम्भावयन्, प्रियोक्तिं वदन्नन्यान्नियामयन् शिक्षयन् । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६०-६१ ॥

छनहिं भृंगीक द्वारा प्रस्तुत हास्यनृत्यकेँ देखैत छलाह तँ छनहिं सकलकार्यक अधिकारी वेत्रधारी सतत लगमे रहनिहार हुनक अभिप्रायकेँ जननिहार नन्दीक द्वारा बजाओल गेल व्यक्तिसभकेँ अपना लग बजाए लैत छलाह आ अन्यकेँ (बिनु बजाओलकेँ) भौँहक संकेत सँ हटबैत, किनको प्रियवचनसँ सन्तुष्ट करैत, किनको शासित करैत छलाह ॥ ६०-६१ ॥

समस्तभुवनाधीश-मौलिलालितशासनः ।
अकुण्ठशक्तिरव्याज-लावण्यललिताकृतिः ॥ ६२ ॥

समस्तभुवनाधीशः, ब्रह्ममस्तकस्थापितसमस्तज्ञानशक्तिमानप्रतिहतशक्तिः,

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निजलावण्यमनोहराकृतिरित्यर्थः ॥ ६२ ॥

हुनक आदेश सकल भुवनक स्वामी सभकेँ स्वीकार छलनि । हुनक आकृति स्वाभाविक सौन्दर्यसँ परिपूर्ण छलनि तथा शक्ति अवरोध रहित छलनि ॥ ६२ ॥

स्थिरयौवनसौरभ्य-शृङ्गारितकलेवरः ।
आत्मशक्त्यमृतास्वाद-रसोल्लासितमानसः ॥ ६३ ॥

वृद्धिक्षयरहितयौवनोद्रेकशृङ्गारितकलेवरः, स्वसमवेतशक्तिलक्षण-परमानन्दरसास्वादनोज्जृम्भितान्तरङ्गः ॥ ६३ ॥

हुनक शरीर स्थिरयौवनक सुरभिसँ सुसज्जित तथा मन आत्मशक्ति रूपी अमृतक रसास्वादक कारण उल्लास भरल छलनि ॥ ६३ ॥

स्वाभाविकमहैश्वर्य-विश्रामपरमावधिः ।
निष्कलङ्कमहासत्त्व-निर्मितानेकविग्रहः ॥ ६४ ॥

स्वाभाविकेति । अनौपाधिकसर्वज्ञता[१]दिमहैश्वर्यविश्रान्तिपर्यन्तभूमिः, अकलङ्कमहाशक्तिनिर्मितानेकदिव्यमङ्गलमूर्तिमान् ॥ ६४ ॥

ओ स्वाभाविक महान् ऐश्वर्यक विश्रामक अन्तिम सीमा तथा निष्कलंक महान् सत्त्वसँ निर्मित अनेक शरीरवाला छलाह ॥ ६४ ॥

अखण्डारातिदोर्दण्ड-कण्डूखण्डनपण्डितः ।
चिन्तामणिः प्रपन्नानां श्रीकण्ठः परमेश्वरः ॥ ६५ ॥

अपरिमितसज्जनारातिबाहुदण्डकण्डूखण्डनविचक्षणः, अत एव निर्मलान्तःकरणानामिष्टार्थप्रदः श्रीकण्ठः परमेश्वरोऽराजत इति शेषः ॥ ६५ ॥

ओ सकलशत्रुक बाँहि रूपी दण्डक कुड़ियैनी केँ शान्त करबामे पटु, शरणागतक लेल चिन्तामणि, श्रीकण्ठ परमेश्वर छलाह ॥ ६५ ॥

एवं शिवस्य वैभवं वर्णयित्वाग्रे सूत्रैकादशकेन रेणुकगणेशस्य शिवभक्तिमहत्त्वं सूचयति–

सभान्तरगतं तन्त्रं रेणुकं गणनायकम् ।
प्रसादं सुलभं दातुं ताम्बूलं स तमाह्वयत् ॥ ६६ ॥

---

१. सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञा आहुः षडङ्गानि महेश्वरस्य ॥ (वायु पु०)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स शिवः सभागध्यगतं तन्त्रं मुख्यम् अथवा प्रसिद्धं तं रेणुकं प्रति सुलभं ताम्बूलप्रसादं दातुं शिरसा आह्वयत्, आकारितवानित्यर्थः ॥ ६६ ॥

आब ११ श्लोकमे रेणुक गणेशक शिवभक्तिक महत्त्व वर्णित अछि–

ओ भगवान् शिव सभामे बैसल मुख्य गणनायक रेणुककेँ प्रसादसुलभ तम्बूल (पान) देबाक हेतु बजओलथिन ॥ ६६ ॥

शम्भोराह्वानसन्तोष-सम्भ्रमेणैव दारुकम् ।
उल्लङ्घ्य पार्श्वमगमल्लोकनाथस्य रेणुकः ॥ ६७ ॥

पार्श्वं वामभागमित्यर्थः ॥ ६७ ॥

ओ रेणुक शंकरक आह्वान केँ जानि हुनका सन्तुष्ट करबा लेल शिवभक्त दारुककेँ नांघि लोकनाथक लग वामभागमे पहुँचि गेलाह ॥ ६७ ॥

तमालोक्य विभुस्तत्र समुल्लङ्घितदारुकम् ।
माहात्म्यं निजभक्तानां द्योतयन्निदमब्रवीत् ॥ ६८ ॥

विभुः स्वतन्त्र इत्यर्थः । स्पष्टमन्यत् ॥ ६८ ॥

सर्वव्यापी परमेश्वर अपन भक्तक माहात्म्य देखएबाक लेल दारुककेँ नांघएवला रेणुक केँ कहलथिन ॥ ६८ ॥

रे रे रेणुक दुर्बुद्धे ! कथमेष त्वयाधुना ।
उल्लङ्घितः सभामध्ये मम भक्तो हि दारुकः ॥ ६९ ॥

रे रे दुर्बुद्धि रेणुक ! तोँ सभाक बीच मे हमर भक्त दारुक केँ किएक नङ्हलेँ ॥ ६९ ॥

लङ्घनं मम भक्तानां परमानर्थकारणम् ।
आयुः श्रियं कुलं कीर्त्तिं निहन्ति हि शरीरिणाम् ॥ ७० ॥

हि प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ ७० ॥

हमर भक्तक नांघब महान् अनर्थक कारण होइत अछि, ओ मनुष्यक आयु, धन आ कीर्त्तिकेँ नष्ट कए दैछ ॥ ७० ॥

मम भक्तमवज्ञाय मार्कण्डेयं पुरा यमः ।
मत्पादताडनादासीत् स्मरणीयकलेवरः ॥ ७१ ॥

विनष्टकलेवरत्वात् स्मरणीयकलेवर आसीदित्यर्थः । स्पष्टमन्यत् ॥ ७१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वकालमे यमराज हमर भक्त मार्कण्डेयक अपमान कएला पर हमर पएरक आघातसँ नष्ट भए गेलाह ॥ ७१ ॥

भृगोश्च शङ्कुकर्णस्य मम भक्तिमतोस्तयोः ।
कृत्वानिष्टमभूद् विष्णुर्विकेशा दशयोनिभाक् ॥ ७२ ॥

विकेशः शिरः पूर्वभागोत्पादितकेशवानित्यर्थः ॥ ७२ ॥

हमर भक्त भृगु ओ शंकुकर्णक अनिष्ट कए विष्णु विकृत केशवाला भए दस बेर जन्म लेलनि ॥ ७२ ॥

मद्भक्तेन दधीचेन कृत्वा युद्धं जनार्दनः ।
भग्नचक्रायुधः पूर्वं पराभवमुपागमत् ॥ ७३ ॥

पूर्वकालमे हमर भक्त दधीचक संग युद्ध कएला पर जनार्दन (विष्णु)क चक्र ओ धनुष टूटि गेल आ ओ हारि गेलाह ॥ ७३ ॥

कृताश्वमेधो दक्षोऽपि मद्भक्तांश्च गणेश्वरान् ।
अवमत्य सभामध्ये मेषवक्त्रोऽभवत् पुरा ॥ ७४ ॥

अवमत्य उदास्येत्यर्थः ॥ ७४ ॥

अश्वमेध यज्ञ कएनिहार दक्ष हमर भक्त गणेश्वर लोकनिक अपमान कए भेंड़ाक मुँहक समान मुख प्राप्त कएलनि ॥ ७४ ॥

श्वेतस्य मम भक्तस्य दुरतिक्रमतेजसः ।
औदासीन्येन कालोऽपि मया दग्धः पुराऽभवत् ॥ ७५ ॥

दुरतिक्रमतेजसः अनिन्दिततेजस इत्यर्थः ॥ ७५ ॥

पूर्व युगमे दुर्धर्ष तेजवाला हमर भक्त श्वेतक उपेक्षाक कारण काल तक केँ हम जराए देने छलहुँ ॥ ७५ ॥

एवमन्येऽपि बहवो मद्भक्तानामतिक्रमात् ।
परिभूता हताश्चासन् भक्ता मे दुरतिक्रमाः ॥ ७६ ॥

एहि तरहेँ आनो-आनो बहुत व्यक्ति हमर भक्तक अपमानक कारण पराभवकेँ प्राप्त भेलाह आ मारल गेलाह । तेँ हमर भक्तक उल्लंघन (नांघब वा अपमानित करब) अनुचित थिक । एहन काज कदापि नहि करी ॥ ७६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं भक्तमाहात्म्यं वर्णयित्वा तदुल्लङ्घनदोषस्य फलं निर्दिशति–

अविचारेण मद्भक्तो लङ्घितो दारुकस्त्वया ।
एष त्वं रेणुकानेन जन्मवान् भव भूतले ॥ ७७ ॥

एष दारुक इति सम्बन्धः ॥ ७७ ॥

आब भक्तकेँ अपमानित करबाक फल कहैत छथि– हे रेणुक ! तोँ बिनु विचारनहि हमर भक्त दारुकक लंघन कएलेँ, तेँ तोँ पृथ्वी पर जन्म ले ॥ ७७ ॥

अथ रेणुको जन्मनि भीतः सन् पञ्चभिः सूत्रैः शिवं विज्ञापयति–

इत्युक्तः परमेशेन भक्तमाहात्म्यशंसिना ।
प्रार्थयामास देवेशं प्रणिपत्य स रेणुकः ॥ ७८ ॥

इत्युक्तो लोकहितार्थमित्युक्तो भवदाह्वानसम्भ्रान्त्या मया अज्ञानादयं लङ्घितः, मां पाहीति प्रार्थयामासेत्यर्थः ॥ ७८ ॥

(आब भयभीत रेणुक निवेदन करए लगलाह ।) भक्तक माहात्म्यक वर्णन करएवाला परमेश्वरक द्वारा एहि तरहेँ कहला पर रेणुक हुनक पएर पर खसि महादेवक प्रार्थना करए लगलाह ॥ ७८ ॥

मानुषीं योनिमासाद्य महादुःखविवर्धिनीम् ।
[1]जात्यायुर्भोगवैषम्य-हेतुकर्मोपपादिनीम् ॥ ७९ ॥
समस्तदेवकैङ्कर्य-कार्पण्यप्रसवस्थलीम् ।
महातापत्रयोपेतां वर्णाश्रमनियन्त्रिताम् ॥
विहाय त्वत्पदाम्भोज-सेवां किं वा वसाम्यहम् ॥ ८० ॥

त्वत्पदाम्बुजसेवां विहाय, एवंरूपमानुषीं योनिमासाद्य स्थातुं योग्यः किमहमित्यर्थः ॥ ७९-८० ॥

यथा मे मानुषो भावो न भेवत् क्षितिमण्डले ।
तथा प्रसादं देवेश ! विधेहि करुणानिधे ॥ ८१ ॥

हे देवेश ! महादुःखकेँ बढ़ाबएवाली, जन्म-आयु-भोगक वैषम्यक कारण-स्वरूप कर्म कराबएवाली, सकल देवताक सेवकत्वरूप दीनताक जन्मस्थली, महातापत्रयसँ युक्त, वर्णाश्रमसँ नियन्त्रित जे मनुष्यक रूपमे जन्म

१. तुलनीय– सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ (पा०यो०सू०)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तकरा पाबि कए हम अपनेक चरणकमलक सेवासँ रहित भए ओतए (पृथ्वी पर) कोना रहि सकब ? हे करुणानिधि ! जाहिसँ पृथ्वीपर मनुष्य भए हम नहि रही, तेहन कृपा कएल जाए ।। ७९-८१ ।।

एवं प्रार्थितवन्तं रेणुकं स्वात्मत्वेन निश्चित्याभयं दत्वा षड्भिः सूत्रैः प्रयोजनं दर्शयति—

इति सम्प्रार्थितो देवो रेणुकेन महेश्वरः ।
मा भैषीर्मम भक्तानां कुतो भीतिरिहेष्यति ।। ८२ ।।

रेणुकक द्वारा एहि रूपेँ प्रार्थना कएला पर महादेव कहलथिन— डर नहि करह । हमर भक्तकेँ एतए भय कहाँ ? ।। ८२ ।।

श्रीशैलस्योत्तरे भागे त्रिलिङ्गविषये शुभे ।
कोल्लिपाक्यभिधानोऽस्ति कोऽपि ग्रामो महत्तरः ।। ८३ ।।

त्रिलिङ्गविषये आन्ध्रदेशे कोल्लिपाक्याख्यमहाग्रामोऽस्ति ।। ८३ ।।

श्रीशैलक उत्तरभागमे स्थित त्रिलिङ्ग (तेलंगाना) नामक शुभ देशमे कोल्लिपाकी नामक एक पैघ गाम अछि ।। ८३ ।।

सोमेश्वराभिधानस्य तत्र वासवतो मम ।
अस्पृशन् मानुषं भावं लिङ्गात् प्रादुर्भविष्यसि ।। ८४ ।।

तत्र वासवतः सोमेश्वराभिधानस्य मम लिङ्गाद् मानुषं भावमस्पृशन् प्रादुर्भविष्यसीत्यर्थः ।। ८४ ।।

ओतए सोमेश्वर नामक शिवलिङ्ग रूपमेमे हम निवास करैत छी । ओतए मानुषभावक स्पर्श नहि करैत अहाँ ओही लिङ्गसँ प्रादुर्भाव केँ प्राप्त करब, अर्थात् जन्म नहि लए प्रकट होएब ।। ८४ ।।

मदीयलिङ्गसम्भूतं मद्भक्तपरिपालकम् ।
विस्मिता मानुषाःसर्वे त्वां भजन्तु मदाज्ञया ।। ८५ ।।

सब लोक आश्चर्यित भए हमर आज्ञासँ हमर लिङ्गसँ उत्पन्न एवं हमर भक्तक परिपालकस्वरूप अहाँक सेवा करत ।। ८५ ।।

मदद्वैतपरं शास्त्रं वेदवेदान्तसम्मतम् ।
स्थापयिष्यसि भूर्लोके सर्वेषां हितकारकम् ।। ८६ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अहाँ पृथ्वीलोक पर वेद-वेदान्तसम्मत, सभक हितकारक, शिवाद्वैतशास्त्रक स्थापना करब ।। ८६ ।।

मम प्रतापमतुलं मद्भक्तानां विशेषतः ।
प्रकाशय महीभागे वेदामार्गानुसारतः ॥ ८७ ॥

अहाँ हमर अतुलनीय प्रतापकेँ पृथ्वी पर वेदमार्गक अनुसार विशेष रूपेँ हमर भक्तक लेल प्रकाशित करूगए ।। ८७ ।।

अथ संग्रहकर्तुः शिवयोगिनो वाक्यम्–

इत्युक्त्वा परमेश्वरः स भगवान् भद्रासनादुत्थितो
ब्रह्मोपेन्द्रमुखान् विसृज्य विबुधान् भ्रूसंज्ञया केवलम् ।
पार्वत्या सहितो गणैरभिमतैः प्राप स्वमन्तःपुरं
क्षोणीभागमवातरत् पशुपतेराज्ञावशाद् रेणुकः ॥ ८८ ॥

इति श्रीसिद्धान्तशिखामणौ रेणुकस्य भूर्लोकावगतिर्नाम
तृतीयः परिच्छेदः ॥ ३ ॥



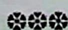
अभिमतैः अत्याप्तैः नन्द्यादिभिः । स्वकमन्तःपुरं भगवान् प्राप । अथ रेणुको ब्रह्माधिपतेः शिवस्य आज्ञावशाद् भूभागं प्राप्तवानित्यर्थः ॥ ८८ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां
तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां रेणुकस्य
भूर्लोकावतरणं नाम तृतीयः परिच्छेदः ॥ ३ ॥



ई कहि भगवान् परमेश्वर भद्रासनसँ ऊठि गेलाह, केवल भौँहक संकेतसँ ब्रह्मा विष्णु आदि देवताकेँ विदा कए पार्वतीसहित अभीष्टगणयुक्त भए निवासक भीतर गेलाह आ रेणुक पशुपतिक आज्ञासँ पृथ्वीपर उतरि गेलाह ।। ८८ ।।

एहि प्रकारेँ श्री सिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थमे रेणुकक भूलोकावतरण
नामक तृतीय परिच्छेदक विद्यावाचस्पति पं० शशिनाथझाकृत
प्रबोधिनी मैथिली व्याख्या समाप्त भेल ॥



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थः परिच्छेदः

अथाष्टभिः सूत्रैः शिवयोगिरेणुकगणेश्वरस्य स्वरूपं वर्णयति—

अथ त्रिलिङ्गविषये कोल्लिपाक्यभिधे पुरे ।
सोमेश्वरमहालिङ्गात् प्रादुरासीत् स रेणुकः ॥ १ ॥

रेणुकक अवतार एवं हुनक स्वरूपक वर्णन—

तकर बाद रेणुक त्रिलिङ्ग (आन्ध्र) देशमे कोल्लिपाकी नामक नगरमे सोमेश्वर महालिङ्गसँ बहरएलाह ॥ १ ॥

प्रादुर्भूतं तमालोक्य शिवलिङ्गात् त्रिलिङ्गजाः ।
विस्मिताः प्राणिनः सर्वे बभूवुरतितेजसम् ॥ २ ॥

हुनका शिवलिङ्गसँ प्रादुभूर्त अत्यन्त तेजस्वी देखिकए त्रिलिङ्गदेशक सब. लोक विस्मित भेल ॥ २ ॥

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं साररुद्राक्षभूषणम् ।
जटामुकुटसंयुक्तं त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकम् ॥ ३ ॥

सारशब्देन बाहुल्यमुच्यते ॥ ३ ॥

ओ सकल अंगमे भस्म लगओने, रुद्राक्षक माला पहिरने, जटा-मुकुट धारण कएने आ माँथ पर त्रिपुण्ड्र लगओने छलाह ॥ ३ ॥

कटीतटीपटीभूत-कन्थापटलबन्धुरम् ।
दधानं योगदण्डं च भस्माधारं कमण्डलुम् ॥ ४ ॥

हुनक डाँरमे चेथरा-कोथरा बान्हल छल । ओ योगदण्ड, भस्मपात्र आ कमण्डलु धारण कएने छलाह ॥ ४ ॥

शिवाद्वैतपरिज्ञान-परमानन्दमोदितम् ।
निर्धूतसर्वसंसार-वासनादोषपञ्जरम् ॥ ५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओ शिवाद्वैतक सम्पूर्ण ज्ञानक कारण परम आनन्दित छलाह आ सम्पूर्ण संसारक समस्त वासनारूपी पिजराकेँ नष्ट कएने छलाह ॥ ५ ॥

शिवागमसुधासिन्धु-समुन्मेषसुधाकरम् ।
चित्तारविन्दसङ्गूढ-शिवपादाम्बुजद्वयम् ॥ ६ ॥

ओ शिवागमरूपी सुधासागरक वृद्धिक हेतु चन्द्रमाक समान आ अपन हृदयकमलमे शिवक दुनू चरण कमलकेँ रखने छलाह ॥ ६ ॥

यमादियोगतन्त्रज्ञं स्वतन्त्रं सर्वकर्मसु ।
समस्तसिद्धसन्तान-समुदायशिखामणिम् ॥ ७ ॥

ओ यम-नियमादि योगसिद्धान्तक ज्ञाता, समस्त काज करबामे स्वतन्त्र आ सकल सिद्धपरम्पराक शिखामणि छलाह ॥ ७ ॥

वीरसिद्धन्तनिर्वाह-कृतपट्टनिबन्धनम् ।
आलोकमात्रनिर्भिन्न-समस्तप्राणिपातकम् ॥ ८ ॥

वीरसिद्धान्तशब्देन वीरशैवसिद्धान्त उच्यते । स्पष्टमन्यत् ॥ ८ ॥

ओ (रेणुक आचार्य) वीरशैवसिद्धान्तक निर्वाह करबाक लेल कटिबद्ध तथा दर्शनमात्रसँ सभ प्राणीक पापहारक भेलाह ॥ ८ ॥

अथ मर्त्यं प्राप्त एष रेणुको जनैः पृष्टः सन्नुत्तरं दत्वा मलयाद्रिमगमदित्याह तमपृच्छन्नित्यादिश्लोकपञ्चकेन–

तमपृच्छन् जनाः सर्वे नमन्तः को भवानिति ।
इति पृष्टो महायोगी जनैर्विस्मितमानसैः ॥ ९ ॥
प्रत्युवाच शिवाद्वैत-महानन्दपरायणः ।
पिनाकिनः पार्श्ववर्ती रेणुकाख्यगणेश्वरः ॥ १० ॥

सब लोक हुनका प्रमाण कए पुछलनि जे 'अहाँ के छी' ? विस्मय-चित्तवला लोकसबसँ एना पूछल गेला पर ओ महायोगी (रेणुक) बजलाह– 'हम शिवाद्वैत ज्ञान स्वरूप महान् आनन्दमे लीन तथा शिवक लग रहनिहार रेणुक नामक गणेश्वर छी' ॥ ९-१० ॥

केनचित् कारणेनाहं शिवलिङ्गादिहाभवम् ।
नाम्ना रेणुकसिद्धोऽहं सिद्धसन्ताननायकः ॥ ११ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोनो कारणवश हम एहि संसारमे शिवलिङ्गसँ उत्पन्न भेल छी । हमर नाम रेणुक सिद्ध थिक आ हम सिद्धपरम्पराक प्रधान छी ।। ११ ।।

स्वच्छन्दचारी लोकेऽस्मिन् शिवसिद्धान्तपालकः ।
खण्डयन् जैनचार्वाक-बौद्धादीनां दुरागमान् ।। १२ ।।

हम एहि लोकमे स्वच्छन्द विचरण करएवाला छी आ जैन चार्वाक बौद्ध आदि दुष्ट आगमक खण्डन करैत शिवसिद्धान्तक परिपालक छी ।। १२ ।।

इत्युक्त्वा पश्यतां तेषां विषयस्थिरचक्षुषाम् ।
उत्थाय व्योममार्गेण मलयाद्रिमुपागमत् ।। १३ ।।

ई कहि रेणुक एकटक देखनिहार लोक सभक सामनहिंमे ऊठि आकाशमार्गसँ मयल पर्वत पर चल गेलाह ।। १३ ।।

अथ सूत्रत्रयेण मलयाद्रिं वर्णयति–

नवचन्दनकान्तार-कन्दलन्मन्दमारुतम् ।
अभङ्गुरभुजङ्गस्त्री सङ्गीतरससङ्कुलम् ।। १४ ।।

नूतनश्रीचन्दनभेदनक्षममन्दमारुतः, अतिनिबिडभुजङ्गस्त्रीसङ्गीतरस-व्याप्तः ।। १४ ।।

ओ मलय पर्वत नवीन चन्दनक सघन वनसँ भरल छल, ओहिठाम मन्द वायु बहि रहल छल आ अतिशय सटल सापिन सभक संगीतरससँ व्याप्त छल ।। १४ ।।

करिपोतकराकृष्ट-स्फुरदेलातिवासितम् ।
वराहदंष्ट्रिकाध्वस्त-मुस्तासुरभिकन्दरम् ।। १५ ।।

करिकलभकराकर्षणविकीर्णैलाफलसुगन्धवासितो वराहदंष्ट्रोत्खात-भद्रमुस्तासुरभिसानुप्रदेशः ।। १५ ।।

ओ पर्वत हाथीक बच्चाक द्वारा सूँढ़सँ सुररल अणाचीसँ अतिशय सुगन्धित छल । सुगरक छोट-छोट दाँतसँ उखाड़ल मोथाक सुगन्धसँ ओकर गुफा सुगन्धित छल ।। १५ ।।

पटीरदलपर्यङ्क-प्रसुप्तव्याधदम्पतिम् ।
माधवीमल्लिकाजाती-मञ्जरीरेणुरञ्जितम् ।। १६ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्पूरकदलीपत्रपर्यङ्कनिद्रितकिरातदम्पतिः, सेवन्त्यादिकुसुमगुच्छ-परागरञ्जितः। एतादृशं मलयाद्रिमगमदिति पूर्वेणान्वयः ॥ १६ ॥

ओतए व्याधा सब अपन पत्नीक संग उजरा केराक पातक पलंग पर सुतल छल आ माधवी, बेली ओ चम्पाक परागसँ अनुरञ्जित कएने छल ॥ १६ ॥

अथाष्टभिः सूत्रैरगस्त्याश्रमं वर्णयति–

तत्र कुत्रचिदाभोग-सर्वर्तुकुसुमद्रुमे।
अपश्यदाश्रमं दिव्यमगस्त्यस्य महामुनेः ॥ १७ ॥

सम्पूर्णवसन्तादिसर्वर्तुकुसुममयवृक्षवति तत्र मलयाचले कुत्रचित् कस्मिंश्चित् प्रदेशे दिव्यं मनोहरम् अगस्त्याश्रममपश्यत्, दृष्टवानित्यर्थः ॥ १७ ॥

अगस्त्याश्रमवर्णन ८ श्लोकमे– ओ (रेणुक) ओतए सब ऋतुमे फुलाएवला गाछ सभसँ भरल महामुनि अगस्त्यक आश्रम देखलनि ॥ १७ ॥

मन्दारचन्दनप्रायैर्मण्डितं तरुमण्डलैः।
शाखाशिखरसंलीन-तारकागणकोरकैः ॥ १८ ॥

शाखाग्रसंविलीनतारकागणरूपकुसुमकुड्मलैः कल्पवृक्षश्रीचन्दनादितरु-समूहैर्मण्डितं शोभितमित्यर्थः ॥ १८ ॥

ओ (आश्रम) मन्दार चन्दन आदि गाछसँ भरल छल जकर उपरका भागमे भरल फूलक कली तरेगन जकाँ लगै छल ॥ १८ ॥

मुनिकन्याकरानीत-कलशाम्बुविवर्धितैः।
आलवालजलास्वाद-मोदमानमृगीगणैः ॥ १९ ॥

ई गाछ सब मुनिकन्या सभसँ आनल जलसँ बढ़ल छल, जकर कियारीमे भरल जलकेँ पीबि कए हरिणी सब प्रसन्न रहैत छल ॥ १९ ॥

हेमारविन्दनिष्यन्द-मकरन्दसुगन्धिभिः।
मरालालापवाचाल-वीचिमालामनोहरैः ॥ २० ॥

स्वर्णकमलसँ बहराएल परागक सुगन्ध सँ युक्त, ओ आश्रम हंसक तेज ध्वनि समूहसँ शोभित छल ॥ २० ॥

इन्दीवरवरज्योतिरन्धीकृतहरिन्मुखैः।
लोपामुद्रापदन्यास-चरितार्थतटाङ्कितैः ॥ २१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओ आश्रम नीलकमलक चमकसँ चारू दिस झलफलाएल छल, नील बनि गेल छल। ओकर पोखरिक कछेर लोपामुद्राक (अगस्त्यपत्नीक) चरण चिह्नसँ शोभित छल ॥ २१ ॥

हारनीहारकर्पूर-हरहासामलोदकैः ।
नित्यनैमित्तिकस्नान-नियमार्थैस्तपस्विनाम् ॥ २२ ॥

ओहि पोखरिक जल अत्यन्त स्वच्छ छल जेना हार, बर्फ, कर्पूर अथवा शिवक हास हो। ओ तपस्वी सभक नित्य-नैमित्तिक स्नान एवं नियमक लेल परम उपयुक्त छल ॥ २२ ॥

प्रकृष्टमणिसोपानैः परिवीतं सरोवरैः ।
विमुक्तसत्त्ववैरस्यं ब्रह्मलोकमिवापरम् ॥ २३ ॥

ओ आश्रम उत्तम मणिमय सीढ़ीसँ शोभित अनेक पोखरि सँ युक्त छल आ प्राणीक वैरभावसँ मुक्त रहला सँ लगैत छल जेना दोसर ब्रह्मलोक हो ॥ २३ ॥

हूयमानाज्यसन्तान-धूमगन्धिमहास्थलम् ।
शुकसंसत्समारब्ध-श्रुतिशास्त्रोपबृंहणम् ॥ २४ ॥

शुकसंसदेत्यर्थः । स्पष्टमन्यत् । एतादृशमगस्त्याश्रममपश्यद्दित्यर्थः ॥ २४ ॥

ओहि ठामक भूमि हवनक घीक धूआँसँ सुगन्धित छल तथा शुगा सभक द्वारा पढ़ल गेल वेद शास्त्रसँ अत्यन्त उत्कृष्ट छल ॥ २४ ॥

अथागस्त्यमुनिं नवभिः सूत्रैर्वर्णयति-

तस्य मध्ये समासीनं मूले चन्दनभूरुहः ।
सुकुमारदलच्छाया-दूरितादित्यतेजसः ॥ २५ ॥

ओहि आश्रमक मध्यमे चाननक गाछक जड़िमे बैसल अगस्त्यकेँ रेणुकाचार्य देखलनि, जे गाछ सुकुमार पातक छायासँ सूर्यक प्रखर रौदकेँ रोकने छल ॥ २५ ॥

तडित्पिङ्गजटाभारैस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकैः ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गैः स्फुरद्रुद्राक्षभूषणैः ॥ २६ ॥
नववल्कलवासोभिर्नानानियमधारिभिः ।
परिवीतं मुनिगणैः प्रमथैरिव शङ्करम् ॥ २७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओतए बिजलोकाक समान पीयर जटावाला, त्रिपुण्ड्रयुक्त मस्तकवाला, सब अंगमे भस्म लगओनिहार, रुद्राक्षक गहना पहिरनिहार, नव वल्कल (गाछक छाल) धारण कएनिहार, अनेक नियमक पालन कएनिहार जे मुनिसब तनिका सबहिसँ घेरल छलाह अगस्त्यमुनि जे प्रमथ गणसँ घेरल भगवान् शंकर जकाँ लगैत छलाह ।। २६, २७ ।।

समुज्ज्वलजटाजालैस्तपः पादपपल्लवैः ।
स्फुरत्सौदामिनीकल्पैर्ज्वालाजालैरिवानलम् ।। २८ ।।

शिवप्रसादभूततपोवृक्षपल्लवैः स्फुरद्विद्युल्लतासदृशैर्जटाजालैरग्निमिव समुज्ज्वलन्तमित्यर्थः ।। २८ ।।

ओ अत्यन्त उज्जर जटा समूहसँ, तपस्या रूपी गाछक पल्लवसँ एवं चमकैत बिजलोकाक समान कान्तिसँ लगैत छलाह जेन ज्वालाक मालासँ घेरल आगि होथि ।। २८ ।।

विशुद्धभस्मकृतया त्रिपुण्ड्राङ्कितरेखया ।
त्रिस्रोतसेव सम्बद्धशिलाभागं हिमाचलम् ।। २९ ।।

त्रिभागेन प्रवहद्गङ्गासम्बद्धशिलाभागं हिमाद्रिमिव सितत्रिपुण्ड्ररेखाङ्कित-मस्तकमित्यर्थः ।। २९ ।।

विशुद्ध भस्म सँ बनल त्रिपुण्ड्रक रेखासँ ओ लगैत छलाह जेना त्रिपथगा गङ्गासँ युक्त हिमालय होथि ।। २९ ।।

भस्मालङ्कृतसर्वाङ्गं शशाङ्कमिव भूगतम् ।
वसानं वल्कलं नव्यं बालातपसमप्रभम् ।। ३० ।।

ओ सम्पूर्ण देहमे भस्म लगओने छलाह, लगैत छलाह जेना पृथ्वी पर आएल चन्द्रमा होथि । ओ प्रातःकालिक सूर्यक प्रकाशक समान चमकैत छलाह आ नवीन वल्कल पहिरने छलाह ।। ३० ।।

वडवाग्निशिखाजाल-समालीढमिवार्णवम् ।
सर्वासामपि विद्यानां समुदायनिकेतनम् ।। ३१ ।।

समालीढं व्याप्तमित्यर्थः ।। ३१ ।।

वड़वानल (समुद्रीय आगि)क लपट सँ भरल समुद्रक समान ओ अगस्त्य सकल विद्यासँ भरल छलाह ।। ३१ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न्यक्कृतप्राकृताहन्तं निरूढशिवभावनम् ।
तृणीकृतजगज्जालं सिद्धीनामुदयस्थलम् ॥ ३२ ॥

तिरस्कृतप्राकृतशरीराद्यहङ्कारवन्तमित्यर्थः । सिद्धीनामणिमादिसिद्धीनामित्यर्थः ॥ ३२ ॥

ओ स्वाभाविक अहंकारक दमन कएने, शिवभावनामे दृढ़, समस्त संसारकेँ तृणवत् बुझैत तथा सिद्धि सभैक उद्गमस्थल छलाह ॥ ३२ ॥

मोहान्धकारतपनं मूलबोधमहीरुहम् ।
ददर्श स महायोगी मुनिं कलशसम्भवम् ॥ ३३ ॥

मूलबोधस्य स्वरूपज्ञानस्य कल्पद्रुममित्यर्थः । एवमादिविशेषणविशिष्टं कलशसम्भवगस्त्यं स रेणुकाचार्यो ददर्श दृष्टवानित्यर्थः ॥ ३३ ॥

मोहरूपी अन्हारक लेल सूर्य ओ बोधरूप गाछक जड़ि स्वरूप ओहि अगस्त्यकेँ महायोगी रेणुक देखलनि ॥ ३३ ॥

अथ समागतं तं रेणुकाचार्यमगस्त्यः पूजयामासेति चतुर्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

तमागतं महासिद्धं समीक्ष्य कलशोद्भवः ।
गणेन्द्रं रेणुकाभिख्यं विवेद ज्ञानचक्षुषा ॥ ३४ ॥

कुम्भोद्भव (अगस्त्य) मुनि ओहि महासिद्धकेँ आएल देखि अपन ज्ञानरूपी आँखिसँ हुनका रेणुक नामक गणेश्वर बुझलनि ॥ ३४ ॥

तस्यानुभावं विज्ञाय सहसैव समुत्थितः ।
लोपामुद्राकरानीतैरुदकैरतिपावनैः ॥
पादौ प्रक्षालयामास स तस्य शिवयोगिनः ॥ ३५ ॥

स अगस्त्यः, तस्य रेणुकस्यानुभावं सामर्थ्यं समन्वीक्ष्य तस्मिन्नेव क्षणे समुत्थाय प्रणम्यासने उपावेशयदित्यर्थः ॥ ३५ ॥

हुनक प्रभावकेँ जानिकए ओ अगस्त्य मुनि हड़बड़ाए ठाढ़ भए गेलाह आ लोपामुद्रा नामक अपन पत्नीक हाथसँ आनल अत्यन्त पवित्र जलसँ ओहि शिवयोगी रेणुकक पएर धोलनि ॥ ३५ ॥

सम्पूज्य तं यथाशास्त्रं तन्नियोगपुरस्सरम् ।
मुनिर्विनयसम्पन्नो निषसादासनान्तरे ॥ ३६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथेति शेषः । तं रेणुकं शास्त्रोक्तप्रकारेण भक्तियुतः सन् अगस्त्यमुनिः सम्पूज्य तदाज्ञापुरःसरं यथा तथा पीठान्तरे उपविष्ट इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

अत्यन्त विनीत अगस्त्यमुनि शास्त्रविधिसँ हुनक पूजन कए हुनक आज्ञासँ दोसर आसन पर बैसि गेलाह ॥ ३६ ॥

रेणुकागस्त्यसंवादः

समासीनं मुनिवरं सर्वतेजस्विनां विभुम् ।
उवाच शान्तया वाचा रेवणः सिद्धशेखरः ॥ ३७ ॥

रेणुक-अगस्त्यसंवाद– सब तेजस्वीमे श्रेष्ठ अगस्त्य मुनिवरकेँ बैसल देखि सिद्धेश्वर आचार्य रेवण (रेणुक) हुनका शान्त वचन कहए लगलाह ॥ ३७ ॥

अथाष्टभिः सूत्रैः श्रीरेणुकोऽगस्त्यं कुशलप्रश्नपूर्वकं प्रस्तौति–

निर्विघ्नं वर्तसे किं नु नित्या ते नियमक्रिया ।
अथ वाऽगस्त्य तेजस्विन् कुतः स्युस्तेऽन्तरायकाः ॥ ३८ ॥

तेजस्विन् भो अगस्त्य, अथ माङ्गल्येन निर्विघ्नं त्वं भवान् वर्तसे, किं नु ते नियमक्रिया नित्या वा विच्छेदरहिता वेत्यर्थः, ते अन्तरायका विघ्नकारिणः कुतः स्युः ? न स्युरित्यर्थः ॥ ३८ ॥

हे तेजस्वी अगस्त्य ! अहाँ निर्विघ्न रहैत छी कि ने ? अहाँक नित्यक्रिया नियमपूर्वक चलैत अछि कि ने ? अथवा अहाँकेँ विघ्न कतए सँ आबि सकैछ ? ॥ ३८ ॥

विन्ध्यो निरुद्धो भवता विश्वोल्लङ्घनविभ्रमः ।
नहुषो रोषलेशात् ते सद्यः सर्पत्वमागतः ॥ ३९ ॥

विश्वोल्लङ्घनविभ्रमो महामेरुप्रभृतिमहापर्वतोल्लङ्घनविलासवान् विन्ध्यः विन्ध्याद्रिः, निरुद्धः, भूमौ निपातित इत्यर्थः । भो अगस्त्य ते क्रोधलेशात् सद्य एव नहुषः सर्पतां गतः ॥ ३९ ॥

अहाँ विन्ध्याचल पर्वतकेँ संसारक नियमक उल्लंघन करबासँ (ऊपर बढ़बासँ) रोकि देल आ अहाँक थोड़बे क्रोधसँ राजा नहुष तत्क्षणे साप भए गेलाह ॥ ३९ ॥

आचान्ते भवता पूर्वं पङ्कशेषाः पयोधयः ।
जीर्णस्ते जाठरे वह्नौ दृप्तो वातापिदानवः ॥ ४० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वं भवता आचान्ते आचमने कृते सति पयोधयः समुद्राः पङ्कशेषेण अवशिष्टाः कृताः । ते जठराग्नौ दृप्तः उद्धतः वातापिदानवः वातापिनामासुरः, जीर्णो जात इत्यर्थः ॥ ४० ॥

अहाँ समुद्रकेँ एक चुडुक बनाए पीबि गेल रही जाहिसँ ओहिमे केवल पाँक बचल रहए तथा अहाँक पेटमे दर्प भरल वातापी दानव पचि गेल छल ।

एक समय टिटही चिड़ैक अंडा समुद्रमे बहि गेलैक । ओ लोलें-लोलें समुद्रक पानि उपछए लागल जे सुखएला पर अंडा निकालब । अगस्त्य ई घटना देखैत छलाह । ओ दया कए मन्त्र बलसँ समुद्रकेँ चुडूकमे लए पीबि गेलाह । आ चिड़ैकेँ अंडा भेटि गलै' । एहिना आतापी आ वातापी नामक दानव अन्न बनि कोनो मुनिक पेटमे पैसि पेट फाड़ि बहार भए जाए । अगस्त्य ओकरा पचाए गेलाह आ तहिया सँ सभक रक्षा भेल ॥ ४० ॥

एवंविधानां चित्राणां सर्वलोकातिशायिनाम् ।
कृत्यानां तु भवान् कर्ता कस्तेऽगस्त्य ! समप्रभः ॥ ४१ ॥

सर्वजनातिशायिनाम् एवंविधचित्रकर्मणां त्वं कर्ता कर्माणि कुर्वाण इत्यर्थः । तस्माद् भो अगस्त्य ! ते समानप्रभावः कः ? न कोऽपीत्यर्थः ॥ ४१ ॥

एहि तरहक लोकोत्तर अनेक आश्चर्यजनक काजक कर्ता अहाँ छी । अहाँक समान तेजस्वी के भए सकैछ ? ॥ ४१ ॥

शिवाद्वैतपरानन्द-प्रकाशनपरायणम् ।
भवन्तमेकं शंसन्ति प्रकृत्या सङ्गवर्जितम् ॥ ४२ ॥

अत्र लोका भवन्तमेकमेव शिवाद्वैतविज्ञानाविर्भूतपरमानन्दप्रकाशनतत्परं प्रकृतिसम्बन्धरहितं कथयन्तीत्यर्थः ॥ ४२ ॥

लोक सब एकमात्र अहाँकेँ शिवाद्वैतक परमानन्द प्रकाशनमे लगल एवं स्वभावतः आसक्तिरहित मानि प्रशंसा करैत अछि ॥ ४२ ॥

तत्कथमित्यत्राह–

पुरा हैमवतीसूनुरवदत् ते षडाननः ।
शिवधर्मोत्तरं नाम शास्त्रमीश्वरभाषितम् ॥ ४३ ॥

प्राचीन युगमे पार्वतीपुत्र कार्तिक अहाँकेँ ईश्वर भाषित (महादेवक कथित) शिवधर्मोत्तर नामक शास्त्रक उपदेश देने छलाह ॥ ४३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्तिः शैवी महाघोर-संसारभयहारिणी ।
त्वया राजन्वती लोके जाताऽगस्त्य महामुने ॥ ४४ ॥

स्कन्दोपदेशमहिम्ना अतिक्रूरसंसारभयनाशिनी शिवभक्तिस्त्वया भूलोके राजन्वती सम्यक्प्रकाशमाना जातेत्यर्थः ॥ ४४

हे महामुनि अगस्त्य ! एहि संसारमे महाघोर भयक नाशिका शिवभक्ति अहींक कारण विराजमान अछि' ॥ ४४ ॥

अगस्त्यमुनिवचनम्

अथ अगस्त्यः स्वस्य रेणुकाचार्यदर्शनोत्थसौभाग्यं दशभिः सूत्रैर्वर्णयति–

इति तस्य वचःश्रुत्वा सिद्धस्य मुनिपुङ्गवः ।
गम्भीरगुणया वाचा बभाषे भक्तिपूर्वकम् ॥ ४५ ॥

ओहि सिद्ध रेणुकक एहि प्रकारक वचन सुनि कए मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य भक्तिपूर्वक गम्भीर गुणमय वाणी कहए लगलाह ॥ ४५ ॥

अहमेव मुनीन्द्राणां लालनीयोऽस्मि सर्वदा ।
भवदागमसम्पत्तिर्मां विना कस्य सम्भवेत् ? ॥ ४६ ॥

अहमेव सदा मुनीन्द्रैः लालनीयः श्लाघनीयः, तत्र हेतुर्भवदागमः, त्वदागमनसम्पत्तिर्मां विना न कस्यापीत्यहमेव सर्वैः श्लाघनीयोऽस्मीति भावः ॥ ४६ ॥

हे रेणुकाचार्य ! सब मुनि मे हमहीं प्रशंसनीय छी, किएक तँ अहाँक अगमनक प्राप्ति हमरा छोड़ि किनका सम्भव छनि ? ॥ ४६ ॥

स्थिरमद्य शिवज्ञानं स्थिरा मे तापसक्रिया ।
भवद्दर्शनपुण्येन स्थिरा मे मुनिराजता ॥ ४७ ॥

आइ हमर शिवज्ञान स्थिर भेल, हमर तपस्या स्थिर भेल, अपनेक पुण्य आगमनसँ हमर मुनिराज कहाएब स्थिर भए गेल ॥ ४७ ॥

संसारसर्पदष्टानां मूर्च्छितानां शरीरिणाम् ।
कटाक्षस्तव कल्याणं समुज्जीवनभेषजम् ॥ ४८ ॥

तापत्रयात्मसर्पदष्टानामत एव मूर्च्छितानां प्राणिनां ते कटाक्षः कल्याणं मङ्गलात्मकं समुज्जीवनभेषजं सञ्जीवनौषधमित्यर्थः ॥ ४८ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संसाररूपी सापक डँसलासँ मूर्च्छित प्राणी सभक लेल अहाँक थोड़बो कृपादृष्टि कल्याणदायी जीवनदायक औषध थिक ॥ ४८ ॥

समस्तलोकसंदाह-तापत्रयमहानलः ।
त्वत्पदाम्बुकणास्वादादुपशाम्यति देहिनाम् ॥ ४९ ॥

सबलोककेँ जराबएवला तथा जीवक लेल तापत्रयरूपी महान् अग्नि अहाँक चरणोदकक एक बून्द पीलासँ शान्त भए जाइत अछि ॥ ४९ ॥

तर्हि कोऽहमित्याकाङ्क्षायामाह-

रेणुकं त्वां विजानामि गणनाथं शिवप्रियम् ।
अवतीर्णमिमां भूमिं मदनुग्रहकाङ्क्षया ॥ ५० ॥

हम अहाँके शिवप्रिय रेणुक गणेश्वर रूपमे जनैत छी । अहाँ हमरा पर कृपा कए एहि भूमि पर आएल छी ॥ ५० ॥

भवादृशानां सिद्धानां प्रबोधध्वस्तजन्मनाम् ।
प्रवृत्तिरीदृशी लोके परानुग्रहकारिणी ॥ ५१ ॥

प्रवृत्तिः सञ्चार इत्यर्थः, ईदृशी एव परानुग्रहरूपिणीत्यर्थः ॥ ५१ ॥

अहाँ सनक सिद्ध जे प्रबोधक कारण जन्म ग्रहणकेँ समाप्त कए चुकल छथि तनिक एहि प्रकारक प्रवृत्ति लोकमे परोपकारकारिणी भेल अछि ॥ ५१ ॥

त्वन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छामि सिद्धान्तश्रुतिसम्मतम् ।
सर्वज्ञ वद मे साक्षाच्छैवं सर्वार्थसाधकम् ॥ ५२ ॥
सद्यः सिद्धिकरं पुंसां सर्वयोगीन्द्रसेवितम् ।
दुराचारैरनाघ्रातं स्वीकृतं वेदवेदिभिः ॥
शिवात्मैक्यमहाबोध सम्प्रदायप्रवर्तकम् ॥ ५३ ॥

दुराचारैर्जैनबौद्धादिभिरनाघ्रातम् अस्वीकृतमित्यर्थः । साक्षाच्छिवात्म्यैक्येति-सकललोकप्रत्यक्षभूतशिवजीवैक्यज्ञानसम्प्रदायप्राप्तमित्यर्थः । एवमादिविशेषणविशिष्टं शैवसिद्धान्तं त्वन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छामि, भो सर्वज्ञ! मे मह्यं वद कृपयेत्यर्थः ॥ ५२-५३ ॥

हम अहाँक मुखसँ वेदसम्मत शिवाद्वैत-सिद्धान्तकेँ सुनए चाहैत छी। हे सर्वज्ञ ! अहाँ हमरा साक्षात् सवार्थसाधक, लोकक हेतु सद्यः

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिद्धिदायक, सब योगीन्द्रसँ सेवित, दुराचारी सबसँ अस्पृष्ट, वेदज्ञाता सभसँ स्वीकृत तथा शिव-जीवैक्य रूपी महाज्ञानमय सम्प्रदायक प्रवर्तक शिवाद्वैत सिद्धान्त बुझाउ ॥ ५२-५३ ॥

उक्त्वा भवान् सकललोकपहोपकारं
सिद्धान्तसंग्रहमनादृतबाह्यतन्त्रम् ।
सद्यः कृतार्थयितुमर्हति दिव्ययोगिन्
नानागमश्रवणवर्तितसंशयं माम् ॥ ५४ ॥

इति श्रीसिद्धान्तशिखामणौ रेणुकागस्त्यदर्शनप्रसङ्गो नाम
चतुर्थः परिच्छेदः ॥ ४ ॥

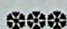
दिव्ययोगिन् मनोहरशिवयोगयुक्तरेवणसिद्धेश्वर, अनादृतबाह्यतन्त्रं खण्डितजैनबौद्धादितन्त्रं सकललोकमहोपकारकं सकलप्राण्यनुग्राहकं सिद्धान्तसंग्रहं वेदसम्मतसिद्धान्तसारमुक्त्वा उपदिश्य नानागमश्रवणवर्तितसंशयं कामिकादिवातुलान्तानेकागमश्रवणप्राप्तसंशयं मां भवान् सद्यः कृतार्थयितुमर्हति योग्योऽसीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां
तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां
रेणुकागस्त्यदर्शननामा चतुर्थः परिच्छेदः ॥ ४ ॥



हे दिव्ययोगी ! अहाँ सम्पूर्ण संसारक महान् उपकार करएवाला सिद्धान्तसंग्रहकेँ कहि हमरा सद्यः कृतार्थ करबाक कृपा करू जे सिद्धान्त वेदबाह्य तन्त्रक (बौद्ध जैन आदिक) अनादर कएने अछि । हम तँ विभिन्न आगमक (कामिकसँ वातुल पर्यन्तक) श्रवणसँ संशयग्रस्त भए गेल छी ॥ ५४ ॥

एहि तरहेँ सिद्धान्तशिखामणिमे रेणुक-अगस्त्यदर्शनप्रसङ्गनामक
चतुर्थपरिच्छेदक विद्यावाचस्पति डॉ० पं० श्रीशशिनाथझाकृत
'प्रबोधिनी' मैथिली व्याख्या पूर्ण भेल ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चमः परिच्छेदः

एवमगस्त्यविज्ञापनावाक्यश्रवणानन्तरं तच्छास्त्रप्रचारार्थमेव भूलोकमधिगतः शिवगणाधीशः श्रीरेणुकाचार्यः क्षणमचञ्चलमना दयया प्रारम्भणीय-शिवशास्त्रपरिसमाप्तिप्रतिबन्धकीभूतविघ्नदेवतासङ्घसमाधान-शक्तशिवध्यानरूपमङ्गलं मनसि विधाय तस्योत्तरमाहेति शिवयोगी निरूपयति, इत्यवतारिकयैव अस्यार्थस्य स्फुटत्वेऽपि योजनाद्वारेण ईषद्विशेषः सूच्यते–

अथागस्त्यवचः श्रुत्वा रेणुको गणनायकः ।
ध्यात्वा क्षणं महादेवं साम्बमाह समाहितः ॥ १ ॥

अगस्त्यवचः श्रुत्वाऽथ गणनायको रेणुकः क्षणमेकाग्रचित्तः सन् साम्बमम्बया जगज्जनन्या शक्तिप्रणवरूपमुख्यस्वसमवेतचित्क्रियासामरस्यलक्षण-चिदम्बरशक्त्या सह वर्तमानं महादेवं क्रीडाविजिगीषाद्यनेकगुणरत्नाकरं परब्रह्म तेजोलिङ्गं ध्यात्वा तस्योत्तरवचनं निरूपयतीत्यर्थः ॥ १ ॥

एकर बाद अगस्त्य मुनिक वचन सुनिकए गणेश्वर रेणुकाचार्य शान्तचित्त भए अम्बा (पार्वती) सहित महादेवक छनभरि ध्यान कए कहए लगलाह ॥ १ ॥

अगस्त्य मुनिशार्दूल समस्तागमपारग ।
शिवज्ञानकरं वक्ष्ये सिद्धान्तं शृणु सादरम् ॥ २ ॥

समस्तागमपारग सकलनिगमागमपारङ्गत शिवशास्त्रप्रभुत्वान्मुनिशार्दूल मुनिश्रेष्ठ भो अगस्त्य, शिवज्ञानकरं स्वतन्त्रशिवाद्वैतज्ञानप्रकाशकं सिद्धान्तं सिद्धान्तशास्त्रं वक्ष्ये सादरः प्रीतियुक्तः सन् त्वं शृण्वित्यर्थः ॥ २ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ सकल आगममे पारङ्गत अगस्त्य ! अहाँ शिवज्ञानदायक सिद्धान्त कहब । तकरा आदरपूर्वक सुनू ॥ २ ॥

अथ तस्य सिद्धान्तस्याधिक्यं प्रतिपादयितुं सिद्धान्ता बहवः सन्तीत्याह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अगस्त्य खलु सिद्धान्ता विख्याता रुचिभेदतः ।
भिन्नाचारसमायुक्ता भिन्नार्थप्रतिपादकाः ॥ ३ ॥

भो अगस्त्य ! रुचिभेदतः कपिलपतञ्जल्यादिऋषिप्रीतिवैचित्याद् भिन्नाचारस्य भिन्नप्रमेयस्य प्रतिपादकाः सिद्धान्ता बहव इति शेषः, विख्याताः खलु प्रसिद्धाः सन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥

हे अगस्त्य ! रुचिभेदक अनुसार भिन्न आचारवला भिन्न विषय प्रतिपादक अनेक सिद्धान्त प्रसिद्ध अछि ॥ ३ ॥

ते क इत्याकाङ्क्षायामाह–

सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा ।
एतानि मानभूतानि नोपहन्यानि युक्तिभिः ॥ ४ ॥

सांख्यं कापिलं प्रकृतिपुरुषलक्षणपदार्थद्वयप्रतिपादकम्, तत्रानीश्वराङ्गीकारः । योगो योगशास्त्रं पतञ्जलिप्रणीतम्, तत्रेश्वराङ्गीकारः, कष्टकरयमनियमाद्यष्टाङ्गप्रतिपादकम् । पाञ्चरात्रं वासुदेवप्रणीतं वैष्णवं विष्णुदीक्षाङ्गभूततप्तमुद्राधारणादिप्रतिपादनद्वारा चिदचिदीश्वरलक्षणत्रिपदार्थप्रतिपादकम् । पाशुपतं शिवप्रणीतं पशुपाशपतिलक्षणत्रिपदार्थप्रतिपादकम् । वेदाः 'यस्य निश्वसिता (तं) वेदाः' इति शिवस्याप्रयत्नसिद्धनिश्वासरूपाः, अत एव अकृत्रिमा ऋग्यजुःसामरूपाः, तत्पूर्वकाण्डानुसारेण जैमिनिप्रोक्तपूर्वमीमांसाख्यं यागादिकर्मप्राधान्यप्रतिपादकं निरीश्वरम्, एतानि शास्त्राणि मानभूतानि प्रमाणभूतानि युक्तिभिर्नोपहन्यानि तर्कयुक्तिभिर्न खण्डनीयानि, 'त्रयी सांख्य योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति' इति महिम्नस्तोत्रप्रसिद्धत्वादित्यर्थः ॥ ४ ॥

सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद तथा पाशुपत– ई सब प्रामाणिक शास्त्र थिक । तर्कक आधार पर एकर खण्डन नहि करबाक चाही ॥ ४ ॥

ननु कथमेषां प्रामाण्यमित्यत्राह–

वेदः प्रधानं सर्वेषां सांख्यादीनां महामुने ।
वेदानुसरणादेषां प्रामाण्यमिति निश्चितम् ॥ ५ ॥

उक्तलक्षणानां सर्वेषां सांख्यादीनां मध्ये वेदः प्रधानं मुख्यप्रमाणम्, अपौरुषेयत्वात् । एषां सांख्यादिसिद्धान्तानां वेदानुसरणाद् वेदमूलकत्वात् प्रामाण्यमिति शास्त्रज्ञैर्निश्चिमित्यर्थः ॥ ५ ॥

हे महामुनि ! सांख्य आदि सभक प्रधान वेद थिक । वेदैक अनुसार एहि सभहिक प्रामाणिकता अछि ॥ ५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ननु सांख्यादिशास्त्राणामपि वेदमूलत्वादेभ्यः शैवशास्त्रस्य को विशेष इत्यत्राह–

पाञ्चारात्रस्य सांख्यस्य योगस्य च तथा मुने ।
वेदैकदेशवर्त्तित्वं शैवं वेदमयं मतम् ॥ ६ ॥

अत्र चकारादविशिष्टद्वयं सङ्गृहीतम् । एवं चोक्तलक्षणपाञ्चारात्रादि-पञ्चसिद्धान्तानां वेदैकदेशनिष्ठत्वम्, शैवं शिवशस्त्रं वेदमयं वेदस्वरूपमिति मतं निगमागमज्ञैरङ्गीकृतमित्यर्थः ॥ ६ ॥

हे मुनि ! पाञ्चरात्र, सांख्य ओ योग वेदक एक भागकेँ मानैत अछि। अतः ई सभ अंशतः वैदिक थिक, जखन कि शैवसिद्धान्त पूर्णतः वैदिक थिक ॥ ६ ॥

एवं स्थिते सर्ववेदमयत्वात् शैवतन्त्रं सांख्यादिभ्यः श्रेष्ठमित्याह–

वेदैकदेशवर्तिभ्यः सांख्यादिभ्यो महामुने ।
सर्ववेदानुसारित्वाच्छैवतन्त्रं विशिष्यते ॥ ७ ॥

अत्र तन्त्रशब्देन शास्त्रमुच्यते । स्पष्टमन्यत् ॥ ७ ॥

हे महामुनि ! वेदक एक भागकेँ मानएवाला सांख्य आदिक अपेक्षया सम्पूर्ण वेदक अनुसरण करएवाला शैवतन्त्र विशिष्ट थिक ॥ ७ ॥

ननु तर्हि शैवतन्त्रं केनचित् कल्पितमिति प्रतीयमानत्वात् कथमस्य प्रामाण्यमित्यत्राह–

शैवतन्त्रमिति प्रोक्तं सिद्धान्ताख्यं शिवोदितम् ।
सर्ववेदार्थरूपत्वात् प्रामाण्यं वेदवत् सदा ॥ ८ ॥

शैवतन्त्रं शिवोक्तं सर्वज्ञशिवप्रोक्तं तत्सिद्धान्ताख्यमिति प्रोक्तम्, सर्ववेदार्थरूपत्वात्, सकलोपनिषदर्थस्वरूपत्वात् सदा कालभेदराहित्येन वेदवत् प्रमाणमित्यर्थः ॥ ८ ॥

शिवक कहल सिद्धान्ते शैवतन्त्र नामसँ प्रसिद्ध अछि जे सबवेदक अर्थ रूप होएबाक कारण वेदक समान सदा प्रामाणिक थिक ॥ ८ ॥

आगमा बहुधा प्रोक्ताः शिवेन परमात्मना ।
शैवं पाशुपतं सोमं लाकुलं चेति भेदतः ॥ ९ ॥

परमात्मना शिवेन शैवमिति पाशुपतमिति सोममिति लाकुलमिति च

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भेदाद् आगमा बहवः प्रोक्ताः ॥ ९ ॥

परमात्मा शिव अनेक प्रकारक आगमक उपदेश कएने छथि– शैव, पाशुपत, सोम तथा लाकुल ॥ ९ ॥

ननु शिवोक्ततन्त्राणां बाहुल्यात् तानि सर्वाणि वेदवत् प्रमाणानि किमित्यत्राह–

तेषु शैवं चतुर्भेदं तन्त्रं सर्वविनिश्चितम् ।
वामं च दक्षिणं चैव मिश्रं सिद्धान्तसंज्ञकम् ॥ १० ॥

तेषु शैवतन्त्रं चतुर्भेदवदिति सर्वैरागमज्ञैर्निश्चितम् । ते के भेदा इत्यत्राह– वामं च दक्षिणं चैव मिश्रं सिद्धान्तसंज्ञकमिति ॥ १० ॥

ओहिमे शैव तन्त्र चारि प्रकारक अछि– वाम, दक्षिण, मिश्र आ सिद्धान्त । एहन सभक निश्चय अछि ॥ १० ॥

अथ तत्स्वरूपं प्रकटयति शक्तीत्यादिना–

शक्तिप्रधानं वामाख्यं दक्षिणं भैरवात्मकम् ।
सप्तमातृपरं मिश्रं सिद्धान्तं वेदसम्मतम् ॥ ११ ॥

वामाख्यतन्त्रं शक्तिपरम्, दक्षिणतन्त्रं भैरवपरम्, मिश्रतन्त्रं ब्राह्म्यादिसप्तमातृकापरम्, सिद्धान्तं वेदसम्मतं सिद्धान्ताख्यं शैवतन्त्रं वेदसम्मतम् । अनेन सिद्धान्ताख्यशैवतन्त्रमेव वेदसम्मतत्वाद्वेदवत् प्रमाणम् । शिष्टमवेदसम्मतत्वात् तद्वन्न भवतीति सूचितम् ॥ ११ ॥

वामतन्त्र शक्तिक प्रधानता दैत अछि, दक्षिण तन्त्र भैरवप्रधान अछि, मिश्रतन्त्र सप्तमातृकाप्रधान अछि आ सिद्धान्ततन्त्र शैवतन्त्र वेदप्रधान अछि ॥ ११ ॥

ननु सिद्धान्ताख्यशैवतन्त्रं कथं वेदसम्मतमित्यत्राह–

वेदधर्माभिधायित्वात् सिद्धान्ताख्यतः शिवागमः ।
वेदबाह्यविरोधित्वाद् वेदसम्मत उच्यते ॥ १२ ॥

वेदोक्तभस्मलिङ्गधारणादिधर्मप्रतिपादकत्वाद् वेदबाह्यजैनचार्वाकादिमत-निरासकत्वात् सिद्धान्ताख्यः शिवागमो वेदसम्मत इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ १२ ॥

सिद्धान्त नामक शिवागम वेदोक्त धर्मक प्रतिपादक तथा वेदबाह्यतन्त्रक विरोधी थिक आ तेँ वेदसम्मत कहल जाइत अछि ॥ १२ ॥

एवं वेदसम्मतत्वात् सिद्धान्तो वेदवत् प्रमाणमित्याह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वेदसिद्धान्तयोरैक्यमेकार्थप्रतिपादनात् ।
प्रामाण्यं सदृशं ज्ञेयं पण्डितैरेतयोः सदा ॥ १३ ॥

'सर्ववेदेषु यद् दृष्टं तत्सर्वं तु शिवागमे' इति वीरागमोक्तेर्वेदसिद्धान्तयोरेकार्थकत्वाद् वेदवत् सिद्धान्तोऽपि प्रमाणमिति भावः ॥ १३ ॥

समान अर्थक प्रतिपादन करबाक कारण पण्डितलोकनि वेद ओ शिवागम सिद्धान्तक प्रामाणिकता समान मानैत छथि ॥ १३ ॥

अथैवंविधसिद्धान्ताख्यशिवागमे किं प्रतिपाद्यत इत्यत्राह–

सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते ।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम् ॥ १४ ॥

शिवोक्ते सिद्धान्ताख्ये कामिकादिवातुलान्ते महातन्त्रे उत्तरभागे परं सर्वोत्कृष्टं वीरशैवमतं निर्दिष्टमुपदिष्टम् । अनेन पूर्वभागे शैवमुपदिष्टमिति सूचितम् ॥ १४ ॥

शिवक मुखसँ बहराएल कामिक आदि सिद्धान्त नामक महातन्त्रक उत्तर भागमे वीरशैव मत निर्दिष्ट अछि आ पूर्वभागमे आन शैवतन्त्र उपदिष्ट अछि ॥ १४ ॥

अथ वेदशिरस्यपि वीरशैवशब्दं दर्शयति–

विद्यायां शिवरूपायां विशेषाद् रमणं यतः ।
तस्मादेते महाभागा वीरशैवा इति स्मृताः ॥ १५ ॥

शिवरूपायां ब्रह्मस्वरूपायां विद्यायां 'वेदान्तवाक्यजा विद्या' इति सूतगीतोक्तेर्वेदान्तवेद्यायां विद्यायां विशेषाद् यतः कारणाद् रमणं रतिरस्ति, तस्माद् एते तत्र रतिमन्तो महाभागाः परमश्रेष्ठा वीरशैवा इति स्मृता इत्यर्थः ॥ १५ ॥

जेँ शिवरूपा विद्यामे विशेष रमण (आनन्द पूर्वक तल्लीनता) होइत छैक तेँ एहिमे समर्पित व्यक्ति सभ वीरशैव कहबैत छथि (वी= विशेष, र= रमण) ॥ १५ ॥

अथ वेदागममस्तकयोरपि वीरशैवशब्दनिर्वचनं दर्शयति–

वीशब्देनोच्यते विद्या शिवजीवैक्यबोधिका ।
तस्यां रमन्ते ये शैवा वीरशैवास्तु ते मताः ॥ १६ ॥

शिवजीवैक्यबोधिका लिङ्गाङ्गरूपशिवजीवैक्यप्रकाशिका विद्या 'वी'

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्देन उच्यते पण्डितैः कथ्यत इत्यर्थः, 'वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु' इति धातोस्तस्यां विद्यायां ये शैवाः शिवभक्ता रमन्ते, ते तु वीरशैवा इति मताः संमता इत्यर्थः ॥ १६ ॥

'वी' शब्दसँ शिव-जीवक एक बोधिका विद्या कहल जाइत अछि। ताहिमे जे रमण करैत छथि से वीर शैव कहबैत छथि ॥ १६ ॥

अथ वीरमाहेश्वरशब्दनिर्वचनं करोति-

विद्यायां रमते यस्मान्मायां हेयां श्ववद् रहेत्।
अनेनैव निरुक्तेन वीरमाहेश्वरः स्मृतः ॥ १७ ॥

यस्माद् लिङ्गाङ्गसम्बन्धकरणार्थं शिवजीवैक्यप्रकाशिकायां विद्यायां रमते, मायां जगद्रूपां हेयां त्यजनीयां श्ववत् शुनकवद् रहेत् निवारयेत्, अनेनैव निरुक्तेन एकद्वित्र्यादिपदगताद्यक्षरप्रवचनेनैव वीरमाहेश्वर इत्यन्वर्थनाम्ना स्मृत इत्यर्थः ॥ १७ ॥

जेँ कि विद्यामे रमण करैछ, मायाकेँ हेय (त्याज्य) मानि श्ववत् (कुकूर जकाँ) हटबैत अछि- एही निर्वचन (शब्द रचना)सँ ई सिद्धान्त वीरमाहेश्वर कहबैछ। (वी = विद्या, र = मण, मा = माया, हे = हेय, श्व = श्ववत्, र = रहेत् = निवारयेत्) ॥ १७ ॥

एवंवेदान्तसिद्धवीरशब्द-सिद्धान्तप्रसिद्धशैवशब्द-महेश्वरशब्दांश्च विविच्यानन्तरं वेदागमशिरःसिद्धवीरशैववीरमाहेश्वरस्वरूपं षड्भिः सूत्रैर्विशदयति। तत्र प्रथमं वीरशब्दः कथं वेदान्तप्रसिद्ध इत्यत्राह-

वेदान्तजन्यं यज्ज्ञानं विद्येति परिकीर्त्यते।
विद्यायां रमते तस्यां वीर इत्यभिधीयते ॥ १८ ॥

'वेदान्तवाक्यजा विद्या' इति सूतगीतोक्तेर्वेदान्तवाक्यप्रकाश्यं यज्ज्ञानं विद्या, तस्यां यो रमते स वीर इत्यर्थः ॥ १८ ॥

जे वेदान्तसँ उत्पन्न होइछ से विद्या कहबैछ आ ओहिमे जे रमण करैछ से वीर कहबैछ ॥ १८ ॥

एवं वेदान्तप्रसिद्धवीरशब्दपूर्वकत्वेन सिद्धान्तप्रसिद्धशिवतत्त्वज्ञाननिष्ठान् शैवान् माहेश्वरतत्त्वकर्मनिष्ठान् माहेश्वरांश्च सार्धसूत्रेण स्फुटयति-

शैवैर्माहेश्वरैश्चैव कार्यमन्तर्बहिःक्रमात्।
शिवो महेश्वरश्चेति नात्यन्तमिह भिद्यते ॥ १९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शैवैर्वीरशब्दपूर्वकशैवैः, वीरशैवैरित्यर्थः । माहेश्वरैर्वीरमाहेश्वरैश्च अन्तर्बहिःक्रमात्, शिवलिङ्गार्चनमिति शेषः, कार्यं कर्तुं योग्यम् । एवं स्थिते शिवो निष्कलः शिवो महेश्वरः, सकलः सदाशिवश्चेति स्थितौ । इह 'शिवः शूली महेश्वरः' इत्यभिधानगुणपाठे यथाऽत्यन्तं न भिद्यते, तयोरात्यन्तिकभेदो नास्ति ॥ १९ ॥

शैव ओ माहेश्वरक द्वारा हृदयक भीतर ओ बाहरक क्रमसँ लिङ्गपूजन करक चाही । शिव ओ महेश्वर अत्यन्त भिन्न नहि छथि ॥ १९ ॥

अथ शैवमाहेश्वरयोरन्तर्बाह्यरूपपलिङ्गार्चनं यदुक्तं तत्कीदृशमित्यत्राह—

यथा तथा न भिद्यन्ते शैवा माहेश्वरा अपि ।
शिवाश्रितेषु ते शैवा ज्ञानयज्ञरता नराः ॥ २० ॥

तथा शैवाः शिवसम्बन्धिनो वीरशैवा माहेश्वरा अपि महेश्वरसम्बन्धिनो वीरमाहेश्वराश्च न भिद्यन्ते भिन्ना न भवन्ति । अत्र सदाशिवस्य सोपाधिकत्वेपि तदुपाधेर्वक्ष्यमाणरीत्या सत्त्वगुणप्रधानत्वेन नापरत्वात् तयोरात्यन्तिकभेदो नास्तीति भावः । शिवाश्रितेषु ये नराः पुरुषा ज्ञानयज्ञरता हृत्कमलस्थलचिल्लिङ्गपूजायां प्रीतियुक्तास्ते शैवा वीरशैवा इत्यर्थः ॥ २० ॥

तहिना शैव ओ माहेश्वर भिन्न नहि छथि । शिव पर आश्रित ज्ञानयज्ञमे जे रत रहैत छथि सएह व्यक्ति शैव कहबैत छथि ॥ २० ॥

माहेश्वराः समाख्याताः कर्मयज्ञरता भुवि ।
तस्मादभ्यन्तरे कुर्युः शैवा माहेश्वरा बहिः ॥ २१ ॥

कर्मयज्ञरताः करकमलस्थक्रियालिङ्गपूजायां प्रीतियुक्ता माहेश्वरा वीरमाहेश्वरा इति भुवि समाख्याताः प्रख्याता इत्यर्थः । तस्मात् शैवा वीरशैवा अभ्यन्तरे हृत्कमले कुर्युः, ज्ञानकाण्डप्रतिपादितप्राणलिङ्गिशरणशिवैक्यस्थलोक्त-धर्माचरणं कुर्युरित्यर्थः । माहेश्वरा वीरमाहेश्वरा बहिः कर्मकाण्डस्थभक्तमाहेश्वर-प्रसादिस्थलोक्तधर्माचरणं कुर्युरित्यनुषङ्गः ।

ज्ञानं प्रधानं न तु कर्महीनं, कर्म प्रधानं न तु चिद्विहीनम् ।
तस्माद् द्वयोरेव भवेत् प्रसद्धिर्न ह्येकपक्षे विहगः प्रयाति ॥
न क्रियारहितं ज्ञानं, न ज्ञानरहिता क्रिया ।
अपश्यन्नन्धको दग्धः, पश्यन् पङ्गुश्च दह्यते ॥

इत्यादिवचनात् शैवमाहेश्वरयोर्ज्ञानं क्रिया च समानैवेत्यनुसन्धेयम्, किन्तु बाह्यान्तरपूजाप्रीतिमात्रं विशिष्यत इति ॥ २१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एहि पृथ्वी पर कर्मयज्ञमे जे लागल रहैत छथि से माहेश्वर कहबैत छथि आ बाहरी कार्य करैत छथि जखन कि ज्ञानयज्ञमे लागल आभ्यन्तर (भीतरी) कार्य कएनिहार शैव कहबैत छथि । (एहिमे एकक विना दोसर अपूर्ण छथि । तेँ दुनूक आश्रयण आवश्यक अछि) ।। २१ ।।

वीरशैवास्तु षड्भेदाः स्थलधर्मविभेदतः ।
भक्तादिव्यवहारेण प्रोच्यन्ते शास्त्रपारगैः ॥ २२ ॥

अथ वीरमाहेश्वरा इति प्रसिद्धवीरशैवास्तु भक्तादिशिवैक्यान्तव्यवहारेण स्थलधर्मविभेदतः पिण्डादिवृत्तिज्ञानशून्यान्तःस्थलाचारभेदतः षड्भेदाः षड्विधभेदवन्त इति शास्त्रपारगैः प्रोच्यन्त इत्यर्थः ॥ २२ ॥

शास्त्रक पारंगत विद्वान स्थलधर्मक भेद ओ भक्त आदिक व्यवहारसँ वीर शैवक छओ भेद कहैत छथि ।। २२ ।।

अथ तच्छास्त्रभेदं दर्शयति–

शास्त्रं तु वरीशैवानां षड्विधं स्थलभेदतः ।
धर्मभेदसमायोगादधिकारिविभेदतः ॥ २३ ॥

वीरशैवानां शास्त्रं तु विशेषद्योतकम्, स्थलभेदतः स्थलभेदात्, धर्मभेदसमायोगात्, स्थलोक्तसदाचारभेदसम्बन्धात्, अधिकारिविभेदतः स्थलनिष्ठभक्ताद्यधिकारिभेदतश्च षड्विधः षट्प्रकारवदित्यर्थः । अस्य शास्त्रस्य वीरशैवधर्मनिष्ठः सन् मुमुक्षुर्भक्तोऽधिकारी, शिवभक्तिलभ्यशिवैक्यरूपपरमुक्तिः प्रयोजनम्, एकोत्तरशतस्थलज्ञानं विषयः, अस्य ज्ञानस्य शास्त्रेण प्रकाश्य-प्रकाशकभाव एव सम्बन्धः । एवमनुबन्धचतुष्टयवदेतच्छास्त्रम् ॥ २३ ॥

स्थल भेद एवं धर्मभेदयुक्त अधिकारीक भेदसँ वीरशैवक शास्त्र छओ प्रकारक अछि ।। २३ ।।

अथ स्थलक्रमं निरूपयति–

आदौ भक्तस्थलं प्रोक्तं ततो माहेश्वरस्थलम् ।
प्रसादिस्थलमन्यत्तु प्राणलिङ्गस्थलं ततः ॥ २४ ॥

स्पष्टम् ॥ २४ ॥

पहिल भक्तस्थल, तखन माहेश्वर स्थल, तखन प्रसादिस्थल ओ तखन ऐक्य स्थल मानल गेल अछि ।। २४ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्तस्थलम्

भक्तस्थलं प्रवक्ष्यामि प्रथमं कलशोद्भव ।
तदवान्तरभेदांश्च समाहितमनाः शृणु ॥ २५ ॥

अथैवमुद्दिष्टस्थलेषु क्रमप्राप्तभक्तस्थलं तदवान्तरभेदांश्च वक्ष्यामि, शृण्वित्यन्वयः ॥ २५ ॥

भक्तस्थल– हे कलशसँ उत्पन्न (अगस्त्य) ! हम पहिने भक्तस्थल ओ तकर अवान्तर (भीतरी) भेद कहब । अहाँ स्थिरचित्त भए सुनू ॥ २५ ॥

अथ भक्तस्थलं लक्षयति–

शैवी भक्तिः समुत्पन्ना यस्यासौ भक्त उच्यते ।
तस्यानुष्ठेयधर्माणामुक्तिर्भक्तस्थलं मतम् ॥ २६ ॥

यस्य शिवसम्बन्धिनी भक्तिरुत्पन्ना, सोऽसौ भक्त इत्युच्यते । तस्य भक्तस्यानुष्ठेयधर्माणामाचरणीयवीरशैवधर्माणाम्, उक्तिः –

सदाचारः शिवे भक्तिर्लिङ्गे जङ्गम एकधीः ।
लाञ्छने शरणे भक्तिर्भक्तस्थलमनुत्तमम् ।

इत्याद्युपदेशनं भक्तस्थलमिति मतम्, सम्मतमित्यर्थः ॥ २६ ॥

जनिका शैवी भक्ति भए गेल होनि से भक्त कहल जाइत छथि । तनिका अनुष्ठान करबा योग्य धर्मक प्रतिपादन करएवला स्थल भक्तस्थल मानल जाइत अछि ॥ २६ ॥

अथ पिण्डादिभक्तस्थलावान्तरस्थलानि पञ्चदशेत्युक्त्वा तान्युद्दिशति–

अवान्तरस्थलान्यत्र प्राहुः पञ्चदशोत्तमाः ।
पिण्डता पिण्डविज्ञानं संसारगुणहेयता ॥ २७ ॥
दीक्षा लिङ्गधृतिश्चैव विभूतेरपि धारणम् ।
रुद्राक्षधारणं पश्चात् पञ्चाक्षरजपस्तथा ॥ २८ ॥
भक्तमार्गक्रिया चैव गुरोर्लिङ्गस्य चार्चनम् ।
जङ्गमस्य तथा ह्येषां प्रसादस्वीकृतिस्तथा ॥ २९ ॥
अत्र दानत्रयं प्रोक्तं सोपाधिनिरुपाधिकम् ।
सहजं चेति निर्दिष्टं समस्तागमपारगैः ॥ ३० ॥
एतानि शिवभक्तस्य कर्तव्यानि प्रयत्नतः ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत्र भक्तस्थले, उत्तमा आर्याः, अवान्तरस्थलानि पञ्चदशेत्याहुः । तानि कानीत्यत्र– पिण्डतेत्यादि । पिण्डस्थलम्, पिण्डज्ञानस्थलम्, संसारहेयस्थलम्, दीक्षालक्षणगुरुकारुण्यस्थलम्, लिङ्गधारणस्थलम्, विभूतिधारणस्थलम्, रुद्राक्षधारणस्थलम्, पञ्चाक्षरीजपस्थलम्, भक्तमार्गस्थलम्, गुरुलिङ्गार्चन-रूपोभयस्थलम्, जङ्गमार्चनलक्षणत्रिविधसम्पत्तिस्थलम्,एतत्त्रयप्रसाद-स्वीकारलक्षणचतुर्विधसारायस्थलम् । अत्र भक्तस्थले प्रोक्तदानत्रयमेव उपाधिमाटम्, निरुपाधिमाटम्, सहजमाटं चेति स्थलत्रयमेतान्येवान्तररूपपञ्चदशस्थलानि शिवभक्तस्य विधेयानीत्यर्थः ॥ ३० ॥

एहिमे भक्तस्थलक अवान्तर (उपभेद) स्थल पन्द्रह कहल गेल अछि– (१) पिण्डस्थल, (२) पिण्डज्ञान स्थल, (३) संसारगुणहेय स्थल, (४) दीक्षा स्थल, (५) लिङ्गधारण स्थल, (६) विभूतिधारण स्थल (७) रुद्राक्षधारण स्थल, (८) पञ्चाक्षरजप स्थल, (९) भक्तमार्गक्रिया स्थल, (१० गुरु तथा लिङ्गक अर्चन स्थल, (११) जंगमप्राणीक अर्चनाक फल त्रिविध सम्पत्तिक स्थल, (१२) एहि तीनूक गुरु-लिङ्ग-जंगमक प्रसादस्वीकारस्वरूप चतुर्विध साराय स्थल, (१३) सोपाधिदानस्थल, (१४) निरुपाधिदानस्थल ओ (१५) सहजदान स्थल । ई अवान्तर पन्द्रहो भक्तिस्थल सकल आगमक पारंगत विद्वानक द्वारा कहल गेल अछ । शिवभक्त कें एकर अभ्यास यत्नपूर्वक करबाक चाही ॥ २७-३० ॥

पिण्डस्थलम्

समस्तवेदागमशिरःसिद्धाङ्गषट्स्थललिङ्गषट्स्थलान्तर्गतत्वेन समाचरणीय-पिण्डतादिवृत्तिज्ञानशून्यतान्तैकोत्तरशतस्थलानां मुख्यं पिण्डस्थलं निरूपयति–

बहुजन्मकृतैः पुण्यैः प्रक्षीणे पापपञ्जरे ॥ ३१ ॥

अनेकजन्मकृतधर्मैर्मनोवाक्कायकर्मकृतपापसमूहे नष्टे सति निर्मलान्तःकरणवानात्मा पिण्डशब्देन कथ्यत इत्यर्थः, 'पुनर्जन्मान्तरकर्मयोगात् स एव जीवः' इति श्रुतेः । उक्तप्रकारेण शुद्धान्तःकरणः स एव जीवः पिण्डाभिधान इति यावत् । अत्र पिण्डस्थलं साधनम्, वक्ष्यमाणपिण्डज्ञानादिशतस्थलानि साध्यानि । नेत्रे द्वे अपि यथा दर्शनमेकम्, पादौ द्वावपि यथा गमनमेकम् तथा 'आत्मलाभान्न परं विद्यते', 'नात्मनः परदेवता' इति श्रुत्यागमप्रतिपाद्यपिण्डस्थलं गुरूपदेशस्वानुभावाभ्यामेकं सद्भिर्ज्ञेयमिति भावः ॥ ३१ ॥

बहुत जन्मभे कएल गेल पुण्यसँ पापसमूहक क्षीण भेला पर शुद्ध

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्तःकरणवाला जीव पिण्ड कहबैत अछि। (पिण्डस्थल साधन भेल आ पिण्डज्ञान स्थल आदि साध्य भेल । जेना दुहू चरणसँ एक गमन क्रिया, दू आँखिसँ एक दर्शन क्रिया होइछ तहिना गुरुक उपदेश ओ अपन अनुभवसँ एक आत्मलाभ होइछ) ॥ ३१ ॥

नन्वयं पिण्डशब्दवाच्यः किं लोकसाधारणो वा तद्विशिष्टो वेत्यत्राह–

शिवशक्तिसमुत्पन्ने प्रपञ्चेऽस्मिन् विकल्प्यते ॥ ३२ ॥
पुण्याधिकः क्षीणपापः शुद्धात्मा पिण्डनामकः ।

शिवशक्तिसमुत्पन्ने 'लिङ्गाङ्कितं पश्य जगद्भगाङ्कम्' इति व्यासवचनात् शिवशक्तिभ्यामुत्पन्नेऽस्मिन् प्रपञ्चे पुण्याधिक्यात् पापक्षयात् शुद्धात्मा निर्मलान्तःकरणः पिण्डाभिधानः पुरुषः, विशिष्यत इतरजनापेक्षया श्रेष्ठो भवतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥

शिव ओ शक्तिसँ उत्पन्न एहि प्रपञ्चात्मक संसारमे पापरहित अधिक पुण्ययुक्त पिण्ड नामक शुद्ध आत्मा अत्यन्त विलक्षण अछि ॥ ३२ ॥

ननु तर्ह्ययं पिण्डनामकः शिवो वा तदन्यो वा इत्यत्राह–

एक एव शिवः साक्षाच्चिदानन्दमयो विभुः ॥ ३३ ॥
निर्विकल्पो निराकारो निर्गुणो निष्प्रपञ्चकः ।
अनाद्यविद्यासम्बन्धात् तदंशो जीवनामकः ॥ ३४ ॥

चिदानन्दमयः स्वतन्त्रप्रकाशः, अत एव साक्षाद् अहमिति देशकालाद्यचुम्बितत्वेन सर्वलोकप्रत्यक्षः, 'उतैनं गोपा अदृश्रन्'[१] इत्यादिश्रुतेः । विभुः पूर्णः, निर्विकल्पो भेदरहितः, अत एव निष्प्रपञ्चको मायिकप्रपञ्चशून्यः, निराकारो नीलपीताकाररहितः, निर्गुणो मायिकसत्त्वरजस्तमोगुणरहितः शिवः अकुण्ठितेच्छाद्यनेककल्याणपूर्णः परमात्मा एक एव, 'एकमेवाद्वितीयम्'[२] इति श्रुतेः शिवातिरेकेण पदार्थान्तरं नास्तीत्यर्थः । तथाप्यनाद्यविद्यासम्बन्धात् तदंशो ज्ञानक्रियासामरस्यात्मनः शिवस्य अंशश्चित्क्रियालक्षणो जीवनामको जीव इत्यभिधानवानित्यर्थः, 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'[३] इति भगवदुक्तेः, 'अंशो नानाव्यपदेशात्'[४] इति ब्रह्मसूत्रस्थितेश्च ॥ ३३-३४ ॥

---

१. वा०सं० १६ । ७ २. छा०उ० ६ । २ । १
३. भ०गी० १५ । ७ ४. ब्र० सू० २ । ३ । ४३ । १७

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ कथं शिवस्तदन्तरङ्गे तिष्ठतीत्यत्राह–

देवतिर्यङ्मनुष्यादि-जातिभेदे व्यवस्थितः ।
मायी महेश्वरस्तेषां प्रेरको हृदि संस्थितः ॥ ३५ ॥

स जीवो देवतिर्यङ्मनुष्यादिजातिभेदेऽप्यवस्थितः –

देवाः षोडशलक्षाणि नवलक्षाणि मानुषाः ।
दशभिर्दशभिस्तद्वज्जलजा विहगा मृगाः ॥
सरीसृपास्तु लक्षाणि एकादश चरेतराः ।
अष्टौ च दशलक्षाणि सप्तजन्मान्यमूनि वै ॥

अत्र सरीसृपाः सर्पाः । स्पष्टमन्यत् । इति स्कान्दवचनात् सुरनरोरगादिनानाजातिभेदे तिष्ठतीत्यर्थः । महेश्वर उक्तलक्षणः परशिवः, 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्'[1] इति श्रुतेः । उक्तलक्षणमायाशक्तिसहितः सन् तेषामुक्तविधजीवानां प्रेरको धर्माधर्मगोचरबुद्धिवृत्तिप्रेरकः सन् हृदि तदन्तरङ्गे संस्थितः, तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

साक्षात् चित् ओ आनन्दमय विभु एकमात्र शिव छथि जे निर्विकल्पक, निराकार, निर्गुण आ प्रपञ्चरहित छथि । अनादि अविद्याक सम्बन्धसँ ओही शिवक अंश जीव कहबैत अछि जे देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट जाति भेद व्यवस्थित अछि । एहि सभक प्रेरक महेश्वर मायावी भए सभक हृदयमे विद्यमान रहैत छथि ।

विमर्श– एतए शक्तिकेँ ब्रह्मनिष्ठा=ब्रह्ममे रहएवाली कहल गेल अछि । ई स्थिति दुनूक अभेद थिक, संयोग सम्बन्ध नहि, कारण संयोग दू पदार्थमे अथवा कोनो एकहु पदार्थक क्रियासँ उत्पन्न होइछ । दोसर बात, संयोग दू वस्तुक कोनो अंशमे होइछ । एतए ब्रह्म ने त क्रियावान् छथि आ ने अवयववान् । तेँ ब्रह्मनिष्ठा स्थिति सामरस्य थिक । ब्रह्म ओ शक्तिक सम्बन्ध अग्निक उष्णता ओ चन्द्रक कौमुदीक समान अभिन्न अछि । ई शक्ति ब्रह्मस्वरूप शिवक स्वभाव थिक ॥ ३३-३५ ॥

एवंरूपायां स्थितौ जीवेश्वरौ न ब्रह्मातिरिक्तौ, किन्तु ब्रह्मणि जीवत्वमीश्वरत्वं च कल्पितमाह–

---

१. श्वे०उ० ४।१०

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्रकान्ते यथा तोयं सूर्यकान्ते यथाऽनलः ।
बीजे यथाङ्कुरः सिद्धस्तथात्मनि शिवः स्थितः ॥ ३६ ॥

जीवे शिवस्तादात्म्यसम्बन्धेन तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

जाहि रूपेँ चन्द्रकान्त मणिमे जल, सूर्यकान्त मणिमे आगि आ बीजमे अंकुर पहिनहिसँ रहैत अछि तहिना आत्मामे शिव स्वतः सिद्ध रहितहिं छथि ॥ ३६ ॥

ननु प्रतिबिम्बस्य दर्पणाद्युपाधिकृतत्वेन प्रतिबिम्बत्वं तन्निरूपितबिम्बत्वं च सूर्ये कल्पितमिति वक्तुं युक्तम्, ब्रह्मणि तद्व्यतिरिक्तोपाधिर्नास्तीति तदयुक्तमिति दृष्टान्तोऽयं विषम इत्यत्राह–

आत्मत्वमीश्वरत्वं च ब्रह्मण्येकत्र कल्पितम्[1] ।
बिम्बत्वं प्रतिबिम्बत्वं यथा पूषणि कल्पितम् ॥ ३७ ॥

एकत्र एकस्मिन्नित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३७ ॥

एके ब्रह्ममे आत्मत्व ओ ईश्वरत्व स्वतःसिद्ध अछि जेना– पूषा (सूर्य)मे, बिम्बत्व ओ प्रतिबिम्बत्व दुनू रहैत अछि । (तात्पर्य ई अछि– ब्रह्म एकमात्र छथि, से जखन मायामे प्रतिबिम्बित होइत छथि तँ ईश्वर कहबैत छथि आ जखन अविद्यामे प्रतिबिम्बित होइत छथि तँ जीव कहबैत छथि) ॥ ३७ ॥

गुणत्रयविभेदेन परतत्त्वे चिदात्मनि ।
भोक्तृत्वं चैव भोज्यत्वं प्रेरकत्वं च कल्पितम् ॥ ३८ ॥

सात्त्विकादिगुणत्रयभेदेन परतत्त्वे चिदात्मनि शुद्धचैतन्ये भोक्तृत्वं भोज्यत्वं प्रेरकत्वं च कल्पितमित्यर्थः ॥ ३८ ॥

तीनू गुणक (सत्त्व-रजस्-तमसक) भेदसँ चित्–स्वरूप परतत्त्वमे भोक्तृत्व, भोज्यत्व ओ प्रेरकत्व कल्पित अछि । वस्तुतः ओ भेदरहित छथि ॥ ३८ ॥

ननु शुद्धचिद्रूपे परमशिवे सात्त्विकादिगुणत्रयसम्बन्धो नास्तीत्युक्तत्वात् कथमुक्तार्थसिद्धिरित्यत्राह–

---

१. तुलनीय– अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥
(क०उ० २।५।९)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ कथं शिवस्तदन्तरङ्गे तिष्ठतीत्यत्राह–

देवतिर्यङ्मनुष्यादि–जातिभेदे व्यवस्थितः ।
मायी महेश्वरस्तेषां प्रेरको हृदि संस्थितः ॥ ३५ ॥

स जीवो देवतिर्यङ्मनुष्यादिजातिभेदेऽप्यवस्थितः –

देवाः षोडशलक्षाणि नवलक्षाणि मानुषाः ।
दशभिर्दशभिस्तद्वज्जलजा विहगा मृगाः ॥
सरीसृपास्तु लक्षाणि एकादश चरेतराः ।
अष्टौ च दशलक्षाणि सप्तजन्मान्यमूनि वै ॥

अत्र सरीसृपाः सर्पाः । स्पष्टमन्यत् । इति स्कान्दवचनात् सुरनरोरगादिनानाजातिभेदे तिष्ठतीत्यर्थः । महेश्वर उक्तलक्षणः परशिवः, 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्'[1] इति श्रुतेः । उक्तलक्षणमायाशक्तिसहितः सन् तेषामुक्तविधजीवानां प्रेरको धर्माधर्मगोचरबुद्धिवृत्तिप्रेरकः सन् हृदि तदन्तरङ्गे संस्थितः, तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

साक्षात् चित् ओ आनन्दमय विभु एकमात्र शिव छथि जे निर्विकल्पक, निराकार, निर्गुण आ प्रपञ्चरहित छथि । अनादि अविद्याक सम्बन्धसँ ओही शिवक अंश जीव कहबैत अछि जे देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट जाति भेद व्यवस्थित अछि । एहि सभक प्रेरक महेश्वर मायावी भए सभक हृदयमे विद्यमान रहैत छथि ।

विमर्श– एतए शक्तिकेँ ब्रह्मनिष्ठा=ब्रह्ममे रहएवाली कहल गेल अछि । ई स्थिति दुनूक अभेद थिक, संयोग सम्बन्ध नहि, कारण संयोग दू पदार्थमे अथवा कोनो एकहु पदार्थक क्रियासँ उत्पन्न होइछ । दोसर बात, संयोग दू वस्तुक कोनो अंशमे होइछ । एतए ब्रह्म ने त क्रियावान् छथि आ ने अवयववान् । तेँ ब्रह्मनिष्ठा स्थिति सामरस्य थिक । ब्रह्म ओ शक्तिक सम्बन्ध अग्निक उष्णता ओ चन्द्रक कौमुदीक समान अभिन्न अछि । ई शक्ति ब्रह्मस्वरूप शिवक स्वभाव थिक ॥ ३३–३५ ॥

एवंरूपायां स्थितौ जीवेश्वरौ न ब्रह्मातिरिक्तौ, किन्तु ब्रह्मणि जीवत्वमीश्वरत्वं च कल्पितमाह–

---

१. श्वे०उ० ४ । १०

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्रकान्ते यथा तोयं सूर्यकान्ते यथाऽनलः ।
बीजे यथाङ्कुरः सिद्धस्तथात्मनि शिवः स्थितः ॥ ३६ ॥

जीवे शिवस्तादात्म्यसम्बन्धेन तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

जाहि रूपेँ चन्द्रकान्त मणिमे जल, सूर्यकान्त मणिमे आगि आ बीजमे अंकुर पहिनहिसँ रहैत अछि तहिना आत्मामे शिव स्वतः सिद्ध रहितहिं छथि ॥ ३६ ॥

ननु प्रतिबिम्बस्य दर्पणाद्युपाधिकृतत्वेन प्रतिबिम्बत्वं तन्निरूपितबिम्बत्वं च सूर्ये कल्पितमिति वक्तुं युक्तम्, ब्रह्मणि तद्व्यतिरिक्तोपाधिर्नास्तीति तदयुक्तमिति दृष्टान्तोऽयं विषम इत्यत्राह–

आत्मत्वमीश्वरत्वं च ब्रह्मण्येकत्र कल्पितम्[1] ।
बिम्बत्वं प्रतिबिम्बत्वं यथा पूषणि कल्पितम् ॥ ३७ ॥

एकत्र एकस्मिन्नित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३७ ॥

एके ब्रह्ममे आत्मत्व ओ ईश्वरत्व स्वतःसिद्ध अछि जेना– पूषा (सूर्य)मे, बिम्बत्व ओ प्रतिबिम्बत्व दुनू रहैत अछि । (तात्पर्य ई अछि– ब्रह्म एकमात्र छथि, से जखन मायामे प्रतिबिम्बित होइत छथि तँ ईश्वर कहबैत छथि आ जखन अविद्यामे प्रतिबिम्बित होइत छथि तँ जीव कहबैत छथि) ॥ ३७ ॥

गुणत्रयविभेदेन परतत्त्वे चिदात्मनि ।
भोक्तृत्वं चैव भोज्यत्वं प्रेरकत्वं च कल्पितम् ॥ ३८ ॥

सात्त्विकादिगुणत्रयभेदेन परतत्त्वे चिदात्मनि शुद्धचैतन्ये भोक्तृत्वं भोज्यत्वं प्रेरकत्वं च कल्पितमित्यर्थः ॥ ३८ ॥

तीनू गुणक (सत्त्व-रजस्-तमसक) भेदसँ चित्–स्वरूप परतत्त्वमे भोक्तृत्व, भोज्यत्व ओ प्रेरकत्व कल्पित अछि । वस्तुतः ओ भेदरहित छथि ॥ ३८ ॥

ननु शुद्धचिद्रूपे परमशिवे सात्त्विकादिगुणत्रयसम्बन्धो नास्तीत्युक्तत्वात् कथमुक्तार्थसिद्धिरित्यत्राह–

---

१. तुलनीय– अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥
(क०उ० २।५।९)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुणत्रयात्मिका शक्तिर्ब्रह्मनिष्ठा सनातनी ।
तद्वैषम्यात् समुत्पन्ना तस्मिन् वस्तुत्रयाभिधा ॥ ३९ ॥

ब्रह्मनिष्ठा संयोगस्य क्रियापूर्वत्वादन्यतरोभयकर्मजश्च संयोगस्तावद्भिन्न-देशस्थितयोरेवोपपद्यत इति ब्रह्मबाह्यदेशाभावेन संयोगस्यासम्भवाद् अक्रियापूर्वसंयोगस्याप्रसिद्धत्वाद्विष्णोरविच्छिन्नप्रसरत्वेन विच्छेदशून्यतया सन्धिबन्धानवकाशश्च, 'रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः'[1] इति भगवदुक्तेः,

औष्ण्यं हुताश इव शीतलिमानमिन्दौ
शय्यासु मार्दवमिवाश्मसु कर्कशत्वम् ।
बाह्येषु मोह इव योगिषु च प्रबोधः
स्वातन्त्र्यमस्ति हि नियन्त्रयितुर्महन्मे ॥

इत्यभियुक्तोक्तेश्च सामरस्याभेदलक्षणतादात्म्य[2]सम्बन्धेन वर्तमाना, नातो भेदाभेदयोर्विरोधः सार्वत्रिकः । सनातनी नित्या शक्तिः ज्ञानक्रियासामरस्यात्मिका स्वाभाविकी विमर्शशक्तिः, अस्तीति शेषः । अन्यथा प्रकाशरूपत्वेऽपि ब्रह्मणः प्रतिबिम्बनक्षमत्वादिस्वरूपपरामर्शशून्यत्वाच्च स्फटिकमणिमुकुरादिप्रकाशवत् सच्चिदानन्दात्मकस्वरूपपरामर्शशून्यत्वेन जडतापत्तिरनिवार्यैवेति सा 'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'[3] इति श्रुतेश्चिदानन्देच्छाज्ञान-क्रियादिनानारूपिणी, चकारस्यानुक्तार्थप्रकाशकत्वात् । तत्र चिदान्दयोरखण्डत्वेन विक्षोभाभावादिच्छादिशक्तीनां सविषयत्वेन विक्षोभसम्भवाद् भेदाभेदस्फुरणमयी मयूराण्ड-रसगतपादपक्षवर्णवैचित्र्यन्यायेन स्वतादात्म्यक्रोडीकृतचराचरविश्वमयी । एवंरूपिणी विशर्मशक्तिरविभागपरामर्शदशायां स्वस्था विभागपरामर्शदशायां गुणत्रयात्मिका भवति । कथमिति चेत्, उच्यते–

तद्विमर्शशक्तेरंशमात्रे घृतकाठिन्यन्यायेन क्रियांशस्य ज्ञातृतावियोगाद् ज्ञानांशस्य कर्तृतावियोगाद् उत्तमकर्तृताविनिर्मुक्तज्ञानांशात् सत्त्वगुणात्मिका विद्याशक्तिरुत्पन्ना भवति, तादृशज्ञातृताविनिर्मुक्तक्रियांशात् किञ्चित्सत्त्वतमोमिश्र-रजोगुणशक्तिराविर्भवति । जानामीति व्यवहारे ज्ञानस्य क्रियाभिन्नत्वात् करोमीत्यत्र कर्तृताया अपि स्फुरद्रूपत्वाज्ज्ञानक्रिययोर्वस्तुत ऐक्येऽपि विभागपरामर्शमहिम्ना ज्ञानं क्रिया न भवति, क्रिया ज्ञानं न भवतीत्यन्योन्याभावबुद्धिरेव तमोगुणशक्तिरित्येवं गुणत्रयात्मिका सती तद्वैषम्याद् गुणत्रयतारतम्यात्तस्मिन् शुद्धचिद्रूपे परमशिवे

---

१. भ०गी० ७।८।४ २. तद्भिन्नत्वे सति तदभेदेन प्रतीयमानत्वं तादात्म्यम् ।
३. श्वे०उ० ६।८

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वस्तुत्रयाभिधा भोज्यभोक्तृप्रेरकलक्षणनामरूपक्रियावती सती समुत्पन्ना प्रतिस्फुरणगत्या मायाख्ययाविर्भूतेत्युक्तार्थसिद्धिरिति भावः । अनेन सर्वं विश्वमण्डरसन्यायेन विभागपरामर्शरूपेणास्तीति सूचितमिति न परिणामवादकृतशङ्कावकाशः,

चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद्बहिः ।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत् ॥[१]

इति श्रीमदीश्वरप्रत्यभिज्ञोक्तेश्च असदुत्पत्त्यसम्भवादतिप्रसङ्गात् 'नासतो विद्यते भावः'[२] इति गीतत्वाच्च । नन्वेवं चेद्विश्वस्य सत्यतापत्त्या बन्धनिवृत्तिर्न स्यात्, 'नाभावो विद्यते सतः'[३] इति गीतत्वादिति चेन्न, आद्यन्तकोट्योश्चिदेक-रूपत्वेनाकार्यकारित्वादिच्छाभूमिप्रविष्टघटादिवन्मुक्तस्यापि न पुनर्बन्धः, ईश्वरेच्छायास्तत्र नियामकत्वादिति ।

नन्वनाद्यविद्यासम्बन्धादिति पूर्वमुपक्रान्तत्वेनानिर्वचनीयसम्बन्धेन ब्रह्मनिष्ठा सनातनी ब्रह्मसमानसत्ताका गुणत्रयमयी शक्तिरध्यासरूपिण्यनाद्यविद्याशक्तिरस्ति, तद्वैषम्यात्तद्गुणवैषम्यात्तस्मिन् ब्रह्मणि वस्तुत्रयाभिधा वस्तुत्रयमित्यभिधा समुत्पन्नेति व्याख्यातुं शक्यत्वत् किमित्येतावान् प्रयास इति चेन्न,

तदीया परमा शक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा ।
समस्तलोकनिर्माणसमावायस्वरूपिणी ।
तदच्छियाऽभवत्साक्षात्तत्स्वरूपानुकारिणी ॥

इति ततोऽपि पूर्वोपक्रान्तवचनविरोधात्,

ब्रह्माण्डशतकोटीनां सर्गस्थितिलयान् प्रति ।
स्थानभूतो विमर्शो यस्तद्भाण्डस्थलमुच्यते ॥
पराहन्तासमावेश-परिपूर्णविमर्शवान् ।
सर्वज्ञः सर्वगःसाक्षी सर्वकर्ता महेश्वरः ॥
विश्वाधारं महासंवित् प्रकाशपरिपूरितम् ।
पराहन्तामयं प्राहुर्विमर्शं परमात्मनः ॥
यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी ।
तथा शक्तिर्विमर्शात्मा प्रकारे ब्रह्मणि स्थिता ॥

इति वक्ष्यमाणभाण्डभाजनस्थलवचनविरोधाच्च । अत्र शक्तेः शिवाभिन्नत्वेन निरवयवत्वात् कथं सांशप्रपञ्चोपादानकारणत्वं सम्भवतीति नाशङ्कनीयम्, यथा परमाणूनां निरवयवत्वेऽपि तत्कार्यरूपद्व्यणुकादेः सावयवताप्राप्त्या विश्वोपादानत्वमङ्गीक्रियते, तथा तत्स्वातन्त्र्यपरिकल्पिताया

---

१. ई०प्र० १।७ २-३. भ०गी० २।१६

मायाशक्तेः सावयवत्वसम्भवाद्विश्वोपादानत्वं सम्भवतीति शक्तेरघटनघटनापटीयस्त्वात् । अथ भवदङ्गीकृताविद्याङ्गीकारोऽपि न सम्भवति, तस्या दोषरूपत्वेन ब्रह्मणस्तदाश्रयत्वे दोषित्वप्रसङ्गात् । ननु शुक्तिकाशकलभासमानरजतस्य यथा तत्सम्पर्को न विद्यते, तथा ब्रह्मणि भासमानविद्याया अपि तत्सम्पर्काभावान्नोक्तदोष इति चेत्, तर्हि जीवेश्वरविवेक एव न स्यात्, अविद्यासम्पर्काभावात् । न च प्रतिबिम्बद्वारा तद्विवेकः सम्भवतीति वाच्यम्, मुखादिबिम्बबाह्यदर्पणादिवद् विम्बरूपब्रह्मबाह्यदेशे दर्पणस्थानापन्नाविद्यास्थित्यङ्गीकारासम्भवाद् ब्रह्मबाह्यदेशाभावाज्जलप्रविष्टमुखवद् दर्पणरेखावच्च तत्रैव मग्नस्य तत्रैव प्रतिफलनासम्भवाद् ब्रह्मापेक्षया अविद्याया अस्वच्छत्वाच्च । तथापि दर्पणप्रतिबिम्बितमह्यादिवत् प्रतिबिम्बितपदार्थस्यार्थक्रियाशून्यत्वेन भोक्तृत्वादेर्निराश्रयत्वप्रसङ्गः ।

न च दर्पणप्रतिबिम्बितादित्यस्य नेत्रचञ्चुत्ववत् सम्भवतीति वाच्यम्, तद्वद् बिम्बरूपे ब्रह्मणि भोक्तृत्वादेरभावात् । न च हरिद्राचूर्णयोगेनानुभयनिष्ठलौहत्यभासनमिव सम्भवतीति वाच्यम्, तद्वदविद्याप्रतिबिम्बयोः साक्षाद्वस्तुत्वाभावात् संयोजकान्तरशून्यत्वाच्च मुख्यप्रकाशस्यासङ्गत्वादनेनैव लोहमणिदृष्टान्तस्यापि दूरीकृतत्वात्, तथापि प्रतिबिम्बस्य दर्पणाद्युपाधिनिबन्धनत्वेन निश्चिततया मायाकार्यत्वेन मिथ्यात्वात् प्रत्यगैक्यं न सम्भवतीति तत्त्वमसीत्युपदेशो निरर्थक एव स्यात् । नन्वविद्यानिवृत्तिद्वारा तस्यापि निवृर्त्तिर्जायत इतीदमेव प्रत्यगैक्यमिति चेत्, आत्महानिरपुरुषार्थ इति कस्यापि भवदभिमतमुक्तौ प्रवृत्तिरेव न स्यादिति संक्षेपः ।

अथ तद्विशिष्टत्वमपि न सम्भवति, दोषित्वप्रसक्त्या ब्रह्मणस्तत्सम्पर्काभावादित्युक्तत्वात्, तथाप्यंशे वा साकल्ये वा ? नाद्यः, ब्रह्मणो निरंशत्वेनोर्ध्वाधस्तिर्यग्भागभेदशून्यत्वात् । कल्पितांशभेदोऽपि न सम्भवति, कुत्र स्थित्वा कल्पयत्यविद्येति विज्ञातुमशक्यत्वद् ब्रह्मबाह्यदेशाभावात् । न च निरंशेऽप्याकाशे नक्षत्रादिस्थितिरिव सम्भवतीति वाच्यम्, तस्या वाय्वाधारत्वादाकाशस्यापि जन्यद्रव्यत्वेन सांशत्वाङ्गीकारेण तद् दृष्टान्तस्यानुभयवादिसिद्धत्वाच्च । नन्वघटितघटनापटीयसी सेति चेत्, सत्यम्, तद्भावस्य चैतन्याश्रयबलाधीनत्वेनोक्तरीत्या तदसम्भवादन्यथा चैतन्यं खण्डितमेव भवेत्, सांख्यमतप्रवेशापत्तिश्च । नापि द्वितीयः, शुद्धाशुद्धविभागासम्भवात् । ननु संसारावस्थायामशुद्धत्वं मुक्त्यवस्थायां शुद्धत्वमिति चेन्न,

जीव ईशो विशुद्धा चित् तथा जीवेशयोर्भिदा ।
अविद्यातच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः ॥[१]

---

१. पञ्चदशी

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति संसारावस्थायामेव शुद्धाशुद्धविभागस्याङ्गीकृतत्वात् । नन्वेवं निर्वक्तुमशक्यत्वेऽपि 'तम आसीत्'[1] इत्यादिश्रुत्यादिप्रमाणबलादविद्याऽङ्गीकरणीयैवेति चेत्तेषां श्रुत्यादिप्रमाणानां सत्यत्वप्रसङ्गः, प्रमाणप्रमेययोर्घटं प्रति चक्षुरादिरिव तद्विजातीयताया अङ्गीकरणीयत्वात् । न च व्यवसायं प्रत्यनुव्यवसायस्य प्रामाण्याङ्गीकारान्नायं नियम इति वाच्यम्, ज्ञानस्य ज्ञातृविश्रान्तत्वेन कदापीदमिति प्रमेयपदनिष्ठत्वाभावेनानुव्यवसायस्य व्यवसायभूतघटहृदयङ्गमीकरणप्रवीणत्वात्, अन्यथा व्यवस्थाहानिरनवस्थापत्तिः घटोऽपि घटान्तरविषयः स्यादित्यतिप्रसङ्गश्चेति तद्दृष्टान्तस्यानुभयवादिसिद्धत्वात् । अविद्यायाश्च सत्यत्वप्रसङ्गः, अनादिभावत्वेनाङ्गीकृतत्वात्, न चाप्रयोजकोऽयं हेतुः, यदि सत्यत्वं न स्यात्तर्ह्यनादिभावत्वं च न स्याद् घटवदिति व्यतिरेकिदृष्टान्तस्यापि विद्यमानत्वात्, ब्रह्मातिरिक्तत्वेनाङ्गीकृतत्वादसत्कल्पनापत्तिश्च । तद्भिन्नस्य तद्बाह्यतानियमो नास्तीत्यत्र मानाभावात् सकलप्रमाणशेषिमहाप्रकाशबाह्यत्वात् । न च घटगतरूपादिदृष्टान्तः, तद्वदसमवेतत्वात् । नापि घटाकाशदृष्टान्तः, 'आत्मन आकाशः सम्भूतः'[2] इत्यादिश्रुतेः पवनादीनां साक्षात्परम्परया तत्कार्यत्वेन तदन्तर्गतत्वसम्भवात् । नेह तथा, चैतन्यस्यासङ्गत्वात्, सद्वत्सजातीयत्वाभावाच्च । यथाकथञ्चिदङ्गीकारेऽपि तस्याः प्रमेयत्वात् प्रमेयस्य प्रमाद्वारा प्रमातृविश्रान्तिरङ्गीकरणीयेति विद्यैव भवेद्, अविद्येति वार्तैव न स्यात्, अन्यथा नष्टघटविषयिणी स्मृतिर्न स्यात् । न च संस्कारात् सम्भवतीति वाच्यम्, तस्यापि सविषयत्वेनैवात्मसमवेतत्वात् । एवं भवदभिमताविद्यायां मानाभावात्, अङ्गीकारेऽपि निर्वाहाभावाद् बाधकाविर्भावाच्चानुपपन्नत्वेन ब्रह्मणो जडतानिवृत्त्यर्थं बलात्तत्स्वभावभूतविमर्शशक्तेरङ्गीकरणीयत्वेन तस्या विश्वोपादानकारणीभूत-मायारूपत्वमुपपादयितुं प्रयासोऽयं सार्थक इति ।

नन्वेवं चेद् ब्रह्मणि किं प्रमाणम् स्वातिरिक्तमानान्तराभावात्, अन्यथा ब्रह्म सदेव भवेदिति चेन्न, तस्य स्वप्रकाशत्वेनाहंपरामर्शमयस्वानुभूतिप्रमाणस्य जागरूकत्वात्, विमर्शशक्तेः प्रकाशाभिन्नत्वेऽप्यघटनघटनापटीयस्त्वात् स्वस्वातन्त्र्यपरिकल्पितसामरस्याभेदसद्भावात् प्रमेयप्रमाणव्यवहारः सम्भवतीति न काचिदनुपपत्तिः । स्वातिरिक्तमानान्तरगम्यत्वे घटवज्जडत्वापत्तिः श्रुत्यादिप्रमाणात् 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि'[3], इति श्रुतेरारम्भविवक्षाध्यवसायोक्तिरूपे विमर्शमयत्वेन विभागपरामर्शदशायां तन्माहात्म्यप्रकाशनपरत्वात् श्रुत्यादिप्रसिद्धा-विद्यादिशब्दानां स्वातन्त्र्यपरिकल्पितमायापरत्वसम्भवात् सर्वं समञ्जसम् ॥ ३९ ॥

---

१. ऋ० वे० १० । १२९ । ३ २. तै०उ० २ । १ ३. ऋ०वे० १ । १६४ । ४५

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्ममे रहएवाली गुणत्रयात्मिका शक्ति सनातन अछि । तीनू गुणक वैषम्य सँ ओहि ब्रह्ममे तीन प्रकारक पदार्थ उत्पन्न भेल अछि ।। ३९ ।।

अथ केन गुणेन किं वस्तु जातमित्यत्राह—

किञ्चित्सत्त्वरजोरूपं भोक्तृसंज्ञकमुच्यते ।
अत्यन्ततापसोपाधिर्भोज्यमित्यभिधीयते ।
परतत्त्वमयोपाधिर्ब्रह्म चैतन्यमीश्वरः ॥ ४० ॥

रजोगुणस्य किञ्चित्सत्त्वतमोमिश्रत्वात्, 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'[1] इति भगवदुक्तेः, तादृग्रजोगुणमिश्रचैतन्यं भोक्तृजीवचैतन्यमित्यर्थः । अत्यन्ततामसोपाधिविशिष्टचैतन्यं भोज्यरसादिरूपं परतत्त्वमयोपाधिः आभ्यामुत्कृष्टत्वेन परतत्त्वरूपसत्त्वगुणोपाधिविशिष्टचैतन्यप्रेरकीभूतमहेश्वर इत्यर्थः ॥ ४० ॥

अथोक्तमर्थं द्रढयति—

भोक्ता भोज्यं प्रेरयिता वस्तुत्रयमिदं स्मृतम् ।
अखण्डे ब्रह्मचैतन्ये कल्पितं गुणभेदतः ॥ ४१ ॥

स्पष्टम् ॥ ४१ ॥

अखण्ड चैतन्य ब्रह्ममे गुणक भेदसँ भोक्ता भोज्य ओ प्रेरक ई तीनूक व्यवहार कल्पित होइत अछि । (थोड़ सत्त्व ओ रजोगुणक मिश्रणसँ सम्पर्कित ब्रह्म भोक्ता, अत्यधिक तमोगुणसँ आच्छादित ब्रह्म भोज्य ओ परम सत्त्वसँ युक्त ब्रह्म ईश्वर होइत छथि) ।। ४०-४१ ।।

अत्र प्रेरयिता शम्भुः शुद्धोपाधिर्महेश्वरः ।
समिश्रोपाधयः सर्वे भोक्तारः पशवः स्मृताः ॥ ४२ ॥

अथ तेषां गुणनामान्तराण्याह—

भोज्यमव्यक्तमित्युक्तं शुद्धतामसरूपकम् ।
सर्वज्ञः प्रेरकः शम्भुः किञ्चिज्ज्ञो जीव उच्यते ।
अत्यन्तगूढचैतन्यं जडमव्यक्तमुच्यते ॥ ४३ ॥

अधिकसत्त्वोपाधिकत्वान्महेश्वरः सर्वज्ञः सुखभोक्ता शम्भुः किञ्चित्तमोमिश्रत्वात् संहारकृत्यप्रवीणः क्रोधयुक्तः । जीवास्तु किञ्चित्सत्त्वतमोमिश्ररजोपाधि-

१. भ०गी० ४ । १३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कत्वात् किञ्चिज्ज्ञा ज्ञानाज्ञानसम्मिलिताः, अत एव सुखदुःखभोक्तारः । शुद्धतामसोपाधिकं भोज्यमव्यक्तं प्रकृतिरित्यर्थः । किमिदमव्यक्तमित्यत्राह– अत्यन्तेति । वृक्षादीनामिन्द्रियप्राणादिशून्य(प्राय)त्वेन केवलजड(प्राय)त्वेऽपि पिपासाया विद्यमानत्वात्, सस्यादीनां शिलादीनां वृद्धिदर्शनाद् अव्यक्तचैतन्यमिति व्यवहारः । अव्यक्तं प्रकृतिर्मायेति पर्यायाः ॥ ४३ ॥

एहि तीनूमे शुद्ध सत्त्वोपाधिवाला शम्भु महेश्वर प्रेरक छथि । मिश्रित उपाधिवाला सब भोक्ता पशु कहबैत छथि । शुद्ध तमोगुणस्वरूप अव्यक्त भोज्य कहल गेल छथि । प्रेरक शम्भु सर्वज्ञ छथि, किन्तु जीव अल्पज्ञ छथि आ अत्यन्त गूढ़ चैतन्य जड़ कहबैत छथि ॥ ४२-४३ ॥

एवं मायागुणभेदरूपोपाधित्रयं प्रदर्श्यानन्तरं लिङ्गाङ्गरूपशिवजीवस्वरूपं सुलक्षयितुं पूर्वोक्तमायोपाधिं द्विधा विभज्य दर्शयति–

उपाधिः पुनराख्यातः शुद्धाशुद्धविभेदतः ।
शुद्धोपाधिः परा माया स्वाश्रया(ऽ)मोहकारिणी ॥ ४४ ॥

उपाधिः पूर्वोक्तमायोपाधिः पुनः शुद्धाशुद्धभेदेन द्विधा भवति, तत्र शुद्धोपाधिः परा माया स्वाश्रयामोहकारिणीत्यूर्ध्वमायेत्यर्थः ॥ ४४ ॥

शुद्ध ओ अशुद्ध भेदसँ उपाधि दू प्रकारक कहल गेल अछि । शुद्ध उपाधि परामाया थिक जे अपनहिमे आश्रित रहैत अछि । ओ ईश्वरकेँ मोहमे नहि दए सकैछ ॥ ४४ ॥

अशुद्धोपाधिरप्येवमविद्याश्रयमोहिनी ।
अविद्याशक्तिभेदेन जीवा बहुविधाः स्मृताः ॥ ४५ ॥

अशुद्धोपाधिरविद्या, आश्रयमोहिनीत्यधोमायेत्यर्थः । अविद्याशक्तिभेदेन अंशभेदेनेत्यर्थः, जीवा बहुविधाः स्मृताः ॥ ४५ ॥

अशुद्ध उपाधि अपरा अविद्या थिक जे अपन आश्रय जीवकेँ मोहमे दए दैछ । अविद्याक शक्तिक भेदसँ जीव अनेक तरहक अछि ॥ ४५ ॥

मायाशक्तिवशादीशो नानामूर्तिधरः प्रभुः ।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च नित्यमुक्तो महेश्वरः ॥ ४६ ॥

ईशः शुद्धोपाधिमहेश्वरः, मायाशक्तिवशाद् महामायाशक्तिवशात् सद्योजातादिनानामूर्तिधरो जीवानां बुद्धिप्रेरकः प्रभुः कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः,

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वज्ञः सदसत्सकलपदार्थविषयकानादिज्ञानशक्तिमान्, सर्वकर्ता च सकलप्रपञ्च-निर्माणनिमित्तकारणीभूतः, नित्यमुक्त आणवाद्यानादिमलसम्बन्धरहितः, सर्वज्ञः सर्वकर्ता च, 'सर्वज्ञः पञ्चकृत्यसम्पन्नः सर्वेश्वर ईशते' इति वृद्धजाबालश्रुतेः ॥ ४६ ॥

मायाशक्तिक कारण प्रभु शम्भु अनेक रूप धारण करैत छथि । वस्तुतः ओ सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, महेश्वर नित्यमुक्त छथि । ओ स्वेच्छासँ मोहमे पड़ैत छथि से हुनक ऐश्वर्य थिक ॥ ४६ ॥

किञ्चित्कर्ता च किञ्चिज्ज्ञो बद्धोऽनादिशरीरवान् ।
अविद्यामोहिता जीवा ब्रह्मैक्यज्ञानवर्जिताः ॥ ४७ ॥

अथ जीवस्वरूपमाह– किञ्चित्कर्तेति । किञ्चित्कर्ता किञ्चिज्ज्ञो बद्ध आणवाद्यनादिमलपाशबद्ध ईशप्रेरितः स जीवोऽनादिशरीरवान् अनादितः प्राप्तशरीराभिमानवान्,

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजो ह्येको भोक्तृभोगार्थयुक्तः ।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाद् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः"[१] ॥

इति श्वेताश्वतरश्रुतेः,

अनादिमलसम्बन्धात्किञ्चिज्ज्ञोऽणुर्ययोदितः ।
अनादिमलमुक्तत्वात् सर्वज्ञोऽसौ शिवः स्मृतः ॥'

इति किरणागमोक्तेश्च । एवंरूपा जीवा अविद्यामोहिताः सन्तो ब्रह्मैकज्ञानवर्जिता अहं ब्रह्मास्मीति तादात्म्यज्ञानशून्याः सन्तः ॥ ४७ ॥

अनादि शरीरवाला परमेश्वर जखन बद्ध भए जाइत छथि तखन ओ थोड़ कार्यक सामर्थ्यवाला तथा अल्पज्ञ भए जाइत छथि ॥ ४७ ॥

परिभ्रमन्ति संसारे निजकर्मानुसारतः ।
देवतिर्यङ्मनुष्यादि-नानायोनिविभेदतः ॥ ४८ ॥

निजकर्मानुसारतो देवतिर्यङ्मनुष्यादिनानायोनिभेदमधिगम्य संसारे परिभ्रमन्तीत्यर्थः । अत्र सृष्टेः प्राक् कर्माभावात् कथमिति नाशङ्कनीयम्, सद्वादमर्यादया सर्वं विश्वमण्डरसन्यायेन परब्रह्मण्यविभागपरामर्शात्मनाऽस्तीत्यङ्गी-कृतत्वात् ॥ ४८ ॥

ओ अपन कर्मक अनुसार एहि संसारमे देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट इत्यादि अनेक रूप धए संसारमे भ्रमण करैत छथि ॥ ४८ ॥

१. श्वे०उ० १ । ९

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ कथं भ्रमन्तीत्यत्राह–

चक्रनेमिक्रमेणैव भ्रमन्ति हि शरीरिणः ।
जात्यायुर्भोगवैषम्य-कारणं[१] कर्म केवलम् ॥ ४९ ॥

रथाङ्गमस्तकगतलोहवलयवद् भ्रमन्तीत्यर्थः ॥ ४९ ॥

शरीरधारी जीव चक्रक परिधि (घेरा)क क्रमसँ संसारमे भ्रमण करैत अछि । जन्म, आयु ओ भोगक विषम होएबाक कारण तँ केवल कर्म थिक ॥ ४९ ॥

ननु जीवाः कर्मानुसारेण परिभ्रमन्ति, तेषां जात्यायुर्भोगवैषम्यकारणं केवलं कर्मैवेत्युक्तत्वादीश्वरः किमर्थमङ्गीकरणीय इत्यत्राह–

एतेषां देहिनां साक्षी प्रेरकः परमेश्वरः ।
एतेषां भ्रमतां नित्यं कर्मयन्त्रनियन्त्रणे ॥ ५० ॥

कर्मसूत्रबद्धे संसारचक्रे सदा परिभ्रमतामेतेषां विचित्रदेहिनाम्, एतेषां कर्मणामिति शेषः, परमेश्वरः प्रेरकः, कर्मणां जडत्वेन प्रेरकत्वासम्भवात्, प्रेरकत्वेन साक्षित्वेनेश्वरोऽङ्गीकरणीय इत्यर्थः ॥ ५० ॥

नित्य भ्रमणशील जीवक कर्मरूप यन्त्रक नियन्त्रणमे प्रेरणा देबएवाला परमेश्वरे एकर साक्षी छथि ॥ ५० ॥

अथवाऽस्य नैतावन्मात्रम्, विशेषोऽप्यस्तीत्याह–

देहिनां प्रेरकः शम्भुर्हितमार्गोपदेशकः ।
पुनरावृत्तिरहित-मोक्षमार्गोपदेशकः ॥ ५१ ॥

स्पष्टम् ॥ ५१ ॥

शिवे शरीरधारीसभक प्रेरक आ हितमार्गक उपदेशक छथि आ पुनर्जन्मरहित आत्यन्तिक मोक्षक मार्ग देखबैत छथि ॥ ५१ ॥

कथमित्यत्राह–

स्वकर्मपरिपाकेन प्रक्षीणमलवासनः ।
शिवप्रसादाज्जीवोऽयं जायते शुद्धमानसः ॥ ५२ ॥

अयं जीवः स्वकर्मपरिपाकेन 'विज्ञानयोगसंन्यासैर्भोगाद्वा कर्मणः क्षयः'

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति शिवागमोक्तेः स्वस्वकर्मपरिपाकेन विनष्टमलवासनः सन् शिवप्रसादात् शुद्धान्तःकरणो जायते ॥ ५२ ॥

अपन कर्मक पूर्ण भेलासँ जीवक मल ओ वासना क्षीण भए जाइछ। तखन शिवक अनुग्रहसँ ई जीव शुद्धचित्तवाला भए जाइछ ॥ ५२ ॥

शुद्धान्तःकरणे जीवे शुद्धकर्मविपाकतः ।
जायते शिवकारुण्यात् प्रस्फुटा भक्तिरैश्वरी ॥ ५३ ॥

तस्मिन् शुद्धकर्मविपाकतः श्रुत्यागमोक्तशुद्धकर्मपरिपाकवशात् शिवस्य कृपा भवति, शिवविषयिणी भक्तिः प्रस्फुटा भवति, तद्द्वारा मोक्षमार्गोपदेश इत्यर्थः ॥ ५३ ॥

शुद्ध अन्तःकरणवाला जीवक भीतर शुद्ध कर्मक परिपाकसँ शिवक दयावश हुनकामे भक्ति उत्पन्न होइत अछि ॥ ५३ ॥

एवमुत्पन्नशिवभक्तिमान् चरमदेही पिण्डशब्दाभिधेय इति पिण्डस्थलं समापयति–

जन्तुरन्त्यशरीरोऽसौ पिण्डशब्दाभिधेयकः ॥ ५४ ॥

असौ जन्तुः एवमुत्पन्नशिवभक्तिमान् जीवः, अन्त्यशरीरः 'तदस्य तृतीयं जन्म' इति श्रुतेश्चरमशरीरवान् सन् पिण्डशब्दाभिधेयकः पिण्डशब्दाभिधान-वानित्यर्थः ॥ ५४ ॥

अन्तिम शरीरवाला ई जीव पिण्ड कहबैत अछि ॥ ५४ ॥

अथ पिण्डज्ञानस्थलम्

ननु शरीरात्मविवेकः किमित्यपेक्षित इत्यत्राह–

शरीरात्मविवेकेन[1] पिण्डज्ञानी स कथ्यते ।
शरीरमेव चार्वाकैरात्मेति परिकीर्त्यते ॥ ५५ ॥

शरीरात्मविवेकेन शरीरशरीरिणोर्विवेकेन पिण्डज्ञानीति शास्त्रज्ञैः कथ्यत इत्यर्थः । एवंविधवादिभिरात्मतत्त्वस्य संदिग्धत्वात् संदिग्धेऽर्थे न्यायः प्रवर्तत इति शास्त्रकृद्भिरङ्गीकृतत्वात् शरीरात्मत्वे विवेक आवश्यक इत्यर्थः ॥ ५५ ॥

जे शरीर ओ आत्माक भेद केँ जनैत अछि सएह पिण्डज्ञानी कहबैत अछि । चार्वाक सब तँ शरीरेकेँ आत्मा मानैत अछि ॥ ५५ ॥

१. विवेको भेदज्ञानम्, अयमस्मात् पृथक् इत्याकारकम् ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रियाणां तथात्मत्वमपरैः परिभाष्यते ।
बुद्धितत्त्वगतैर्बौद्धैर्बुद्धिरात्मेति गीयते ॥ ५६ ॥

ओही तरहेँ आन नास्तिक इन्द्रियेकेँ आत्मा मानैत अछि । बुद्धितत्त्वकेँ मूल माननिहार बौद्ध सब तँ बुद्धिएकेँ आत्मा मानैत अछि ॥ ५६ ॥

कथं तद्विवेक इत्यत्राह—

नेन्द्रियाणां न देहस्य न बुद्धेरात्मता भवेत् ।
अहंप्रत्ययवेद्यत्वादनुभूतस्मृतेरपि ॥ ५७ ॥
शरीरेन्द्रियबुद्धिभ्यो व्यतिरिक्तः सनातनः ।
आत्मस्थितिविवेकी यः पिण्डज्ञानी स कथ्यते ॥ ५८ ॥

अयं भावः— गृहक्षेत्रादिनाशे सति दुःखदर्शनात् तदभिवृद्धौ सुखातिशयाद् गृहक्षेत्रादिकमेवात्मेति विषयात्मवादिनो लौकिका मन्यन्ते । ततोऽपि समधिकविवेकभाजो गृहक्षेत्रादीनां मृगपक्षिसरिद्गिरिग्रामादिविवेकाभावाच्छरीरस्य तादृग्विवेकसद्भावाच्छरीरमेवात्मेति चार्वाका मन्यन्ते । शरीरे प्राणवायुपरिस्पन्दाभावे ज्ञानानुदयान्न शरीरं, किन्तु प्राण एवात्मेति केचिद् वदन्ति । सुप्तिकाले प्राणस्पन्दस्य विद्यमानत्वेऽपीन्द्रियव्यापाराभावेन ज्ञानशून्यत्वादिन्द्रियमात्मेत्यपरे । अत्र इन्द्रियाणां बाहुल्याद् इन्द्रियसमूह आत्मेत्युच्यते वा व्यष्टिरूपस्यात्मत्वमुच्यते वेति विकल्पः । नाद्यः, तत्रैकस्य द्वयोर्वा नाशे समुदायनाशेन ज्ञानानुदयप्रसङ्गात् । न द्वितीयः, जलमिदं स्वच्छं मधुरमिति प्रतीतिर्न स्यादिति, एकैकार्थप्रकाशकत्वाद् व्यष्टेः । एवं शरीरादेर्ज्ञानशून्यत्वेन जडत्वाद् आत्मत्वं न सम्भवतीति बुद्धिरेवात्मा । अत्र बुद्धेश्चक्षुरादिकरणसाध्यत्वात् कारणानां कुठारादिवत्कर्त्रधीनत्वाद् बुद्ध्युत्तीर्णः कश्चित् कर्ताऽङ्गीकरणीय इति नाशङ्कनीयम्, करणजन्यस्य जडत्वनियमेंन बुद्धेर्जडतापत्त्यार्थग्रहणापटुत्वान्नेष्टापत्तिः, जडबुद्धेरात्मनोऽपि जडतापत्तेरनिवार्यत्वाल्लोकव्यवहारो विलुप्येतेति भवदभिमतात्मवद् बुद्धिः स्वतः सिद्धैवेत्यङ्गीकरणीयतया प्रथमं घटानुभवः, ततो घटविकल्पः, तदनन्तरं तज्जनितसंस्काराद्भाविकोटिनिष्ठा स्मृतिः, स्मृत्या लोकव्यवहार इति भिन्नकालभिन्नाकारभिन्नविषयिणी क्षणिकज्ञानसन्ततिरेवात्मेति बुद्धिप्राधा-न्यवादिनो बौद्धा वदन्ति ।

अत्रोत्तरम्— अहंप्रत्ययवेद्यत्वादनुभूतस्मृतेरपि, शरीरेन्द्रियबुद्धिभ्यो व्यतिरिक्तः सनातन, आत्माऽस्तीति मम शरीरं ममेन्द्रियं मम बुद्धिमर्म स्मृतिः शरीर्यहं स्फुटेन्द्रियोऽहं जानामि स्मरामीति शरीरेन्द्रियबुद्ध्युत्तीऽर्णोऽहंप्रत्ययाधीनतया स्मृत्यादीनामपि भासमानत्वात्तद्व्यतिरिक्तः कश्चिदात्मास्तीत्यङ्गीकरणीयमित्यर्थः ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नन्वहंप्रत्ययस्यास्माभिर्निर्विकल्पक-सविकल्पकलक्षणज्ञानद्वयान्तर्गतत्वेनाङ्गीकृतत्वान्न तद्व्यतिरिक्तः, न च तर्ह्ययमात्मव्यतिरिक्तं न किञ्चिद्विकल्पयतीत्यात्मा सिद्ध इति वाच्यम्, स्थूलोऽहं कृशोऽहं सुख्यहं दुःख्यहमिति रूपवेदनासन्तानसंस्पर्शित्वेन शरीरादीन् विकल्पयतीति तस्मान्नास्मदङ्गीकृतरूपविवेदनसंज्ञानविज्ञानसंस्कारलक्षण-पञ्चसन्तानोत्तीर्णः शरीरादिसन्तानमूर्धन्योऽप्यहंप्रत्ययो नात्मा भवितुमर्हति, रूपवेदनासन्तानसंस्पर्शित्वेनानित्यत्वात्, सुप्तिमूर्छादावभावाच्च । न च घटमहं जानामीत्यत्र वेद्यरूपकर्मप्रकाशाद् वेदनारूपज्ञानप्रकाशाच्चोत्तीर्णत्वेन भासमानत्वादहंप्रत्यय आत्मानमेव विकल्पयतीति वाच्यम्, तस्याहंप्रत्ययव्यतिरेकेणादृश्यत्वात्, अहंप्रत्ययस्यानित्यत्वात् । यदि प्रत्ययस्य सविषयताऽन्यथाऽनुपपत्त्या तद्व्यतिरिक्त आत्माऽनुमीयते, तर्हि कोऽयमनुमाता ? अहंप्रत्ययो वा तद्व्यतिरिक्तो वा ? नाद्यः, अनित्येऽहंप्रत्ययस्यानुमातृताङ्गीकारेणास्मन्म-तप्रवेशापत्तेः, तद्व्यतिरिक्तस्यानुमातुरदृश्यत्वात् । यदि दृश्यस्तर्हि तस्य बुद्धितुल्यत्वप्रसङ्गाद् बुद्धिरेवात्मेति चेत्, मैवम्, बुद्धेः क्षणिकत्वेन भिन्नकालभिन्नविषयभिन्नाकारत्वेनाङ्गीकृतत्वात्, नीलं पीताद्भिन्नम्, पीतं नीलाद्भिन्नम्, नीलमहं जानामि, पीतमहं जानामि, योऽहं बाल्ये पितरावन्वभूवं स एवाहमिदानीं यौवने वार्द्धक्ये वा पुत्रदारानन्नुभवामीत्येकसंविल्लग्नतया बाह्याभ्यन्तरानुसन्धा-नासम्भवात्, क्षणद्वयावगाहि संविदन्तरानङ्गीकारात्, रूपसंस्कारेण रसस्मृत्यनुदयात्, स्मृतेः स्वसमानविषयताव्यवस्थापकत्वेन संस्कारस्य कृतार्थत्वात्, स्मृतिजनकं न किञ्चित्पश्याम इति स्मृतेर्गगनकुसुमायमानत्वेन तन्मूलकस्य सर्वस्यापि लोकव्यवहारस्योच्छित्तिप्रसङ्गाच्च । तस्मान्नित्यः कश्चिदात्मानुसंधाता ज्ञानस्मृत्यपोहनशक्तिमानङ्गीकरणीयः, 'मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च' इत्येतदभिप्रायेणैव भगवताऽपि गीतत्वात् । स चाहंप्रत्ययस्वरूप एव, तद्भिन्नस्यादृश्यत्वादिति सूक्तत्वात्, तस्य सुप्तिमूर्छादावभावान्नानित्यत्वमाशङ्कनीयम्, तदा तस्य शून्यस्थाननिमग्नत्वेन तदीयस्वप्रकाशस्य तिरोहितत्वात्, अन्यथोत्थितस्य सुखमहमस्वाप्समिति सुखस्मृत्यनुदयप्रसङ्गः, स्मृतेरनुभवमूलकत्वात्, स्वतन्त्रांशीभूतप्राणवायुपरिस्पन्दस्य विद्यमानत्वेन तस्या (स्मृतेः) हानादानादिरूपतया कर्तृनिरूपितत्वात्, कर्तृज्ञानपुरःसरत्वादिति संक्षेपः ।

नन्वेतावता शरीरी कश्चिज्जीवात्मा सिद्धो न तत्प्रेरक ईश्वर इति चेत् लोके विदारणादिक्रियाणां कुठारादिकरणसाध्यत्वात् करणानां कर्मेन्द्रियाधीनत्वात् तेषां देशकालादिपरतन्त्रत्वात् स्वतन्त्रेण विना न सम्भवतीति व्यवहारान्यथानुपपत्त्यैव सोऽपि सिद्ध इति वदन्तो वैयासिकाश्च प्रत्युक्ता इति मन्तव्यम् ॥ ५७-५८ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ने तँ इन्द्रिय आत्मा छी, ने देह आ ने बुद्धिए, किएक तँ 'अहम्' कहलासँ जकर ज्ञान होइत अछि, ओकर विषय आत्मा थिक तथा अनुभूत विषयक स्मरण इन्द्रिय आदिकें नहि होइछ, से आत्मे कें होइछ ॥ ५७ ॥

तें शरीर, इन्द्रिय आ बुद्धिसँ जे भिन्न छथि, नित्य छथि, सएह आत्मा थिकाह । एहिं तरहक आत्मस्थितिक विवेक रखनिहार पिण्डज्ञानी कहबैत छथि ।

विमर्श– आत्मा की थिक ? एहि विषयमे अनेक मत अछि । विषयात्मवादी मन्दबुद्धिक लोक घर-खेत आदि विषयेकें आत्मा कहैत छथि कारण ओकर नाश सँ दुःख ओ वृद्धिसँ सुख होइत छैक । घर, खेत, पशु, पक्षी, सोना, चानी आदि अनन्त विषयमे ककरा आत्मा कहब से निश्चय नहि भए सकैछ, तें **चार्वाक दर्शनमे** देहेकें आत्मा मानल गेल अछि, तें ओ **शरीरात्मवादी** थिकाह ।

परन्तु शरीरसँ प्राणवायुक हटला पर मृतशरीरमे संचारक अभावसँ देहकें आत्मा नहि मानि क्यो-क्यो प्राणोंकें आत्मा मानि **प्राणात्मवादी** कहबैत छथि । किन्तु सूतल व्यक्तिमे प्राणवायुक संचार रहलो पर इन्द्रिय कार्यक अभाव देखि क्यो-क्यो **इन्द्रियात्मवादी** इन्द्रियहिकें आत्मा मानैत छथि। मुदा इन्द्रिय तँ अनेक अछि । इन्द्रिय समूह यदि आत्मा हो तँ एक इन्द्रियक नाशसँ सभक नाश होएबाक चाही, जे नहि होइत अछि । ते इन्द्रियकें आत्मा नहि मानि **बुद्धिकें आत्मा** मानैत छथि, मुदा बुद्धि तँ अचेतन अछि आ आत्मा चेतन । तें इहो मत उचित नहि ।

क्षणिकविज्ञानवादी बौद्ध क्षणिकविज्ञान समुदायकें आत्मा मानैत छथि, हुनक कथन उचित नहि छनि, कारण, रूपज्ञानक नष्ट भेला पर रूपेक स्मरण होएत, रसक नहि आ रूपस्मृतिक क्यो जनक रहबे ने करत । एना सकल व्यवहार उच्छिन्न भए जाएत ।

जेना हमर वस्त्र हम नहि, तहिना हमर शरीर, इन्द्रिय, प्राण बुद्धि आदि हम (आत्मा) नहि भए सकैत छी । एहिना रूप, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ओ वेदना नामक **पाँच स्कन्धवाला आत्मा** नहि भए सकैछ, किएक तँ रूपादिवान् मानला पर आत्माकें अनित्य मानए पड़त जे इष्ट नहि । तखन 'हम जनैत छी' एहन ज्ञानक आधार पर अहंप्रत्यय (हम स्वरूप ज्ञान)कें

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सेहो आत्मा मानला पर अनित्यता दोष होइछ । जँ तकरा नित्य मानी त तखन ओकर परिभाषा करए पड़त । तेँ जे नित्य, हम शब्दक अर्थस्वरूप, ज्ञान स्मृति अपोहन शक्तिवाला अछि सएह आत्मा थिक । ई बात गीतामे (१५, १५) सेहो कहल गेल अछि ॥ ५८ ॥

नश्वराणि शरीराणि नानारूपाणि कर्मणा ।
आश्रितो नित्य एवासाविति जन्तोर्विवेकिता ॥ ५९ ॥

कर्मवशात् प्राप्तानि नानारूपाणि शरीराणि नश्वराणीति जीवस्य विवेकिता पिण्डविवेकः, तादृक्पिण्डाश्रितो जीवो नित्य इति विवेकिता पिण्डज्ञविवेकः ॥ ५९ ॥

ई शरीर नाश होमएवाला थिक तथा कर्मक अनुसार अनेक रूपकेँ धारण करैत अछि । ई आत्मा शरीरमे आश्रित नित्य अछि । इयेह ज्ञान जीवक विवेक थिक ॥ ५९ ॥

नन्वयं विवेकः सांख्यमतसदृशो जात इत्यत्राह–

शरीरात् पृथगात्मानमात्मभ्यः पृथगीश्वरम् ।
प्रेरकं यो विजानाति पिण्डज्ञानीति कथ्यते ॥ ६० ॥

स्पष्टम् । अयमेव नित्यानित्यलक्षणक्षेत्रक्षेत्रज्ञविवेकः, क्षेत्रज्ञे जीवे प्रेरकत्वेनेश्वरस्य 'चन्द्रकान्ते यथा तोयम्' इत्याद्युक्तदृष्टान्तेन तादात्म्येन विद्यमानत्वात् । उक्तं च गीतायाम्–

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेद तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥[१]

इति ।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योर्मियो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणपापाः ॥[२]

---

१. भ०गी० १३।१-२ २. मुं०उ० ३।२।५

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति मुण्डकश्रुतेः ।

अशरीरं यदात्मानं पश्यति ज्ञानचक्षुषा ।
तदा भवति शान्तात्मा सर्वतो विगतस्पृहः ॥

इति देवीकालोत्तरवचनाच्च देहदेहिस्वरूपं अङ्गाङ्गिनोर्जीवेश्वरयोः स्वरूपं च विज्ञेयम् ॥ ६० ॥

आत्मा शरीरसँ पृथक् थिक आ तकर प्रेरक ईश्वर आत्मासँ भिन्न छथि । एहि बातकेँ जे जनैत छथि से पिण्डज्ञानी कहबैत छथि ॥ ६० ॥

अथ संसारहेयस्थलम्

अथैवंरूपपिण्डज्ञानिन उत्पद्यमानसंसारहेयस्थलं निरूपयति–

निरस्तहृत्कलङ्कस्य नित्यानित्यविवेकिनः ।
संसारहेयताबुद्धिर्जायते वासनाबलात् ॥ ६१ ॥

उक्तप्रकारेणानेकजन्मार्जितसुकृतवशात् प्रक्षीणपापत्वेन शुद्धान्तःकरणस्य नित्यानित्यविवेकिनः पुण्याधिक्येन सत्संस्कारबलात् संसारत्यागबुद्धिरुत्पद्यत इत्यर्थः ॥ ६१ ॥

जनिक हृदयक मलिनवासना हटि चुकल छनि, जे नित्य अनित्यक भेदकेँ जनैत छथि, तँनिक हृदयमे वासनाक बलसँ 'ई संसार त्याज्य थिक'– ई बुद्धि उत्पन्न होइत छनि ॥ ६१ ॥

कुत इत्यत्राह–

ऐहिके क्षणिके सौख्ये पुत्रदारादिसम्भवे ।
क्षयित्वादियुते स्वर्गे कस्य वाञ्छा विवेकिनः ॥ ६२ ॥

पुत्रदारादिजायमानसुखस्य नश्वरत्वं प्रत्यक्षेणानुभूयते । ज्योतिष्टोमादियागजन्यस्वर्गसुखस्यापि–

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति[१],

इति भगवदुक्तेर्नश्वरताऽवगम्यते । एवंरूपैहिकामुष्मिकसुखयोर्नित्यानित्यविवेकिनः कस्य वाञ्छा भवेत् ? न कस्यापीत्यर्थः । नश्वरत्वाद् हेयबुद्धिरेव भवेदिति भावः ॥ ६२ ॥

पुत्र, स्त्री आदिसँ उत्पन्न एहि लोकक क्षणिक सुख तथा क्षय

१. भ०गी० ९ । २१ । २

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आदिसँ युक्त स्वर्गक लेल कोन विवेकीकेँ इच्छा भए सकैत छनि ? अर्थात् किनको नहि ।। ६२ ।।

ननु सांसारिकसुखस्यानित्यत्वात् परित्यागो युक्तः, संसारः किमर्थं त्यजनीय इत्यत्र दोषानुद्भावयति—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।[1]
जन्तुर्मरणजन्मभ्यां परिभ्रमति चक्रवत् ।। ६३ ।।

विश्रान्त्यभावादिति भावः ।। ६३ ।।

जे जनमैत अछि तकर मृत्यु ओ जे मरैत अछि तक जन्म निश्चित अछि । जन्म ओ मरणक द्वारा जीव चाक जकाँ घुमैत रहैत अछि ।। ६३ ।।

अस्मिन्नर्थे कर्माधीनपुरुषदृष्टान्तमप्याह—

मत्स्यकूर्मवराहाङ्गैर्नृसिंहमनुजादिभिः ।
जातेन निधनं प्राप्तं विष्णुनापि महात्मना ।। ६४ ।।

दुष्टदैत्यनिबर्हणार्थं भक्तानुग्रहार्थं च मत्स्यकूर्मादिशरीरैः सह जातेन अवतारं धृतवता महात्मना महापुरुषेण कर्माधीनेन विष्णुनापि नारायणेनापि निधनं मरणं प्राप्तमित्यर्थः ।। ६४ ।।

महात्मा विष्णु सेहो मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, मनुष्य (वामन, राम) आदिक शरीर धारण कएला पर मृत्युकेँ प्राप्त कएने छलाह ।। ६४ ।।

एवंस्थिते पराधीनो जन्तुस्तापत्रयाद् दह्यत एवेत्याह—

भूत्वा कर्मवशाज्जन्तुर्ब्राह्मणादिषु जातिषु ।
तापत्रयमहावह्निसन्तापाद् दह्यते भृशम् ।। ६५ ।।

दह्यते, तप्यत इत्यर्थः ।। ६५ ।।

जीव अपन कर्मक कारण ब्राह्मण आदि जातिमे उत्पन्न भए आधिभौतिक, आधिदैविक ओ आध्यात्मिक तापक विशाल अग्निमे जरैत रहैत अछि ।। ६५ ।।

ननु तापत्रयानुवृत्तिविच्छित्तिरस्मिन् संसारे कदाप्यस्ति वा न वेत्यत्राह—

कर्ममूलेन दुःखेन पीड्यमानस्य देहिनः ।
आध्यात्मिकादिना नित्यं कुत्र विश्रान्तिरिष्यते ।। ६६ ।।

---

१. तुल० भ०गी० २ । २७

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्ममूलेनाध्यात्मिकादिना दुःखेन सदा बाध्यमानस्य प्राणिनः कुत्र कस्मिन्नधिकरणे विश्रान्तिः विश्रमणम् इष्यते इच्छाविषयीक्रियते, न क्वापीत्यर्थः ॥ ६६ ॥

कर्मसँ उत्पन्न आध्यात्मिक आदि दुःखसँ नित्य पीड़ित जीवकेँ कतएसँ शान्ति भेटि सकैछ ? अर्थात् कतहुसँ नहि ॥ ६६ ॥

अथ किं तत्तापत्रयमित्यत्राह–

आध्यात्मिकं तु प्रथमं द्वितीयं चाधिभौतिकम् ।
आधिदैविकमन्यच्च दुःखत्रयमिदं स्मृतम् ॥ ६७ ॥

पहिल आध्यात्मिक, दोसर आधिभौतिक आ तेसर आदिदैविक– इयेह तीन दुःख मानल गेल अछि ॥ ६७ ॥

अथ तत्स्वरूपं लक्षयति–

आध्यात्मिकं द्विधा प्रोक्तं बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
वातपित्तादिजं दुःखं बाह्यमाध्यात्मिकं मतम् ॥ ६८ ॥

स्पष्टम् ॥ ६८ ॥

आध्यात्मिक दुःख दू प्रकारक अछि– बाह्य ओ आभ्यन्तर । वात, पित्त आदिसँ उत्पन्न दुःख बाह्य (बाहरी) मानल गेल अछि ॥ ६८ ॥

रागद्वेषादिसम्पन्नमान्तरं परिकीर्त्यते ।
आधिभौतिकमेतद्धि दुःखं राजादिभूतजम् ॥ ६९ ॥

राग, द्वेष आदिसँ प्राप्त दुःख आभ्यन्तर (भीतरी) कहल गेल अछि, जे दुःख राजा आदिक कारण होइछ से आधिभौतिक थिक ॥ ६९ ॥

आधिदैविकमाख्यातं ग्रहयक्षादिसम्भवम् ।
दुःखैरेतैरुपेतस्य कर्मबद्धस्य देहिनः ।
स्वर्गे वा यदि वा भूमौ सुखलेशो न विद्यते ॥ ७० ॥

ग्रह, यज्ञ आदिसँ उत्पन्न दुःख आदिदैविक थिक । एहि दुःखसबसँ युक्त तथा कर्मसँ बद्ध जीवक लेल स्वर्ग वा पृथ्वी पर सुखक लेश मात्र नहि अछि ॥ ७० ॥

अथ राज्यादिसम्पत्तिः सुखं नास्ति वेत्यत्र नास्तीति दृष्टान्तपूर्वकमाह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तडित्सु वीचिमालासु प्रदीपस्य प्रभासु च ।
सम्पत्सु कर्ममूलासु कस्य वा स्थिरतामतिः ॥ ७१ ॥

विद्युत्सु तरङ्गमालासु दीपशिखासु यथा स्थिरताबुद्धिर्नास्ति, तथा कर्ममूलासु सम्पत्स्वपि स्थिरताबुद्धिर्विवेकिनो नास्तीत्यर्थः ॥ ७१ ॥

बिजलोका, समुद्रक तरंग, प्रदीपक प्रभा ओ कर्ममूलक सम्पत्ति केँ स्थिर के मानि सकैछ ? अर्थात् क्यो नहि ॥ ७१ ॥

ननु विद्युदादिविलक्षणत्वात् सुखसाधनत्वाच्छरीरं वाञ्छाविषयमस्त्वित्यत्र 'भगवन्नस्थिचर्मस्नायुमज्जामांसशुक्रशोणितश्लेष्माश्रुदूषिते विण्मूत्रवातपित्तकफसङ्घाते दुर्गन्धे निःसारे (शरीरे) किं कामोपभोगैः'[1] इति मैत्रेयश्रुत्यनुसारेणाह–

मलकोशे शरीरेऽस्मिन् महादुःखविवर्धने ।
तडिदङ्कुर[2]सङ्काशे को वा रुच्येत पण्डितः ॥ ७२ ॥

मलकोशे मलमूत्राद्याधारभूते क्षणिकेऽस्मिन् शरीरे को वा पापपिण्डे विवेकी प्रीतिं कुर्यात्, न कोऽपि कुर्यादित्यर्थः ॥ ७२ ॥

मलसँ भरल, महान् दुःखक वर्धक ओ विद्युतक अंकुरक समान एहि शरीरक विषयमे के बुद्धिमान् प्रीति कए सकैत छथि ? अर्थात् क्यो नहि ॥ ७२ ॥

ननु शरीरस्यैव परमप्रेमास्पदत्वात् तत्र रुचिरस्त्वित्यत्राह–

नित्यानन्दचिदाकारमात्मतत्त्वं विहाय कः ।
विवेकी रमते देहे नश्वरे दुःखभाजने ॥ ७३ ॥

नित्यानन्दस्वरूपस्यात्मतत्त्वस्य विद्यमानत्वात् तस्यैव परमप्रेमास्पदत्वात् तद्विहाय नश्वरे दुःखपात्रे शरीरे को विवेकी रमते, न कोऽपि रमत इत्यर्थः ॥ ७३ ॥

नित्य, आनन्द एवं चित्स्वरूप आत्मतत्त्वकेँ छोड़ि के विवेकी व्यक्ति नश्वर एवं दुःखक पात्र एहि देहमे रमि सकैछ ॥ ७३ ॥

अथ विवेकिनो नश्वरे शरीरमात्र एव विरक्तिरिति न, तत्सम्बन्धिषु सर्वेष्वपि विरक्तिरित्याह–

विवेकी शुद्धहृदयो निश्चितात्मसुखोदयः ।
दुःखहेतौ शरीरेऽस्मिन् कलत्रे च सुतेषु च ॥ ७४ ॥

---

१. मैत्रा०उ० १ । २

२. विद्युदङ्कुरे दोषद्वयं तिष्ठति– १. क्षणिकत्वम्, २. स्पर्शे सति स्पृष्टस्य शरीरदाहः । तद्वत् शरीरमपि आपातरमणीयं दृश्यते, उपभोगे च इष्टलक्ष्यात् परिच्युतिकारणं भवति ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शुद्धहृदयो निर्मलान्तःकरणः, अत एव निश्चितात्मसुखोदयः श्रुतिगुरुस्वानुभवैर्निश्चितनित्यानित्यसुखस्फूर्तिमान् विवेकी नित्यानित्यवस्तुविवेकी दुःखहेतौ उक्तलक्षणसकलदुःखकारणेऽस्मिन् शरीरे, कलत्रे स्त्रीषु, सुतेषु (वैराग्यं परमश्नुते इति परेणान्वयः) ॥ ७४ ॥

सुहृत्सु बन्धुवर्गेषु धनेषु कुलपद्धतौ ।
अनित्यबुद्ध्या सर्वत्र वैराग्यं परमश्नुते ॥ ७५ ॥

सुहृत्सु मित्रेषु बान्धवसमूहेषु कुलपद्धतौ कुलक्रमे धनेषु गोधनादिधनेषु सर्वत्र एतद्व्यतिरिक्तसकलवस्तुष्वपि अनित्यबुद्ध्या परं वैराग्यम् अश्नुते आश्रयतीत्यर्थः ॥ ७५ ॥

विवेकी, शुद्ध हृदयवाला तथा आत्मसुखक लेल निश्चयवाला मनुष्य दुःखक कारण स्वरूप एहि शरीर, पत्नी, पुत्र, मित्र, बन्धु, धन एवं कुलक प्रति अनित्य बुद्धिक कारण सर्वत्र परम वैराग्यक अनुभव करैत अछि ॥ ७४-७५ ॥

अथैवमाद्यनित्यवस्तुविरक्तस्य नित्यवस्तुरागिणः संसारदुःखविच्छेदहेतौ बुद्धिरुत्पद्यत इत्याह—

विवेकिनो विरक्तस्य विषयेष्वात्मरागिणः ।
संसारदुःखविच्छेद-हेतौ बुद्धिः प्रवर्तते ॥ ७६ ॥

स्पष्टम् ॥ ७६ ॥

विवेकी विषयक प्रति विरक्त ओ आत्मामे अनुरक्त मनुष्यंक बुद्धि सांसारिक दुःखक नष्ट करबाक लेल प्रवृत्त होइत अछि ॥ ७६ ॥

अथ कोऽयं संसारदुःखच्छेदहेतुरित्यत्र पिण्ड-पिण्डज्ञानस्थलार्थं गर्भीकृत्य वृत्तेनाह—

नित्यानित्यविवेकिनः सुकृतिनः शुद्धाशयस्यात्मनो
ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रमुख्यविभवेष्वस्थायितां पश्यतः ।
नित्यानन्दपदे निराकृतजगत्संसारदुःखोदये
साम्बे चन्द्रशिरोमणौ समुदयेद् भक्तिर्भवध्वंसिनी ॥ ७७ ॥

इति श्रीवीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले पिण्डज्ञानसंसार-हेयस्थलप्रसङ्गो नाम पञ्चमः परिच्छेदः ॥ ५ ॥



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुकृतिनः निगमागमोक्तसत्कर्मिणः शुद्धाशयस्य निर्मलान्तःकरणस्य आत्मनः पिण्डशब्दवाच्यस्य नित्यानित्यविवेकिनः क्षेत्रज्ञाक्षेत्रज्ञविवेकिनः पिण्डज्ञानिनो ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रमुख्यसमस्तदेवसम्पत्सु अस्थायितां क्षणिकत्वं पश्यतो जानतः, अत एव संसारहेयबुद्धिमतो नित्यानन्दपदे नित्यपरिपूर्णसच्चिदानन्दाश्रये निराकृतजगत्संसारदुःखोदये साम्बे उमासमेते चन्द्रशिरोमणौ 'चन्द्रललाटाय कृत्तिवाससे नमो नमः' इत्यथर्वणश्रुतेश्चन्द्रधरादिनानालीलाविग्रहकारणीभूतमहा-लिङ्गे भक्तिः, अष्टविधा भवध्वंसिनी सती समुदयेत् प्रकाशत इत्यर्थः । अत्र शुद्धान्तःकरणस्य नित्यानित्यवस्तुविवेकिन ऐहिकामुष्मिकफलभोगविरागद्वारा रागद्वेषादिशब्दाद्यन्तर्बाह्येन्द्रियविषयवैमुख्येन शमदमादिसम्पत्त्या मुमुक्षुत्वेन संसारदुःखनिवृत्त्युपायभूते महालिङ्गे भक्तिरुत्पद्यत इत्युक्तं भवति ॥ ७७ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां
तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां भक्तस्थले
पिण्डज्ञानसंसारहेयस्थलप्रसङ्गो नाम पञ्चमः परिच्छेदः ॥ ५ ॥



नित्यानित्यविवेकसँ युक्त, पुण्यवान्, पवित्र हृदयवाला, ब्रह्म-विष्णु-महेन्द्र आदिक वैभवकेँ अस्थायी बुझनिहार मनुष्यक हृदयमे नित्यानन्दस्वरूप, चलायमान संसारक दुःखक निराकरण कएनिहार, साम्ब चन्द्रशेखरक प्रति संसार सँ दूर करए वाली भक्ति उत्पन्न होइछ ॥ ७७ ॥

एहि प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणिग्रन्थमे पिण्डज्ञान संसारहेयस्थल प्रसंग
नामक पञ्चम परिच्छेदक विद्यावाचस्पति पं० शशिनाथ झाकृत
प्रबोधिनी मैथिली व्याख्या पूर्ण भेल ॥



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षष्ठः परिच्छेदः

अथ 'तद्विज्ञानार्थं सद्गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'[१] इति मुण्डकश्रुतेः पूर्वोक्तपिण्डपिण्डज्ञानसंसारहेयस्थलसम्पन्नः संसारनाशकरं महालिङ्गं जिज्ञासुः श्रीगुरुमुपैतीति कुम्भजं प्रति दीक्षालक्षणगुरुकारुण्यस्थलं निरूपयति श्रीरेणुकः –

ततो विवेकसम्पन्नो विरागी शुद्धमानसः ।
जिज्ञासुः सर्वसंसार-दोषध्वंसकरं शिवम् ॥ १ ॥
उपैति लोकविख्यातं लोभमोहविवर्जितम् ।
आत्मतत्त्वविचारज्ञं विमुक्तविषयभ्रमम् ॥ २ ॥
शिवसिद्धान्ततत्त्वज्ञं छिन्नसन्देहविभ्रमम् ।
सर्वतन्त्रप्रयोगज्ञं धार्मिकं सत्यवादिनम् ॥ ३ ॥
कुलक्रमागताचारं कुमार्गाचारवर्जितम् ।
शिवध्यानपरं शान्तं शिवतत्त्वविवेकिनम् ॥ ४ ॥
भस्मोद्धूलननिष्णातं भस्मतत्त्वविवेकिनम् ।
त्रिपुण्ड्रधारणोत्कण्ठं धृतरुद्राक्षमालिकम् ॥ ५ ॥
लिङ्गधारणसंयुक्तं लिङ्गपूजापरायणम् ।
लिङ्गाङ्गयोगतत्त्वज्ञं निरूढाद्वैतवासनम् ॥ ६ ॥
लिङ्गाङ्गस्थलभेदज्ञं श्रीगुरुं शिववादिनम् ।

अत्र ततः संसारहेयबुद्ध्युत्पत्त्यनन्तरं शुद्धमानसो निर्मलान्तःकरणत्वेन पिण्डशब्दवाच्यः, विवेकसम्पन्नः शरीरात्मविवेकेन पिण्डज्ञानवान्, विरागी अनित्यसुखवैमुख्येन संसारहेयबुद्धिमान् साधकः सर्वसंसारदोषध्वंसकरणम्,

---

१. मु०उ० २।१२

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दोषःदुःखमित्यर्थः, सांसारिकसमलदुःखनिवारकं शिवम्, परब्रह्मापरपर्यायपर-शिवमहालिङ्गं जिज्ञासुः सन्, शिववादिनं महालिङ्गस्वरूपमुपदेष्टारं श्रीगुरुमुपैतीति योजना । स कीदृश इत्यत्राह– लोकविख्यात इत्यादिना । सर्वलोकप्रसिद्धः, लोभमोहविवर्जितः, मोह अज्ञानमित्यर्थः, आत्मतत्त्वविचारज्ञः देहेन्द्रियादिवैलक्षण्ये-नात्मयाथार्थ्यस्वरूपज्ञः, विमुक्तविषयभ्रमः

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदीरिता ।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः ॥

इति सर्वमङ्गलागमस्थितेः ।

शब्दजातमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा ।
अर्थजातमशेषं तु धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः ॥

इति वायुसंहितोक्तेश्च सर्वस्यापि विश्वस्य शिवशक्तिमयत्वात् तयोरभेदाद् विगलितविषयगतभेदभ्रान्तिरित्यर्थः । अत एव निरूढाद्वैतवासनः दृढीभूताद्वैतसंकारविशिष्टः, शिवसिद्धान्ततत्त्वज्ञः शिवागमसिद्धान्ताभिज्ञः, छिन्नसन्देहविभ्रमः निराकृतसंशयविपर्ययवानित्यर्थः । सर्वतन्त्रप्रयोगज्ञः चतुःषष्टितन्त्रप्रयोगज्ञः, धार्मिकः शिवधर्मनिष्ठः, सत्यवादी, कुलक्रमागताचारः गुरुवंशक्रमानुगताचारवान्, कुमार्गाचारवर्जितः कुलप्राप्तसमयाचारवर्जितः, शिवध्यानपरः शिवलिङ्गचिन्तानिष्ठः, शान्तः रागद्वेषरहितः, शिवतत्त्वविवेकी शिवपरशिवस्वरूपज्ञः, भस्मोद्धूलननिष्णातः, तत्र कुशलीत्यर्थः । भस्मतत्त्वविवेकी भस्मस्वरूपविवेकवान्, त्रिपुण्ड्रधारणोत्कण्ठः, तत्रोत्सुक इत्यर्थः । धृतरुद्राक्षमालिकः, लिङ्गधारणसंयुक्तः बाह्यन्तर्लिङ्गधारणवन्, लिङ्गपूजापरायणः बाह्यान्तर्लिङ्गपूजानिष्ठः, लिङ्गाङ्गयोगतत्त्वज्ञः शिवबीजसम्बन्धतत्त्वज्ञः, लिङ्गाङ्गस्थलभेदज्ञः, लिङ्गाङ्गस्थलगतैकोत्तरशतस्थलभेदज्ञानवानित्यर्थः । शिववादी माङ्गल्यवचनप्रयोक्ता, एवंविधसल्लक्षणसम्पन्नं श्रीमन्तं सद्गुरुस्वामिनं संसारहेयबुद्धिमान् पक्वशिष्यः, मुमुक्षुरिति यावत्, उपैति उपायनपाणिः सन् अधिगच्छेदित्यर्थः ॥ १-७ ॥

दीक्षालक्षण-गुरुकारुण्यस्थलवर्णन– गुरु केहन होइत छथि, तनिक विशेषता देखाओ जा रहल अछि– तखन विवेकसँ युक्त, विरागी, शुद्धचित्तवाला जिज्ञासु शिष्य एहन गुरुक समीप जाथि जे संसारक सकल दोषक नाश करएवाला, कल्याण करएवाला, लोकमे प्रसिद्ध, लोभ-मोहसँ रहित, आत्मतत्त्व विचारक ज्ञाता, विषयक भ्रमसँ रहित, शिवसिद्धान्त तत्त्वक ज्ञाता, सन्देहरहित, सकल तन्त्रक प्रयोगक ज्ञाता, धार्मिक सत्यवादी, कुलक्रमसँ स्वीकृत आचारक

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पालक, कुमार्गक आचारसँ दूर रहएवाला, शिवक ध्यानमे लागल, शान्त, शिवतत्त्वक विवेकी, भस्म लगएबामे पारंगत, त्रिपुण्ड्रक धारण करबामे उत्कण्ठावाला, रुद्राक्षमालाक धारणकर्ता, लिङ्ग धारणसँ युक्त, लिङ्गपूजामे सतत लागल, लिङ्गाङ्गयोगतत्त्वक ज्ञाता, दृढ़ अद्वैत भवनावाला, लिङ्गस्थलक भेदज्ञाता तथा शिववादी होथि ।। १-६ ।।

एवं सद्गुरुमधिगम्य तत्सेवा कर्तव्येत्याह–

सेवेत परमाचार्यं शिष्यो भक्तिभयान्वितः ।। ७ ।।
षण्मासान् वत्सरं वापि यावदेष प्रसीदति ।

आप्तस्थानाङ्गसद्भावैःसेवेदेवेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।

गुरुक प्रति भक्ति ओ संसारक भयसँ युक्त शिष्य परमाचार्यक छओ मास अथवा वर्ष भरि, यावत् गुरु प्रसन्न होथि तावत् तक हुनक सेवा करथि ।। ७ ।।

अथ तद्विज्ञापनप्रकारं सूत्रद्वयेन वर्णयति–

प्रसन्नं परमाचार्यं भक्त्या मुक्तिप्रदर्शकम् ।। ८ ।।
प्रार्थयेदग्रतः शिष्यः प्राञ्जलिर्विनयान्वितः ।
भो कल्याण महाभाग शिवज्ञानमहोदधे ।। ९ ।।
आचार्यवर्य सम्प्राप्तं रक्ष मां भवरोगिणम् ।

भक्त्या सेवया प्रसन्नमनुग्रहोन्मुखं मुक्तिप्रदर्शकं परापरमोक्षप्रदर्शकं परमाचार्यं महागुरुं विनयान्वितः भयभक्तिसमन्वितः शिष्यः प्राञ्जलिः मुकुलितकरः सन् अग्रतः पुरतः प्रार्थयेत् । किमित्यत्र भो कल्याण मङ्गलात्मक महाभाग अतिश्रेष्ठ शिवज्ञानस्य समुद्र आर्चावर्य गुरूत्तम भवरोगिणं संसारार्त्तं सम्प्राप्तं समागतं मां रक्ष पाहीति ।। ८-९ ।।

प्रसन्न तथा मोक्षक प्रदर्शक परमाचार्यक आगू ठाढ़ भए शिष्य भक्ति सहित हाथ जोड़ि नम्रतापूर्वक प्रार्थना करथि– हे कल्याणकारी महाभाग शिवज्ञानक सागर आचार्यश्रेष्ठ ! अपनेक लग आएल भवरोगी (संसारक भयसँ रुग्ण) हमर रक्षा करू ।। ८-१० ।।

एवं प्रार्थितवन्तं शिष्यं गुरुरुपदेशाङ्गभूतदीक्षया योजयेदित्याह–

इति शुद्धेन शिष्येण प्रार्थितः परमो गुरुः ।। १० ।।
शक्तिपातं समालोक्य दीक्षया योजयेदमुम् ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति एवंप्रकारेण शुद्धेन शुद्धान्तःकरणेन शिष्येण प्रर्थितो विज्ञापितः परमो गुरुः महागुरुः, तस्येति शेषः । शक्तिपातं तीव्रतरशक्तिपातं समालोक्य सम्यगवलोक्य अमुम् अग्रतः स्थितं शिष्यं दीक्षया योजयेत् सम्बन्धये-दित्यर्थः ॥ १० ॥

शुद्ध शिष्यक द्वारा एहि तरहेँ प्रार्थना कएल गेला पर परमगुरु शक्तिपातक (प्रबल एवं उत्कट शक्ति समर्पण) चिह्नक परीक्षा कए शिष्यकेँ दीक्षित करथि ।। १० ।।

का नाम दीक्षेत्यत्राह–

दीयते च शिवज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम् ॥ ११ ॥
यस्मादतः समाख्याता दीक्षेतीयं विचक्षणैः ।

यस्मात् 'दा दाने' इति धातुगत्या शिवज्ञानं परब्रह्मपरशिवाख्यमहालिङ्गज्ञानं दीयते स्वात्माभेदेन प्रदास्यते, पाशबन्धनं मलमायाकर्मबन्धनं, 'क्षि क्षये' इति धातुगत्या क्षीयते, अत इयं ज्ञानक्रियात्मिका शक्तिरेव दीक्षेति विचक्षणैः शास्त्रज्ञैः सम्यगाख्यातेत्यर्थः ॥ ११ ॥

जेँ एकरा द्वारा शिवतत्त्वक ज्ञान देल जाइत अछि आ पाशबन्धनक नाश होत अछि तेँ विद्वान् लोकनि एहि संस्कारकेँ दीक्षा (दीयते क्षीयते) कहैत छथि ।। ११ ।।

अथेयं दीक्षा त्रिविधेत्याह–

सा दीक्षा त्रिविधा प्रोक्ता शिवागमविशारदैः ॥ १२ ॥
वेधारूपा क्रियारूपा मन्त्ररूपा च तापस ।

ओ दीक्षा शैव आगमनक विद्वानक द्वारा तीन प्रकारक कहल गेल अछि– वेधरूपा, क्रियारूपा ओ मन्त्ररूपा ।। १२ ।।

अथ तद्दीक्षात्रयलक्षणमाह–

गुरोरालोकमात्रेण हस्तमस्तकयोगतः ॥ १३ ॥
यः शिवत्वसमावेशो वेधा दीक्षेति सा मता ।

श्रीगुरोर्निरीक्षणमात्रेण हस्तमस्तकसम्बन्धाद् यो ज्ञानक्रियात्मकशिवतत्त्व-समावेशोऽस्ति, सा वेधा दीक्षेति, स्मृतेत्यर्थः । गुरोर्दृष्टिगर्भे स्थित्वा करकमले समुत्पन्नस्यात्मनश्चिन्मयस्वरूपोपदेशो वेधादीक्षेति तात्पर्यम् ॥ १३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मान्त्री दीक्षेति सा प्रोक्ता मन्त्रमात्रोपदेशिनी ॥ १४ ॥

मन्त्रमात्रोपदेशिनी सोऽहमिति प्रणवमन्त्रस्वरूपस्य प्राणिनः पञ्चाक्षरीमन्त्रमात्रोपदेशो[1] योऽस्ति, सा मननत्राणधर्मिणी मान्त्री दीक्षेति कथितेत्यर्थः ॥ १४ ॥

कुण्डमण्डलिकोपेता क्रियादीक्षा क्रियोत्तरा ।

कलशबन्धस्वस्तिक-मण्डलसंयुक्ता क्रियापरा लिङ्गधारणक्रियासमेता क्रिया-दीक्षेत्यर्थः ।

गुरु शिष्यकेँ देखैत हुनक माँथ पर अपन हाथ रखैत छथि । एहि तरहेँ जे शिष्यक हृदयमे शिवत्त्वक समावेश होइत अछि तकरा वेधादीक्षा कहल गेल अछि । गुरुद्वारा केवल मन्त्रक उपदेश देबाकेँ मान्त्रीदीक्षा कहल जाइछ । कुण्ड ओ मण्डलसँ युक्त लिङ्गधारणरूप क्रियासँ युक्त दीक्षा क्रियादीक्षा कहबैछ ॥ १३-१४ ॥

अथ तत्प्रकारं पञ्चभिः श्लोकैः प्रदर्शयति-

शुभमासे शुभतिथौ शुभकाले शुभेऽहनि ॥ १५ ॥
विभूतिं शिवभक्तेभ्यो दत्त्वा ताम्बूलपूर्वकम् ।
यथाविधि यथायोगं शिष्यमानीय देशिकः ॥ १६ ॥
स्नातं शुक्लाम्बरधरं दन्तधावनपूर्वकम् ।
मण्डले स्थापयेच्छिष्यं प्राङ्मुखं तमुदङ्मुखः ॥ १७ ॥
शिवस्य नाम कीर्तिं च चिन्तामपि च कारयेत् ।

शुभमासे माघादिशुभमासे शुभतिथौ भद्रादि[2]शुभतिथौ शुभेऽहनि सोमशुक्रादिशुभवासरे शुभकाले अमृतयुक्तशुभमुहूर्ते विध्युक्तप्रकारेण शास्त्रोक्तक्रमेण शिवभक्तेभ्यस्ताम्बूलपूर्वकं विभूतिं दत्त्वां आचार्यो दन्तधावनपूर्वकं स्नातं शुक्लाम्बरधरं शिष्यं स्वसमीपमाहूय प्राङ्मुखं कृत्वा स्वयमुदङ्मुखः सन् स्वस्तिकमडले स्थापयेत् । अनन्तरम्- 'अपि वा यश्चाण्डालः शिवेति वाचं

1. 'ॐ नमः शिवाय' इति पञ्चाक्षरोपदेशः शैवानं कृते क्रियते । अन्यसम्प्रदायिनां कृते तत्तत्सम्प्रदायप्रचलित- मन्त्राणामुपदेशो भवति । यथा वैष्णवेभ्यः ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इति द्वादशाक्षरमन्त्रस्योदेशः ।

२. नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च तिथयः क्रमात् ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वदेत्तेन सह संवसेत्तेन सह संविशेत्तेन सह भुञ्जीत' इति श्रुतेः सकलप्रायश्चित्त-रूपशिवनामकीर्तनं शिवध्यानं च कारयेदित्यर्थः ॥ १५-१७ ॥

गुरु शुभमास, शुभतिथि, शुभदिन ओ शुभ कालमे शिवभक्तगणकेँ निमन्त्रणक निमित्त पान सहित भस्म दए शास्त्रोक्त विधिक अनुसार शिष्यकेँ अपना लग आनि लेथि । अएबासँ पूर्व शिष्य दातमनि एवं स्नान कए उज्जर वस्त्र धारण कए लेथि । आचार्य शिष्यकेँ मण्डपक भीतर पूब दिस मुँह कए बैसाबथि एवं स्वयम् उत्तरमुँहेँ बैसथि ओ शिष्यकेँ शिवक ध्यान ओ शिवनामक उच्चारण कराबथि ॥ १५-१८ ॥

अनन्तरम्–

विभूतिपट्टं दत्त्वाग्रे यथास्थानं यथाविधि ॥ १८ ॥
पञ्चब्रह्ममयैस्तत्र स्थापितैः कलशोदकैः ।
आचार्यः सममृत्विग्भिस्त्रिः शिष्यमभिषिञ्चयेत् ॥ १९ ॥

प्रथमं यथाविधि यथास्थानं विभूतिधारणं कृत्वा तत्र तस्मिन् मण्डले स्थापितैः पञ्चब्रह्ममयैः ईशानादिपञ्चब्रह्मस्वरूपैः कलशोदकैः पञ्चाक्षरात्मक-कलशोदकैः ऋत्विग्भिः भुवनप्रसिद्धपञ्चार्यसम्प्रदायानुगैः ऋत्विग्भिः समम् आचार्य-स्तत्सम्प्रदाय एवाचार्यपट्टाभिषिक्तः श्रीगुरुः शिष्यं त्रिरभिषिञ्चयेत् ॥ १८-१९ ॥

एकरबाद यथास्थान ओ यथाविधि शिष्यकेँ भस्मक त्रिपुण्ड्र धारण करबथि । पुनः आचार्य ओतए स्थापित पञ्चब्रह्म (सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष ओ ईशान)वाला पाँच कलशक जलसँ ऋत्विक् (होता) सभक सहित आचार्य तीन बेर शिष्यक ऊपर जल दए अभिषेक करथि ॥ १८ ॥

अथ मांसपिण्डं मन्त्रपिण्डं विधातुं मन्त्रोपदेशं कुर्यादित्याह–

अभिषिच्य गुरुः शिष्यमासीनं परितः शुचिम् ।
ततः पञ्चाक्षरीं शैवीं संसारभयतारिणीम् ॥ २० ॥
तस्य दक्षिणकर्णे तु निगूढमपि कीर्तयेत् ।
छन्दो रूपमृषिं चास्य देवतान्यासपद्धतिम् ॥ २१ ॥

अभिषिच्य ततस्तदनन्तरं गुरुः । शुचिं समीपे स्थितं शिष्यं प्रति तस्य दक्षिणकर्णे संसारभवतारिणीं शैवीं शिवसम्बन्धिनीं पञ्चाक्षरीं नमः शिवाय चेति श्रीरुद्रप्रसिद्धां विद्यां परतत्त्वप्रकाशिनीं निगूढं परश्रुतिगोचरीभूतं यथा न भवति

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा कीर्तयेत्, उपदिशेदित्यर्थः । अस्याः पञ्चाक्षर्या रूपं स्वरूपं छन्दः ऋषिं मन्त्रद्रष्टारं महर्षिं देवतान्यासपद्धतिम् अधिदेवताप्रत्यधिदेवतारूपपञ्चब्रह्मपञ्चसादाख्यपर्यायनामवदाचारादिपञ्चत्रिलिङ्गकराङ्गन्यासमार्गं न्यासक्रममित्यर्थः, कीर्तयेदित्यनुषङ्गः । आज्ञाचक्रस्थितप्रणवमयमहालिङ्गं करतले स्थापयितुं प्रथममाधारादिपञ्चचक्रेषु नकारादिबीजमयाचारादिलिङ्गपञ्चकं शिवागमोक्तप्रकारेणोपदिशेदिति रहस्यम् ॥ २०-२१ ॥

इति गुरुकारुण्यस्थलम्

गुरु शिष्यक ऊपर जलसँ अभिषेक कए सब तरहेँ पवित्र भेल बैसल ओहि शिष्यक दहिना कानमे अत्यन्त गुप्त रूपेँ पञ्चाक्षरी विद्या (मन्त्र) 'नमः शिवाय' कहथि जे संसारक भयसँ त्राणकारिणी थिक । संगहि एहि विद्याक छन्द, रूप, ऋषि, देवता ओ न्यासक रीति बुझाए देथि ॥ २०-२१ ॥

अथ लिङ्गधारणस्थलम्

अथ 'एतत्सोमस्य सूर्यस्य सर्वलिङ्गं स्थापयति पाणिमन्त्रं पवित्रम्' इति श्रुत्युक्तप्रकारेण श्रीगुरुर्विधीयमानलिङ्गधारणस्थलं निरूपयति । पाणौ मननात् त्रायत इति पाणिमन्त्र इत्यर्थः । अत्रादौ धारणीयलिङ्गस्वरूपं निर्दिशति—

स्फाटिकं शैलजं वापि चन्द्रकान्तमयं तु वा ।
बाणं वा सूर्यकान्तं वा लिङ्गमेकं समाहरेत् ॥ २२ ॥

शैलजं श्रीशैलादिमहापर्वतशिलासम्भवमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् । एतेष्वेकं परीक्ष्य गृह्णीयादित्यर्थः ॥ २२ ॥

लिङ्गधारणस्थल— एकर बाद गुरु स्फटिक, पाथर, चन्द्रकान्तमणि, नर्मदेश्वर अथवा सूर्यकान्तमणिसँ निर्मित एक शिवलिङ्ग लए आबथि ॥ २२ ॥

अथ तल्लिङ्गे शिवकलामावाहयेदित्याह—

सर्वलक्षणसम्पन्ने तस्मिँल्लिङ्गे विशोधिते ।
पीठस्थितेऽभिषिक्ते च गन्धपुष्पादिपूजिते ॥ २३ ॥
मन्त्रपूते कलां शैवीं योजयेद्विधिना गुरुः ।

शिल्पशास्त्रोक्तसर्वलक्षणसम्पन्ने पञ्चगव्यैः परिशुद्धे पञ्चामृताभिषिक्ते सुगन्धपुष्पादिना परिपूजिते मूलपञ्चाक्षरीमन्त्रसंस्कृते करपीठस्थिते तस्मिन् लिङ्गे,

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुरुः आचार्यः, शैवीं कलां शिष्यमस्तकस्थितां शिवकलां विध्युक्तप्रकारेण आवाहयेदित्यर्थः। तत्प्रकार इत्थम्– शिष्यमस्तके सुगन्धेन पञ्चारचक्रं[1] विलिख्य मध्ये प्रणवं पञ्चदलेषु पञ्चाक्षराणि विभाव्य,

नित्यानन्दां निरुपमपदां निष्कलां निर्विशेषां
निर्व्याजेनोर्ध्वमायाविरचितवपुषं विश्ववन्द्यां परां ताम्।
आधारामादिशक्तिं गुणगणनमितां देवदेवीं शिवाख्यां
वन्दे हृत्पद्मपीठे परमशिवपदां श्रीमतीमूर्ध्वसंज्ञाम् ॥

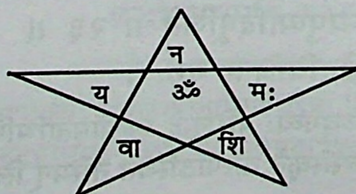
इति सकलजगद्व्यवहारप्रवृत्तिकां चराचरचैतन्यतेजोरूपिणीं शिवकलां ध्यात्वा गन्धादिनाऽभ्यर्च्य प्रदीपाद् दीपान्तरमिव 'क्रों' इत्यङ्कुशमुद्रयाऽऽकृष्याऽऽवाह्य तदारं विचिन्त्य पुनर्गन्धाद्युपचारैः सम्पूजयेदिति ॥ २३ ॥

सर्वलक्षण सम्पन्न ओहि लिङ्गकेँ शुद्ध कए पीठ पर राखि ओहि पर अभिषेक करथि। गन्ध-पुष्प आदि सँ हुनक पूजा कए मन्त्रसँ परिपूत (पावन कएल) ओहि लिङ्गमे विधिपूर्वक शैवीकलाक संयोजन करथि अर्थात् ओहि लिंग पर पञ्चकोण चक्र लिखि पाँच कोणमे पंचाक्षर 'नमः शिवाय' आ मध्यमे ॐ लिखी ॥ २३-२४ ॥

अथ लिङ्गप्राणसामरस्यं कृत्वा तल्लिङ्गं शिष्यहस्ते स्थापयेदित्याह–

शिष्यस्य प्राणमादाय लिङ्गे तत्र निधापयेत् ॥ २४ ॥
तल्लिङ्गं तस्य तु प्राणे स्थपयेदेकभावतः।
एवं कृत्वा गुरुर्लिङ्गं शिष्यहस्ते निधापयेत् ॥ २५ ॥

तत्र लिङ्गे शिवकलाभरितलिङ्गे शिष्यस्य जीवकलारूपं प्राणम् आदाय आकृष्य निधापयेत् प्रतिष्ठापयेत्। तल्लिङ्गं शिवकलापूरितलिङ्गं तस्य शिष्यस्य प्राणे प्रणवरूपत्वेन जीवकलारूपे प्राणे एकभावतस्तादात्म्येन स्थापयेत्, नियोजयेदित्यर्थः। एवंप्रकारेण गुरुर्लिङ्गं शिवजीवकलासामरस्यात्मकं कृत्वा शिष्यकरकमले स्थापयेदित्यर्थः ॥ २४-२५)

१.


CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तखन गुरु शिष्यक प्राणकेँ अंकुश मुद्रासँ आकृष्ट कए ओहि लिङ्गमे स्थापित करथि । तकर बाद ओहि लिङ्गकेँ शिष्यक प्राणमे एकीभावसँ स्थापित करथि । एहि रूपेँ अनुष्ठान कए गुरु ओहि प्राण लिङ्गकेँ शिष्यक हाथमे राखि देथि ।। २४-२५ ।।

शिष्यं शिक्षयति-

प्राणवद्धारणीयं तत् प्राणलिङ्गमिदं तव ।
कदाचित् कुत्रचिद्वापि न वियोजय देहतः ॥ २६ ॥

भो शिष्य ! तदिदं प्राणलिङ्गं तव त्वया प्राणवद्धारणीयम्, जातु क्वापि देहतो न वियोजय शरीराद् वियुक्तं मा कुर्वित्यर्थः ॥ २६ ॥

एकरा बाद गुरु शिष्यकेँ आज्ञा देथि कि अहाँ एहि प्राणलिङ्गकेँ अपन प्राणक समान अपन शरीरसँ लगओने राखब । कतहु कखनहुँ ओहि लिङ्गकेँ अपन शरीरसँ पृथक् नहि करब ।। २६ ।।

यदि प्रमादेन शरीराद् वियुक्तं चेत्तदा किं कर्तव्यमित्यत्राह-

यदि प्रमादात् पतिते लिङ्गे देहान्महीतले ।
प्राणान् विमुञ्च सहसा प्राप्तये मोक्षसम्पदः ॥ २७ ॥

स्पष्टं, बालत्कारेण प्राणत्यागे दुर्मरणं किं न स्यादित्यत्रोक्तम्-प्राप्तये मोक्षसम्पद इति । अन्यथा नरक एवेति भावः ॥ २७ ॥

यदि असावधानीसँ ई लिङ्ग शरीरसँ हटि कए पृथ्वी पर खसि पड़ए तँ मोक्षकेँ प्राप्त करबाक लेल तुरत अपन प्राणकेँ त्यागि दी ।। २७ ।।

शिष्यं शिक्षयति-

इति सम्बोधितः शिष्यो गुरुणा शास्त्रवेदिना ।
धारयेच्छाङ्करं लिङ्गं शरीरे प्राणयोगतः ॥ २८ ॥

यावत्पर्यन्तं शरीरे प्राणस्तिष्ठति, तावत्पर्यन्तं वीरशैवशास्त्रज्ञेन गुरुणा बोधितः शिष्यः शाङ्करं लिङ्गं धारयेदित्यर्थः ॥ २८ ॥

शास्त्रज्ञ गुरुक द्वारा एहि प्रकारेँ उपदेश देलाक बाद शिष्य ओहि शिवलिङ्गकेँ प्राणधारणपर्यन्त शरीरसँ संयुक्त राखथि ।। २८ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ किमस्य धारणेन प्रयोजनं कैरङ्गीकृतमित्यत्राह–

लिङ्गस्य धारणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
आदृतं मुनिभिः सर्वैरागमार्थविशारदैः ॥ २९ ॥

वीरशैवागमाभिज्ञैर्मुनिभिः सर्वैरप्यङ्गीकृतमित्यर्थः ॥ २९ ॥

एहि तरहेँ लिङ्गक धारण पुण्यदायक एवं सकल पापक नाशकरएवला होइछ । आगमतत्त्वक सकल पण्डित एवं मुनिगण एकरा आदरपूर्वक स्वीकार कएने छथि ॥ २९ ॥

अथैवं लिङ्गधारणं मोक्षकाङ्क्षिभिर्मुनिभिर्द्विधाङ्गीकृतमित्यत्राह–

लिङ्गधारणमाख्यातं द्विधा सर्वार्थसाधकैः ।
बाह्यमाभ्यन्तरं चेति मुनिभिर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ ३० ॥

सर्वार्थसाधकं भोगमोक्षप्रदमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३० ॥

सर्वार्थसाधक ई लिङ्गधारण मोक्षार्थी मुनिक द्वारा बाह्य ओ आभ्यन्तर भेदसँ दू प्रकारक कहल गेल अछि ॥ ३० ॥

किमिदमान्तरमित्यत्राह–

चिद्रूपं परमं लिङ्गं शाङ्करं सर्वकारणम् ।
यत्तस्य धारणं चित्ते तदान्तरमुदाहृतम् ॥ ३१ ॥

चिद्रूपं सच्चिदानन्दात्मकं परमम् । अत एव देशकालोत्तीर्णं सर्वकारणं देशकालाकारलक्षणविश्वकारणं शाङ्करं शिवसम्बन्धि यल्लिङ्गमस्ति, तस्य महालिङ्गस्य चित्ते स्वहृत्कमले यद् धारणं ध्यानरूपेण धारणं तद् आनन्तरम् अन्तर्लिङ्गधारणमित्युदाहृतमित्यर्थः ॥ ३१ ॥

समस्त संसारक कारण, शंकरक चिद्रूप लिङ्ग श्रेष्ठ थिक । चित्तमे एकर धारण करब आन्तरधारण कहल गेल अछि ॥ ३१ ॥

अथैतत्स्वरूपं बहुधा प्रकाशयति–

चिद्रूपं हि परं तत्त्वं शिवाख्यं विश्वकारणम् ।
निरस्तविश्वकालुष्यं निष्कलं निर्विकल्पकम् ॥ ३२ ॥
सत्तानन्दपरिस्फूर्ति–समुल्लासकलामयम् ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अप्रमेयमनिर्देश्यं मुमुक्षुभिरुपासितम् ॥ ३३ ॥
परं ब्रह्म महालिङ्गं प्रपञ्चातीतमव्ययम् ।

जडविलक्षणत्वाच्चिद्रूपम्, जीवविलक्षणत्वात्परम्, अत एव चराचरप्रपञ्चकारणं निरस्तसमस्तदोषं निरवयवं भेदरहितं नित्यानन्दप्रकाशात्मकत्वेन व्याप्रियमाणतुर्यातीतसप्तदशकलास्वरूपं प्रत्यक्षादिप्रमाणागम्यं वक्तुमशक्यं मोक्षकाङ्क्षिभिर्भजनीयं विश्वातीतं कालत्रयाबाध्यं शिवाख्यं परं ब्रह्म महालिङ्गं हि महालिङ्गमिति प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ ३२-३३ ॥

शिवनामक चिद्रूप परम तत्त्व विश्वक कारण छथि । मलिनतासँ सर्वथा रहित ओ निष्कल तथा निर्विकल्प तथा सत्, चित् आ आनन्दक स्फुरणक समुल्लास भरल कलासँ युक्त छथि, अप्रमेय, अनिर्देश्य तथा मोक्षार्थी जनसँ उपासित छथि आ एहन प्रपञ्चसँ अर्थात् संसारसँ अतिरिक्त परब्रह्म रूप महालिङ्ग छथि ॥ ३२-३३ ॥

नन्वेतादृशस्य महालिङ्गस्य स्थानध्यानशून्यत्वात् (तत्) कथमुपासनीयं स्यादित्यत्राह–

तदेव सर्वभूतानामन्तस्त्रिस्थानगोचरम् ॥ ३४ ॥
मूलाधारे च हृदये भ्रूमध्ये सर्वदेहिनाम् ।
ज्योतिर्लिङ्गं सदा भाति यद् ब्रह्मेत्याहुरागमाः ॥ ३५ ॥

तदेवं पूर्वोक्तमहालिङ्गमेव समस्तप्राणिनामन्तः त्रिस्थानगोचरं स्थानत्रयवदित्यर्थः । यत् शिवागमप्रसिद्धमहालिङ्गतत्त्वम् आगमा उपनिषदो ब्रह्मेत्याहुः, तज्ज्योतिर्लिङ्गं सर्वदेहिनां समस्तप्राणिनां पूर्वहृदये मूलाधारे, मध्यहृदये हृदये, ऊर्ध्वहृदये भ्रूमध्ये सदा भति, गुरूपदेशाद्विज्ञेयमित्यर्थः ॥ ३४-३५ ॥

सएह समस्त प्राणीक भीतर तीन स्थानमे रहैत छथि । ओ स्थान थिक– (१) सकल प्राणीक शरीरमे स्थित मूलाधार (नाभिसँ चारि आङुर नीचाँ), (२) हृदय ओ (३) दुनू भौंहक बीच । ई ज्योतिर्मय लिङ्ग एही तीनू स्थानमे सतत प्रकाशित रहैत अछि । आगम शास्त्र ताही कें ब्रह्म कहैत अछि ॥ ३४-३५ ॥

नन्वखण्डितस्य महालिङ्गस्य खण्डितत्वं कथमित्यत्राह–

अपरिच्छिन्नमव्यक्तं लिङ्गं ब्रह्म सनातनम् ।
उपासनार्थमन्तःस्थं परिच्छिन्नं स्वमायया ॥ ३६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अखण्डितमप्रकटं नित्यं ब्रह्मशब्दाभिधेयम् अन्तःस्थं लिङ्गम् एकमपि, उपासनार्थं भक्तानां ध्यानपूजार्थं स्वमायया स्वस्वातन्त्र्यापरपर्यायमायाशक्त्या परिच्छिन्नं स्थानभेदेन लिङ्गत्रयरूपं ज्ञातमित्यर्थः ॥ ३६ ॥

अपरिच्छिन्न (सीमामे बान्हल नहि), अव्यक्त (बाह्यमे अप्रकट), सनातन ब्रह्मरूप लिङ्ग भक्तक उपासनाक लेल अपन मायासँ मूलाधारक भीतर रहि परिच्छिन्न भए जाइत छथि ॥ ३६ ॥

ननु परब्रह्म लिङ्गरूपमिति कथं व्यवह्रियत इत्यत्राह–

लयं गच्छति यत्रैव जगदेतच्चराचरम् ।
पुनः पुनः समुत्पत्तिं तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ३७ ॥

यत्र ब्रह्माणि एतच्चराचरं जगद् लयं गच्छति, पुनः पुनरुत्पत्तिं गच्छतीति तच्छाश्वतं ब्रह्म लिङ्गमित्यर्थः ॥ ३७ ॥

जाहिमे ई समस्त चर-अचर जगत् लीन भए जाइत अछि तथा पुनः पुनः उत्पन्न होइत अछि ओ सनातन ब्रह्मरूपी लिङ्ग थिकाह ॥ ३७ ॥

उक्तार्थं निगमयति–

तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं सत्तानन्दचिदात्मकम् ।
बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मशब्दाभिधेयकम् ॥ ३८ ॥

तस्मात् सच्चिदानन्दात्मकं लिङ्गं महालिङ्गं बृहत्वान्महत्त्वाद् बृंहणत्वाद् विश्वसृष्ट्युन्मुखत्वाच्च ब्रह्मशब्दाभिधेयकमिति ख्यातं प्रख्यातमित्यर्थः । एवं परब्रह्मैव महालिङ्गं, महालिङ्गमेव परब्रह्मेति भावः ॥ ३८ ॥

तेँ ओ चिद् आनन्दमय सत्ता लिङ्ग कहल गेल अछि । सभक अपेक्षा बृहत् होएबाक तथा सभक पोषक होएबाक कारण उवेह सच्चिदानन्द तत्त्व ब्रह्मशब्दक अर्थ होइत अछि । एहि तरहेँ परब्रह्मेँ महालिङ्ग ओ महालिङ्गे परब्रह्म थिकाह । बृह् वा बृंह धातुसँ मन् प्रत्यय कएला पर ब्रह्मशब्द बनैछ ॥ ३८ ॥

अथोक्तस्थानेष्वेकत्र ज्योतिर्लिङ्गानुसन्धानमान्तरलिङ्गधारणमित्याह–

आधारे हृदये वापि भ्रूमध्ये वा निरन्तरम् ।
ज्योतिर्लिङ्गानुसन्धानमान्तरं लिङ्गधारणम् ॥ ३९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्टम् ॥ ३९

मूलाधार, हृदय ओ भ्रूमध्यमे ओहि ज्योतिर्लिङ्गक निरन्तर अनुसन्धान करब कें आन्तर लिङ्गधारण कहल गेल अछि ॥ ३९ ॥

अथ केन प्रकारेणानुसन्धेयमित्यत्राह–

आधारे कनकप्रख्यं हृदये विद्रुमप्रभम् ।
भ्रूमध्ये स्फटिकच्छायं लिङ्गं योगी विभावयेत् ॥ ४० ॥

स्पष्टम् ॥ ४० ॥

योगी अपन मूलाधारमे सोनाक समान, हृदयमे मूँगाक समान ओ भ्रूमध्यमे स्फटिकक समान लिङ्गक ध्यान करथि ॥ ४० ॥

अथेदमन्तर्लिङ्गधारणं बाह्यलिङ्गधारणापेक्षया विशिष्टमित्याह–

निरुपाधिकमाख्यातं लिङ्गस्यान्तरधारणम् ।
विशिष्टं कोटिगुणितं बाह्यलिङ्गस्य धारणात् ॥ ४१ ॥

स्पष्टम् ॥ ४१ ॥

ई निरुपाधिक (निर्विशेषण) लिङ्गक आन्तर धारण बाहरी लिङ्गधारणक अपेक्षया करोड़गुना अधिक श्रेष्ठ थिक ॥ ४१ ॥

ये धारयन्ति हृदये लिङ्गं चिद्रूपमैश्वरम् ।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरसंसारमण्डले ॥ ४२ ॥

परमुक्तिरेवेत्यर्थः ॥ ४२ ॥

जे क्यो अपन हृदयमे चिद्रूप शिवलिङ्गक धारण करैत छथि हुनक घोर संसारमण्डलमे पुनर्जन्म नहि होइत छैन्ह ॥ ४२ ॥

तत्कथमित्यत्राह–

अन्तर्लिङ्गानुसन्धानमात्मविद्यापरिश्रमः ।
गुरूपासनशक्तिश्च कारणं मोक्षसम्पदाम् ॥ ४३ ॥

'आत्मलाभान्न परं विद्यते' इति श्रुतेर्नाहमीश्वर इत्यज्ञाननिवारकीभूतात्मविद्यानैशित्य[1]गुरुभजनसामर्थ्ययोरप्यन्तर्लिङ्गानुसन्धानं मोक्षसम्पत्कारणमित्यर्थः ॥ ४३ ॥

१. नैशित्यं तीक्ष्णता तीव्रोत्कण्ठा वा ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्तर्लिङ्गक ध्यान, आत्मविद्यामे परिश्रम तथा गुरुसेवाक सामर्थ्य– ई तीनू मोक्षप्राप्तिक कारण थिक ।। ४३ ।।

तस्मादचञ्चलहृदयानां शिवयोगिनामन्तर्लिङ्गानुसन्धान एव रुचिर्न बाह्य इत्याह–

वैराग्यज्ञानयुक्तानां योगिनां स्थिरचेतसाम् ।
अन्तर्लिङ्गानुसन्धाने रुचिर्बाह्ये न जायते ।। ४४ ।।

स्पष्टम् ।। ४४ ।।

तेँ ज्ञान ओ वैराग्यसँ युक्त स्थिरचित्त योगीक रुचि अन्तर्लिङ्गेक अनुसन्धान (सतत चिन्तन)मे रहैछ, बाह्यलिङ्गक अनुसन्धानमे नहि ।। ४४ ।।

किमुत परिपक्वब्रह्मादयोऽपि सुज्ञानयोगेनैव ज्योतिर्लिङ्गं पश्यन्तीत्याह–

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्याश्च लोकपाः ।
मुनयः सिद्धगन्धर्वा दानवा मानवास्तथा ।। ४५ ।।
सर्वे च ज्ञानयोगेन सर्वकारणकारणम् ।
पश्यन्ति हृदये लिङ्गं परमानन्दलक्षणम् ।। ४६ ।।

अत्र 'ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते' इति श्रुतेः कार्यकोटिप्रविष्टरुद्रो विवक्षितः, न तु त्रिमूर्तिकारणीभूतमहालिङ्गरुद्र इत्यनुसन्धेयम् ।। ४५-४६ ।।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र आदि लोकपाल, मुनिगण, सिद्ध, गन्धर्व, दानव ओ मानव सब ज्ञानयोगक द्वारा समस्त कारणक कारण परमानन्द स्वरूप लिङ्गक हृदयमे साक्षात्कार करैत छथि ।। ४५-४६ ।।

तस्मात् सांसारिकदुःखनिवृत्त्यर्थमन्तर्लिङ्गानुसन्धानमेव कुर्यादित्याह–

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शाङ्करं लिङ्गमुत्तमम् ।
अन्तर्विभावयेद् विद्वानशेषक्लेशमुक्तये ।। ४७ ।।

स्पष्टम् ।। ४७ ।।

तेँ विद्वान् सकल क्लेशसँ मुक्तिक लेल सभ प्रयास सँ उत्तम शिवलिङ्गक ध्यान हृदयमे करथि ।। ४७ ।।

नन्वेवं चेद् बाह्यलिङ्गधारणं किमर्थमित्याकाङ्क्षायामाह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्तर्धारयितुं लिङ्गमशक्तः शक्त एव वा ।
बाह्यं च धारयेल्लिङ्गं तद्रूपमिति निश्चयात् ॥ ४८ ॥

अन्तर्लिङ्गधारणे यद्यशक्तः शक्त एव वा, स्फटिकशिलादिनिर्मितबाह्यलिङ्गं तद्रूपमिति हृदयकमलाश्रितचिन्मयमहालिङ्गस्वरूपवदिति निश्चयात् सन्देहराहित्येन धारयेत्,

बिन्दुस्वरूपामलमूलपीठं नादस्वरूपं स्फुरदूर्ध्वपीठम् ।
कलात्मतिर्यग्गतगोमुखाढ्यं चिद्रूपलिङ्गं हृदयाब्जसंस्थम् ॥

इति शिवालोकवचनात् तद्रूपबाह्यलिङ्गमन्तर्लिङ्गस्मरणार्थं वीरशैवो धारयेदित्यर्थः ॥ ४८ ॥

अन्तर्लिङ्गक धारणमे समर्थ होथि वा असमर्थ, हुनका चाही जे बाह्यलिङ्गकेँ अन्तर्लिङ्गक रूप बुझि अवश्य धारण करथि ॥ ४८ ॥

अथ महालिङ्गभेदं निरूपयति–

लिङ्गं तु त्रिविधं प्रोक्तं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम् ।
इष्टलिङ्गमिदं सूक्ष्मं यद् बाह्ये धार्यते तनौ ॥ ४९ ॥
प्राणलिङ्गमिदं सूक्ष्मं यदन्तर्भावनामयम् ।
परात्परं तु यत्प्रोक्तं तृप्तिलिङ्गं तदुच्यते ॥ ५० ॥

लिङ्गं तु महालिङ्गमित्यर्थः, तत् स्थूलं सूक्ष्मं परात्परमिति त्रिविधम् । तत्र यद् बाह्ये तनौ धार्यते तदिदमिष्टलिङ्गं स्थूलम् । यद् यल्लिङ्गमन्तः हृदयकमले भावनामयं सन्मात्रभावनारूपं तत् प्राणलिङ्गं सूक्ष्मम्, यद् यल्लिङ्गं परात्परमिति प्रोक्तं तत् तृप्तिलिङ्गमित्युच्यत इत्यर्थः ॥ ४९-५० ॥

लिङ्ग तीन प्रकारक होइत अछि– स्थूल, सूक्ष्म ओ परात्पर । जे इष्ट लिङ्ग बाहरी शरीरपर धारण कएल जाइत अछि से स्थूल लिङ्ग थिक । जे प्राणलिङ्ग अन्तःकरणमे भावनारूपमे रहैछ से सूक्ष्मलिङ्ग थिक आ जे तृप्तिलिङ्ग थिक सएह परात्पर कहबैछ ॥ ४९-५० ॥

नन्विदं स्थूललिङ्गं किमर्थं धारणीयमित्यत्राह–

भावनातीतमव्यक्तं परब्रह्म शिवाभिधम् ।
इष्टलिङ्गमिदं साक्षादनिष्टपरिहारतः ॥
धारयेदवधानेन शरीरे सर्वदा बुधः ॥ ५१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अव्यक्तं रूपाद्यभावादबाह्येन्द्रियगोचरम्, समलमानसवृत्त्यगम्यत्वाद्, भावनातीतं शिवाभिधं परब्रह्म निगमागमप्रसिद्धशिवाख्यपरब्रह्मैव, अनिष्टपरिहारतः संसारपाशलक्षणानिष्टपरिहारतः, इष्टरूपपरात्परमुक्तिप्रदानतः, साक्षात् प्रत्यक्षीभूतेष्टलिङ्गमिदम्– 'इष्टमूर्जं तपसानुयच्छत' इत्यथर्वशिरःसिद्धं लिङ्गं बुधो निगमागमनिपुणः, शरीरे सावधानेन सदा धारयेदित्यर्थः ॥ ५१ ॥

भावनासँ परे, अतएव अव्यक्त शिवनामक परब्रह्म अनिष्टसँ परिहार करबाक कारण साक्षात् इष्टलिङ्ग थिकाह । विद्वानकेँ चाही जे ओ सावधान भए सतत शरीरसँ एकर धारण करथि ॥ ५१ ॥

अथेदमिष्टलिङ्गं शरीरे कुत्र धारणीयमित्यत्राह–

मूर्ध्नि वा कण्ठदेशे वा कक्षे वक्षःस्थलेऽपि वा ।
कुक्षौ हस्तस्थले वापि धारयेल्लिङ्गमैश्वरम् ॥ ५२ ॥

स्पष्टम् ॥ ५२ ॥

माँथ, कण्ठ, पाँजर, छाती, पेट, तरहत्थी आदि पर शिवलिङ्गक धारण करक चाही ॥ ५२ ॥

अथ निषेधस्थानमाह–

नाभेरधस्ताल्लिङ्गस्य धारणं पापकारणम् ।
जटाग्रे त्रिकभागे च मलस्थने न धारयेत् ॥ ५३ ॥

त्रिकभागः पृष्ठभाग इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ५३ ॥

नाभिसँ नीचाँ लिङ्गक धारण पापक कारण थिक । जटाक अगिला भागमे, पीठ पर मलस्थानमे लिङ्गक धारण नहि करी ॥ ५३ ॥

अथेदं लिङ्गं कुत्र पूजनीयमित्यत्राह–

लिङ्गधारी सदा शुद्धो निजलिङ्गं मनोरमम् ।
अर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैः करपीठे समाहितः ॥ ५४ ॥

स्पष्टम् ॥ ५४ ॥

लिङ्गक धारण करएवाला सदा शुद्ध होइत छथि । हुनका चाही कि ओ एकाग्र भए अपन कर रूपी पीठ (सिद्धस्थान)पर लिङ्गक चानन-फूल आदिसँ पूजा करथि ॥ ५४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाह्यपीठार्चनादेतत् करपीठार्चनं वरम् ।
सर्वेषां वीरशैवानां मुमुक्षूणां निरन्तरम् ॥ ५५ ॥

स्पष्टम् ॥ ५५ ॥

मोक्षार्थी सकल वीरशैवक लेल ई करपीठार्चन बाह्यपीठार्चनसँ श्रेष्ठ थिक ॥ ५५ ॥

अथेदं लिङ्गधारणं कैरङ्गीकृतमित्यत्राह–

ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा मुनयो गौतमादयः ।
धारयन्ति सदा लिङ्गमुत्तमाङ्गे विशेषतः ॥ ५६ ॥
लक्ष्म्यादिशक्तयः सर्वाः शिवभक्तिविभाविताः ।
धारयन्त्यलिकाग्रेषु शिवलिङ्गमहर्निशम् ॥ ५७ ॥

अनने स्त्रीपुरुषयोरपि लिङ्गधारणमुक्तं भवति ॥ ५६-५७ ॥

ब्रह्मा विष्णु आदि देवगण ओ गौतम आदि मुनिगण विशेष रूपेँ एहि शिवलिङ्गक शिर पर धारण करैत छथि । शिवभक्तिसँ परिपूर्ण लक्ष्मी आदि सभ शक्ति एहि शिवलिङ्गक धारण मस्तकपर राति-दिन करैत छथि ॥ ५६-५७ ॥

अथेदं लिङ्गधारणं कुत्रोक्तमित्याह–

वेदशास्त्रपुराणेषु कामिकाद्यागमेषु च ।
लिङ्गधारणमाख्यातं वीरशैवस्य निश्चयात् ॥ ५८ ॥

वेद, शास्त्र, पुराण ओ कामिक आदि आगममे वीर शैवक लेल लिङ्गधारण आवश्यक कहल गेल अछि ॥ ५८ ॥

अथ श्रुतौ कुत्र प्रसिद्धमित्यत्राह–

ऋगित्याह पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते ।
तस्मात्पवित्रं तल्लिङ्गं धार्यं शैवमनामयम् ॥ ५९ ॥

'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते' इति ऋग्वेद आह । भो ब्रह्मणस्पते ते तव लिङ्गमिति शेषः । विततं शिवादिभूम्यन्तं विस्तृतम्, पवित्रं पावनम्, तस्माद् अनामयं दोषरहितं शैवं तल्लिङ्गं धारयेदित्यर्थः ॥ ५९ ॥

ऋग्वेद कहैत अछि– 'पवित्रं ते विततं ब्रह्मस्पते' अर्थात् हे ब्रह्मणस्पते !

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ई शिवलिङ्ग वितत (सर्वत्र व्याप्त) अछि ओ अहाँक लेल पवित्र अछि । तेँ एहि निष्कलुष लिङ्गक धारण करक चाही ।। ५९ ।।

ननु किमस्य धारणेनेत्याह–

ब्रह्मेति लिङ्गमाख्यातं ब्रह्मणः पतिरीश्वरः ।
पवित्रं तद्धि विख्यातं तत्सम्पर्कात्तनुः शुचिः ।। ६० ।।

तत्पवित्रमिति तत्सम्पर्कात् तनु शरीरं पवित्रं भवतीत्यर्थः ।। ६० ।।

लिङ्गकेँ ब्रह्म कहल गेल अछि । ब्रह्माक पति (ईश्वर) शिव छथि। एहि तरहेँ लिङ्गकेँ पवित्र कहल गेल अछि । तकर सम्पर्कसँ धारण करएवालाक शरीरो शुद्ध भए जाइत अछि ।। ६० ।।

अथैतादृशं लिङ्गं दीक्षया रहितो न धारयेदित्याह–

अतप्ततनुरज्ञो वै आमः संस्कारवर्जितः ।
दीक्षया रहितः साक्षान्नाप्नुयाल्लिङ्गमुत्तमम् ।। ६१ ।।

अतप्ततनुः तपोरहितदेहः, आमः अपरिपक्वः, अवैराग्यशील इत्यर्थः । संस्कारवर्जितः शिवसंस्काररहितः, अज्ञः नित्यानित्यवस्तुविवेकशून्यः, दीक्षया रहितः गुरुकारुण्यरहितः, साक्षात् प्रत्यक्षम् उत्तमं श्रेष्ठलिङ्गं नाप्नुयाद् न धारयेत्। अस्मिन्नर्थे– 'अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते'[1] इति श्रुतिः । तद् आम इति विच्छेदः तत् तल्लिङ्गमित्यर्थः । अनेन सुप्रसन्नेन गुरुणा दत्तं लिङ्गमेव भोगमोक्षप्रदम्, स्वेच्छया धृतं विफलमिति सूचितम् ।। ६१ ।।

तपस्यारहित अज्ञानी अपरिपक्व (अस्थिर) हृदयवाला, संस्कारहीन तथा दीक्षारहत मनुष्यकेँ स्वतः उत्तम लिङ्गक धारण नहि करबाक चाही, कारण स्वेच्छया लिङ्गधारण पाप थिक ।। ६१ ।।

अथ लिङ्गधारणे याजुषी श्रुतिरप्यस्तीत्याह–

अघोरा पापकाशीति या ते रुद्र शिवा तनूः ।
यजुषा गीयते यस्मात् तस्माच्छैवोऽघवर्जितः ।। ६२ ।।

'या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी'[2] इति श्रीरुद्रश्रुतिः । अस्याः

---

१. ऋक्सं० ९ । ८३ । १

२. या ते रुद्र शिवा तनूघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरशिन्ताभिचाकशीहि ।। (वा०सं० १६ । २)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रुतरेयमर्थः—भो रुद्र, ते तव, शिवा मङ्गलस्वरूपा, या तनूः, 'लिङ्गं तु शिवयोर्देहः' इत्यागमोक्तेः शिवशक्त्या(त्मिका) लिङ्गमूर्तिः, सा अघोरा शान्ता, अपापकाशी अपापेषु भक्तेषु काशत इति अपापकाशी, इष्टलिङ्गरूपेण तत्र स्थिता, इति यजुषा यजुर्वेदेन, यस्माद् गीयते, तस्मात् शैवः शिवलिङ्गसम्बन्धी, अघवर्जितः पापरहित इत्यर्थः ॥ ६२ ॥

यजुर्वेद कहैत अछि— 'या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी'— अर्थात् हे रुद्र ! अहाँक शरीर अघोर, पापरहित ओ मङ्गलकारी थिक' । तेँ लिङ्गधारण करएवाला शिवोपासक निष्पाप होइत छथि ॥ ६२ ॥

अथ लिङ्गधारणस्थलं समाप्य तत्सम्पन्नस्य भस्मधारणस्थलं सूचयति—

यो लिङ्गधारी नियतान्तरात्मा
नित्यं शिवाराधनबद्धचित्तः ।
स धारयेत् सर्वमलापहत्यै
भस्मामलं चारु यथाप्रयोगम् ॥ ६३ ॥

इति श्रीवीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले
गुरुकारुण्यलिङ्गधारणप्रसङ्गो नाम षष्ठः परिच्छेदः ॥ ६ ॥

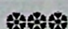
यः पुरुषो लिङ्गधारी लिङ्गधारणसम्पन्नः, नियतान्तरात्मा निर्मलान्तःकरणः, नित्यं शिवपूजाबद्धचित्तः, स शिवलिङ्गधारकः सर्वमलापहत्यै सर्वदोषनिवृत्त्यै चारु मनोहरम् अमलं निर्मलं भस्म यथाप्रयोगं शास्त्रोक्तप्रकारेण धारयेदित्यर्थः ॥ ६३ ॥

श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां
तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां भक्तस्थले
गुरुकारुण्यलिङ्गधारणप्रसङ्गो नाम षष्ठः परिच्छेदः ॥ ६ ॥



जे लिङ्गधारी संयतचित्तवाला नित्य शिवाराधनमे मनकेँ लगओने रहैत छथि, ओ सकल पापक नश करबा हेतु सुन्दर एवं निर्मल भस्मकेँ विधिविधानक अनुसार धारण करथि ॥ ६३ ॥

एहि प्रकारेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थमे गुरुकारुण्यलिङ्गधारणप्रसङ्ग
नामक षष्ठ परिच्छेदक विद्यावाचस्पति पं० श्रीशशिनाथ झाकृत
प्रबोधिनी मैथिलीव्याख्या पूर्ण भेल ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सप्तमः परिच्छेदः

भस्मधारणस्थलम्

अथ 'भूत्यै न प्रमदितव्यम्'[1] इति श्रुतिप्रसिद्धभस्मधारणस्थलं निरूपयति श्रीरेणुकः । अत्रादौ निरुपाधिकभस्मधारणं सूत्रद्वयेन निरूपयति–

भस्मधारणसंयुक्तः पवित्रो नियताशयः ।
शिवाभिधानं यत्प्रोक्तं भासनाद्भसितं तथा ॥ १ ॥
महाभस्मेति सञ्चित्य महदेवं प्रभामयम् ।
वर्तन्ते ये महाभागा मुख्यास्ते भस्मधारिणः ॥ २ ॥

भस्मधारणसंयुक्तः शिवलिङ्गधारकः, नियताशयः– 'भस्मध्यानात् सन्धानं भवति, भस्मध्यानात् पञ्चाक्षरीस्मरणं भवति, तस्माद् ध्यानात् स्थाणुत्वं च गच्छति । स एष भस्मज्योतिः, स एष भस्मज्योतिः' इति भस्मजाबालश्रुते[2]-र्भस्मज्योतिर्लिङ्गमयमिति नियमितचित्तः सन्, पवित्रः शुद्धो यद्भस्मज्योतिर्लिङ्गं शिवाभिधानं परशिवपरब्रह्माभिधानं सत् प्रोक्तमिति प्रभामयं ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपम्, तं महादेवं भसनात् प्रकाशनाद् भसितं भसितमिति तथा महाभस्मेति सञ्चित्य महाभागाः श्रेष्ठा ये केचिल्लिङ्गधारका वर्तन्ते ते मुख्या मुख्यभस्मधारिणो निरुपाधिकभस्मधारिण इत्यर्थः ॥ १-२ ॥

भस्मधारणक स्थल– भस्मधारण कयनिहार व्यक्ति पवित्र ओ नियत आशयवाला भए जाइत छथि । शिवक नाम जे कहल गेल अछि (पञ्चाक्षर मन्त्र 'नमः शिवाय') से शिवक भासन (प्रकाशन) करबाक कारण भसित (भस्म) थिक । तकरा महाभस्म बुझि कए जे व्यक्ति प्रभामय महादेवक अनुवर्तन (सतत चिन्तन) करैत छथि, सएह मुख्य भस्मधारी थिकाह ॥ १-२ ॥

१. तै०उ० ११ । १ .
२. अयमुद्धृतांशो भस्मजाबालोपनिषदि न प्रप्यते ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ सोपाधिकभस्मस्वरूपं निरूपयति–

शिवाग्न्यादिसमुत्पन्नं मन्त्रन्यासादियोगतः ।
तदुपाधिकमित्याहुर्भस्म तन्त्रविशारादाः ॥ ३ ॥

यद्भस्म मन्त्रन्यासादियोगतः पञ्चब्रह्ममन्त्रन्यासादिसम्बन्धात् शिवाग्न्यादिसमुत्पन्नं शिवमन्त्रसंस्कृताग्निसमुत्पन्नं भवति, तत् तद्भस्म तन्त्रविशारदाः शिवागमप्रवीणा उपाधिकं भस्म सोपाधिकं भस्मेत्याहुरित्यर्थः ॥ ३ ॥

जे भस्म मन्त्र–न्यास इत्यादिक योग द्वारा शिवमन्त्रसँ सुसंस्कृत अग्नि सँ उत्पन्न होइत अछि तकरा तन्त्रवेत्ता लोकनि उपाधियुक्त (सोपाधिक) भस्म कहैत छथि ॥ ३ ॥

अथास्य भस्मनः कारणभेदेन नामपञ्चकमस्तीत्याह–

विभूतिर्भसितं भस्म क्षारं रक्षेति भस्मनः ।
एतानि पञ्च नामानि हेतुभिः पञ्चभिर्भृशम् ॥ ४ ॥

स्पष्टम् ॥ ४ ॥

विभूति, भसित, भस्म, क्षार ओ रक्षा– ई भस्मक पाँच नाम पाँच कारणसँ पड़ल अछि ॥ ४ ॥

तत्कारणमन्वर्थनाम कृत्वा कथयति–

विभूतिर्भूतिहेतुत्वाद् भसितं तत्त्वभासनात् ।
पापानां भर्त्सनाद्भस्म क्षरणात् क्षारमापदाम् ॥ ५ ॥
रक्षणात् सर्वभूतेभ्यो रक्षेति परिगीयते ।

अणिमाद्यष्टैश्वर्यकारणत्वाद् विभूतिः शिवतत्त्वप्रकाशनाद्भसितम्, पापानां मनोवाक्कायजन्यानां भर्त्सनाद् भयोत्पादनाद्भस्म, आपदां तापत्रयोत्पन्नविपदां क्षारणात् क्षयीकरणात् क्षारम्, सर्वभूतेभ्यो ग्रहयक्षादिभ्यो (रक्षणात्) रक्षेति परिगीयत इत्यर्थः ॥ ५ ॥

भूतिक अर्थ होइछ ऐश्वर्य, से विशेष रूपेँ रहबाक कारण विभूति नाम पड़ल, तत्त्वक भासन (प्रकाशन) करबाक कारण ई भसित कहओलक, पापक भर्त्सन (गंजन) करबाक कारण ई भस्म नाम पओलक, विपत्तिक क्षरणक कारण क्षार आ सभ भूत (आक्रामक प्राणी) सँ रक्षणक कारण एकरा रक्षा कहल जाइत अछि ॥ ५–६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नन्वेकविधक्रियाभेदः किंनिबन्धन इत्यत्र गोमूलक इत्याह—

नन्दा भद्रा च सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा ॥ ६ ॥
पञ्च गावो विभोर्जाताः सद्योजातादिवक्त्रतः ।

शिवस्य सद्योजातमुखान्नन्दा, वामदेववदनाद् भद्रा, अघोरास्यात् सुरभिः, तत्पुरुषवक्त्रात् सुशीला, ईशानाननात् सुमनाः । एवं पञ्च गावो जाताः । तत्कृतोऽयं कार्यभेद इत्यर्थः ॥ ६ ॥

नन्दा, भद्रा, सुरभि, सुशीला ओ सुमना– ई पाँच गाय परमेश्वरक (शिवक) सद्योजात आदि पाँच मुँहसँ उत्पन्न भेल । अर्थात् सद्योजातसँ नन्दा, वामदेवसँ भद्रा, अघोरसँ सुरभि, तत्पुरुषसँ सुशीला ओ ईशान सँ सुमना उत्पन्न भेल ॥ ६–७ ॥

तर्हि किमासां रूपमित्यत्राह—

कपिला कृष्णा च धवला धूम्रा रक्ता तथैव च ॥ ७ ॥
नन्दादीनां गवां वर्णाः क्रमेण परिकीर्तिताः ।

तथैव क्रमेणेति सम्बन्धः ॥ ७ ॥

एहि नन्दा आदि पाँचो गाइक रूप क्रमशः कैल (गहुमी वर्ण देह ओ मधुक रंगक खुरवाली), कारी, उज्जर (चरक वर्ण ओ कारी खुरवाली), सिलेब (करिछौन) आ गोल (लाल) अछि ॥ ८ ॥

अथ कया गवा कीदृशं भस्मोत्पन्नमित्यत्राह बृहज्जाबालश्रुत्यर्थमेव—

सद्योजाताद् विभूतिश्च वामाद् भसितमेव च ॥ ८ ॥
अघोराद् भस्म सञ्जातं तत्पुरुषात् क्षारनाम च ।
रक्षा चेशानवक्त्राच्च नन्दादिद्वारतोऽभवत् ॥ ९ ॥

सद्योजातमुखोत्पन्ननन्दया विभूतिः, वामदेवमुखोद्भूतभद्रया भसितम्, अघोरमुखसञ्जातसुरभिगवा भस्म, तत्पुरुषमुखाविर्भूतसुशीलया क्षारम्, ईशानमुखनिर्गतसुमनसा रक्षा, अभवदासीदित्यर्थः ॥ ८–९ ॥

सद्योजात सँ विभूति, वामदेवसँ भसित, अघोरसँ भस्म, तत्पुरुषसँ क्षार ओ ईशानवक्त्रसँ रक्षा नामक भस्म क्रमशः नन्दा आदिक द्वारा उत्पन्न भेल ॥ ८–९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथैषां विनियोगमाह–

धारयेन्नित्यकार्येषु विभूतिं च प्रयत्नतः ।
नैमित्तिकेषु भसितं क्षारं काम्येषु सर्वदा ॥ १० ॥
प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु भस्म नाम यथाविधि ।
रक्षा च मोक्षकार्येषु प्रयोक्तव्या सदा बुधैः ॥ ११ ॥

बुधैः वीरशैवमतप्रविष्टविद्वज्जनैः प्रयोक्तव्यं धार्यमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १०-११ ॥

प्रयत्नपूर्वक नित्यकर्ममे विभूति, नैमित्तिक कर्ममे भसित, काम्यकर्ममे क्षार, प्रायश्चित्तकर्ममे भस्म ओ मोक्षकार्यमे रक्षा भस्मक यथाविधि सदा प्रयोग करबाक चाही ॥ १०-११ ॥

अथैवंविधभस्मनां वर्णमाह–

नन्दादीनां तु ये वर्णाः कपिलाद्याः प्रकीर्तिताः ।
त एव वर्णा विख्याता भूत्यादीनां यथक्रमम् ॥ १२ ॥

स्पष्टम् ॥ १२ ॥

नन्दा आदि गाइक जे वर्ण कहल गेल अछि सएह क्रमशः विभूति आदि पाँचो भस्मक कहल गेल अछि ॥ १२ ॥

अथैतद्भस्मोत्पत्तिश्चतुर्विधेत्याह–

भस्मोत्पादनमुद्दिष्टं चतुर्धा तन्त्रवेदिभिः ।
कल्पं चैवानुकल्पं च तूपकल्पमकल्पकम् ॥ १३ ॥
एषामादिममुत्कृष्टमन्यत् सर्वमभावतः ।

कल्पानुकल्पोपकल्पाकल्पाख्यचतुर्विधभस्मस्वादिमं प्राथमिकं कल्पं भस्मोत्कृष्टम्, अन्यत् सर्वं शिष्टं त्रिविधं भस्म अभावतः कल्पभस्मालाभादङ्गीकरणीयमित्यर्थः ॥ १३ ॥

तन्त्रवेत्तालोकनि भस्मक उत्पादन चारि प्रकारेँ कहने छथि– कल्प, अनुकल्प, उपकल्प ओ अकल्प । एहिमे प्रथम उत्कृष्ट थिक, तकर अभावमे अन्यक उपयोग कर्तव्य थिक ॥ १३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ तेषां स्वरूपं क्रमेण कथयति–

यथाशास्त्रोक्तविधिना गृहीत्वा गोमयं नवम् ॥ १४ ॥
सद्येन वामदेवेन कुर्यात्पिण्डमनुत्तमम् ।
शोषयेत्पुरुषेणैव दहेद् घोराच्छिवाग्निना ॥ १५ ॥
कल्पं तद्भस्म विज्ञयेमनुकल्पमथोच्यते ।
वनेषु गोमयं यच्च शुष्कं चूर्णीकृतं तथा ॥ १६ ॥
दग्धं चैवानुकल्पाख्यमापणादिगतं तु यत् ।
वस्त्रेणोत्तरितं भस्म गोमूत्राबद्धपिण्डितम् ॥ १७ ॥
दग्धं प्रागुक्तविधिना भवेद् भस्मोपकल्पकम् ।
अन्यैरापादितं भस्माप्यकल्पमिति निश्चितम् ॥ १८ ॥

शास्त्रोक्तप्रकारेण नन्दादिभिराविर्भूतनूतनगोमयं सद्येन सद्योजातमन्त्रेणान्तरे गृहीत्वा वामदेवमन्त्रेण पिण्डीकृतं तत्पुरुषमन्त्रेण शोषयित्वा शिवमन्त्रसंस्कृताग्निना घोरादघोरमन्त्राद् दहेद् भस्मीकुर्यादित्यर्थः । अथैशानमन्त्रेण बिल्वादिपात्रे स्थापितं तद्भस्म कल्पमिति ज्ञातुं योग्यमित्यर्थः । अरण्येषु यच्छुष्कं गोमयं चूर्णीकृत्य पूर्ववद्दग्धं भस्मानुकल्पाख्यमित्यर्थः । अत्र मन्त्रत्रयलोपः । आपणादिगतं यद्भस्मास्ति तद्वस्त्रेण संशोधितं सत् पुनर्गोमूत्रेण पिण्डीकृतं सत् पश्चात् प्रागुक्तविधिना दग्धं चेदुपकल्पाख्यं भस्म भवेत् स्यादित्यर्थः । अन्यैः अमन्त्रज्ञैः, आपादितं सम्पादितं भस्म अकल्पमिति कल्पितं कथितमित्यर्थः ॥ १४-१८ ॥

भस्मक उत्पादनक विधि– शास्त्रोक्त विधिसँ 'सद्योजातं प्रपद्ये' मन्त्र पढ़ैत गाइक टटका गोबर लए वामदेवमन्त्र पढ़ि तकर सुन्दर चिपड़ी बनाबी । 'तत्पुरुषाय विद्महे' मन्त्र पढ़ि ओकरा सुखाबी । अघोरमन्त्र पढ़ि ओकरा जराबी । एहि तरहेँ तैयार कएल भस्म 'कल्प' कहबैत अछि । एकर बाद अनुकल्प बुझबैत छथि– वनमे जे सुखाएल गोबर तरक चूर्ण बनाए तकरा जराए 'अनुकल्प' नामक भस्म बनैछ । जे भस्म दोकानसँ आनि कपड़छान कए गोमूत्रसँ सानि गोला बनाए पूर्वोक्त विधिसँ जराओल जाए से 'उपकल्प' भस्म बनि जाइत अछि । एहिसँ भिन्न अविधिज्ञ द्वारा तैयार भस्म 'अकल्प' कहबैत अछि ॥ १४-१८ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथैवंविधभस्मना स्नानं कुर्यादित्याह–

एष्वेकतममादाय पात्रेषु कलशादिषु ।
त्रिसन्ध्यमाचरेत् स्नानं यथासम्भवमेव वा ॥ १९ ॥

कलशादिपात्रेषु भिन्नतया स्थापितेष्वेषु भस्मसु, एकतमं भस्मादाय, त्रिकालमेककालं वा स्नानं कुर्यादेवेत्यर्थः ॥ १९ ॥

उपर्युक्त भस्ममे कोनो एक लए घैल आदि पात्रमे राखि ओहिसँ तीनू सन्ध्या (प्रातः, मध्याह्न आ सायाह्न)मे स्नान करी अथवा यथासम्भव एको बेर अवश्य भस्मस्नान करी ॥ १९ ॥

कथं कर्तव्यमित्यत्राह–

स्नानकाले करौ पादौ प्रक्षाल्य विमलाम्भसा ।
वामहस्ततले भस्म क्षिप्त्वाच्छाद्यान्यपाणिना ॥ २० ॥
अष्टकृत्वाथ मूलेन मौनी भस्माभिमन्त्र्य च ।
शिर[1] ईशानमन्त्रेण पुरुषेण मुखं तथा ॥ २१ ॥
हृत्प्रदेशेऽप्यघोरेण वामदेवेन गुह्यकम् ।
पादौ सद्येन सर्वाङ्गं प्राणवेनैव सेचयेत् ॥ २२ ॥

भस्मस्नानकाले स्वच्छोदकेन हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य वामकरतले भस्म संस्थाप्य दक्षिणपाणिनाऽऽच्छाद्य दक्षिणोरौ निवेश्य 'मौनी भस्माभिमन्त्रयेत्' इति शिवागमवचनाद् मौनी भूत्वा मूलेनाष्टवारमभिमन्त्र्य शिरोमुखहृदयनाभिपादेषु प्रणतिपूर्वकैरीशानादिमन्त्रैरभ्युक्षयेत् प्रणवेन सर्वाङ्गं प्रोक्षयेदित्यर्थः ॥ २०-२२ ॥

---

१. ईशान आदि मन्त्र निम्नलिखित थिक–

ईशान– ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ।
ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम् ॥

तत्पुरुष– तत्पुरुषाय विद्महे, महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥

अघोर– अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

वामदेव– वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः । कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥

सद्योजात–सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।
भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भस्मस्नानक समय पहिने जलसँ दुनू हाथ आ पएरकेँ धोकए वामा हाथक तरहत्थी पर भस्म राखी । दहिना हाथसँ ओकरा झाँपिकए आठ बेर मूलमन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' मनहि मन पढ़ैत भस्मक अभिमन्त्रण करी । तखन ईशानमन्त्रसँ मस्तक पर, तत्पुरुष मन्त्रसँ मुख पर, अघोर मन्त्रसँ हृदय पर, वामदेव मन्त्रसँ गुह्यपर, सद्योजातमन्त्रसँ पएर पर तथा ओंकार सँ सर्वाङ्ग पर अभिषेक करी ।। २०-२२ ।।

अथेदं जलस्नानादुत्कृष्टमित्याह–

भस्मना विहितं स्नानमिदमाग्नेयमुत्तमम् ।
स्नानेषु वारुणाद्येषु मुख्यमेतन्मलापहम् ।। २३ ।।

गङ्गोदकदिव्यवायव्यादिस्नानेषु भस्मना विहितं स्नानमिदमाग्नेयमुत्तमम्, अग्नेः सर्वभस्मकत्वेनैतदाग्नेयस्नानम्, सकलमलापहमिति मुख्यमित्यर्थः ।। २३ ।।

ई भस्मक स्नान 'आग्नेय स्नान' कहबैत अछि । वारुण आदि सात स्नान (वारुण, मान्त्र, भौम, आग्नेय, वायव्य, दिव्य ओ मानस)मे ई मुख्य तथा बाहर-भीतर सब प्रकारक मलक दूर करएवाला थिक ।। २३ ।।

ननु जलादिस्नानस्य सकलमलनिवर्तकत्वं नास्ति वेत्यत्राह–

भस्मस्नानवतां पुंसां यथायोगं दिने दिने ।
वारुणाद्यैरलं स्नानैर्बाह्यदोषापहारिभिः ।। २४ ।।

यथायोगं शास्त्रोक्तप्रकारमनतिक्रम्य प्रतिदिनं भस्मस्नानवतां पुंसां बाह्याभ्यन्तरमलक्षयाद् भस्मनो ज्ञानाङ्गत्वाद् बाह्यमलमात्रनिवर्तकैर्जलादिस्नानैरलं किं प्रयोजनमित्यर्थः ।। २४ ।।

प्रतिदिन शास्त्रानुसार भस्मस्नान करएवालाक लेल बाह्य दोषक हटाबएवाला वारुण आदि स्नानक कोनो आवश्यकता नहि रहैछ ।। २४ ।।

अत एव यतिभिर्जलस्नानादाग्नेयमेव श्रेष्ठमिति भस्मस्नानमेव विधीयत इत्याह–

आग्नेयं भस्मना स्नानं यतिभिस्तु विधीयते ।
आर्द्रस्नानात् परं भस्म आर्द्रे जन्तुवधो ध्रुवम् ।। २५ ।।

भस्मना स्नानमाग्नेयमिति यतिभिर्विधीयते, वह्नेः प्रकाशत्वेन ज्ञानप्रदत्वात् ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भस्मस्नानं (यतिभिः) आर्द्रस्नानात्परं श्रेष्ठम् । आर्द्रे जलस्नाने जन्तुवध इति ध्रुवं निश्चयः, जलचरप्राणिपीडनया शैत्येन च प्राणिहिंसाकरमित्यर्थः, अत्र तादृशदोषाभावाच्च ॥ २५ ॥

संन्यासीलोकनि भस्मसँ आग्नेय स्नान करैत छथि । भस्मस्नान आर्द्रस्नान (जलस्नान)सँ श्रेष्ठ थिक, किएक तँ जलस्नानमे प्राणीक हिंसा निश्चित होइत अछि ॥ २५ ॥

अथ जलस्य दोषान्तरमुद्भावयति—

आर्द्रं तु प्रकृतिं विन्द्यात् प्रकृतिं बन्धनं विदुः ।
प्रकृतेस्तु प्रहाणार्थं भस्मना स्नानमिष्यते ॥ २६ ॥

आर्द्रं जलं प्रकृतिं गर्भवासप्रकृतिं विन्द्यात्, रक्तशुक्लयोर्जलमयत्वात्, 'स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः'[1] इति श्रुतेः । प्रकृतिं बन्धनं भोज्यभोजनरूपेण पुरुषस्य पाशरूपं विदुः, अभिज्ञाः जानन्ति, 'पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्'[2] इति भगवदुक्तेः पुरुषस्य प्रकृतिबद्धत्वात्, प्रकृतेस्तु प्रहाणार्थं जलस्नानोत्थदोषनिवृत्त्यर्थं भस्मना स्नानमिच्छाविषयीक्रियत इत्यर्थः ॥ २६ ॥

जलकेँ प्रकृति बुझक चाही । विद्वान् लोकनि प्रकृतिकेँ बन्धन मानैत छथि । एहि प्रकृति (बन्धन)केँ त्यागबाक लेल भस्मस्नानक विधान अछि ॥ २६ ॥

अथेदं भस्मना स्नानं कैरङ्गीकृतमित्यत्राह—

ब्रह्माद्या विबुधाः सर्वे मुनयो नारदादयः ।
योगिनः सनकाद्याश्च बाणाद्या दानवा अपि ॥ २७ ॥
भस्मस्नानयुताः सर्वे शिवभक्तिपरायणाः ।
निर्मुक्तदोषकलिला नित्यशुद्धा भवन्ति हि ॥ २८ ॥

कलिलाः समूहा इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २७-२८ ॥

ब्रह्मा आदि देवता, नारद आदि मुनि, सनक आदि योगी, बाण आदि दानवो सब भस्मस्नानसँ युक्त आ शिवभक्तिमे संलग्न भए दोषसमूहसँ मुक्त भए शुद्ध भेलाह ॥ २७-२८ ॥

---

१. तै०उ० २ । १
२. भ०गी० १३ । २१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ भस्मोद्धूलनं त्रिपुण्ड्रधारणं च कर्तव्यमित्याह–

नमश्शिवायेति भस्म कृत्वा सप्ताभिमन्त्रितम् ।
उद्धूलयेत् तेन देहं त्रिपुण्ड्रं चापि धारयेत् ॥ २९ ॥

भस्म नमश्शिवायेति मन्त्रेण सप्ताभिमन्त्रितं सप्तजन्मकृतदोषनिवृत्त्यर्थं सप्तवारमभिमन्त्रितं कृत्वा तेन भस्मना देहमुद्धूलयेत्, त्रिपुण्ड्रं चापि देहे रचयेदित्यर्थः ॥ २९ ॥

'नमः शिवाय' मन्त्रसँ सात बेर भस्मकेँ अभिमन्त्रित कए ओकरा देह पर उड़ाबी आ त्रिपुण्ड्रो करी ॥ २९ ॥

अत्रोद्धूलनापेक्षया त्रिपुण्ड्रस्याधिक्यमाह–

सर्वाङ्गोद्धूलनं चापि न समानं त्रिपुण्ड्रकैः ।
तस्मात् त्रिपुण्ड्रमेवैकं लिखेदुद्धूलनं विना ॥ ३० ॥

स्पष्टम् ॥ ३० ॥

समूचा देहकेँ भस्मसँ पोति देबो त्रिपुण्ड्रक बराबर नहि होइछ । तेँ उद्धूलन (देहमे लेप) नहियों कए सकी तँ केवल त्रिपुण्ड्रक धारण धरि करबे करी ॥ ३० ॥

अथ त्रिपुण्ड्रं कदा कथं कुत्र धारणीयमित्यत्राह–

त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं भस्मना सलिलेन च ।
स्थानेषु पञ्चदशसु शरीरे साधकोत्तमः ॥ ३१ ॥

स्पष्टम् ॥ ३१ ॥

उत्तम साधककेँ चाही जे ओ प्रतिदिन भस्मकेँ पानिमे मिलाए शरीरक पन्द्रह स्थानमे त्रिपुण्ड्र धारण करथि ॥ ३१ ॥

तानि कानीत्यत्राह–

उत्तमाङ्गे ललाटे च श्रवणद्वितये तथा ।
गले भुजद्वये चैव हृदि नाभौ च पृष्ठके ॥ ३२ ॥
बाहुयुग्मे ककुद्देशे मणिबन्धद्वये तथा ।
त्रिपुण्ड्रं भस्मना धार्यं मूलमन्त्रेण साधकैः ॥ ३३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रियायुष-त्रियम्बक-प्रणव-पञ्चाक्षरमन्त्रैर्धारयेत्, 'शिरोललाट-कण्ठस्कन्धवक्षः- स्थलेषु त्रियायुष-त्रियम्बकैस्तिस्रो रेखाः कुर्वीत । व्रतमेतच्छाम्भवम्' इति श्रुतेः ॥ ३२-३३ ॥

उत्तम साधक मूलमन्त्रक उच्चारण करैत माँथ, कपार, दुनू कान, कण्ठ, दुनू बाँहि, हृदय, ढोँढ़ी, पीठ, दुनू कान्ह, कुकुद (पीठक ऊपर भाग) ओ दुनू गट्टा पर भस्मसँ त्रिपुण्ड्र धारण करथि ॥ ३२-३३ ॥

अथ तदभिमन्त्रणप्रकारपूर्वकं समन्त्रकत्रिपुण्ड्रधारणस्य फलमाह–

वामहस्ततले भस्म क्षिप्वाच्छाद्यान्यपाणिना ।
अग्निरित्यादिमन्त्रेण स्पृशन् वाराभिमन्त्र्य च ॥ ३४ ॥
त्रिपुण्ड्रमुक्तस्थानेषु दध्यात् सजलभस्मना ।
शिवं शिवकरं शान्तं स प्राप्नोति न संशयः ॥ ३५ ॥

'अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, व्योममिति भस्म, सर्वं ह वा इदं भस्म, मन एतानि चक्षूंषि भस्मानि' इति मन्त्रेण स्पृशन् वारा उदकेन सप्तवारं मूलेनाभिमन्त्रयेदित्यर्थः ॥ ३४-३५ ॥

जे व्यक्ति अपना वामा तरहत्थी पर भस्म राखि दहिना हाथेँ ओकरा झाँपि 'अग्निरिति भस्म' मन्त्रसँ जलद्वारा अभिमन्त्रित कए उक्त पन्द्रहो स्थानमे जलसहित भस्मसँ त्रिपुण्ड्र धारण करैत छथि से शान्त कल्याणकर शिवकेँ प्राप्त करैत छथि, ताहिमे सन्देह नहि ॥ ३४-३५ ॥

अथ त्रिपुण्ड्ररचनाप्रकारमाह–

मध्याङ्गुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु ।
षडङ्गुलायतं मानमपि वाऽलिकमानकम् ॥ ३६ ॥
नेत्रयुग्मप्रमाणेन भाले दध्यात् त्रिपुण्ड्रकम् ।

स्पष्टम् ॥ ३६ ॥

अपन दहिना हाथक तर्जनी, मध्यमा ओ अनामिका– एहि तीनू आङुरसँ छओ आङुर नाम अथवा कपार जतेक नाम हो ततेक दूर धरि आ दुनू आँखि सामने तक फैलल कपार पर भस्म लगाबथि ॥ ३६ ॥

अथ प्रकारान्तरेण त्रिपुण्ड्रीकरणमाह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मध्यामानामिकाङ्गुष्ठैरनुलोमविलोमतः ॥ ३७ ॥
धारयेद् यस्त्रिपुण्ड्राङ्कं स रुद्रो नात्र संशयः ।

मध्यमानामिकाभ्याम् अनुलोमतः प्रदक्षिणतो रेखाद्वयं तन्मध्ये अङ्गुष्ठेन विलोमतः अप्रदक्षिणतः, एकां रेखां रचयेत् । एवं धृतत्रिपुण्ड्रो रुद्र इक्युक्त्वात्, पूर्वापेक्षया विशेष इत्यर्थः ॥ ३७ ॥

जे व्यक्ति मध्यमा, अनामिका ओ औंठा सँ अनुलोम-विलोम विधिद्वारा त्रिपुण्ड्रक धारण करैत छथि से रुद्र भए जाइत छथि, एहिमे सन्देह नहि । तात्पर्य ई जे पहिने मध्यमा ओ अनामिकासँ अनुलोमक्रमेँ अर्थात् कपार पर वायाँसँ दहिन भर भस्मक रेखा करथि, तकर बाद औंठासँ दुनू रेखाक बीचमे विलोमक्रमेँ अर्थात् वामाँ सँ दहिना दिस रेखा करथि ॥ ३७ ॥

अथ तल्लक्षणं कथयति-

ऋजु श्वेतमनुव्याप्तं स्निग्धं श्रोत्रप्रमाणकम् ॥ ३८ ॥
एवं सल्लक्षणोपेतं त्रिपुण्ड्रं सर्वसिद्धिदम् ।

ऋजु सरलं श्वेतं शुभ्रम् अनुव्याप्तम् अविच्छिन्नम्, स्निग्धं सान्द्रं श्रोत्रप्रमाणकं श्रवणपरिमितमित्यर्थः ॥ ३८ ॥

सोझ (बीच-बीचमे टेढ़ नहि), उज्जर, लगातार चलल, चिक्कन ओ कानक सामने तक बनल उक्त लक्षण सम्पन्न ई त्रिपुण्ड्र सर्वसिद्धिदायक होइत अछि ॥ ३८ ॥

अथास्य त्रिपुण्ड्रस्य महत्त्वं सूत्रद्वयेन सूचयति-

प्रातःकाले च मध्याह्ने सायाह्ने च त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ३९ ॥
कदाचिद्भस्मना कुर्यात् स रुद्रो नात्र संशयः ।
एवंविधं विभूत्या च कुरुते यस्त्रिपुण्ड्रकम् ।
स रौद्रधर्मसंयुक्तस्त्रयीमय इति श्रुतिः ॥ ४० ॥

यो विभूत्या च भस्मना एवंविधम् ऋजुश्वेतादिसल्लक्षणोपेतं त्रिपुण्ड्रकं कुरुते, स रौद्रधर्मसंयुक्तो रुद्रसम्बन्धी यो धर्मः शिवाचारः, तेन संयुक्तः सन्, त्रयीमयो वेदत्रयस्वरूप इति श्रुतिः, 'य इदं त्रिपुण्ड्रं धरते स वेदत्रयधारी भवति, स सन्ततं त्रेताग्निर्भवति, स पुष्करत्रयस्नातो भवति । यस्त्रिपुण्ड्रधारी पुरुषः स रुद्रः, स परमेष्ठी, य इदं त्रिपुण्ड्रं धृतवन्तं पुरुषं पश्यति ससर्वपापेभ्यो विनिर्मुक्तो

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भवति, स सर्ववेदाध्ययनजन्यफलवान् भवति'[1] इति वृद्धजाबालादि बहुश्रुतिसिद्धोऽयमर्थः । तस्मात् प्रातरादिकालत्रये कदाचित् त्रिपुण्ड्रं यः कुर्यात्, स रुद्रः शिव एव न संशय इत्यर्थः ॥ ३९-४० ॥

प्रातः, मध्याह्न ओ सायाह्नमे कोनो समयमे कमसँ कम एको बेर जे भस्म लगबैत छथि से रुद्र भए जाइत छथि, एहमे सन्देह नहि । एहि तरहेँ जे भस्मसँ त्रिपुण्ड्र लगबैत छथि से रुद्रधर्मसँ युक्त तथा वेदस्वरूप भए जाइत छथि– ई श्रुति कहैत अछि ॥ ३९-४० ॥

अथैतादृशं त्रिपुण्ड्रं कैर्धृतमित्यत्राह–

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवाः शक्रपुरोगमाः ।
त्रिपुण्ड्रं धारयन्त्येव भस्मना परिकल्पितम् ॥ ४१ ॥
वसिष्ठाद्या महाभागा मुनयः श्रुतिकोविदाः ।
धारयन्ति सदाकालं त्रिपुण्ड्रं भस्मना कृतम् ॥ ४२ ॥

स्पष्टम् ॥ ४१-४२ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र आदि देवगण भस्मक त्रिपुण्ड्र धारण करितहिं छथि । वेदशास्त्रपारङ्गत वसिष्ठ आदि विद्वान् सेहो भस्मसँ त्रिपुण्ड्रक धारण सदा करैत छथि ॥ ४१-४२ ॥

अथेदं कुत्र विहितमित्यत्राह–

शैवागमेषु वेदेषु पुराणेष्वखिलेषु च ।
स्मृतीतिहासकल्पेषु विहितं भस्मपुण्ड्रकम् ॥
धारणीयं समस्तानां शैवानां च विशेषतः ॥ ४३ ॥

कल्पेषु कल्पसूत्रेष्वित्यर्थः ॥ ४३ ॥

शैवागम, वेद, सभ पुराण, स्मृति, इतिहास ओ कल्पसूत्रमे भस्मत्रिपुण्ड्रक विधान अछि । तेँ सबकेँ एकर धारण करबाक चाही, खासकए शैव केँ तँ अवश्ये लगएबाक चाही ॥ ४३ ॥

अथानेन त्रिपुण्ड्रधारणेन सकलपापक्षय इत्युक्त्वा भस्मधारणस्थलं समापयति–

---

१. इदमुद्धरणं बृहज्जाबालोपनिषदि नोपलभ्यते ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नास्तिको भिन्नमर्यादो दुराचारपरायणः ।
भस्मत्रिपुण्ड्रधारी चेन्मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४४ ॥

वेदविरुद्धाचारनिष्ठो नास्तिकः शरीरेन्द्रियबुद्धिव्यतिरेकेण कश्चिदात्मा नास्तीति वदन् चार्वाकादिः । अत एव दुराचारपरायणस्तादृशोऽपि भस्मत्रिपुण्ड्रधारी चेत्, सर्वकिल्बिषैः समस्तपापैर्मुच्यत इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

नास्तिक, शास्त्रीय नियमक उल्लंघनकर्त्ता आ दुराचारियो जँ भस्मत्रिपुण्ड्र धारण करथि तँ सब पापसँ मुक्त भए जाइत छथि ॥ ४४ ॥

अथ रुाक्षधारणस्थलम्

अथ रुद्राक्षधारणस्थलं निरूपयति—

भस्मना विहितस्नानस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः ।
शिवार्चनपरो नित्यं रुद्राक्षमपि धारयेत् ॥ ४५ ॥

मस्तको ललाट इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ४५ ॥

रुद्राक्षधारणस्थल— जे भस्मसँ स्नान कएने होथि, माँथ पर त्रिपुण्ड्र धारण कएने होथि ओ प्रतिदिन शिवक पूजा करैत होथि तनिका रुद्राक्षोक धारण करबाक चाही ॥ ४५ ॥

किमनेन प्रयोजनमित्यत्राह—

रुद्राक्षधारणादेव मुच्यन्ते सर्वपातकैः ।
दुष्टचित्ता दुराचारा दुष्प्रज्ञा अपि मानवाः ॥ ४६ ॥

स्पष्टम् ॥ ४६ ॥

दुष्टमनवाला, दुराचारी, दुर्बुद्धि ओ भ्रष्टो मनुष्य केवल रुद्राक्षक धारण सँ सब पापसँ मुक्त भए जाइत अछि ॥ ४६ ॥

नन्वेते रुद्राक्षाः कथमुत्पन्नाः ? कुत एतादृक् सामर्थ्यमित्यत्राह—

पुरा त्रिपुरसंहारे त्रिनेत्रो जगतां पतिः ।
उदपश्यत् पुरा योगमुन्मीलितविलोचनः ॥ ४७ ॥
निपेतुस्तस्य नेत्रेभ्यो बहवो जलबिन्दवः ।
तेभ्यो जाता हि रुद्राक्षा रुद्राक्षा इति कीर्तिताः ॥ ४८ ॥
रुद्रनेत्रसमुत्पन्ना रुद्राक्षा लोकपावनाः ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वं त्रिपुरसंहारप्रस्तावे जगतां पतिः विश्वपतिः त्रिनेत्रः सोमसूर्याग्निनयनः शिवः उम्मीलितविलोचनः संहारकाल एव ललाटनेत्रस्योन्मेषाद् विकसित-नेत्रत्रयः सन् पुरां त्रिपुराणां योगं सम्बन्धम् उदपश्यद् ऊर्ध्वं दृष्टवान् । तस्य नेत्रेभ्यो बहवो जलबिन्दवः उदककणाः निपेतुः भूमौ पतिताः । तेभ्यो जलबिन्दुभ्यो रुद्राक्षा जाताः । हि यस्मात् कारणाद् रुद्रनेत्रसमुत्पन्नास्तस्मात् कारणाद् रुद्राक्षा इति कीर्तितास्तत एव लोकपावना इत्यर्थः । 'अत्र पुरा त्रिपुरवधायोन्मीलिताक्षोऽहं (अभवम्) । तेभ्यो जलबिन्दवो भूमौ पतितास्ते रुद्राक्षा जाताः सर्वानुग्रहार्थाय । तेषां नामोच्चारणेन दशशतगोदानफलं भवति, दर्शनस्पर्शनाभ्यां द्विगुणं त्रिगुणं फलं भवति । अत ऊर्ध्वं वक्तुं न शक्यम्'[1] इति बृहज्जाबालादिश्रुतिः ॥ ४७-४८ ॥

प्राचीन समयमे संसारक प्रति त्रिनेत्र शिव त्रिपुरासुरक संहारक समयमे आँखि खोलि योगदृष्टिसँ तकलनि । तखने हुनक आँखिसँ बहुतरास पानिक बुन्न खसलनि । ताहीसँ उत्पन्न रुद्रक आँखिस्वरूप रुद्राक्ष भेल । रुद्रक आँखिसँ उत्पन्न होएबाक कारण ई संसारकेँ पवित्र करएवाला रुद्राक्ष कहओलक ।। ४७-४८ ।।

एवं रुद्रनेत्रसमुत्पन्नत्वात् तत्कलाभेदेनाष्टत्रिंशत्प्रकारेणोत्पत्तिं भजन्त इत्याह–

अष्टत्रिंशत्प्रभेदेन भवन्त्युत्पत्तिभेदतः ॥ ४९ ॥

स्पष्टम् ॥ ४९ ॥

उत्पत्तिक भेदसँ रुद्राक्ष अठतीस प्रकारक होइत अछि ।। ४९ ।।

अथ कस्मान्नेत्रात् कियन्त उत्पन्ना इत्यत्राह–

नेत्रात् सूर्यात्मनः शम्भोः कपिला द्वादशोदिताः ।
श्वेताः षोडश सञ्जाताः सोमरूपाद् विलोचनात् ॥ ५० ॥
कृष्णा दशविधा जाता वह्निरूपाद् विलोचनात् ।
एवमुत्पत्तिभेदेन रुद्राक्षा बहुधा स्मृताः ॥ ५१ ॥

शिवस्य सूर्यात्मनो नेत्रात् कपिलाः कपिलवर्णा द्वादश द्वादशभेदवन्तो रुद्राक्षा उदिताः, उत्पन्ना इत्यर्थः, सूर्यनेत्रस्य तापिन्यादिद्वादशकलात्मकत्वात् । सोमरूपाद्विलोचनात् चन्द्रनयनात् श्वेताः शुभ्रवर्णाः षोडश षोडशभेदवन्तः सञ्जाता उत्पन्नाः, तन्नेत्रस्यामृतादिषोडशकलात्मकत्वात् । वह्निरूपाद्विलोचनाद् वह्निनयनात् कृष्णाः कृष्णवर्णाः दशविधाः दशभेदवन्तः जाता उत्पन्नाः, तन्नेत्रस्य

१. वृहज्जबालोपनिषदि सप्तमब्राह्मणे अष्टमखण्डे रुद्राक्षवर्णनं श्रूयते, किन्त्वानुपूर्वी भिन्नाऽस्ति ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धूम्रार्चिःप्रभृतिदशकलात्मकत्वात् । एवमुत्पत्तिभेदेन रुद्राक्षा बहुधा बहुविधाः स्मृता इत्यर्थः ॥ ५०-५१ ॥

शम्भुक सूर्यस्वरूप नेत्रसँ बारह तरहक कपिल (कैल) वर्णक रुद्राक्ष उत्पन्न भेल किएक तँ सूर्यक कला बारह छनि । चन्द्रस्वरूप नेत्रसँ उज्जर वर्णक सोलह रुद्राक्ष उत्पन्न भेल किएक तँ चन्द्रमाक कला सोलह छनि । अग्निरूप आँखिसँ कारीरंगक दस रुद्राक्ष उत्पन्न भेल किएक तँ अग्निक कला दस छनि । एहि तरहेँ उत्पत्ति भेदसँ रुद्राक्ष अनेक १२+१६+१०=३८) प्रकारक होइछ ॥ ५०-५१ ॥

अथ धार्यरुद्राक्षलक्षणमाह–

अच्छिद्रं कनकप्रख्यमनन्यधृतमुत्तमम् ।
रुद्राक्षं धारयेत् प्राज्ञः शिवपूजापरायणः ॥ ५२ ॥

अच्छिद्रमकृमिचुम्बितमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ५२ ॥

जाहिमे कीड़ा नहि लागल हो (कीड़ा छेद नहि कएने हो), सोनाक वर्णक हो, अनकर धारण कएल नहि हो, एहन उत्तम रुद्राक्षकें विज्ञ शिवपूजक धारण करथि ॥ ५२ ॥

अथ कुत्र कथं कति धारणीया इत्यत्राह–

यथास्थानं यथावक्त्रं यथायोगं यथाविधि ।
रुद्राक्षधारणं वक्ष्ये रुद्रसायुज्यसिद्धये ॥ ५३ ॥

स्पष्टम् ॥ ५३ ॥

शिवसायुज्य (शिवमे मिलि एकाकार) सिद्धिक लेल रुद्राक्षक धारणमे यथोचित स्थान, यथोचित रुद्राक्षक मुख, विधान ओ शास्त्रसम्मति हम (रेणुकाचार्य) आब कहब ॥ ५३ ॥

प्रतिज्ञाय स्थानं संख्यां चाह–

शिखायामेकमेकास्यं रुद्राक्षं धारयेद् बुधः ।
द्वित्रिद्वादशवक्त्राणि शिरसि त्रीणि धारयेत् ॥ ५४ ॥
षट्त्रिंशद्धारयेन्मूर्ध्नि नित्यमेकादशाननान् ।
दशसप्तपञ्चवक्त्रान् षट् षट् कर्णद्वये वहेत् ॥ ५५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षडष्टवदनान् कण्ठे द्वात्रिंशद्धारयेत् सदा ।
पञ्चाशद्धारयेद् विद्वान् चतुर्वक्त्राणि वक्षसि ॥ ५६ ॥
त्रयोदशमुखान् बाह्वोर्धरेत् षोडश षोडश ।
प्रत्येकं द्वादश वहेन्नवास्यान् मणिबन्धयोः ॥ ५७ ॥
चतुर्दशमुखं यज्ञसूत्रमष्टोत्तरं शतम् ।
धारयेत् सार्वकालं तु रुद्राक्षं शिवपूजकः ॥ ५८ ॥

अत्र दशसप्तपञ्चवक्त्रान् षट्षट्कर्णद्वय इत्यत्र दशमुखं द्वयं पञ्चमुखं द्वयं सप्तमुखं द्वयम् एवं षट् षट् कर्णद्वये धारणीयमित्यर्थः, 'समं स्यादश्रुतत्वात्' इति न्यायात्, 'षट् षट् कर्णयोरेकमेकम्' इति रुद्राक्षजाबालश्रुतेः । एकमेकं वा कर्णद्वये धारयेत् । एवं कण्ठेऽपि षडष्टवदनान् समत्वेन धारयेदिति । शिष्टं स्पष्टम् । अयं भावः–शुद्धमिश्रसङ्कीर्णभुवनाधीशशिवाष्टविद्येश्वरशतरुद्रसंख्यात-यज्ञोपवीतधारणेन भुवनाध्वशुद्धिः, वर्णसंख्यातवक्षोमालया वर्णाध्वशुद्धिः, पदसंख्यातमणिबन्धबाहुकण्ठमालया पदाध्वशुद्धिः, षडङ्गपञ्चब्रह्म-प्रणवमन्त्र-संख्यातकर्णाभरणेन मन्त्राध्वशुद्धिः, शिवशक्त्यात्मककर्णाभरणेन वा तत्त्वसंख्यातमस्तकमालया तत्त्वाध्वशुद्धिः, अष्टत्रिंशत्कलापूर्णसोम-सूर्याग्निलक्षण-शिरोरन्ध्रमालया कलाध्वशुद्धिः । एवंरूपषडध्वजकारीणभूत-परशिवब्रह्ममयशिखा-गतैकरुद्राक्षधारणेन परशिवस्वरूप एव, 'यो रुद्राक्षं धत्ते स सत्यं परमः शिवः, स सत्यं परमः शिव' इति श्रुतेः ॥ ५४-५८ ॥

ज्ञानवान्कें चाही कि ओ एकमुखक एक रुद्राक्षकें शिखामे धारण करथि, दू, तीन ओ बारह मुखक तीन रुद्राक्षकें शिर (कपारक ऊपर केशलग) पर, एगारह मुखक ३६ रुद्राक्षकें मस्तक पर, दस सात आ पाँच मुखक ६-६ रुद्राक्षकें दुनू कानपर, छओ आ आठ मुखक बत्तीस रुद्राक्षकें कण्ठपर, चारि मुखक पचास रुद्राक्षकें छाती पर, तेरह मुखक सोलह-सोलह रुद्राक्षकें दुनू बाँहि पर, नओ मुखक बारह बारह टा रुद्राक्षकें दुनू मणिबन्ध (गट्टा) पर ओ चौदह मुखक एक सए आठ रुद्राक्षकें शिवपूजक सदा यज्ञोपवीतक रूपमे धारण करथि ॥ ५४-५८ ॥

अथैवं रुद्राक्षधारणात् सर्वपापक्षय इत्याह–

एवं रुद्राक्षधारी यः सर्वकाले तु वर्तते ।
तस्य पापकथा नास्ति मूढस्यापि न संशयः ॥ ५९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवमुक्तप्रकारेण एषु स्थानेषु सदा रुद्राक्षधारिणो मूढस्यापि पापवार्ता नास्ति, कुतः पापसम्बन्ध इत्यर्थः ॥ ५९ ॥

एहि तरहेँ जे सब कालमे रुद्राक्षक धारण करैत छथि तनिका पापक लेश तक नहि रहैत छनि, भने ओ मूर्खे किएक ने होथि ॥ ५९ ॥

ननु क्षुद्रपापसम्बन्धो नास्तीत्युच्यते वा महापातकसम्बन्धो नास्तीत्युच्यते वेत्यत्राह–

ब्रह्महा मद्यपायी च स्वर्णहृद् गुरुतल्पगः ।
मातृहा पितृहा चैव भ्रूणहा कृतघातकः ।
रुद्राक्षधारणादेव मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ६० ॥

अत्र सर्वशब्देनानुक्तपातकानि सङ्गृहीतानीति बोध्यम् ॥ ६० ॥

ब्रह्मवधकारी, मदिरापानकारी, सोनाक चोर, गुरुपत्नीगामी, माताक प्राणनाशक, पिताक प्राणनाशक, गर्भक नाश कएनिहार ओ उपकारीक अपकार कएनिहार (कृतघ्न) व्यक्तिओ रुद्राक्षक धारण मात्रसँ सब पाप सँ मुक्त भए जाइत छथि ॥ ६० ॥

अथ विशेषमाह–

दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव स्मरणादपि पूजनात् ।
रुद्राक्षधारणाल्लोके मुच्यन्ते पातकैर्जनाः ॥ ६१ ॥

स्पष्टम् ॥ ६१ ॥

एकर दर्शन, स्पर्श, स्मरण, पूजन तथा धारणसँ लोक पापसँ मुक्त भए जाइछ ॥ ६१ ॥

अत्र 'जन'शब्देन को वा विवक्षित इत्यत्राह–

ब्राह्मणो वान्त्यजो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा ।
रुद्राक्षधारणादेव मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ६२ ॥

अनेन रुद्राक्षधारणे सर्वेऽप्यधिकारिण इत्युक्तं भवति ॥ ६२ ॥

ब्राह्मण हो वा चाण्डाल, पण्डित हो वा मूर्ख से सब रुद्राक्षक धारण मात्रसँ सब पापसँ मुक्त भए जाइछ । एहिसँ स्पष्ट भेल जे सम्पूर्ण मानव जाति रुद्राक्ष धारणक अधिकारी थिक ॥ ६२ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नन्वनेन पापक्षयमात्रं वा, पुण्यमपि किञ्चिदस्ति वेत्यत्राह–

गवां कोटिप्रदानस्य यत्फलं भुवि लभ्यते ।
तत्फलं लभते मर्त्यो नित्यं रुद्राक्षधारणात् ॥ ६३ ॥

स्पष्टम् ॥ ६३ ॥

जे फल एहि धरती पर एक करोड़ गाएक दानसँ प्रप्त होइछ से लोककेँ रुद्राक्षक नित्य धारणसँ भए जाइछ ॥ ६३ ॥

अथास्यैतावन्मात्रमेव न, क्रियाभेदेनान्योऽपि चमत्कारोऽस्तीत्याह–

मृत्युकाले च रुद्राक्षं निष्पीड्य सह वारिणा ।
यः पिबेच्चिन्तयन् रुद्रं रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ६४ ॥

स्पष्टम् ॥ ६४ ॥

मृत्युक समयमे जे रुद्राक्षकेँ जलक संग पीसिकए पिबैत रुद्रक ध्यान करैत छथि से रुद्रलोककेँ प्राप्त करैत छथि ॥ ६४ ॥

एवं निश्चित्य ये भस्मरुद्राक्षधारिणः सन्ति, ते रुद्रा एवेत्याह–

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गा धृतरुद्राक्षमालिकाः ।
ये भवन्ति महात्मानस्ते रुद्रा नात्र संशयः ॥ ६५ ॥

स्पष्टम् ॥ ६५ ॥

जे व्यक्ति सम्पूर्ण देहमे रुद्राक्षमालाक धारण करैत छथि से महात्मा रुद्रे थिकाह, एहिमे सन्देह नहि ॥ ६५ ॥

अथ भस्मरुद्राक्षधारणशून्येन द्विजेन विधीयमानं नित्यनैमित्तिकादिकं कर्मापि व्यर्थमित्याह–

नित्यानि काम्यानि निमित्तजानि
कर्माणि सर्वाणि सदाऽपि कुर्वन् ।
यो भस्मरुद्राक्षधरो यदि स्याद्
द्विजो न तस्यास्ति फलोपपत्तिः ॥ ६६ ॥

उपपत्तिः प्राप्तिरित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६६ ॥

नित्य, नैमित्तिक ओ काम्य सब कर्मकेँ करैत जे द्विज भस्म ओ

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रुद्राक्षक धारण करैत छथि तनिका कर्मक फल नहि भोगए पड़ैत छनि । ओ स्वतः मुक्तिकेँ प्राप्त कए लैत छथि ।। ६६ ।।

तस्माद्वर्णाश्रमाचारनिष्ठेषु भस्मरुद्राक्षधर एक एव गरीयानित्याह–

सर्वेषु वर्णाश्रमसङ्गतेषु नित्यं सदाचारपरायणेषु ।
श्रुतिस्मृतिभ्यामिह चोद्यमानो विभूतिरुद्राक्षधरः समानः ॥ ६७ ॥

इति श्रीषट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना प्रणीते वीरशैवधर्मनिर्णये
सिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले विभूतिरुद्राक्षधारणप्रसङ्गो
नाम सप्तमः परिच्छेदः ॥ ७ ॥



ब्राह्मणादिवर्णब्रह्मचर्याद्याश्रमसंयुतेषु सर्वेषु विषये इह लोके विभूतिरुद्राक्षधरः समानो भस्मरुद्राक्षधर एक एव श्रुतिस्मृतिभ्यां चोद्यमानः श्लाघनीयः ॥ ६७ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां
तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां भस्मरुद्राक्ष-
धारणस्थलनामा सप्तमः परिच्छेदः ॥ ७ ॥



सब वर्णाश्रमवाला नित्य सदाचारमे लागल व्यक्ति सबमे जे भस्म ओ रुद्राक्षक धारण करैत छथि से श्रुति ओ स्मृतिसँ प्रेरित भेल सर्वत्र आदर पबैत छथि ।। ६७ ।।

एहि तरहेँ श्री सिद्धान्तशिखामणिक भस्म-रुद्राक्षधारणस्थल नामक
सातम परिच्छेदक विद्यावाचस्पति पं० श्रीशशिनाथझाकृत
प्रबोधिनी मैथिलीव्याख्या समाप्त ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टमः परिच्छेदः

अथैवं शिवलिङ्गरुद्राक्षधारणसम्पन्नः शिवतत्त्वप्रकाशार्थं पञ्चाक्षरीं जपेदिति पञ्चाक्षरीजपस्थलमगस्त्याय निरूपयति श्रीरेणुकः –

धृतश्रीभूतिरुद्राक्षः प्रयतो लिङ्गधारकः ।
जपेत् पञ्चाक्षरीविद्यां शिवतत्त्वप्रबोधिनीम् ॥ १ ॥

धृतमाङ्गल्यभूतिरुद्राक्षपवित्रितः शिवलिङ्गधारकः शिवतत्त्वप्रबोधिनीं परशिवतत्त्वप्रकाशिनीं पञ्चाक्षरीविद्यां नमश्शिवायेति श्रीरुद्रमन्त्रप्रसिद्ध-पञ्चाक्षरीमन्त्रं जपेत् मानसोपांशुवाचिकस्वरूपेणोच्चरेत् 'जप अव्यक्तायां वाचि' इति धातोरित्यर्थः ॥ १ ॥

पञ्चाक्षरजप स्थल– विभूति ओ रुद्राक्षक धारण कएनिहार ओ नियमपूर्वक लिङ्गक धारण कएनिहार व्यक्ति शिवतत्त्वज्ञानदायक पञ्चाक्षरी विद्याक (नमः शिवाय) जप करथि ॥ १ ॥

ननु शिवतत्त्वप्रकाशकानां मन्त्राणां बाहुल्यात् किमित्येष पञ्चाक्षरमन्त्र एव जप्य इत्यात्राह–

शिवतत्त्वात् परं नास्ति तथा तत्त्वान्तरं महत् ।
तथा पञ्चाक्षरीमन्त्रान्नास्ति मन्त्रान्तरं महत् ॥ २ ॥

'शिव एको ध्येयः' इत्यादिश्रुतेः शिवतत्त्वात् परं व्यतिरिक्तं महद् बृहत् तत्त्वान्तरं यथा नास्ति, तथा पञ्चाक्षरीमन्त्राद् नमश्शिवायेति पञ्चाक्षरीमन्त्रात्, महद् मन्त्रान्तरं नास्तीत्यर्थः,

विद्यासु श्रुतिरुत्कृष्टा रुद्रैकादशिनी श्रुतौ ।
तत्र पञ्चाक्षरी तस्यां शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥

इति पौराणिकोक्तेः शिव इत्यक्षरद्वयस्य वेदसारत्वात् तत्रत्याकारस्य

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऋक्सामसंग्रहरूपत्वात्, तयोरकाराद्यत्वात्, इकारस्य यजुःसंग्रहरूपत्वात्, तस्येकाराद्यत्वात्, शकारस्याथर्वसंग्रहरूपत्वात्, तस्य शकाराद्यत्वात्, वकारस्य व्याकरणसंग्रहरूपत्वात्, तस्य वकाराद्यत्वात्, एवं वेदवेदाङ्गसाररूपत्वात् तादृक् शिवशब्दघटितत्वेनैष पञ्चाक्षरीमन्त्र एव सर्वमन्त्रोत्कृष्ट इत्यर्थः ॥ २ ॥

जहिना शिवतत्त्वसँ पैघ कोनो दोसर तत्त्व नहि अछि तहिना पञ्चाक्षर मन्त्रसँ पैघ कोनो दोसर मन्त्र नहि अछि ॥ २ ॥

एवं पञ्चाक्षरीमन्त्रे शिवे च ज्ञाते सति मन्त्रान्तरैर्देवतान्तरैः किं प्रयोजनमित्यत्राह–

ज्ञाते पञ्चाक्षरीमन्त्रे किं वा मन्त्रान्तरैः फलम् ।
ज्ञाते शिवे जगन्मूले किं फलं देवतान्तरैः ॥ ३ ॥

'एको ह वै नारायण आसीत्'[1] इति श्रुतेर्विष्ण्वादिसकलविश्वमूलत्वेन परशिवे ज्ञाते सति तदीयसृष्ट्यन्तर्गतत्वेन जननमरणपरिपीडितैर्विष्ण्वादिदेवतान्तरैः किं फलम् ? न किञ्चित्फलमित्यर्थः । 'नहि भिक्षुको भिक्षुकान्तरं याचयति, सत्यन्यस्मिन् अभिक्षुके दातरि' इति न्यायात् । ननु– 'एको ह वै नारायण आसीत्' इत्यत्र 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्'[2] इत्यादिब्रह्मप्रतिपादकवाक्यसाम्य-श्रवणात् कथमुत्पत्तिपरत्वमिति चेन्न, 'रोहितो लोहितादासीच्छक्तेरासीत् पराशरः' इतिवदुत्पत्तिसत्तापरतोपपत्तेः । न च तद्वद् हेतुश्रवणाभावात् कथमुत्पत्तिपरत्वमिति वाच्यम्, 'ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते' इति शिखोपनिषद्वचनाद् विष्णोरुत्पत्तेः श्रूयमाणत्वात् तदनुसारेणोत्पत्तिपरतासम्भवात् । न चात्र नारायणस्योत्पत्तिर्न श्रूयते, किन्तु विष्णोरेव, तस्य नायणांशीभूतत्वात्, 'आदित्यानामहं विष्णुः'[3] इति गीतत्वाद् अंशपरत्वमेवेति वाच्यम्, मुख्यब्रह्मरुद्रमध्यपठितविष्णुशब्द-स्यांशपरत्वासम्भवात् प्रायःपाठविरोधात्, 'विष्णुरित्था परमस्य विद्वान् जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम्' इति श्रुतेर्महाविष्णोरेवोत्पत्तिश्रवणाच्च,

अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रपद्यते ।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्[4] ॥

इति श्वेताश्वतरश्रुतेः कारणीभूतमहारुद्रस्याजातत्वश्रवणाच्चेति दिक् ॥ ३ ॥

पञ्चाक्षरी विद्या मन्त्रक ज्ञान रहला पर आन कोनो मन्त्रसँ की

१. नारायणोप० २ २. छा०उ० ६ । २ । १
३. भ०गी० १० । २१ ४. श्वे०उ० ४ । २१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फल ? अर्थात् कोनो फल नहि । संसारक मूल शिवकेँ जानि लेला पर आन देवतासँ की फल ? अर्थात् किछु नहि ॥ ३ ॥

ननु सप्तकोटिमहामन्त्रेषु कोऽप्यस्य समानमन्त्रो नास्ति वेत्यत्राह–

सप्तकोटिषु मन्त्रेषु मन्त्रः पञ्चाक्षरो महान् ।
ब्रह्मविष्ण्वादिदेवेषु यथा शम्भुर्महत्तरः ॥ ४ ॥

सर्वमन्यत् परित्यज्य हेयान् विष्ण्वादिकान् सुरान् ।
शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारनाशनः ॥

इति पिप्पलादश्रुतेः, 'अजात इत्युदाहृतः' इति श्रुतेश्च मुमुक्षूपास्यत्वादजातत्वेन ब्रह्मादिषु शिवो यथा महान्, तथा सप्तकोटिमहामन्त्रेषु वेदसारत्वात् पञ्चाक्षरमन्त्रो महानित्यर्थः ॥ ४ ॥

सात करोड़ मन्त्रमे तहिना पञ्चाक्षर मन्त्र महान् अछि जहिना ब्रह्मा विष्णु आदि देवता सबमे शम्भु अधिक महान् छथि ॥ ४ ॥

ननु विष्ण्वादिसकलविश्वमूलत्वात् शिवः सर्वोत्तमो भवतु, पञ्चाक्षरीमन्त्रस्य कथं सर्वोत्तमत्वमित्याशङ्क्याह–

अशेषजगतां हेतुः परमात्मा महेश्वरः ।
तस्य वाचकमन्त्रोऽयं सर्वमन्त्रैककारणम् ॥ ५ ॥

शिवो यथा सकलजगत्कारणम्, तथा तद्वाचकमन्त्रोऽपि सकलमन्त्रकारणमित्यर्थः ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण संसारक कारण थिकाह परमात्मा शिव तनिक वाचक ई मन्त्र सब मन्त्रक एकमात्र कारण थिक ॥ ५ ॥

तत्कथमित्यत्राह–

तस्याभिधानमन्त्रोऽयमभिधेयश्च स स्मृतः ।
अभिधानाभिधेयत्वान्मन्त्रात् सिद्धः परः शिवः ॥ ६ ॥

अयं मन्त्रस्तस्य शिवस्य अभिधानमन्त्रः, नाम्नो मन्त्र इत्यर्थः, स शिवः अभिधेयश्च तन्मन्त्रेणाभिधातुं योग्य इति स्मृतः, अभिधानाभिधेयत्वात्, शिवाभिधानाभिधयेत्वात् । मन्त्रादस्मान्मन्त्रात् परः शिवः सिद्धः प्रकाशितः, मन्त्राणां यजनीयदेवताप्रकाशकत्वेनैतन्मन्त्राभावे शिवस्य स्फूर्तिरेव न स्यात् ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किं तावतेति नाशङ्कनीयम्, शिवस्य सकलतत्त्वोपादानकारणत्वात् तद्वाचकपञ्चादशद्वर्णमयत्वं च युक्तमिति तस्य सकलमन्त्रमूलत्वात् तत्प्रकाशकत्वेन सकलमन्त्रकारणत्वमिति । तत्कथमिति चेत्, उच्यते,

अथाद्यास्तिथयः सर्वाः स्वरा बिन्द्ववसानकाः ।
तदन्तःकालयोगेन सोमसूर्यौ प्रकीर्तितौ ॥
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि पुरुषान्तानि पञ्चसु ।
क्रमात् कादिषु वर्गेषु मकारान्तेषु सुव्रते ॥
वाय्वग्निसलिलेन्द्राणां धारणानां चतुष्टयम् ॥
तदूर्ध्वेशादि विख्यातं पुरस्ताद्ब्रह्मपञ्चकम् ।
आमूलात्तत्क्रमाज्ज्ञेया क्षान्ता सृष्टिरुदाहृता ॥
सर्वेषां चैव मन्त्राणां विद्यानां च यशस्विनी ।
इयं योनिः समाख्याता सर्वतन्त्रेषु सर्वदा ॥

इति श्रीपरित्रिंशिकाशास्त्रस्थित्या शिव इत्यत्र शकारस्य ब्रह्मादिपञ्चब्रह्म-वाचकत्वात्, वकारस्य मायातत्त्ववाचकत्वेन तत्कार्यरूपकलादिक्षितिपर्यन्त-त्रिंशत्तत्त्वात्मकत्वात्, एवं शकारवकारयोः षट्त्रिंशत्तत्त्ववाचकत्वात्, अकारस्य शिवतत्त्वकलारूपषोडशस्वरमयत्वात्, इकारस्येच्छाशक्तिवाचकत्वात्, एवं शब्दार्थमयप्रपञ्चयोरन्तर्भावात् सकलमन्त्रकारणत्वम्, मातृकादेः सकलशब्द-प्रपञ्चोपादानकारणत्वात् ।

पञ्चाशन्निजदेहजाक्षरभवैर्नानाविधैर्धातुभि-
र्बह्वर्थैः पदवाक्यमानजनकैरर्थाविनाभावितैः ।
साभिप्रायसदर्थकर्मफलदानन्दैरनन्तैरिदं
विश्वं व्याप्य चिदात्मनाहमहमित्युज्जृम्भसे मातृके ॥
पञ्चाशद्वर्णमालाबहुविध-निनदोच्चारणात्-तत्त्वजाल
व्यक्तिव्यापारसत्तानिरिशगुरुमुखाम्नायविद्यास्वरूपाः ।
धात्राद्युत्पत्तिपूर्वं श्रुतिमुखविविधानेकसिद्धान्तविद्या
नानाभाषाः क्रियाभिः प्रकटयति यतः सैव ते साङ्गवेदे ॥

इति दुर्वासभगवदुक्तेरिति ॥ ६ ॥

ओहि परमात्मा शिवक ई अभिधान (नाम) मन्त्र थिक तहिना ओ (शिव) एहि मन्त्रक अभिधेय (अर्थ) थिकाह । दुनूमे जे अभिधानाभिधेयभाव अछि (एक-दोसराक बोधक) तेँ एहि मन्त्रसँ परमशिव सिद्ध होइत छथि ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवागमशास्त्रक अनुसार पृथ्वीसँ लए पुरुष तक पचीस तत्त्व वर्णमालाक क सँ म धरि पचीस अक्षरसँ उत्पन्न होइत अछि । एहिना 'अ' सँ 'क्ष' (अन्तिम वर्ण) धरि सृष्टिक कारण थिक । मन्त्रमे स्थित 'शिवाय'मे शकार परब्रह्मक, वकार मायातत्त्वक, इकार इच्छाशक्ति वाचक आ आकार शिवतत्त्व कलाषोडशस्वरक वाचक थिक । तेँ 'शिवाय' पद सम्पूर्ण सृष्टिक बोधक भेल ॥ ६ ॥

नन्वेवं चेद् द्व्यक्षरत्वमेव युक्तम्, किमिति पञ्चाक्षररूपेण सर्वश्रुतिशिरोगतः सन् मन्त्रोऽयं प्रतिभाति ? अत्र नमस्कारेण जीवत्वमित्यत्राह–

नमः शब्दं वदेत् पूर्वं शिवायेति ततः परम् ।
मन्त्रः पञ्चाक्षरो ह्येष सर्वश्रुतिशिरोगतः ॥ ७ ॥

शिवजीवैक्यप्रकाशनार्थं नमःशब्दपूर्वकत्वेन चित्तत्वेन च पञ्चाक्षररूपेण सर्वश्रुतिशिरोगतः सन् मन्त्रोऽयं प्रतिभाति । अत्र नमस्कारेण जीवत्वम्, शिवशब्देन परब्रह्मत्वम्, आयेत्यैक्यम्, 'अय गतौ' इति धातोरिति भावः ॥ ७ ॥

पहिने 'नमः' शब्द कहक चाही, तकरा बाद 'शिवाय' कही । एहन रूपक ई पञ्चाक्षर मन्त्र सकल वेदक शिर थिक. ॥ ७ ॥

ननु सच्चिद्घनस्य परब्रह्मणः शिव इत्यभिधानं कथमित्यत्राह–

आदितः परिशुद्धत्वान्मलत्रयवियोगतः ।
शिव इत्युच्यते शम्भुश्चिदानन्दघनः प्रभुः ॥ ८ ॥

चिदानन्दघनः सच्चिदानन्दस्वरूपः प्रभुः स्वतन्त्रः शम्भुः सुखभोक्तृत्वात् सुखप्रदत्वाच्च परब्रह्म आदितः कदापि (=सर्वदा) मलत्रयवियोगत आणवादिमलत्रयसम्बन्धाभावेन परिशुद्धत्वाद् निर्मलत्वात् शिव इत्युच्यते, 'वश कान्तौ' इति धातोः स्वच्छप्रकाशरूपत्वादिति भावः ॥ ८ ॥

चिदानन्दघन भगवान् शिव आदिएसँ शुद्ध तथा मलत्रय (आणव, मयिक ओ कार्म)सँ रहित होएबाक कारण शिव कहबैत छथि ॥ ८ ॥

अथ सकलमङ्गलावासभूमित्वाच्च शिवशब्दाभिधेयं ब्रह्मेत्याह–

आस्पदत्वादशेषाणां मङ्गलानां विशेषतः ।
शिवशब्दाभिधेयो हि देवदेवस्त्रियम्बकः ॥ ९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत्र त्रियम्बकशब्देन सृष्टिस्थित्यादिकारणं परब्रह्मोच्यते, सूर्यादीनां सृष्ट्यादिकारणत्वात्, 'ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् । ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षम्' इति श्रुतेः[१] । त्रियम्बको देवदेवो ब्रह्मादीनामपि देवः परमेश्वरः, अशेषाणां समस्तानां मङ्गलानां विशेषतो विष्ण्वादिभ्योऽधिकत आस्पदत्वाद् आश्रयत्वात् शिवशब्दाभिधेयो हि, 'कल्याणं मङ्गलं शिवम्' इति प्रसिद्धत्वात् ॥ ९ ॥

विशेषरूपसँ सब मङ्गलक स्थान होएबाक कारण ई देवाधिदेव भगवान् त्र्यम्बक शिवशब्दक वाच्य (अर्थ) छथि ॥ ९ ॥

नन्वनेकनाम्नां विद्यमानत्वात् शिवशब्देनैव किमिति परब्रह्माभिधीयते, इत्यात्राह–

शिव इत्यक्षरद्वन्द्वं परब्रह्मप्रकाशकम् ।
मुख्यवृत्त्या तदन्येषां शब्दानां गुणवृत्तयः ॥ १० ॥

शिव इत्यक्षरद्वयं मुख्यवृत्त्या परब्रह्मप्रकाशकम्, तदन्येषां शब्दानां शिवशब्दातिरिक्तभवादिशब्दानां गुणवृत्त्या सिंहो माणवक इत्यादिवद् गुणयोगेन परब्रह्मप्रकाशकत्वमित्यर्थः ॥ १० ॥

'शिव' ई दू अक्षरक समुदाय मुख्यवृत्ति (अभिधा)क द्वारा परब्रह्मक प्रकाशक अछि । एहिसँ आन शब्दक (भव, शम्भु आदिक) लक्षणा द्वारा ओ बोधगम्य होइत छथि ॥ १० ॥

अथेक्तार्थमुपसंहरति–

तस्मान्मुख्यतरं नाम शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
सच्चिदानन्दरूपस्य शम्भोरमिततेजसः ॥ ११ ॥
एतन्नामावलम्बेन मन्त्रः पञ्चाक्षरः स्मृतः ।

महानिति शेषः । शिव इत्यक्षरद्वयमपरिमितप्रकाशरूपस्य सच्चिदानन्दघनस्य शम्भोः परब्रह्मणो मुख्यतरमत्यन्तमुख्यं नाम । एतन्नामावलम्बेन एतन्नामघटितत्वेन पञ्चाक्षरो मन्त्रो महानिति स्मृत इत्यर्थः ॥ ११ ॥

तेँ 'शिव' ई दू अक्षर सच्चिदानन्द रूप असीम तेजस्वी शम्भुक मुख्य नाम थिक ॥ ११ ॥

अथ किमनेन कर्तव्यं किं फलमित्यत्र दृष्टान्तपूर्वकमाह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यस्मादतः सदा जप्यो मोक्षकाङ्क्षिभिरादरात् ॥ १२ ॥
यथानादिर्महादेवः सिद्धः संसारमोचकः ।
तथा पञ्चाक्षरो मन्त्रः संसारक्षयकारकः ॥ १३ ॥

यस्मात् शिवनामघटितत्वेन पञ्चाक्षरमन्त्रो महान्, अतः तस्मात् कारणाद् मोक्षकाङ्क्षिभिः पुरुषैरादरात् सदा जप्यः । अत्र दृष्टान्तः –

सर्वमन्यत् परित्यज्य हेयान् विष्ण्वादिकान् सुरान् ।
शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारनाशनः ॥

इति पिप्पलादश्रुतेर् अनादिभूतः परशिवो यथा संसारपाशविमोचक इति प्रसिद्धः, तथा पञ्चाक्षरमन्त्रः संसारपाशक्षयकारक इति प्रसिद्धः,

अशेषपाशविच्छित्त्यै शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये कल्पितो मनुः ॥

इति ब्रह्मोत्तरखण्डवचनादिति ॥ १२-१३ ॥

एहि नामक अवलम्बनसँ पञ्चाक्षर मन्त्र 'नमः शिवाय' कहल गेल अछि । तेँ मोक्षार्थी लोकक द्वारा आदरसँ एकर जप करक चाही । जहिना अनादि महादेव संसार पाशसँ मुक्त कएनिहार प्रसिद्ध छथि तहिना ई पञ्चाक्षर मन्त्रो संसारबन्धनक क्षय कएनिहार थिक ॥ १२-१३ ॥

नन्वयं मन्त्रः शिववत् संसारक्षयकारकश्चेत्, विश्वकारणत्वं (णं) तद्वदस्ति किमित्यत्राह–

पञ्चभूतानि सर्वाणि पञ्चतन्मात्रकाणि च ।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चापि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च ॥ १४ ॥
पञ्चब्रह्माणि पञ्चापि कृत्यानि सह कारणैः ।
बोध्यानि पञ्चभिर्वर्णैः पञ्चाक्षरमहामनोः ॥ १५ ॥

पृथिव्यादिपञ्चभूतानि, गन्धादिपञ्चतन्मात्राः, ज्ञानशक्तिरूपघ्राणादि-पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, क्रियाशक्तिरूपोपस्थादिपञ्चकर्मेन्द्रियाणि, पञ्चसादाख्यपञ्च-ब्रह्मपर्यायाचारादिपञ्चलिङ्गानि, भवमृडहरादिकारणेशैः सह सृष्ट्यादिपञ्चकृत्यानि पञ्चविधानि सर्वाण्यपि पञ्चाक्षरमहामन्त्रस्य पञ्चभिर्वर्णैर्बोध्यानि प्रकाश्या-नीत्यर्थः ॥ १४-१५ ॥

एहि पञ्चाक्षर महामन्त्रक पाँचो वर्णसँ पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, पाँच

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पञ्चब्रह्म (ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर ओ सदाशिव एवं सद्योजात, तत्पुरुष, वामदेव, अघोर ओ ईशान) तथा एहि पाँचोक संग पञ्चकृत्य (सृष्टि स्थिति संहार निग्रह ओ अनुग्रह) प्रकाशित होइत अछि– ई बुझक चाही ।। १४-१५ ।।

नन्वालोकेन घटादिवत् प्रकाश्यानि वा स्वर्णकुण्डलादिवत् प्रकाश्यानि वेत्यत्राह–

पञ्चधा पञ्चधा यानि प्रसिद्धानि विशेषतः ।
तानि सर्वाणि वस्तूनि पञ्चाक्षरमयानि हि ।। १६ ।।

पञ्चशक्तिपञ्चाङ्गुलिवचनादानादिपञ्चकर्मेन्द्रियार्थाः, मनोबुद्ध्यहङ्कार-प्रकृतिपुरुषादीनि पञ्च-पञ्च प्रकारेण यानि विशेषतः प्रसिद्धानि, तानि सर्वाणि स्वर्णकुण्डलन्यायेन पञ्चाक्षरमयानि पञ्चाक्षरकार्याणि तत्प्रकाश्यानि चेत्यर्थः, वर्णानां शक्तिरूपत्वादिति ।। १६ ।।

विशेषरूपेँ जे वस्तु पाँच-पाँच कए प्रसिद्ध अछि– पञ्चशक्ति, पञ्चाङ्गुलि, मन बुद्धि अहङ्कार प्रकृति पुरुष इत्यादि से सब स्वर्णकुण्डलन्याय सँ पञ्चाक्षरमय थिक । यथा– कटक-केयूट-कुण्डलादि सब सोने थिक तहिना सब किछु पञ्चाक्षरे थिक ।। १६ ।।

ननु मोक्षकारणं प्रणवः, पञ्चाक्षर्यां तदभावात् कथं मोक्षप्रदत्वमित्यत्राह–

ॐकारपूर्वो मन्त्रोऽयं पञ्चाक्षरमयः परः ।
शैवागमेषु वेदेषु षडक्षर इति स्मृतः ।। १७ ।।

पर उक्तप्रकारेण सर्वोत्कृष्टः पञ्चाक्षरमयोऽयं मन्त्रः ॐकारपूर्वः षडक्षर इति शिवागमेषु वेदेषु स्मृतः । श्रीरुद्रे– 'नमस्ताराय नमः शम्भवे च' इति, ईशानमन्त्रान्ते– 'मे अस्तु सदाशिवोम्' इति च श्रूयमाणत्वात् । ''ॐकारात्मतया भाति शान्त्यतीतः परः शिवः । शिवो वा प्रणवः प्रोक्तः प्रणवो वा शिवः स्मृतः । वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते क्वचित् ।।'' इत्यागमोक्तेः, इति पौराणिकोक्तेश्च शिवप्रणवयोरभेदाद् ॐकारापूर्वत्वेन षडक्षर इत्यर्थः ।। १७ ।।

ओङ्कारपूर्वक (आदिमे ॐ दए) इएह पञ्चाक्षर मन्त्र शैवागम सबमे तथा वेदमे षडक्षर (छओ अक्षरवाला) कहल गेल अछि– 'ॐ नमः शिवाय' ।। १७ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ–

प्रथमं तारकारूपं द्वितीयं दण्ड उच्यते ।
तृतीयं कुण्डलाकारं चतुर्थं चार्धचन्द्रकम् ॥
पञ्चमं दर्पणाकारं षष्ठं ज्योतिःस्वरूपकम् ।
नकारस्तारकारूपं मकारो दण्ड उच्यते ॥
शिकारः कुण्डलाकारो वकाश्चार्धचन्द्रकः ।
यकारो दर्पणाकार ॐकारः पञ्चवर्णराट् ॥

इति शिवागमवचनात् पञ्चाक्षरकल्पतरोर्बीजभूतस्य ॐकारस्य माहात्म्यं सूत्रत्रयेण निरूपयति–

मन्त्रन्यासादिभूतेन प्रणवेन महामनोः ।
प्रबोध्यते महादेवः केवलश्चित्सुखात्मकः ॥ १८ ॥

महामन्त्ररूपस्यास्य पञ्चाक्षरमन्त्रस्यादिभूतेन प्रणवेन सच्चिदानन्दात्मकः परशिवः प्रकाश्यत इत्यर्थः, 'यो वै रुद्रः स भगवान्' इत्युपक्रम्य 'य ॐकारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म, स एकः स एको रुद्रः स ईशानः स भगवान् स महेश्वरः स महादेवः'[1] इत्यथर्वशिरःश्रुत्या प्रणव एव सच्चिदानन्दात्मकं परब्रह्मेति श्रूयमाणत्वादिति ॥ १८ ॥

एहि 'नमः शिवाय' महाकन्त्रक आदिमे राखल प्रणव (ओङ्कार) सँ केवल चित्सुखात्मक महादेवक प्रबोधन (जागरण वा सम्बोधन) होइत अछि ॥ १८ ॥

ननु शिवः प्रणवेन विना न केनापि प्रकाश्यते, प्रकाश्यते वेत्यत्राह–

प्राणवेनैकवर्णेन परब्रह्म प्रकाश्यते ।
अद्वितीयं परानन्दं शिवाख्यं निष्प्रपञ्चकम् ॥ १९ ॥

'शिवं परात्परं सूक्ष्मं नित्यं सर्वगमव्ययम्' इति शिवागमोक्तेः शिवाख्यं परानन्दं सच्चिदानन्दलक्षणम् अद्वितीयम् 'एकमेवाद्वितीयम्' इति श्रुतेर्द्वितीयशून्यम्, 'नेह नानास्ति किञ्चन'[2] इति श्रुतेर्निष्प्रपञ्चकम्, अत एव प्रापञ्चिक-भेदशून्यं परं ब्रह्म प्रणवेनैकवर्णेन प्रणवरूपैकवर्णेन, प्रणवेनैवेत्यर्थः, प्रकाश्यते प्रबोध्यते, प्रणवांशीभूताकारोकारमकाराणां सच्चिदानन्दवाचकत्वादिति । एवं च

१. अथ उ० २ । ३ २. बृ०उ० ४ । ४ । १९

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नमश्शिवायेति पञ्चाक्षराण्याचारगुरुशिववरप्रसादलिङ्गबीजाक्षराणि, ॐकारो महालिङ्गबीजमिति बीजवृक्षरूपप्रणवपञ्चाक्षर एव षट्स्थलबीजमिति तात्पर्यम् ॥ १९ ॥

एक वर्णस्वरूप प्रणव (ओङ्कार)सँ परब्रह्म प्रकाशित होइत छथि जे अद्वितीय, परानन्द, निष्प्रपञ्च शिव थिकाह ॥ १९ ॥

नन्वस्य लिङ्गाङ्गषट्स्थलयोगकारणस्य प्रणवस्य सच्चिदानन्दलक्षणब्रह्म-प्रकाशकत्वमस्तु, निष्प्रपञ्चब्रह्मप्रतिपादकत्वं कथमित्यत्राजपागायत्रीमन्त्रयोगपूर्वकं तत्स्वरूपं प्रदर्शयति—

परमात्ममनुर्ज्ञेयः सोऽहंरूपः सनातनः ।
जायते हसयोर्लोपादोमित्येकाक्षरो मनुः ॥ २० ॥

परमात्ममनुः परमात्ममन्त्रः सोऽहंरूपः प्रत्यभिज्ञानरूप इति ज्ञेयः, 'योऽसौ पुरुषः सोऽहम्' इति श्रुतिगुरूपदेश-स्वानुभवैर्विज्ञातुं योग्यः, एवं प्रतिदिन षट्शताधिकमेकविंशतिसहस्रसंख्यातं जपित्वाऽथास्य भेदघटितत्वात् केवलकुम्भकेन सकारहकारयोस्त्यागात् सनातनो नित्यः ओमित्येकाक्षरमनुर्जायते । ततः किमिति चेत् ? उच्यते, सकारस्य चन्द्रबीजत्वेन वेद्यरूपत्वात्, हकारस्यार्कबीजत्वेन वेदनरूपत्वात् एवंरूपसकारहकारयोस्त्यागाद् वृत्तिशून्यवेदैकमात्रप्रकाशकरूप ॐकार एवावशिष्यत इति निष्प्रपञ्चब्रह्मप्रतिपादकः प्रणव इत्युक्तं भवति । तेन शिवजीवैक्यलक्षलिङ्गाङ्गसामरस्यरूपश्रुत्यागमप्रसिद्धपरमुक्तिरिति बोध्यम् ॥ २० ॥

'सोऽहम्' ई सनातन केँ परमात्माक मन्त्र बुझक चाही । एहि मन्त्रसँ स और ह केँ लोप कए देला पर एकाक्षर मन्त्र ॐ रहि जाइत अछि ॥ २० ॥

एवंस्थिते प्रणवेन निष्कलज्ञानं पञ्चाक्षर्या सकलज्ञानं, प्रणवसहितपञ्चाक्षर्या सकल-निष्कल(ज्ञान)मिति सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति—

प्रणवेनैव मन्त्रेण बोध्यते निष्कलः शिवः ।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पञ्चब्रह्मतनुस्तथा ॥ २१ ॥
निष्कलः संविदाकारः सकलो विश्वमूर्तितः ।
उभयात्मा शिवो मन्त्रे षडक्षरये स्थितः ॥ २२ ॥

अत्र निष्कलशब्देन शुद्धचिद्रूपत्वमुच्यते, सकलशब्देन प्रपञ्चविशिष्टत्व-मुच्यते । एवं च प्रणवमन्त्रेणैव निष्कलः शिवः सच्चिदानन्दात्मकः परशिवः

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बोध्यते प्रकाश्यते । पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पञ्चब्रह्मतनुः पञ्चब्रह्ममयः शिवस्तथा बोध्यते, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'[1] इति श्रुतेः प्रकाश्यत इत्यर्थः । उभयात्मा शिवः सकलनिष्कलरूपः परमात्मा षडक्षरमये मन्त्रे प्रणवयुक्तपञ्चाक्षर्यां स्थितः प्रकाशत इत्यर्थः । अत्र यद्यपि– 'अकारं ब्रह्माणं नाभौ, उकारं विष्णुं हृदये, मकारं रुद्रं भ्रूमध्ये, ॐकारं सर्वेश्वरं द्वादशान्ते'[2] इति तापनीयश्रुतेः प्रणवस्यापि सप्रपञ्चब्रह्ममयत्वमेव, तथापि वेद्यसंस्कारात्मकबिन्दुघटितत्वेन सूक्ष्मप्रपञ्चमयत्वान्निष्कलत्वव्यपदेशः । स्थूलप्रपञ्चमयस्य पञ्चाक्षरमन्त्रद्रुमस्य प्रणवो बीजम्, तस्य अकारोकारमकारबिन्दुनादलक्षणपञ्चावयवसम्पन्नत्वादिति संक्षेपः ॥ २१-२२ ॥

ॐकार रूप प्रणव मन्त्रसँ केवल निष्कल शिवक ज्ञान होइत अछि, आ पञ्चाक्षर मन्त्र 'नमः शिवाय'सँ पञ्चब्रह्मात्मक शरीररूपी शिवक ज्ञान होइछ । एहि षडक्षर मन्त्रमे संविदाकार निष्कल एवं विश्वमूर्ति सकल दुनू प्रकारक शिव स्थित छथि ॥ २१-२२ ॥

अथास्य पञ्चाक्षरमन्त्रस्य पर्यायनामानि कथयति–

मूलं विद्या शिवः शैवसूत्रं पञ्चाक्षरस्तथा ।
एतानि नामधेयानि कीर्तितानि महामनोः ॥ २३ ॥

महामनोः पञ्चाक्षरमहामन्त्रस्य मूलं, विद्या, शिवः, शैवसूत्रं तथा पञ्चाक्षर इत्येतानि नामधेयानि वर्णसंख्यया कीर्तितानीत्यर्थः ॥ २३ ॥

एहि महामन्त्रक पाँच नाम कहल गेल अछि– मूल, विद्या, शिव, शैवसूत्र ओ पञ्चाक्षर ॥ २३ ॥

अथैतादृशीं पञ्चाक्षरीं प्रणवेन सह षडक्षरीं विद्यां जपेदित्याह–

पञ्चाक्षरीमिमां विद्यां प्रणवेन षडक्षरीम् ।
जपेत् समाहितो भूत्वा शिवपूजापरायणः ॥ २४ ॥

समाहित एकाग्रचितः सन्नित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २४ ॥

शिवपूजामे लागल व्यक्ति प्रणवयुक्त एहि पञ्चाक्षर मन्त्रकेँ षडक्षर बनाए संयतचित्त भए जपथि ॥ २४ ॥

कथं जपेदित्यत्राह–

---

१. छा०उ० ३।१४।१ २. नृ०उ० ३।४

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।
चिन्तयन् हृदयाम्भोजे देवदेवं त्रियम्बकम् ॥ २५ ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तं साम्बं चन्द्रार्धशेखरम् ।
जपेदेतां महाविद्यां शिवरूपामनन्यधीः ॥ २६ ॥

शुद्धे स्थले मृगाजिनचित्रकम्बलाद्यास्तरणे सिद्धपद्माद्यासने प्राङ्मुखोदङ्मुखो वोपविश्य भस्मरुद्राक्षालङ्कृतः सन् शिवलिङ्गपूजको भूत्वा,

असम्पूज्य शिवं पश्चात् फलं वक्तुं न शक्यते ।
सहस्रं वा तदर्धं वा तदर्धं वा शताष्टकम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा जपं कुर्यादतन्द्रधीः ॥
पूजाकोटिसमं स्तोत्रं स्तोत्रकोटिसमो जपः ।
जपकोटिसमं ध्यानं ध्यानकोटिसमो लयः ॥

इति शिवागमवचनात् शिवपूजानन्तरं पुनः प्राणायामं कृत्वा करषडङ्गं विन्यस्य हृदयकमले त्रियम्बकं मण्डलत्रय-गुणत्रय-देवत्रयादित्रिविधवस्तुकारणीभूतं देवदेवं भवानीपतिं सर्वालङ्कारसंयुक्तं चन्द्रार्धशेखरं शिवम् अनन्यधीः परिचिन्तयन्, एकां महाविद्यामुक्तविधेष्वेकप्रकारेण गुरूपदिष्टमार्गेण सगर्भजपं कुर्यादित्यर्थः ॥ २५-२६ ॥

पूबमुहेँ वा उत्तरमुहेँ बैसि तीनू प्राणायाम कए साधक अपन हृदयकमलमे सर्वालङ्कारभूषित अर्धचन्द्रकेँ धारण कएनिहार साम्ब देवदेव त्र्यम्बकक ध्यान करथि । तकर बाद एकाग्रचित्त भए शिवरूपा एहि महाविद्याक जप करथि ॥ २५-२६ ॥

अथ जपभेदं प्रदर्शयति–

जपस्तु त्रिविधः प्रोक्तो वाचिकोपांशुमानसः ।
श्रूयते यस्तु पार्श्वस्थैर्यथा वर्णसमन्वयः ॥ २७ ॥
वाचिकः स तु विज्ञेयः सर्वपापप्रभञ्जनः ।
ईषत्स्पृष्ट्वाधरपुटं यो मन्दमभिधीयते ॥ २८ ॥
पार्श्वस्थैरश्रुतः सोऽयमुपांशुः परिकीर्तितः ।
अस्पृष्ट्वाधरमस्पन्दि जिह्वाग्रं योऽन्तरात्मना ।
भाव्यते वर्णरूपेण स मानस इति स्मृतः ॥ २९ ॥

जपो मन्त्रोच्चारस्तु वाचिक इति, उपांशुरिति, मानस इति त्रिविधः ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तत्र यस्तु मन्त्रोच्चारो यथावर्णसमन्वयं वर्णसन्तानमनतिक्रम्य पार्श्वस्थैः श्रूयते, स मन्त्रोच्चारो मनोवचनकायजन्यसर्वपापनिवारको वाचिकजप इति विज्ञातुं योग्य इत्यर्थः । यः यो मन्त्रोच्चारः किञ्चिदधरपुटं स्पृष्ट्वा पार्श्वस्थैरश्रुतः सन् मन्दमभिधीयते, सोऽयमुपांशुजप इति परिकीर्तितः । यः यो मन्त्रोच्चारः अधरमपृष्ट्वा अस्पन्दिजिह्वाग्रं स्पन्दनरहितजिह्वाग्रं यथा भवति तथा वर्णरूपेणान्तरात्मना मन्त्राक्षरस्वरूपवता चित्तेन भाव्यते, सः स मन्त्रोच्चारो मानस इति मानसजप इति स्मृत इत्यर्थः ॥ २७-२९ ॥

जप तीन प्रकारक होइत अछि– वाचिक, मानस ओ उपांशु । जाहि जपकेँ लगक लोक वर्णसमुदायरूपमे सुनि सकए से सकल पापनाशक वाचिक जप कहबैछ । जे जप दुनू ठोरकेँ कनेक भिड़ाए मन्द रूपेँ कहल जाए ओ जकरा लगक लोक नहि सुनि सकए से उपांशु जप कहबैछ । जे जप ठोरकेँ बिनु भिड़ओनहि जीहकेँ बिनु हिलओनहि मनहि मन वर्णरूपक भावना करैत कहल जाए से मानस जप कहबैछ ॥ २७-२९ ॥

अथास्य जपयज्ञस्य माहात्म्यमुद्भावयति–

यावन्तः कर्मयज्ञाद्या व्रतदानतपांसि च ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३० ॥

यावन्तः कर्मयज्ञाद्या ज्योतिष्टोमादयः सन्ति, व्रतदानतपांसि यावन्ति सन्ति, ते सर्वे जपयज्ञस्य षोडशीं कलां प्रति षोडशभागेष्वेकभागं च प्रति, नार्हन्ति न समाना भवन्तीत्यर्थः ॥ ३० ॥

जतेक जे कर्मयज्ञ अछि, जतेक जे व्रत दान तप यज्ञ अछि से सब जपयज्ञक सोलहमो अशंक बराबर नहि अछि ॥ ३० ॥

अथोक्तत्रिविधजपानां माहात्म्यमेकप्रकारं किमित्यत्राह–

माहात्म्यं वाचिकस्यैतज्जपयज्ञस्य कीर्तितम् ।
तस्माच्छतगुणोपांशुः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥ ३१ ॥

वाचिकजपस्य यदेतन्माहात्म्यं कीर्तितं तस्मात् वाचिकजपाद् उपांशुजपः शतगुणः, तस्मादुपांशोर्मानसः साहस्रः सहस्रगुण इति स्मृत इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

ई माहात्म्य वाचिक जपयज्ञक कहल गेल, ताहिसँ सएगुना उत्कृष्ट उपांशु जप तथा हजार गुना उत्कृष्ट मानसजप मानल गेल अछि ॥ ३१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तर्ह्येतेषु को वा जपः कर्तव्य इत्यत्र मोक्षार्थिभिर्मानस एव जपः कर्तव्य इत्याह—

वाचिकात् तदुपांसोश्च जपादस्य महामनोः ।
मनसो हि जपः श्रेष्ठो घोरसंसारनाशकः ॥ ३२ ॥

अस्य महामनोः, वाचिकाज्जपादुपांशोश्च जपात्, मानसो जपः क्रूरसंसारनाशकः सन् श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

एहि महामन्त्रक वाचिक ओ मानसिक जपक अपेक्षया मानस जप श्रेष्ठ थिक । ई भयानक संसारभयकेँ नाश करैत अछि ॥ ३२ ॥

तर्हि तयोः का गरितित्यत्राह—

एतेष्वेतेन विधिना यथाभावं यथाक्रमम् ।
जपेत् पञ्चाक्षरीमेतां विद्यां पाशविमुक्तये ॥ ३३ ॥

एतेषु विषयेषु वाचिकादिजपविषयेषु, एतेन विधिना एतदुक्तप्रकारेण, यथाक्रमं क्रममनतिक्रम्य यथाभावं यथासम्भवम् एतां पञ्चाक्षरीं विद्यां पाशविमुक्तये मलमायादिपञ्चपाशविमुक्त्यर्थं जपेत्, उच्चरेदित्यर्थः ॥ ३३ ॥

एहि तीनू प्रकारक जपमे कोनो प्रकारक जप पञ्चाक्षर मन्त्रक भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त क्रमसँ करबाक चाही जाहिसँ भवपाश सँ मुक्ति भए जाइछ ॥ ३३ ॥

अथ अनेनैव मन्त्रेण शिवलिङ्गार्चनं च कर्तव्यमित्याह—

अनेन मूलमन्त्रेण शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ।
नित्यं नियमसम्पन्नः प्रयतात्मा शिवात्मकः ॥ ३४ ॥

नियमसम्पन्नः यमनियमादिसम्पन्नः सन् प्रयतात्मा शुद्धान्तःकरणवान् सन्, शिवात्मकः 'नारुद्रो रुद्रमर्चयेत्' इति श्रुतेः शिवभावसम्पन्नः, अनेन मूलमन्त्रेण एतत्प्रवपञ्चाक्षरमन्त्रेण शिवलिङ्गं नित्यं सदा पूजयेद् विभवेन पूजयेदित्यर्थः ॥ ३४ ॥

शिवक भक्त विशुद्धचित्त भए नियमानुसार एहि मूलमन्त्र सँ नित्य शिवलिङ्गक पूजा करथि ॥ ३४ ॥

नन्वस्य समन्त्रकशिवपूजनस्य किं फलमित्यत्राह—

भक्त्या पञ्चाक्षरेणैव यः शिवं सकृदर्चयेत् ।
सोऽपि गच्छेच्छिवस्थानं मन्त्रस्यास्यैव गौरवात् ॥ ३५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्टम् ॥ ३५ ॥

जे एहि पञ्चाक्षर मन्त्रसँ भक्तिपूर्वक ऐको बेर शिवक पूजन करैत छथि से एहि मन्त्रक महिमासँ शिवस्थानकेँ प्राप्त करैत छथि ॥ ३५ ॥

ननु व्रतनियमादिना सद्भक्तिसम्भवात् पूजा किमर्थं विधेयेत्यत्राह—

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः ।
तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति शिवलोकसमागमः ॥ ३६ ॥

अब्भक्षा जलाहारिणाः, वायुभक्षाश्च वायुपर्णाहारिणः, ये चान्ये व्रतकर्शिताः कृच्छ्रचान्द्रायणादिव्रतकृशा ये सन्ति, तेषामेतैर्व्रतैः शिवलोक-प्राप्तिर्नास्तीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

जे केवल जल पीबि वा वायुक सेवन कए व्रत करैत छथि अथवा आने तरहक विहित व्रत करैत छथि तनिका ओहि व्रतसँ शिवलोकक प्राप्ति नहि होइत छनि ॥ ३६ ॥

तस्माज्जपयज्ञादयः सर्वे लिङ्गार्चनस्य कोट्यंशेनापि नो समा इत्याह—

तस्मात्तपांसि यज्ञाश्च व्रतानि नियमास्तथा ।
पञ्चाक्षरार्चनस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः ॥ ३७ ॥

स्पष्टम् ॥ ३७ ॥

तेँ तपस्या, यज्ञ, नियम ओ व्रत— ई सब पञ्चाक्षर मन्त्र द्वारा पूजन एवं जपक करोड़मो भागक बराबरक नहि अछि ॥ ३७ ॥

नन शिवार्चने निर्मलज्ञानादिसम्पन्नोऽधिकारीत्युक्तत्वाद् अशुद्धबुद्धीनां का गतिरित्यत्राह—

अशुद्धो वा विशुद्धो वा सकृत् पञ्चाक्षरेण यः ।
पूजयेत् पतितो वापि मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३८ ॥

पतितो व्रतभ्रष्ट इत्यर्थः । मुच्यते सर्वपापैः प्रमुच्यत इत्यर्थः ॥ ३८ ॥

अशुद्धे हो वा विशुद्ध अथवा पतिते किएक नहि हो, सेहो एक बेर पञ्चाक्षर मन्त्रसँ जँ शिवक अर्चना कए लेअए तँ मुक्त भए जाइत अछि, एहिमे सन्देह नहि ॥ ३८ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ पञ्चाक्षरमन्त्रस्य सकृदुच्चारणादेव सर्वेषामपि सर्वपापक्षयः स्यादित्याह–

सकृदुच्चारमात्रेण पञ्चाक्षरमहामनोः ।
सर्वेषामपि जन्तूनां सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ३९ ॥

स्पष्टम् ॥ ३९ ॥

पञ्चाक्षर महामन्त्रक केवल एकबेर उच्चारण कएलासँ जीवक समस्त पापक नाश भए जाइछ ॥ ३९ ॥

ननु शिवागमप्रसिद्धा मन्त्रा बहवः सन्ति, तेभ्यः कस्मादस्य वैशिष्ट्यमित्यत्राह–

अन्येऽपि बहवो मन्त्रा विद्यन्ते सकलागमे ।
भूयो भूयः समभ्यासात् पुरुषार्थप्रदायिनः ॥ ४० ॥
एष मन्त्रो महाशक्तिरीश्वरप्रतिपादकः ।
सकृदुच्चारणादेव सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ४१ ॥

सकलागमे समस्तशिवागमे, एतत्पञ्चाक्षरीव्यतिरिक्तमन्त्रा बहवः सन्ति, ते पुरश्चरणबाहुल्यात् पुरुषार्थप्रदायिनः । एष पञ्चाक्षरमन्त्रो महाशक्तिः महासामर्थ्यवान्, ईश्वरस्य विश्वमयविश्वोत्तीर्णसामरस्यलक्षणमाहात्म्यप्रतिपादकः। तस्मात् सकृदुच्चारणादेव सर्वसिद्धिप्रदायक इत्यस्य वैशिष्ट्यमित्यर्थः ॥ ४०-४१ ॥

सकल आगम मे आनो बहुत रास मन्त्र अछि, किन्तु से बेर-बेर अभ्यास कएले पर फलद होइछ। ई मन्त्र तँ महाशक्तिसम्पन्न ओ ईश्वरक वाचक थिक। तेँ एकहि बेरक उच्चारण सँ सकलसिद्धिक प्रदान करैछ ॥ ४०-४१ ॥

अथ समन्त्रकपूजाफलं प्रकाशयति–

पञ्चाक्षरीं समुच्चार्य पुष्पं लिङ्गे विनिःक्षिपेत् ।
यस्तस्य वाजपेयानां सहस्रफलमिष्यते ॥ ४२ ॥

निक्षिपेत् समर्पयेदित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ४२ ॥

जे व्यक्ति पञ्चाक्षर मन्त्रक उच्चारण करैत शिवलिङ्गक ऊपर फूल चढ़बैत छथि हुनका हजार वाजपेययज्ञक फल होइत छनि ॥ ४२ ॥

अथ पञ्चाक्षरीजपफलं प्रकाशयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अग्निहोत्रं त्रयो वेदा यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः ।
पञ्चाक्षरजपस्यैते कोट्यंशेनापि नो समाः ॥ ४३ ॥

अग्निहोत्रं सायंप्रातर्विधीयमानाग्निहोत्रम्, त्रयो वेदा ऋग्यजुःसामाध्ययनम्, यज्ञा ज्योतिष्टोमाद्याः, बहुदक्षिणा षोडशमहादानरूपाः, एते पञ्चाक्षरजपस्य कोट्यंशेनापि समाना च भवन्तीत्यर्थः ॥ ४३ ॥

अग्निहोत्र, तीनू वेद ओ प्रचुर दक्षिणादानवाला यज्ञ– ई सब पञ्चाक्षर जपक करोड़मो भागक बराबर नहि होइछ ॥ ४३ ॥

अथैतमन्त्रसिद्धिमतां महापुरुषाणां माहात्म्यप्रतिपादनद्वारा तस्याधिक्यं वर्णयति–

पुरा सानन्दयोगीन्द्रः शिवज्ञानपरायणः ।
पञ्चाक्षरं समुच्चार्य नारकानुदतारयत् ॥ ४४ ॥

पुरा शिवज्ञानयोगनिष्ठः सानन्दगणेशः पञ्चाक्षरमन्त्रं वाचकरूपेणोच्चार्य नारकान् अष्टाविंशतिकोटिनायकनरकस्थितान् पापिन उदतारयद् उद्धृतवानित्यर्थः ॥ ४४ ॥

प्राचीन कालमे शिवज्ञानपरायण योगीन्द्र सानन्द पञ्चाक्षरमन्त्रक उच्चारण कए अट्ठाइस करोड़ नरकवासीक उद्धार कयलनि ॥ ४४ ॥

सिद्ध्या पञ्चाक्षरस्यास्य शतानन्दः पुरा मुनिः ।
नरकं स्वर्गमकरोत् सङ्गिरस्यापि पापिनः ॥ ४५ ॥

पुरा शतानन्दः पञ्चाक्षरीजपस्य सिद्ध्या पापिनः सङ्गिरस्य नरकमपि स्वर्गमकरोदित्यर्थः ॥ ४५ ॥

प्राचीन समयमे सदानन्दनामक मुनि एहि पञ्चाक्षर मन्त्रक सिद्धिक द्वारा सङ्गिर नामक पापीकेँ प्राप्त नरककेँ स्वर्ग बनाए देलनि ॥ ४५ ॥

उपमन्युः पुरा योगी मन्त्रेणानेन सिद्धिमान् ।
लब्धवान् परमेशानाच्छैवशास्त्रप्रवक्तृताम् ॥ ४६ ॥

शिवशास्त्राचार्यतां लब्धवानित्यर्थः ॥ ४६ ॥

प्राचीन युगमे उपमन्युनामक योगी एहि मन्त्रक सिद्धिप्राप्ति कए परमेश्वर सँ वर पाबि शैवशास्त्रक प्रवक्ता बनलाह ॥ ४६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वसिष्ठवामदेवाद्या मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ।
मन्त्रेणानेन संसिद्धा महातेजस्विनोऽभवन् ॥ ४७ ॥

मुक्तकिल्बिषा विमुक्तपापकर्माणः, वसिष्ठवामदेवाद्या ऋषयः, अनेन पञ्चाक्षरमन्त्रेण, सिद्धिमन्तः सन्तः महातेजस्विनः शापानुग्रहसमर्था अभवन्नित्यर्थः ॥ ४७ ॥

एहि मन्त्रक द्वारा निष्पाप वसिष्ठ, वामदेव आदि मुनि सिद्ध भए महान् तेजस्वी भेलाह ॥ ४७ ॥

अथ ब्रह्मादयोऽप्येतन्मन्त्रसामर्थ्यादेव सृष्ट्यादिकृत्याधिकारिणो जाता इत्याह—

ब्रह्मादीनां च देवानां जगत्सृष्ट्यादिकर्मणि ।
मन्त्रस्यास्यैव माहात्म्यात् सामर्थ्यमुपजायते ॥ ४८ ॥

ब्रह्मविष्णुरुद्रादिदेवानां विश्वसृष्टिस्थितिसंहारादिकर्मणि सामर्थ्यमस्य मन्त्रस्य प्रभावादेवेत्यर्थः ॥ ४८ ॥

एही मन्त्रक माहात्म्यक सामर्थ्यसँ ब्रह्मा, विष्णु ओ रुद्र क्रमशः जगतक सृष्टि, स्थिति ओ संसार कार्यक सामर्थ्य प्राप्त करैत छथि ॥ ४८ ॥

किं बहुना, अस्य प्रणवसहितषडक्षरमन्त्रस्य जपेन तत्कृतशिवलिङ्गपूजनेन च मोक्षमेवाप्नोतीत्युक्त्वा पञ्चाक्षरीजपस्थलं समापयति—

किमिह बहुभिरुक्तैर्मन्त्रमेवं महात्मा
प्रणवसहितमादौ यस्तु पञ्चाक्षराख्यम् ।
जपति परमभक्त्या पूजयन् देवदेवं
स गतदुरितबन्धो मोक्षलक्ष्मीं प्रयाति ॥ ४९ ॥

इति श्रीमत्सष्ट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना माहेश्वरेण विरचिते
सिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले पञ्चाक्षरीजपप्रसङ्गो
नाम अष्टमः परिच्छेदः समाप्त ॥ ८ ॥



स्पष्टम् ॥ ४९ ॥

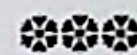
अत्र यादिसृष्टिषडक्षर्या शरीरन्यासम्, नादिप्रणवान्तसंहारपञ्चाक्षर्याऽङ्ग-

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न्यासम्, शिवाय नम ओमिति स्थितिपञ्चाक्षर्या करन्यासं कृत्वा गुरूपदिष्टमार्गेण प्रणवपञ्चाक्षरीं जपेत् । स्त्रीशूद्रादिजातीनां शिवाय नम इति जपविधिः ।

इति पञ्चाक्षरीजपस्थलम् ।

इति श्रीमत्पदावाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां भक्तस्थले पञ्चाक्षरीजपप्रसङ्गो नाम अष्टमः ॥ ८ ॥



अधिक कहबाक प्रयोजन नहि, जे महात्मा व्यक्ति प्रणवयुक्त एहि पञ्चाक्षर मन्त्रसँ भक्तिपूर्वक देवाधिदेव भगवान् शङ्करक पूजा करैत जप करैत छथि से पापरूपी बन्धनक नाश कए मोक्षरूपी ऐश्वर्यकेँ प्राप्त करैत छथि ।। ४९ ।।

एहि प्रकारेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थक पञ्चाक्षरजपप्रसङ्ग नामक आठम परिच्छेदक विद्यावाचस्पति पं. श्री शशिनाथ झाकृत प्रबोधिनी मैथिली व्याख्या समाप्त भेल ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नवमः परिच्छेदः

अथ भक्तमार्गक्रियास्थलम्

अथ भक्तमार्गक्रियास्थलं निरूपयितुं पूर्वमुक्तमपि भक्तस्थलं विशेषतः स्मारयति श्रीरेणुकः –

भूतिरुद्राक्षसंयुक्तो लिङ्गधारी सदाशिवः ।
पञ्चाक्षरजपोद्योगी शिवभक्त इति स्मृतः ॥ १ ॥

स्पष्टम् ॥ १ ॥

भस्म ओ रुद्राक्षसँ संयुक्त, लिङ्गधारी, सदाशिव योगी पञ्चाक्षर जपमे सतत लागल रहैत शिवभक्त कहबैत छथि ॥ १ ॥

भक्तिभेदं निरूपयति–

श्रवणं कीर्तनं शम्भोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ २ ॥
एवं नवविधा भक्तिः प्रोक्ता देवेन शम्भुना ।
दुर्लभा पापिनां लोके सुलभा पुण्यकर्मणाम् ॥ ३ ॥

शम्भोः श्रवणं शिवकथाश्रवणम्, कीर्तनं स्तोत्रम्, स्मरणं ध्यानम्, पादसेवनं पादमर्दनम्, अर्चनं पूजनम्, वन्दनं नतिः, दास्यं भृत्यत्वम्, सख्यं मित्रत्वम्, आत्मनिवेदनं स्वात्मसमर्पणम् । एवं भक्तिर्नवविधेति क्रीडाशीलेन देवेन प्रोक्ता । लोके पापिनां दुर्लभा, पुण्यकर्मणां धर्मशालिनां सुलभेत्यर्थः ॥ २-३ ॥

शम्भुक श्रवण, कीर्तन, स्मरण (नाम-गुण-रूप-लीलाक), चरणसेवन, पूजन, वन्दन, दास्य (हुनक दास बनब) ओ आत्मनिवेदन– ई नओ प्रकारक भक्ति देवशम्भुक द्वारा कहल गेल अछि जे पापीक लेल दुर्लभ ओ धर्मात्माक लेल सुलभ अछि ॥ २-३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथैवंविधभक्तिमानेव भक्त इत्याह–

अधमे चोत्तमे वापि यत्र कुत्रचिदूर्जिता ।
वर्तते शाङ्करी भक्तिः स भक्त इति गीयते ॥ ४ ॥

स्पष्टम् ॥ ४ ॥

अधम अथवा उत्तम जाहि कोनो व्यक्तिमे शङ्करक भक्ति उत्कट हो से भक्त कहबैत छथि ॥ ४ ॥

अथ भक्तिमानेव शिवप्रिय इत्याह–

भक्तिः स्थिरीकृता यस्मिन् म्लेच्छे वा द्विजसत्तमे ।
शम्भोः प्रियः स विप्रश्च न प्रियो भक्तिवर्जितः ॥ ५ ॥

स्पष्टम् ॥ ५ ॥

जाहि म्लेच्छ वा उत्तम ब्राह्मणमे भक्ति स्थिर भए जाइछ से शिवक प्रिय होइत छथि, किन्तु भक्तिहीन ब्राह्मणो हुनक प्रिय नहि भए सकैत छथि ॥ ५ ॥

अनेन पूर्वोक्तोत्तमाधमावपि स्फुटीकृतौ । अथ सा भक्तिर्द्विविधेत्याह–

सा भक्तिर्द्विविधा ज्ञेया बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
बाह्या स्थूलान्तरा सूक्ष्मा वीरमाहेश्वरादृता ॥ ६ ॥

वीरमाहेश्वरप्रीतिविषयिणी भक्तिर्बाह्याभ्यन्तरलक्षणस्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधेत्यर्थः ॥ ६ ॥

ओ भक्ति दू प्रकारक होइत अछि– बाह्य ओ आभ्यन्तर । स्थूला भक्ति बाह्य कहबैछ आ सूक्ष्मा भक्ति आभ्यन्तर । सूक्ष्मा भक्ति वीरशैव लोकनिसँ विशेष समादृत अछि ॥ ६ ॥

अथ का नाम बाह्येत्यत्राह–

सिंहासने शुद्धदेशे सुरम्ये रत्नचित्रिते ।
शिवलिङ्गस्य पूजा या सा बाह्या भक्तिरुच्यते ॥ ७ ॥

सुरम्ये अत्यन्तमनोहरे, शुद्धदेशे षट्सम्मार्जनपरिशुद्धस्थाने, रत्नचित्रिते नवरत्नैर्विचित्रीकृते, सिंहासने सिंहविष्टरे, शिवलिङ्गस्य या पूजा, सा बाह्या भक्तिरित्युच्यत इत्यर्थः ॥ ७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शुद्ध रमणीय स्थानमे रत्नजटित सिंहासनक ऊपर शिवलिङ्गक जे पूजा होइछ से बाह्या भक्ति कहबैछ ॥ ७ ॥

एवं शिवभक्तविधीयमानां बाह्यां भक्तिमुक्त्वाऽथ शिवयोगिविधीयमानामान्तरां भक्तिमुपपादयति–

लिङ्गे प्राणं समाधाय प्राणे लिङ्गं तु शाम्भवम् ।
स्वस्थं मनस्तथा कृत्वा न किञ्चिच्चिन्तयेद् यदि ॥८॥
साभ्यन्तरा भक्तिरिति प्रोच्यते शिवयोगिभिः ।
सा यस्मिन् वर्तते तस्य जीवनं भ्रष्टबीजवत् ॥ ९ ॥

शिवलिङ्गे प्राणं समाधाय संस्थाप्य, प्राणे जीवकलारूपे प्राणे शाम्भवं लिङ्गं तु शिवकलारूपं लिङ्गं समाधाय संस्थाप्य, मनः स्वस्थं कृत्वा, यदि न किञ्चिच्चिन्तयेत्, सा लिङ्गप्राणसमरसरूपा चिन्ता, आभ्यन्तरा भक्तिरिति शिवयोगिभिः प्रोच्यते । साऽभ्यन्तरा भक्तिर्यस्मिन् वर्तते, तस्य जीवनं भ्रष्टबीजवद् भर्जितबीजवत् पुनर्न जननकारणमित्यर्थः ॥ ८-९ ॥

साधक शिवलिङ्गमे प्राणकेँ ओ प्राणमे शिवलिङ्गकेँ समाहित कए मनकेँ स्वस्थ कए यदि कोनो चिन्तन नहि करथि तँ तकरा शिवयोगीलोकनि आभ्यन्तरा भक्ति कहैत छथि । से जनिकामे रहैत छनि तनिक जीवन भूजल बीया जकाँ भए जाइछ (हुनका पुनर्जन्म नहि होइत छनि ।) ॥ ८-९ ॥

एवं निर्बीजदीक्षाप्रसिद्धाभ्यन्तरभक्तिमानेव मुक्त इत्याह–

बहुनात्र किमुक्तेन गुह्यद् गुह्यतरा परा ।
शिवभक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तो विमुच्यते ॥ १० ॥

स्पष्टम् ॥ १० ॥

एहि विषयमे बहुत कहलासँ की लाभ ? परा शिवभक्ति गूढ़सँ गूढ़ थिक । ताहिसँ युक्त मनुष्य मुक्त भए जाइछ, एहिमे सन्देह नहि ॥ १० ॥

नन्वेतादृशी भक्तिः कस्माद् भवतीत्यत्राह–

प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसम्भवः ।
यथैवाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाङ्कुरः ॥ ११ ॥

स्पष्टम् ॥ ११ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ई भक्ति शिवक प्रसन्नते सँ भए सकैछ आ प्रसन्नता भक्तिए सँ होइछ जेना अङ्कुरसँ बीज ओ बीजसँ अङ्कुर उत्पन्न होइछ । अर्थात् ई दुनू परस्पर अनादिकालसँ सम्बद्ध अछि ॥ ११ ॥

अथैवंरूपा भक्तिरेकेनैव जन्मना दुर्लभेत्याह–

प्रसादपूर्विका येयं भक्तिर्मुक्तिविधायिनी ।
नैव सा शक्यते प्राप्तुं नरैरेकेन जन्मना ॥ १२ ॥

स्पष्टम् ॥ १२ ॥

जे ई भक्ति प्रसादे सँ भेटैछ से मुक्तिप्रदान करैछ । एहि रूपक भक्ति लोककेँ एक जन्मेँ नहि प्रप्त होइछ ॥ १२ ॥

तर्हि कतिजन्मभिर्लभ्यत इत्यत्राह–

अनेकजन्मशुद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्तिनाम् ।
विरक्तानां प्रबुद्धानां प्रसीददति महेश्वरः ॥ १३ ॥

अनेकजन्मकृतशिवध्यानपूजादिपरिशुद्धचित्तानां श्रुतिस्मृत्युक्तनित्य-नैमित्तिककर्मानुष्ठानानां काम्यकर्मनिस्पृहाणां सुज्ञानिनां शिवः प्रसन्नो भवति, तत्प्रसादात्तादृशी भक्तिर्लभ्यत इत्यर्थः । म्लेच्छादीनां श्रौतस्मार्तकर्मनिष्ठत्वाभावेऽपि पूर्वजन्मनि शिवभक्तेभ्यः कृतोपकारवशात् शिवभक्तिराविर्भवेदिति भावः ॥ १३ ॥

जे व्यक्ति अनेक जन्ममे शुद्ध होइत श्रौत-स्मार्त कर्म करैत विरक्त एवं ज्ञानसम्पन्न होइत छथि तनिका पर महेश्वर प्रसन्न होइत छथिन । गीतामे सेहो कहल गेल अछि–

अनेकजन्मसंसिद्धिस्ततो याति परां गतिम् । (भ०गी० ६ । ४५) ॥ १३ ॥

नन्वनेकजन्मलभ्यशिवभक्त्या कतिजन्मभिर्मुक्तिः, सा कीदृशी स्यादित्यत्राह–

प्रसन्ने सति मुक्तोऽभून्मुक्तःशिवसमो भवेत् ।
अल्पभक्त्यापि यो मर्त्यस्तस्य जन्मत्रयात्परम् ॥ १४ ॥

शिवे प्रसन्ने सति मुक्तो भवेत्, मुक्तः शिवसमो भवेद् यो मर्त्यस्तस्य अल्पभक्त्या जन्मत्रयात्परं मुक्तिः, पूर्णभक्तिमत एकेनैव जन्मना मुक्तिरिति भावः ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत्र शिवसमानत्वं शिवाभेद एव, 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते'[१] इति श्रुतेः शिवसमानत्वाभावात्, शिवान्निकृष्टस्य तत्समत्वासम्भवात् । ''गगनं गगनाकारम्' इत्याद्यनन्योपमैवाभेद इति भावः, 'शिवस्वरूपो भवति शिवस्वरूपो भवति' इति वृद्धजाबालश्रुतेश्च ।

एकेन जन्मना मुक्तिर्वीराणां तु महेश्वरि ।
इतरेषां तु शैवानां मुक्तिर्जन्मत्रयात्परम् ॥

इति वीरागमवचनाद् वीरशैवानामेकेनैव जन्मना मुक्तिः, इतरेषां शैवानां जन्मत्रयात्परं मुक्तिरिति भावः ॥ १४ ॥

हुनक प्रसन्न भेला पर मनुष्य मुक्त भए शिवक समान भए जाइछ । जे व्यक्ति थोड़बो भक्तिसँ युक्त होइत छथि हुनको तीन जन्मक बाद मुक्ति भेटि जाइत छनि ॥ १४ ॥

ननु का नामाल्पभक्तिः ? मुक्तस्य पुनरुत्पत्तिरस्ति वा न वेत्यत्राह–

न योनियन्त्रपीडा वै भवेन्नैवात्र संशयः ।
साङ्गा न्यूना च या सेवा सा भक्तिरिति कथ्यते ॥ १५ ॥

'न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते'[२] इति श्रुतेर्योनियन्त्रपीडा पुनरुत्पत्तिर्नास्ति। उक्तनवविधाङ्गयुक्ता सेवा पूर्णभक्तिः, किञ्चिन्न्यूनाऽल्पभक्तिरित्यर्थः ॥ १५ ॥

हुनका गभर्वासक पीड़ा नहि होइत छनि, एहिमे सन्देह नहि । पूर्वकथित जे साङ्ग ओ न्यून सेवा, सएह अल्पभक्ति कहबैछ ॥ १५ ॥

अथ– 'यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति' इति श्रुतेः सा भक्तिस्त्रिविधेत्याह–

सा पुनर्भिद्यते त्रेधा मनोवाक्कायसाधनैः ।
शिवरूपादिचिन्ता या सा सेवा मानसी स्मृता ।
जपादि वाचिकी सेवा कर्मपूजा च कायिकी ॥ १६ ॥

सा साङ्गा भक्तिर्मनोवचनकायलक्षणकरणैस्त्रिधा भिन्ना भवति । तत्र शिवलिङ्गादिस्वरूपचिन्ता मानसी, शिवमन्त्रजपस्तुतिरूपा वाचिकी, कायेन विधीयमाना शिवलिङ्गपूजा कायिकी सेवेत्यर्थः ॥ १६ ॥

---
१. श्वे०उ० ६।८ २. छा०उ० ८।१५।१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साङ्गा भक्ति तीन प्रकारक अछि– (१) मानसिकी (२) वाचिकी ओ (३) कायिकी । ताहिमे शिवक रूपादिक चिन्तनकेँ मानसी भक्ति कहल जाइछ । जप आदिकेँ वाचिकी ओ पूजन आदिकेँ कायिकी सेवा कहल गेल अछि ।। १६ ।।

अथैवंविधरूपा सेवा बाह्यादिभेदेन त्रिविधेत्याह–

बाह्यमाभ्यन्तरं चैव बाह्याभ्यन्तरमेव वा ।
मनोवाक्कायभेदैश्च त्रिधा तद्भजनं विदुः ॥ १७ ॥

दीक्षात्रययुक्तमनोवाक्कायभेदवत्पूर्वोक्तभजनं बाह्यमित्याभ्यन्तरमिति बाह्याभ्यन्तरमिति त्रिधा विदुः, अभिज्ञा जानन्तीत्यर्थः ॥ १७ ॥

विद्वान् लोकनि मन, वचन ओ कर्मसँ भक्तिकेँ तीनू प्रकारक मानैत छथि । आ से तीनू भक्ति बाह्या, आभ्यन्तर आ बाह्याभ्यन्तर भेदसँ तीन-तीन प्रकारक अछि ।। १७ ।।

अथ किमेषां स्वरूपमित्यत्र मानसादिस्वरूपकथनपूर्वकमाह–

मनो महेशध्यानाढ्यं नान्यध्यानरतं मनः ।
शिवनामरता वाणी वाङ्मता चैव नेतरा ॥ १८ ॥
लिङ्गैः शिवस्य चोद्दिष्टैस्त्रिपुण्ड्रादिभिरङ्कितः ।
शिवोपचारनिरतः कायः कायो न चेतरः ॥ १९ ॥

उद्दिष्टैः शास्त्रोक्तैः, त्रिपुण्ड्रादिभिः भस्मत्रिपुण्ड्ररुद्राक्षाभरणरूपैः, शिवस्य लिङ्गैः, चिह्नैः, अङ्कितः मुद्रितः सन् शिवोपचारनिरतः शिवलिङ्गपूजातत्पर एव कायः, अन्यो न काय इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १८-१९ ॥

महेश्वरक ध्यानसँ मन परिपूर्ण रहए, आनक ध्यान नहि आबए, वचन शिवनामसँ युक्त रहए, आन वाणी नहि होअए, देह शास्त्रोक्त शिवलिङ्गसँ ओ त्रिपुण्ड्रादिसँ अङ्कित रहए, आन चिह्न नहि राखए तथा आन काजमे नहि लागए । इएह शिवक त्रिविध भक्तिक स्वरूप थिक ।। १८-१९ ।।

अथ बाह्यादिकं लक्षयति–

अन्यात्मविदितं बाह्यं शम्भोरभ्यर्चनादिकम् ।
तदेव तु स्वसंवेद्यमाभ्यन्तरमुदाहृतम् ।
मनो महेशप्रवणं बाह्याभ्यन्तरमुच्यते ॥ २० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शम्भोरभ्यर्चनादिकं शिवपूजादिकर्म अन्यात्मविदितं परदृष्टिगोचरीभूतं बाह्यम्, तदेव तु तदर्चनादिकं स्वसंवेद्यं परदृष्टिश्रुत्यगोचरत्वेन स्वमात्रगोचरमाभ्यन्तरम्, मनो महेशप्रवणं शिवलिङ्गासक्तं मनो बाह्याभ्यन्तरम्, काकाक्षिन्यायेनोभयत्र व्याप्तमिति शास्त्रैज्ञरुच्यत इत्यर्थः ॥ २० ॥

शिवक जाहि पूजा आदिकेँ आनो लोक बुझए से बाह्य थिक, मनहिमन कएल गेल पूजादि जकरा केवल स्वयं पूजके जानि सकथि से आभ्यन्तर थिक आ अपन मनकेँ शिवमे समर्पित करब बाह्याभ्यन्तर कहबैछ। जेना कौआकेँ आँखिक पुतड़ी एकेटा क्रमशः दुनू आँखिमे जाए दृष्टि प्रदान करैछ, तहिना एके मन बाहरी ओ भीतरी पूजाक साधक बनैछ ॥ २० ॥

अथैवंरूपमानसादिबाह्यादित्रिविधभजनमेव पञ्चधा भवतीत्याह–

पञ्चधा कथ्यते सद्भिस्तदेव भजनं पुनः ।
तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेत्यनुपूर्वकम् ॥ २१ ॥

स्पष्टम् ॥ २१ ॥

सएह भक्ति सन्तक द्वारा पाँच प्रकारक कहल गेल अछि– तप, कर्म, जप, ध्यान ओ ज्ञान ॥ २१

अथ किमेषां स्वरूपमित्यत्राह–

शिवार्थे देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि नो मतम् ।
शिवार्चा कर्म विज्ञेयं बाह्यं यागादि नोच्यते ॥ २२ ॥
जपः पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव वा ।
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम् ॥ २३ ॥
ध्यानं शिवस्य रूपादि-चिन्ता नात्मादिचिन्तनम् ।
शिवागमार्थविज्ञानं ज्ञानं नान्यार्थवेदनम् ।
इति पञ्चप्रकारोऽयं शिवयज्ञः प्रकीर्तितः ॥ २४ ॥

शिवपूजार्थं सामग्रीसम्पादने शरीरसंशोष एव तपः, कृच्छ्रादि कृच्छ्रचान्द्रायणादिना देहशोषो न तप इति सम्मतम् । शिवार्चा शिवलिङ्गपूजैव कर्मेतिविज्ञेयम्, तत्फलस्य शाश्वतत्वात् । बाह्यं यागादि तद्भिन्नबहुवित्त-व्ययायाससाध्यज्योतिष्टोमयागादि कर्मेति नोच्यते, तत्फलस्य नश्वरत्वात् । वेदाध्ययनादिकं न जपः, 'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' इति भगवतैव

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नियमितत्वादिति, किन्तु पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव वा रुद्राध्यायादिकाभ्यासः । आदिशब्देन अथर्वशिरश्शिखादि, एतेषामावृत्तिलक्षणोऽभ्यासो जप इत्यर्थः । नात्मादिचिन्तनं ध्यानं परिमितशरीरेन्द्रियाद्युपाधिसंवलिताहमात्मचिन्तनं न ध्यानमित्यर्थः, किन्तु शिवस्य रूपादिचिन्ता शिवलिङ्गचिन्ता चन्द्रशेखरत्वादिविशिष्टमूर्तिचिन्ता च ध्यानमित्यर्थः । नान्यार्थवेदनं ज्ञानं सांख्याद्यन्यशास्त्रार्थज्ञानं न ज्ञानम्, किन्तु शिवागमार्थविज्ञानमित्यर्थः । एवंविधकायवाङ्मानसलक्षणपूजातपोजपध्यानज्ञानरूपपञ्चप्रकारोऽयं शिवयज्ञ इति प्रकीर्तितः ॥ २२-२४ ॥

शिवक हेतु देहकेँ सुखाएबे तप थिक, किन्तु कृच्छ्र आदिव्रत तप नहि थिक । (कुशोदक सहित पञ्चगव्य मात्र ग्रहण करैत एक अहोरात्रक व्रत कृच्छ्र कहबैछ, चारू भर आगि पजारि मध्यमे बैसि मध्याह्न सूर्यक ताप लगाएब सान्तापनव्रत थिक आ चन्द्रमाक कलाक अनुसार संख्यामे कओर ग्रहण करब चान्द्रायणव्रत थिक ।) शिवलिङ्गक पूजाकेँ कर्म बुझक चाही, किन्तु बाह्य यज्ञकेँ कर्म नहि कहल जाइछ । पञ्चाक्षर मन्त्र अथवा प्रणवक (ओंकार) अभ्यासकेँ जप कही अथवा रुद्राध्यापक पाठकेँ जप बुझक थिक, किन्तु वेदपाठकेँ जप नहि मानल जाइछ । शिवक रूप आदिक चिन्तनकेँ ध्यान बुझबाक चाही, किन्तु आत्माक चिन्तनकेँ नहि । शैवागमक अर्थकेँ नीकजकाँ बुझबे विज्ञान थिक, किन्तु आन सांख्य आदिक अर्थकेँ बुझब नहि । एहि तरहेँ ई शिवयज्ञ पाँच प्रकारक कहल गेल अछि ॥ २२-२४ ॥

अथानेन पञ्चयज्ञेन परया भक्त्या यः शङ्करं पूजयति स भक्त इत्याह–

अनेन पञ्चयज्ञेन यः पूजयति शङ्करम् ।
भक्त्या परमया युक्तः स वै भक्त इतीरितः ॥ २५ ॥

स्पष्टम् ॥ २५ ॥

एहि पञ्चयज्ञसँ जे व्यक्ति शङ्करक पूजा परम भक्तिपूर्वक करैत छथि से भक्त कहबैत छथि ॥ २५ ॥

अथैवंविधशिवभक्तपूजने सद्गतिरवमाने घोरनरक इत्याह–

पूजनाच्छिवभक्तस्य पुण्या गतिरवाप्यते ।
अवमानान्महाघोरो नरको नात्र संशयः ॥ २६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्टम् ॥ २६ ॥

शिवभक्तक पूजासँ पुण्य गति प्राप्त होइछ आ हुनक अपमान सँ घोर नरक होइछ ॥ २६ ॥

अथ शिवभक्तस्य विधेयाविधेयमाह–

शिवभक्तो महातेजाः शिवभक्तिपराङ्मुखान् ।
न स्पृशेन्नैव वीक्षेत न तैः सह वसेत् क्वचित् ॥ २७ ॥

शिवभक्तो महातेजस्वी भवति । तस्मादशिवभक्तानां दर्शनस्पर्शनसहवासं सकृदपि न कुर्यात् यदि कुर्यात्तेजोन्मान्द्यं भवेदिति भावः ॥ २७ ॥

महातेजस्वी शिवभक्त केँ चाही कि ओ शिवभक्तिसँ पराङ्मुख व्यक्तिक स्पर्श नहि करथि, ने ओकरा देखथि, ने तकरा संग कतहु रहथि किएक त ओकर स्पर्श आदिसँ शिवभक्तक तेज क्षीण भए जाइत छनि ॥ २७ ॥

अथ विधेयमाह–

यदा दीक्षाप्रवेशःस्याल्लिङ्गधारणपूर्वकः ।
तदाप्रभृति भक्तोऽसौ पूजयेत् स्वागमस्थितान् ॥ २८ ॥

लिङ्गदीक्षानन्तरं भक्तः स्वागमस्थितान् वीरशैवागमस्थितान् प्रतिदिनं पूजयेदित्यर्थः ॥ २८ ॥

लिङ्गधारणपूर्वक जखन शिवभक्त दीक्षा लए लेथि तखन सँ ओ अपन आगममे श्रद्धा ओ विश्वास रखनिहारक पूजा करथि ॥ २८ ॥

स्वमार्गाचारनिरताः सजातीया द्विजास्तु ये ।
तेषां गृहेषु भुञ्जीत नेतरेषां कदाचन ॥ २९ ॥

"शिवोक्तां जातिमर्यादां योऽतीत्य भुवि वर्तते, स चाण्डाल इति ज्ञेय" इत्यादिवचनप्रामाण्यात् शिवदीक्षाग्निदग्धमलत्रयपूर्वकप्राप्तमन्त्रपिण्डत्वाद् द्विजन्मनां वीरशैवमतोचिताचारनिष्ठानां स्वजातिसम्भवानां भक्तमाहेश्वराणामालयेषु तेषां पङ्क्तौ च भुञ्जीयात्, नान्यत्रेति तात्पर्यम् ॥ २९ ॥

जे ब्राह्मण अपन मार्ग ओ आचारमे निरत भेलासँ सजातीय छथि, शिव भक्त व्यक्ति तनिके घरमे खाथि, कखनहुँ आनक (शिवभक्तसँ भिन्नक) घरमे नहि ॥ २९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वमार्गाचारविमुखैर्भवविभिः प्रकृतात्मभिः ।
प्रेषितं सकलं द्रव्यमात्मलीनमपि त्यजेत् ॥ ३० ॥

आत्मलीनमपि स्वाधीनमपि त्यजेदित्यर्थः ॥ ३० ॥

अपन मार्ग ओ आचारसँ विमुख सांसारिक लोकक द्वारा देल गेल अन्न आदि जँ अपनहुँ अधिकारमे रहए तँ ओकर त्याग कए देबाक चाही ॥ ३० ॥

नार्चयेदन्यदेवांस्तु न स्मरेन्न च कीर्तयेत् ।
न तन्निवेद्यमश्नीयाच्छिवभक्तो दृढव्रतः ॥ ३१ ॥

दृढव्रतो दृढतरशिवव्रती शिवभक्तः, अन्यदेवान् विष्ण्वाद्यन्यदेवान् नार्चयेद् हस्ताभ्यां न पूजयेत्, न च कीर्तयेद् न स्तुतिं कुर्यात्, न स्मरेद् मनसापि न ध्यायेत्, तदर्पितान्नादिद्रव्यं नाश्नीयान्न भुञ्जीयादित्यर्थः ॥ ३१ ॥

दृढव्रती शिवभक्तकेँ आन देवताक ने तँ पूजा, ने स्मरण आ ने कीर्तन करक चाही । आन देवताक निवेदित नैवेद्यो नहि खएबाक चाही ॥ ३१ ॥

यद्गृहेष्वन्यदेवोऽस्ति तद्गृहाणि परित्यजेत् ।
नान्यदेवार्चकान् मर्त्यान् पूजाकाले निरीक्षयेत् ॥ ३२ ॥

पूजाकाले शिवलिङ्गपूजाकाल इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३२ ॥

जाहि घरमे आन देवताक स्थापना कएल गेल हो ताहि घरकेँ छोड़ि देबाक चाही । शिवपूजाक समय आन देवताक पूजाकेँ नहि देखक चाही ॥ ३२ ॥

सदा शिवैकनिष्ठानां वीरशैवाध्ववर्तिनाम् ।
नहि स्थावरलिङ्गानां निर्माल्याद्युपयुज्यते ॥ ३३ ॥

सदा निरन्तरम्, शिवलिङ्गैकनिष्ठानां वरीशैवमार्गवर्तनवतां देवर्षिमानवप्रतिष्ठितादिस्थावरलिङ्गनिर्माल्यप्रसादद्रव्यमयोग्यम्, हि प्रसिद्धम् ॥ ३३ ॥

जे सदाशिवक प्रति श्रद्धा ओ विश्वाससँ युक्त छथि, वीरशैवमार्ग पर चलनिहार होथि, तनिका स्थावर लिङ्गक निर्माल्य आदिक उपयोग नहि करक चाही ॥ ३३ ॥

ननु वीरशैवानां स्थावरलिङ्गप्रसादमयोग्यं चेत्तल्लिङ्गस्यापाये प्राप्ते सत्यौदासीन्यं कर्तव्यं किमित्यत्राह—

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यत्र स्थावरलिङ्गानामपायः परिवर्तते ।
अथवा शिवभक्तानां शिवलाञ्छनधारिणाम् ॥ ३४ ॥
तत्र प्राणान् विहायापि परिहारं समाचरेत् ।
शिवार्थं मुक्तजीवश्चेच्छिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३५ ॥

यत्र स्थाने स्थावरलिङ्गानां प्रत्यूहः प्रवर्तते, अथवा गजाजिनगङ्गा-कपालकालदग्धकामकालपुरभस्मनिभ-कन्थाकमण्डलु-भिक्षापात्रदण्डभस्म-घुटिकारूपशिवलाञ्छनधारिणां जङ्गमदेवानामुक्तनवविधभक्तिमतां शिवभक्तानामपायो वा यत्र प्रवर्तते, तत्र पार्वत्याचारेण प्राणान् विहायापि निवारणं कुर्यात् ॥ ३४-३५ ॥

जतए स्थवर लिङ्गक अथवा शिवभक्त ओ भस्म रुद्राक्षादि धारणकर्ताक विघ्न हो ततए अपन प्राणोक त्याग कए रक्षा करबाक चाही, किएक तँ शिवक लेल यदि प्राण चल जाए तँ शिवलोकक प्राप्ति हो ॥ ३४-३५ ॥

ननु प्राणत्यागे दुर्मरणं किं न स्यादित्यत्राह–

शिवार्थं मुक्तजीवश्चेच्छिवसायुज्यमाप्नुयात् ।

अथ वीरभद्राचार-बसवेश्वराचारं सूचयन् भक्ताचारभेदं प्रतिपादयति–

शिवनिन्दाकरं दृष्ट्वा घातयेदथवा शपेत् ।
स्थानं वा तत्परित्यज्य गच्छेद् यद्यक्षमो भवेत् ॥ ३६ ॥

हन्तुं शप्तुं यद्यसमर्थः, कर्णौ पिधाय तत् स्थानं परित्यज्य गच्छेदित्यर्थः ॥ ३६ ॥

शिवक निन्दा करएवालाकेँ मारि देथि अथवा फटकारथि अथवा यदि अक्षम होथि तँ ओहि स्थानकेँ छोड़ि आनठाम चल जाथि ॥ ३६ ॥

यत्र चाचारनिन्दाऽस्ति कदाचित्तत्र न व्रजेत् ।
यद्गृहे शिवनिन्दाऽस्ति तद्गृहाणि परित्यजेत् ॥ ३७ ॥

आचारनिन्दा शिवाचारनिन्देत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३७ ॥

जतए आचारक निन्दा हो ततए कदापि नहि जाथि । जाहि घरमे शिवक निन्दा होइत हो ताहि घरकेँ छोड़ि देथि ॥ ३७ ॥

ननु शिवनिन्दाकरस्य प्रायश्चित्तमस्ति वा न वेत्यत्राह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यः सर्वभूताधिपतिं विश्वेशानं विनिन्दति ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥ ३८ ॥

'ईश्वरः सर्वभूतानाम्' इति श्रुतेः सकलप्राण्यधिपतिं सर्वेश्वरं यो निन्दति, तस्य वर्षशतैरपि निष्कृतिः कर्तुं शक्या न भवतीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

जे 'सकल प्राणीक स्वामी ईश्वरक' निन्दा करैत हो तकर प्रायश्चित सइओ वर्षमे नहि भए सकैछ ॥ ३८ ॥

नन्वेवं शिवभक्तस्यान्यदेवतास्मरणं चायोग्यं चेत् सन्ध्यावन्दनादिपूर्वकर्मणः का गतिः ? तस्य सूर्याद्युपासनारूपत्वादित्यत्राह–

शिवपूजापरो भूत्वा पूर्वकर्म विसर्जयेत् ।
अथवा पूर्वकर्म स्यात् सा पूजा निष्फला भवेत् ॥ ३९ ॥

शिवपूजापरः शिवलिङ्गदीक्षायुक्तः सन्, शिवपूजापर इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३९ ॥

शिवपूजामे तत्पर भए पूर्वकर्मक त्याग कए देबाक चाही । जाहि शिवपूजामे पूर्वकर्म (आन देवताक पूजा) हो, से पूजा निष्फल भए जाइछ ॥ ३९ ॥

अथ नैतावन्मात्रम्, पातित्यं च स्यादित्याह–

उत्तमां गतिमाश्रित्य नीचां वृत्तिं समाश्रितः ।
आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ४० ॥

स्पष्टम् ॥ ४० ॥

शिवपूजास्वरूप उत्तमगतिकेँ प्राप्त कए जे नीच वृत्तिकेँ (निम्नकोटिक अर्चनाकेँ) अपनबैत छथि से उच्च पदसँ खसि सर्वधर्मसँ बहिष्कृत भए जाइत छथि ॥ ४० ॥

अथ तस्य प्रणवपञ्चाक्षरीजपशीलत्वाद् नरस्तुतिश्च गर्हितेत्याह–

पञ्चाक्षरोपदेशी च नरस्तुतिकरो यदि ।
सोऽलिङ्गी स दुराचारी कुकविः स तु विश्रुतः ॥ ४१ ॥

पञ्चाक्षरोपदेशी प्रणवपञ्चाक्षरोपेदशी शिवभक्तो यदि नरस्तुतिकरः स्यात्, स अलिङ्गी शिवलिङ्गरहितः, दुराचारी कुकविः कुत्सितकविः, विश्रुतो विगतशास्त्र इत्यर्थः ॥ ४१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चाक्षरक उपदेश पओनिहार साधक जँ मनुष्यक स्तुति करैत छथि तँ ओ अलिङ्गी, दुराचारी ओ कुकविक रूपमे विख्यात होइत छथि ।। ४१ ।।

चर्मपात्रे जलं तैलं न ग्राह्यं भक्तितत्परैः ।
गृह्यते यदि भक्तेन रौरवं नरकं व्रजेत् ।। ४२ ।।

भक्तितत्परैः शिवभक्तितत्परैरित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।। ४२ ।।

शिवभक्तिमे लागल व्यक्ति चामक वासनमे जल अथवा तेल नहि लेथि, जँ लेथि तँ रौरव नरकमे जाथि ।। ४२ ।।

ननु लिङ्गिभिः पूर्वकर्म त्यजनीयमित्युक्तत्वात् तस्य जाताशौचादि कर्माचरणीयं वा न वेत्यत्राह–

न तस्य सूतकं किञ्चित् प्राणलिङ्गाङ्गसङ्गिनः ।
जन्मनोत्थं मृतोत्थं च विद्यते परमार्थतः ।। ४३ ।।

'प्राणलिङ्गाङ्गसङ्गिनः शिवभक्तस्य जन्मनोत्थं मरणेनोत्थं किञ्चिदपि कुलोच्छिष्टसूतकं च परमार्थतो न विद्यत इत्यर्थः ।। ४३ ।।

जे व्यक्ति लिङ्गधारी छथि हुनका यथार्थमे जन्माशौच अथवा मरणाशौच नहि लगैत छनि ।। ४३ ।।

तर्हि स्त्रीणां रजः सूतकमस्ति किमित्यत्राह–

लिङ्गार्चनरतायाश्च ऋतौ नार्या न सूतकम् ।
तथा प्रसूतिकायाश्च सूतकं नैव विद्यते ।। ४४ ।।

शिवलिङ्गपूजानिष्ठायाः स्त्रियः, ऋतौ सूतकं मासिकरजोदर्शनकृतसूतकम्, तथ प्रसूतिकायाः शिशुप्रसूतिप्रयुक्तायाश्च सूतकं च न विद्यत इत्यर्थः ।। ४४ ।।

सतत लिङ्गार्चनमे लागल स्त्री रजस्वला भेलो पर अशुद्ध नहि होइत छथि, परसौती भेलो पर हुनका जन्माशौच नहि लगैत छनि ।। ४४ ।।

तर्हि गृहसूतकस्य का गतिरित्यत्राह–

गृहे यस्मिन् प्रसूता स्त्री सूतकं नात्र विद्यते ।
शिवपादाम्बुसंस्पर्शात् सर्वपापं प्रणश्यति ।। ४५ ।।

तद्गृहे तया शिवपूजाकरणसमये शिवपादाम्बुपतनात् सर्वपापं सकलसूतकोत्थपापं नश्यतीति गृहसूतकं च नास्तीत्यर्थः ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिङ्गार्चनरता नारी सूतकी तु रजस्वला ।
रविरग्निर्यथा वायुस्तद्वत् कोटिशुचिर्भवेत् ॥

इति शिवागमवचनात् शिवभक्तानां न किमपि सूतकमस्तीति भावः ॥ ४५ ॥

एहन स्त्री जाहि घरमे बच्चाकेँ जन्म दैत छथि ओहि घरमे सूतक नहि लगैत अछि । शिवचरणक जल स्पर्शसँ समस्त पाप नष्ट भए जाइछ ॥ ४५ ॥

ननु पुरा विधीयमानशिवक्षेत्रतीर्थयात्रादिकं च परित्यजनीयं किमित्यत्राह–

शिवस्थानानि तीर्थानि विशिष्टानि शिवार्चकः ।
शिवयात्रोत्सवं नित्यं सेवेत परया मुदा ॥ ४६ ॥

शिवार्चक इष्टलिङ्गपूजकः शिवभक्तो विशिष्टानि श्रेष्ठानि शिवस्थानानि श्रीपर्वतादिस्थानानि, तीर्थानि त्रिमकुटादितीर्थानि, शिवयात्रोत्सवं च नित्यं सेवेतेत्यर्थः ॥ ४६ ॥

शिवक पूजा कएनिहार शिवक विशिष्ट स्थान, तीर्थ ओ यात्रोत्सवक भक्तिपूर्वक सेवन करथि ॥ ४६ ॥

शिवक्षेत्रोत्सवमहा-यात्रादर्शनकाङ्क्षिणाम् ।
मार्गेऽन्नपानदानं च कुर्यान्माहेश्वरो जनः ॥ ४७ ॥

शिवक्षेत्रोत्सवोद्भूतयात्रादर्शनकाङ्क्षिणां सर्वेषां च माहेश्वरो जनः शिवभक्तजनो मार्गेऽन्नोदकदानं च कुर्यादित्यर्थः ॥ ४७ ॥

महेश्वरक भक्त व्यक्ति सदा शिवक्षेत्रक उत्सव-यात्राक इच्छुक व्यक्तिक लेल अन्न पान आदिक व्यवस्था करथि ॥ ४७ ॥

ननु वस्त्रादिदानं विहाय अन्नतोयदानमेव किमत्यत्राह–

नान्नतोयसमं दानं न चाहिंसापरं तपः ।
तस्मान्माहेश्वरो नित्यमन्नतोयप्रदो भवेत् ॥ ४८ ॥

स्पष्टम् ॥ ४८ ॥

अन्नजलक दानक समान आन कोनो दान नहि अछि । अहिंसासँ पैघ कोनो तप नहि अछि । तेँ शिवभक्त केँ चाही कि ओ नित्य अन्न-जलदान करथि ॥ ४८ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ननु तर्हि कन्यादानं च कस्मायपि दातुं योग्यं किमित्यत्राह–

स्वमार्गाचारवर्तिभ्यः स्वजातिभ्यः सदाव्रती ।
दद्यात् तेभ्यः समादद्यात् कन्यां कुलसमुद्भवाम् ॥ ४९ ॥

सदाव्रती नित्यशिवाचारव्रती शिवभक्तः स्वमार्गाचारवर्तिभ्यो वीरशैवाचारमार्गवर्तिभ्यः स्वजातीयशिवभक्तेभ्यः कुलसमुद्भवां स्वकीयकुलसमुत्पन्नां कन्यां दद्यात् तेभ्यः समादद्यात्, आनयेदित्यर्थः ॥ ४९ ॥

सतत शिवक व्रत रखनिहार अपन जाति तथा अपन सम्प्रदायक आचारक पालन कनिहारक लेल अपन कन्याक दान करथि आ एहने व्यक्तिक कुलक कन्यासँ विवाह करथि ॥ ४९ ॥

एवं बहुविधशिवाचारसम्पन्नो वीरव्रती शिवभक्तःश्रीगुरुं लिङ्गं च पूजयेदित्युभयस्थलं सूचयन् भक्तस्थलं समापयति–

एवमाचारसंयुक्तो वीरशैवो महाव्रती ।
पूजयेत् परया भक्त्या गुरुं लिङ्गं च सन्ततम् ॥ ५० ॥

स्पष्टम् ॥ ५० ॥

एहि प्रकारक आचारसँ युक्त महाव्रती वीर शैव अत्यन्त भक्तिसँ गुरु ओ शिवलिङ्गक पूजा करथि ॥ ५० ॥

इति भक्तमार्गक्रियास्थलम्

अथोभयस्थलम्

'यस्य दवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ'[1] इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण शिवगुर्वोरभेदं सूत्रद्वयेन कथयति–

गुरोरभ्यर्चनेनापि साक्षादभ्यर्चितःशिवः ।
तयोर्नास्ति भिदा किञ्चिदेकत्वात् तत्त्वरूपतः ॥ ५१ ॥

गुरोः पूजनेन शिवः साक्षात् प्रत्यक्षेण पूजितः, तयोः शिवगुर्वोः, तत्त्वरूपतः, परमार्थतः, एकत्वात् एकरूपत्वात्, किञ्चिदपि भिदा भेदो नास्तीत्यर्थः ॥ ५१ ॥

गुरुक पूजासँ साक्षात् शिवक पूजा भए जाइछ । एहि दुनू (गुरु ओ शिव)मे

---

१. श्वे०उ० ६ । २३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कनेको भेद नहि अछि किएक तँ तात्त्विक रूपसँ दुनू एक छथि ॥ ५१ ॥

तस्मात्–

यथा देवे जगन्नाथे सर्वानुग्रहकारके ।
तथा गुरुवरे कुर्यादुपचारान् दिने दिने ॥ ५२ ॥

उपचारान् भक्त्याद्युपचारानित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ५२ ॥

जहिना भगवान् जगन्नाथ स्वरूप शिवकेँ प्रतिदिन पाद्य अर्घ्य आदि उपचारसँ पूजा कएल जाइछ तहिना गुरुओक पूजा करक चाही ॥ ५२ ॥

ननु शिवगुर्वोरभेदे शिववद् गुरुरत्यप्रत्यक्षः स्यादित्यत्राह–

अप्रत्यक्षो महादेवः सर्वेषामात्ममायया ।
प्रत्यक्षो गुरुरूपेण वर्तते भक्तिसिद्धये ॥ ५३ ॥

महादेवः परमेश्वरः सर्वेषामात्ममायया शक्त्या अप्रत्यक्षोऽपि भक्तिसिद्धये ललाटनेत्रचन्द्रकलाभुजद्वयतिरोधानं कृत्वा गुरुरूपेण प्रत्यक्षः सन् वर्तत इत्यर्थः ॥ ५३ ॥

जएह महादेव अपन मायासँ सभक लेल अप्रत्यक्ष छथि सएह भक्तिसिद्धिक लेल गुरुक रूपमे प्रत्यक्ष छथि ॥ ५३ ॥

ननु शिववद् गुरोरिष्टार्थप्रदत्वादर्शनात् किमर्थं पूजनीय इत्यत्राह–

शिवज्ञानं महाघोर-संसारार्णवतारकम् ।
धि(दी) यते येन स गुरुः कस्य वन्द्यो न जायते ॥ ५४ ॥

येन गुरुणा महाभयङ्करसंसारसमुद्रतारकं शिवज्ञानं दीयते उपदिश्यते, स गुरुः कस्य केन वन्द्यो न भवति, जननमरणपरिपीडितैः सर्वैरपि वन्द्य इत्यर्थः ॥ ५४ ॥

जनिका द्वारा महान् घोर संसाररूपी समुद्रक पार लए जाइवाला शिवज्ञान देल जाइछ से गुरु किनक नहि वन्दनीय थिकाह ? अर्थात् सभक वन्दनीय छथि ॥ ५४ ॥

ननु तादृशशिवज्ञानं कीदृशमिति तत्तन्माहात्म्यपूर्वकं प्रकशयति–

यत्कटाक्षकलामात्रात् परमानन्दलक्षणम् ।
लभ्यते शिवरूपत्वं स गुरुः केन नार्चितः ॥ ५५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यत्कटाक्षकलामात्रादिति । अयं भावः—अत्र बन्धमोक्षदशयोरप्यहमिति धर्मिणः प्रसिद्धत्वेनान्धजात्यन्धबधिरमूकादेरपि वात्मनि संशयविपर्ययाभावात् 'सर्वं ज्ञानं धर्मिण्यभ्रान्तं प्रकारे तु विपर्ययः' इति सर्वसम्मतत्वेनाण्डरसन्यायेन स्वात्मतादात्म्यापन्नस्य पुरुषस्य विभागपरामर्शमहिम्ना वह्नेर्विस्फुलिङ्गा इव विच्छिन्नत्वात्, अथैवं स्वातन्त्र्यापरपर्यायमायाशक्तिपरिकल्पितव्यामोहवशाद-विज्ञातपरमानन्दलक्षणस्वात्मशिवत्वं दशमदृष्टान्ते लभ्यते प्रकाश्यते, स गुरुः केन नार्च्यते, सर्वेणापि मुमुक्षुणाऽर्चनीय एवेत्यर्थः ॥ ५५ ॥

जनिक कृपाकटाक्षक थोड़बो अंशसँ परमानन्द स्वरूप शिवक लाभ होइछ ताहि गुरुक पूजा के नहि करताह ? अर्थात् सब करबे करताह ॥ ५५ ॥

एवंरूपश्रीगुरोर्हितमेवाचरणीयम्, तदाज्ञोल्लङ्घनं न कर्तव्यमित्युक्त्वोभय-स्थलं समापयति सूत्रद्वयेन—

हितमेव चरेन्नित्यं शरीरेण धनेन च ।
आचार्यस्योपशान्तस्य शिवज्ञानमहानिधेः ॥ ५६ ॥

उपशान्तस्य रागद्वेषरहितस्येत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ५६ ॥

शिवभक्त शरीर ओ धनसँ शिवज्ञानक महासमुद्र रागद्वेषादिरहित गुरुक सदा हित करथि ॥ ५६ ॥

गुरोराज्ञां न लङ्घेत सिद्धिकामी महामतिः ।
तदाज्ञालङ्घनेनापि शिवाज्ञाच्छेदको भवेत् ॥ ५७ ॥

महामतिः विवेकी सन् सिद्धिकामः मोक्षार्थी गुरोराज्ञां न लङ्घेत, यदि लङ्घेत शिवाज्ञाभङ्गकृद् भवेदत्यिर्थः ॥ ५७ ॥

सिद्धिक अभिलाषी महामति भक्तकेँ चाही कि ओ गुरुक आज्ञा नहि टारथि, हुनक आज्ञाक उल्लंघनसँ शिवक आज्ञाक अवहेलना कएनिहार भए जाइत छथि ॥ ५७ ॥

इत्युभयस्थलम्

अथ त्रिविधसम्पत्तिस्थलम्

यथा गुरौ यथा लिङ्गे भक्तिमान् परिवर्तते ।
जङ्गमे च तथा नित्यं भक्तिं कुर्याद् विचक्षणः ॥ ५८ ॥

विचक्षणः प्रवीणशिवभक्त इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ५८ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवभक्त जहिना गुरु ओ शिवलिङ्गक प्रति भक्तिभाव रखैत छथि तहिना शिवयोगीक प्रति नित्य भक्ति करथि ॥ ५८ ॥

ननु भक्तिसिद्ध्यर्थं शिव एव गुरुरूपेणावतीर्ण इत्युक्तत्वेन शिववद् गुरौ भक्तिः कुर्तुमुचिता, जङ्गमे च तथा भक्तिः किमर्थं विधेयेत्यत्राह–

एक एव शिवः साक्षात् सर्वानुग्रहकारकः ।
गुरुजङ्गमलिङ्गात्मा वर्तते भुक्तिमुक्तिदः ॥ ५९ ॥

साक्षात् 'अतोऽस्मिन् लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः'[१] इति भगवदुक्तेर्लोकवेदप्रसिद्धः सन् सकलभक्तानुग्रहकरः प्रभुः स्वतन्त्रः परमेश्वर एक एव गुरुजङ्गमलिङ्गात्मा गुरुलिङ्गजङ्गमात्मकः सन् भुक्तिमुक्तिदो भोगमोक्षप्रदः सन् वर्तत इति शिववज्जङ्गमेऽपि भक्तिः कर्तव्येत्यर्थः ॥ ५९ ॥

सभक प्रति अनुग्रह कएनिहार एकमात्र साक्षात् भगवान् शिव छथि जे जंगम (चलनिहार) रूपमे गुरुस्वरूप भए भोग तथा मोक्षक दाता थिकाह ॥ ५९ ॥

अथ लिङ्गापेक्षया जङ्गमस्याधिक्यं वक्तुं लिङ्गस्वरूपं प्रथममुपपादयति–

लिङ्गं च द्विविधं प्रेक्तं जङ्गमाजङ्गमात्मना ।
अजङ्गमे यथा भक्तिर्जङ्गमे च तथा स्मृता ॥ ६० ॥

जङ्गमाजङ्गमात्मना चरस्थिरभेदेन लिङ्गं शिवलिङ्गं द्विविधमिति प्रोक्तम् । अजङ्गमे स्थिरलिङ्गे यथा भक्तिर्विधीयते, तथा जङ्गमेऽपि चरलिङ्गेऽपि भक्तिः कर्तव्येत्यर्थः ॥ ६० ॥

जंगम (चलनिहार) ओ अजंगम (स्थावर) रूपमे लिङ्ग दू प्रकारक होइछ। जहिना अजंगममे भक्ति कएल जाइछ तहिना जंगमो मे करक चाही ॥ ६० ॥

ननु किमनयोः स्वरूपमित्यत्राह–

अजङ्गमं तु यल्लिङ्गं मृच्छिलादिविनिर्मितम् ।
तद्वरं जङ्गमं लिगं शिवयोगीति विश्रुतम् ॥ ६१ ॥

मृच्छिलादिविनिर्मितं यल्लिङ्गमस्ति, तदजङ्गमं स्थिरलिङ्गमित्यर्थः ॥ ६१ ॥

---

१. भ० गी० १५ । १८

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अंजगम जे लिङ्ग से माँटि वा पाथर आदिसँ बनल रहैत अछि, परन्तु जंगम लिङ्ग ओहिसँ श्रेष्ठ होइछ जे शिवयोगी नामसँ प्रसिद्ध अछि ।। ६१ ।।

तत्कथमित्यत्राह–

अचरे मन्त्रसंस्काराल्लिङ्गे वसति शङ्करः ।
सदाकालं वसत्येव चरलिङ्गे महेश्वरः ॥ ६२ ॥

स्पष्टम् ॥ ६२ ॥

अजंगम (स्थावर) लिङ्गमे मन्त्रसंस्कारसँ शंकर वास करैत छथि, किन्तु चरलिङ्गस्वरूप शिवयोगीमे महेश्वर स्वतः सदा वास करैत छथि, ओहिमे प्राणप्रतिष्ठाक काज नहि ।। ६२ ।।

तस्माच्छिवयोगिनं प्रति कृतदानपूजाफलं सूत्रद्वयेन विशेषयति–

शिवयोगिनि यद्दत्तं तदक्षयफलं भवेत् ।
तस्मात् सर्वप्रत्यत्नेन तस्मै देयं महात्मने ॥ ६३ ॥
यत्फलं लभते जन्तुः पूजया शिवयोगिनः ।
तदक्षयमिति प्रोक्तं सकलागमपारगैः ॥ ६४ ॥

अस्मिन्नर्थे आगमः प्रमाणमिति सूचितम् । अत्र–

दर्शनादर्चनात् तस्य त्रिसप्तकुलसंयुताः ।
जना मुक्तिपदं यान्ति किं पुनस्तत्परायणाः ॥

इति योगजागमवचनमनुसन्धेयम् ॥ ६३-६४ ॥

जे किछु शिवयोगीकेँ देल जाइछ से अक्षय फलद भए जाइत अछि । तेँ पूर्ण प्रयास कए हुनका दान देबाक चाही । शिवयोगीक पूजासँ लोक जाहि फलकेँ प्राप्त करैछ से सकल आगमक विद्वानक द्वारा अक्षय कहल गेल अछि । ६३-६४ ।।

एवं तत्पूजाफलमुक्त्वा तदवमानफलं च प्रकाशयति–

नावमन्येत कुत्रापि शिवयोगिनमागतम् ।
अवमानाद्भवेत्तस्य दुर्गतिश्च न संशयः ॥ ६५ ॥

कुत्रापि अन्तर्बहिः क्वापि समागतमित्यर्थः ॥ ६५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समुपस्थित शिवयोगीक कतहु अपमान नहि करी, हुनक अपमानसँ दुर्गति होइत छैक, ताहिमे सन्देह नहि ॥ ६५ ॥

तस्माच्छिवयोगी पूजनीय इति वदन् त्रिविधसम्पत्तिस्थलं समापयति–

शिवयोगी शिवः साक्षादिति कैंकर्यभक्तितः ।
पूजयेदादरेणैव यथालिङ्गं यथागुरु ॥ ६६ ॥

कैङ्कर्यभक्तिर्भृत्याचाररूपा भक्तिरित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६६ ॥

शिवयोगी साक्षात् शिव थिकाह– से मानि सेवकभावसँ हुनक पूजा तहिना करी जेना लिङ्ग ओ गुरुक पूजा करैत छी ॥ ६६ ॥

इति त्रिविधसम्पत्तिस्थलम्

अथ चतुर्विधसारायस्थलम्

पादोदकं यथा भक्त्या स्वीकरोति महेशितुः ।
तथा शिवात्मनोर्नित्यं गुरुजङ्गमयोरपि ॥ ६७ ॥

अत्र महेशितुः शिवलिङ्गस्येत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६७ ॥

आब चतुर्विध सारायस्थलक वर्णन करैत छथि– भक्त जहिना भगवान शंकरक चरणोदक भक्तिपूर्वक लैत छथि, तहिना नित्य गुरु ओ जंगम (शिवयोगी)क चरणोदक लेथि ॥ ६७ ॥

अथ पादोदकधारणस्वरूपकथनपूर्वकं तत्फलमाह–

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपावनपावनम् ।
सर्वसिद्धिकरं पुंसां शम्भोः पादाम्बुधारणम् ॥ ६८ ॥

शिवलिङ्गचरणतीर्थधारणं समस्तमङ्गलानां मङ्गलं सत् सकलपावनानां पावनं सत् पुरुषाणां सर्वसिद्धिकरं भवतीत्यर्थः ॥ ६८ ॥

शंकरक चरणोदक लेब सकल मंगलक मंगल, सकलपावनक पावन ओ सकल सिद्धिकारक थिक ॥ ६८ ॥

अथ निर्माल्यपत्रपुष्पधारणफलं निरूपयति–

शिरसा धारयेद्यस्तु पत्रं पुष्पं शिवार्पितम् ।
प्रतिक्षणं भवेत् तस्य पौण्डरीकक्रियाफलम् ॥ ६९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्टम् ॥ ६९ ॥

शिवकेँ चढ़ओल पत्र ओ फूल केँ जे माँथपर लैत छथि तनिक प्रतिक्षण पौण्डरीक-क्रिया कएलाक फल होइत छनि । (पुण्डीरक=उजरा कमल, तकर एक हजार फूलसँ शिवक पूजा पौण्डीक-क्रिया थिक) ॥ ६९ ॥

ननु शिवनिर्माल्यमग्राह्यमिति पुराणादौ श्रूयते, तत् कथं ग्राह्यमित्यत्राह–

भुञ्जीयाद् रुद्रभुक्तान्नं रुद्रपीतं जलं पिबेत् ।
रुद्राघ्रातं सदा जिघ्रेदिति जाबालिकी श्रुतिः ॥ ७० ॥

रुद्रभुक्तान्नं रुद्रसमर्पितप्रसादान्नं भुञ्जीयाद् भक्षयेत्, रुद्रपीतं रुप्रसादोदकं पिबेत्, रुद्राघ्रातं रुद्रसमर्पितकुसुमं जिघ्रेत्, इति जाबालिकी श्रुतिराहेत्यर्थः । 'रुद्रेणात्तमश्नन्ति, रुद्रेण पीतं पिबन्ति, रुद्रेणाघ्रातं जिघ्रन्ति' इति जाबालश्रुतिः । तस्मात् पुराणादिषु श्रूयमाणस्तन्निषेधस्तु चण्डाधिकारविशिष्टस्थावरलिङ्गपरो न तु बाणादिलिङ्गपरः,

बाणलिङ्गे स्वयंभूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते ।
शालग्रामशिलोद्भूते शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम् ॥

इति वचनात् । अन्यथा श्रुतिविरुद्धपुराणवचनप्रमाणमेव भवेदिति न सार्वत्रिक इति संक्षेपः, एवं श्रुतिसिद्धत्वात् ॥ ७० ॥

रुद्रक खाएल अन्न खाइ, हुनक पीउल जल पीबी आ हुनक सूँघल फूल आदि सूँघी– ई जाबालिक कथन थिक । तेँ पुराणादिमे जे शिवलिङ्गक नैवेद्य खाएब आदिक निषेध अछि से चण्डाधिकार-विशिष्ट स्थावरलिङ्गक विषयमे बुझबाक चाही । बाणलिङ्ग (स्वयं अंकुरित) आदिक प्रसाद भक्षणीय थिक– ''बाणलिङ्गे स्वयंभूते, चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते । शालग्रामशिलोद्भूते शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्'' ॥ ७० ॥

अर्पयित्वा निजे लिङ्गे पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
अन्नाद्यं सर्वभोज्यं च स्वीकुर्याद् भक्तिमान्नरः ॥ ७१ ॥

स्पष्टम् ॥ ७१ ॥

भक्त अपन इष्ट शिवलिङ्गकेँ पत्र पुष्प फल जल अन्न आदि समर्पित कए स्वयं ग्रहण करथि ॥ ७१ ॥

अथ गुरुप्रसादविमुखानां मुक्तिर्नास्तीति सर्वसम्मतत्वेनापरिमिततेजसः

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवस्य 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इति श्रुतेः सकलविद्याधीश्वरत्वात्, तत्रैव 'मे अस्तु सदाशिवोम्' इति तारकब्रह्मरूपप्रणवाभेदेन श्रूयमाणत्वाच्च सकललोकगुरुत्वात् तत्प्रसादोऽवश्यं ग्राह्य इत्याह–

गुरुत्वात् सर्वभूतानां शम्भोरमिततेजसः ।
तस्मै निवेदितं सर्वं स्वीकार्यं तत्परायणैः ॥ ७२ ॥

स्पष्टम् ॥ ७२ ॥

सकल प्राणीक गौरवस्वरूप अमित तेजस्वी शिवकेँ समर्पित नैवेद्यादिकेँ शिवपरायण भक्त ग्रहण करथि ॥ ७२ ॥

तर्ह्यस्य शिवलिङ्गप्रसादस्य कोऽधिकारीत्यत्राह–

ये लिङ्गधारिणो लोके ये शिवैकपरायणाः ।
तेषां तु शिवनिर्माल्यमुचितं नान्यजन्तुषु ॥ ७३ ॥

स्पष्टम् ॥ ७३ ॥

एहि लोकमे जे शिवलिङ्गधारी आ एकमात्र शिवक भक्त छथि से शिवक प्रसाद ग्रहण करथि, आन व्यक्ति नहि ॥ ७३ ॥

तर्हि शिवप्रसादान्नभोजनस्य किं फलमित्यत्राह–

अन्नजाते तु भक्तेन भुज्यमाने शिवार्पिते ।
सिक्थे सिक्थेऽश्वमेधस्य यत्फलं तदवाप्यते ॥ ७४ ॥

परिपक्वतण्डुलव्यक्तिः सिक्थशब्देनोच्यते । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ७४ ॥

शिवार्पित अन्नादिक एक एक सिद्धान्न कणाक भोजन मे शिवभक्तकेँ एक एक अश्वमेधयज्ञक फल होइत छनि ॥ ७४ ॥

अथास्यानधिकारिणः सूचयति–

निर्माल्यं निर्मलं शुद्धं शिवेन स्वीकृतं यतः ।
निर्मलैस्तत्परैर्धार्यं नान्यैः प्राकृतजन्तुभिः ॥ ७५ ॥

शिवलिङ्गदीक्षारहिताः प्राकृताः, तेऽनधिकारिणः, तैर्न धार्यमित्यर्थः । शिवदीक्षया निर्मलैः, तत्परैः शिवलिङ्गनिष्ठैर्धार्यमित्यर्थः ॥ ७५ ॥

निर्माल्य निर्मल ओ शुद्ध होइछ, कारण ओ शिवक द्वारा स्वीकृत

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहैछ। तेँ ओ निर्मल शिवपरायणेक द्वारा धारणीय थिक, अन्य साधारण लोकक द्वारा नहि ॥ ७५ ॥

तदेव स्फुटयति–

शिवभक्तिविहीनानां जन्तूनां पापकर्मणाम्।
विशुद्धे शिवनिर्माल्ये नाधिकारोऽस्ति कुत्रचित् ॥ ७६ ॥

अयं भवः–व्यापकीभूतशिवस्याष्टतनुपरिकल्पितत्वेन साधारणीभूतदेवतान्तरपूजायां शिवसम्बन्धिपुष्पोदकीभूतचन्द्रगङ्गाभ्यां परिपुष्टस्य धान्यस्याग्निरूपरुद्रजिह्वया परिपच्यमानत्वाद् एतदुभयत्र सर्वप्राणिनामप्यधिकारोऽस्ति, तथाप्यसाधारणशिवलिङ्गपूजायां शिवलिङ्गप्रसादस्वीकारे च शिवदीक्षासम्पन्न एवाधिकारीति सर्वशास्त्रप्रसिद्धम् ॥ ७६ ॥

जे शिवभक्तिसँ रहित ओ पापकर्ममे लागल रहथि तनिका विशुद्ध शिवनिर्माल्यमे अधिकार कतहु नहि छनि ॥ ७६ ॥

अथ प्रसादमहत्त्वं संसूच्यैतत्स्थलं समापयति सूत्रद्वयेन–

शिवलिङ्गप्रादस्य स्वीकारद् यत्फलं भेवत्।
तथा प्रसादस्वीकाराद् गुरुजङ्गमयोरपि ॥ ७७ ॥
तस्माद् गुरुं महादेवं शिवयोगिनमेव च।
पूजयेत् तत्प्रसादान्नं भुञ्जीयात् प्रतिवासरम् ॥ ७८ ॥

पूजयेत् तनुमनोधनैः पूजयेदित्यर्थः। तत्प्रसादान्नमेव प्रतिवासरं भुञ्जीयात् ॥ ७७-७८ ॥

शिवलिङ्गक प्रसादक स्वीकार मे जे फल होइत अछि तहिना गुरु ओ जंगम (शिवयोगी)क प्रसादस्वीकार सँ होइछ। तेँ गुरु, महादेव ओ शिवयोगीकेँ पूजित करबाक चाही ओ हुनक प्रसाद अन्न आदिकेँ प्रतिदिन खएबाक चाही ॥ ७७-७८ ॥

इति चतुर्विधसारायस्थलम्

अथ सोपाधिनिरुपाधिसहजदानस्थलानि

अथ–

देहदानात् सत्यसिद्धिरर्थदानाच्च निर्वृतिः।
प्राणदानात् ज्ञानसिद्धिरेवं सर्वं स्थिरं भवेत् ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति योगजागमवचनानुसोण गुरुलिङ्गजङ्गमोद्देशेन यथाशक्ति दानं कुर्यादित्याह–

शिवलिङ्गे शिवाचार्ये शिवयोगिनि भक्तिमान् ।
दानं कुर्याद् यथाशक्ति तत्प्रसादयुतः सदा ॥ ७९ ॥

तद्विषय इति शेषः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ७९ ॥

आब सोपाधि एवं निरुपाधि सहजदानक स्थल केँ कहैत छथि– भक्तिमान् साधक शिवलिङ्ग, शिवाचार्य ओ शिवयोगीकेँ हुनक प्रसन्नतार्थ यथाशक्ति दान देथि ॥ ७९ ॥

अथ तद्दानस्वरूपं विशदयति–

दानं च त्रिविधं प्रोक्तं सोपाधिनिरुपाधिकम् ।
सहजं चेति सर्वेषां सर्वतन्त्रविशारदैः ॥ ८० ॥

दानं च प्राणदेहार्थरूपदानत्रयं सोपाधिकं निरुपाधिकं सहजं चेति त्रिरूपवदिति समस्तागमप्रवीणैः सर्वेषां शिवभक्तानां प्रोक्तमित्यर्थः ॥ ८० ॥

सकल शास्त्रक विशिष्ट वेत्ता लोकनि दानकेँ तीन प्रकारक कहने छथि– सोपाधि, निरुपाधि आ सहज ॥ ८० ॥

तत्र सोपाधिदानस्थलं निरूपयति–

फलाभिसन्धिसंयुक्तं दानं यद्विहितं भवेत् ।
तत् सोपाधिकमाख्यातं मुमुक्षुभिरनादृतम् ॥ ८१ ॥

तुच्छफलाभिलाषसंयुक्तमत एव मुमुक्षुभिरुपेक्षितं यद्दानं विहितं स्यात्, तत् सोपाधिकमित्युक्तमित्यर्थः ॥ ८१ ॥

जे. दान फलप्राप्तिक इच्छासँ कएल जाइत अछि तकरा सोपाधिक (कारणविशेष प्रयुक्त) कहल जाइछ । एहन दानक, मोक्षार्थी व्यक्ति अनादर करैत छथि ॥ ८१ ॥

अथ निरुपाधिदानस्थलं लक्ष्यति–

फलाभिसन्धिनिर्मुक्तमीश्वरार्पितकाङ्क्षितम् ।
निरुपाधिकमाख्यातं दानं दानविशारदैः ॥ ८२ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुच्छफलेच्छारहितमीश्वरार्पणाभिवाञ्छया विहितं यद्दानं तद् दानतत्त्वस्वरूपज्ञैर्निरुपाधिकदानमित्याख्यातमित्यर्थः ॥ ८२ ॥

जे दान फल प्राप्तिक इच्छासँ रहित ईश्वरकेँ समर्पित करबाक बुद्धिसँ कएल जाइत अछि तकरा दानतत्त्वक वेत्ता लोकनि निरुपाधिक (विनाकारणेँ भक्तिवश) दान कहैत छथि ॥ ८२ ॥

सहजदानस्थलं निरूपयति–

अदातृ-दातृ-देयानां शिवभावं विचिन्तयन् ।
आत्मनोऽकर्तृभावं च यद्दत्तं सहजं भवेत् ॥ ८३ ॥

परिग्रहीतृ-प्रदातृ-देयानां शिवत्वं चिन्तयन्, आत्मनः स्वस्याकर्तृत्वं भावयन् यद्दानं दत्तम्, तत्सहजदानं स्यादित्यर्थः । 'भेक्ता भोज्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेकम्'[१] इति श्वेताश्वतरश्रुत्योपक्रमगतिपिण्डस्थलरहस्यमत्रोप-संहाररूपसहजदानस्थलेऽपि बोध्यम् ॥ ८३ ॥

अदाता (ग्रहणकर्ता), दाता ओ देय (दानक वस्तु)मे शिवभावक ध्यान करैत अपनाकेँ अकर्ता बुझैत जे दान कएल जाइछ तकरा सहज दान कहल जाइछ ॥ ८३ ॥

एषु किं श्रेष्ठमित्यत्राह–

सहजं दानमुत्कृष्टं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ।
शिवज्ञानप्रदं पुंसां जन्मरोगनिवर्तकम् ॥ ८४ ॥

सहजं दानं सर्वदानोत्तमानामुत्तममिति, उत्कृष्टं श्रेष्ठमित्यर्थः । कथमित्यत्र पुंसां जननमरणलक्षणमहारोगनिवारकीभूतशिवतादात्म्यज्ञानप्रदमित्युत्तरम् ॥ ८४ ॥

एहि तीनू मे सहजदान उत्कृष्ट, सब दानसँ उत्तम, शिवज्ञान देनिहार एवं जन्मरोगकेँ हटबएवला थिक ॥ ८४ ॥

ननु गुरुलिङ्गजङ्गमोद्देशेनैवंभावनया दत्तमेव सहजं वेत्यत्राह–

शिवाय शिवभक्ताय दीयते यदि किञ्चन ।
भक्त्या तदपि विख्यातं सहजं दानमुत्तमम् ॥ ८५ ॥

शिवाय इष्टलिङ्गातिरिक्तस्थावरलिङ्गरूपिणे शिवाय दत्तं क्षेत्रादिदानम्, विरक्तमूर्तिव्यतिरिक्तशिवभक्तेभ्यश्च दत्तमपि सहजं दानमित्यर्थः ॥ ८५ ॥

१. श्वे०उ० ८।७

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवकेँ अथवा शिवभक्तकेँ जे किछु भक्तिपूर्वक देल जाइछ सेहो सहजदान कहल गेल अछि ॥ ८५ ॥

अथ तद्दानफलमाह–

दानात् स्वर्णसहस्रस्य सत्पात्रे यत्फलं भवेत् ।
एकपुष्पप्रदानेन शिवे तत्फलमिष्यते ॥ ८६ ॥

स्पष्टम् ॥ १ ॥

एक हजार सोनाक अशर्फीक दान उत्तम व्यक्तिकेँ देलासँ जे फल होइत छैक से फल शिवकेँ एक फूल चढ़ओलासँ होइत अछि ॥ ८६ ॥

तत्कथमित्यत्र– 'ईशानः सर्वविद्यानाम्'[१] इति श्रुतेः सकलविद्यानिधित्वाज्जगद्गुरुत्वेन सत्पात्रतमत्वादित्यभिप्रायेणाह–

शिव एव परं पात्रं सर्वविद्यानिधिर्गुरुः ।
तस्मै दत्तं तु यत्किञ्चित्, तदनन्तफलं भवेत् ॥ ८७ ॥

अयमप्येकोऽर्थः–शिव एव परं पात्रं तथा सर्वविद्यानिधिर्गुरुश्च परं पात्रम् । तस्मै शिवाय गुरवे च दत्तमनन्तफलमिति ॥ ८७ ॥

सब विद्याक सागर गुरुरूप शिवे दान पएबाक सर्वश्रेष्ठ पात्र होइत छथि । हुनका जे किछु देल जाए से अनन्त फलदायक होएत ॥ ८७ ॥

एवं शिवयोगिनोऽपि दत्तमपीत्याह–

शिवयोगी शिवः साक्षाच्छिवज्ञानमहोदधिः ।
यत्किञ्चिद् दीयते तस्मै तद्दानं पारमार्थिकम् ॥ ८८ ॥

पारमार्थिकम् अपरिमितफलदं सहजदानमित्यर्थः ॥ ८८ ॥

शिवयोगी साक्षात् शिव थिकाह, ओ शिवज्ञानक महासागर थिकाह । हुनका जे किछु देल जाइत अछि से पारमार्थिक (परम अर्थ = शिवसायुज्य देनिहार) दान थिक ॥ ८८ ॥

अथ शिवयोगीश्वरमहत्त्वमेव विशेषयति–

शिवयोगी महत्पात्रं सर्वेषां दानकर्मणि ।
तस्मान्नास्ति परं किञ्चित् पात्रं शास्त्रविचारतः ॥ ८९ ॥

---
१. वा०सं० ८ । ७

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दानकर्मणि दानकर्मविषये सर्वेषां सत्पात्राणां शिवयोगी महापात्रम्, तस्मात्परं श्रेष्ठं शास्त्रविचारतः किञ्चिदपि नास्तीत्यर्थः ॥ ८९ ॥

शिवयोगी सबदानकर्ममे महान् पात्र (योग्य अधिकारी) थिकाह । शास्त्रविचारक अनुसार हुनका सँ पैघ दानक पात्र केओ नहि छथि ॥ ८९ ॥

अथ तद्दानफलमाह–

भिक्षामात्रप्रदानेन शान्ताय शिवयोगिने ।
यत्फलं लभ्यते नैतद् यज्ञकोटिशतैरपि ॥ ९० ॥

भिक्षामात्रं कवलमात्रमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ९० ॥

शान्त शिवयोगीकेँ केवल भिक्षामात्र प्रदान सँ जे फल प्राप्त होइछ से करोड़ो यज्ञसँ नहि ॥ ९० ॥

तत्कथमित्यत्राह–

शिवयोगिनि सन्तृप्ते तृप्तो भवति शङ्करः ।
तत्तृप्त्या तन्मयं विश्वं तृप्तिमेति चराचरम् ॥ ९१ ॥

'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'[1] इति श्रुतेः शिवयोगिनः साक्षाच्छिवरूपत्वात् तत्तृप्त्या शिवस्तृप्तो भवति, तत्तृप्त्या 'सर्वो वै रुद्रः' इति श्रुतेस्तन्मयं विश्वं तृप्तिमेतीत्यर्थः ॥ ९१ ॥

शिवयोगीक तृप्त भेलासँ शंकर तृप्त होइत छथि आ शंकरक तृप्त भेलासँ तन्मय (शिवमय) चर एवं अचर संसार तृप्त भए जाइत अछि ॥ ९१ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शिवयोगिन एव तृप्तिं कुर्यादित्याह–

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन येन केनापि कर्मणा ।
तृप्तिं कुर्यात् सदाकालमन्नाद्यैः शिवयोगिनः ॥ ९२ ॥

सर्वप्रयत्नेन यया कयाचित्क्रियया सदाकालमन्नपानादिना शिवयोगिनस्तृप्तिं कुर्यादित्यर्थः ॥ ९२ ॥

---

१. मु०उ० ३ । २ । ९

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तेँ सब तरहेँ प्रयास कए कोनो काज कए सतत अन्न आदिसँ शिवयोगीकेँ तृप्त करबाक चाही ॥ ९२ ॥

अथैवंरूपसत्पात्रेषु सहजदानसम्पन्नः साक्षाच्छिव एवेत्याह–

निरुपाधिकचिद्रूप-परानन्दात्मवस्तुनि ।
समाप्तं सकलं यस्य स दानी शङ्करः स्वयम् ॥ ९३ ॥

सम्पूर्णसच्चिदानन्दलक्षणगुरुलिङ्गजङ्गमात्मनि परमशिवे यस्य शिवभक्तस्य शरीरार्थप्राणरूपं सकलं वस्तु समाप्तं समर्पितं भवेत्, स सहजदानी स्वयमेव शिव इत्यर्थः ॥ ९३ ॥

विना कोनो आकांक्षावाला जे चित्स्वरूप परानन्द वस्तु (परमेश्वर शिव) तनिकामे जाहि व्यक्तिक सर्वस्व लागि जाए से दानी साक्षात् शंकर मानल जाइत छथि ॥ ९३ ॥

अथैवमुक्ताखिलाचारसम्पन्नः सहजदानी शिवभक्त एव माहेश्वरतामुपैतीति वृत्तेनाह–

उक्ताखिलाचारपरायणोऽसौ
सदा वितन्वन् सहजं तु दानम् ।
ब्रह्मादिसम्पत्सु विरक्तचित्तो
भक्तो हि माहेश्वरतामुपैति ॥ ९४ ॥

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ माहेश्वरस्य नवविधस्थलप्रसङ्गो नाम नवमः परिच्छेदः ॥ ९ ॥



अक्षरार्थस्य स्पष्टत्वाद् भावार्थो लिख्यते–देहद्रव्यक्षेत्राणि गुरुलिङ्गजङ्गमेषु समर्प्य श्रीगुरुकरकमले समुत्पत्य जङ्गमदेवतीर्थप्रसादेनैव शरीरं धृत्वा महालिङ्गैक्यापेक्षी शिवभक्तो माहेश्वरीयसदाचारवान् सन् माहेश्वर इति प्रसिद्धो भवेत् ॥ ९४ ॥

इति दानत्रयस्थलम्

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां भक्तिमार्ग-क्रियास्थलवर्णनं नाम नवमः परिच्छेदः ॥ ९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एहि प्रकारक सकल आचारणकेँ करएवाला, सतत सहजदान दैत तथा ब्रह्मा आदिक सम्पत्तिओक प्रति मनमे अनुराग नहि राखएवाला भक्त माहेश्वर भए जाइत छथि ।। ९४ ।।

एहि तरहेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणिक भक्तमार्गक्रियास्थलवर्णन नामक नवम परिच्छेदक विद्यावाचस्पति पं० श्रीशशिनाथझाकृत-'प्रबोधिनी' मैथिली व्याख्या समाप्त भेल ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दशमः परिच्छेदः

अथ माहेश्वरस्थलम्

अथ भक्तस्थलनिरूपणानन्तरमगस्त्यः श्रीरेणुकं परिपृच्छति–

अगस्त्य उवाच

भक्तस्थलं समाख्यातं भवता गणनायक ।
केन वा धर्मभेदेन भक्तो माहेश्वरो भवेत् ॥ १ ॥

भक्तः शिवभक्तः केन धर्मभेदेन आचारभेदेनेत्यर्थः, माहेश्वरः स्यादिति प्रश्नार्थः ॥ १ ॥

माहेश्वरस्थल वर्णन– अगस्त्य कहैत छथिन– हे गणनायक रेणुक ! अहाँ भक्तस्थलक वर्णन कएलहुँ । आब कहू जे कोन धर्मभेद सँ भक्त माहेश्वर भए सकैत छथि ॥ १ ॥

रेणुक उवाच

केवले सहजे दाने निष्णातः शिवतत्परः ।
ब्रह्मादिस्थानविमुखो भक्तो माहेश्वरः स्मृतः ॥ २ ॥

केवले सहजे दाने निष्णातः कुशलः सन् ब्रह्मादिपदनिस्पृहः शिवभक्तः शिवतत्परः शिवैकनिष्ठः सन् माहेश्वरः स्मृत इत्यर्थः ॥ २ ॥

रेणुक कहैत छथिन– जे शिवक उपासनामे लागल रहैत केवल सहज दानमे लागल रहैत ब्रह्मादिक स्थानोक प्राप्तिसँ विमुख रहैत छथि से भक्त माहेश्वर कहबैत छथि ॥ २ ॥

तदेव स्फुटयति–

भक्तेर्यदा समुत्कर्षो भवेद् वैराग्यगौरवात् ।
तदा माहेश्वरः प्रोक्तो भक्तः स्थिरविवेकवान् ॥ ३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्तेः शिवभक्तेः समुत्कर्षः समुचितोत्कर्षो वैराग्यगौरवाद् वैराग्यमहत्त्वाद् यदा काले भवेत्, तदा तस्मिन् काले स्थिरविवेकवान् स्थिरीभूतनित्यानित्यवस्तु-विवेकवान् शिवभक्तो माहेश्वर इति प्रोक्त इत्यर्थः ॥ ३ ॥

जखन अत्यन्त वैराग्यसँ भक्तिक उत्कर्ष (उन्नत अवस्था) भए जाए तँ एहन स्थिर विवेकवाला भक्त माहेश्वर कहबैत छथि ॥ ३ ॥

नन्वस्यापि स्थलभेदाः सन्ति किमित्यत्र तद्भेदमुपदिशति–

माहेश्वरस्थलं वक्ष्ये यथोक्तं शम्भुना पुरा ।
माहेश्वरप्रशंसादौ लिङ्गनिष्ठा ततः परम् ॥ ४ ॥
पूर्वाश्रयनिरासश्च तथाद्वैतनिराकृतिः ।
आह्वानवर्जनं पश्चादष्टमूर्तिनिराकृतिः ॥ ५ ॥
सर्वगत्वानिरासश्च शिवत्वं शिवभक्तयोः ।
एवं नवविधं प्रोक्तं माहेश्वरमहास्थलम् ॥ ६ ॥

पुरा पूर्वकाले शिवेन यथोक्तं तथा माहेश्वरस्थलभेदं वक्ष्ये, शृण्विति शेषः । आदौ माहेश्वरप्रशंसास्थलम्, ततः परं तदनन्तरं लिङ्गनिष्ठास्थलम्, तदनन्तरं पूर्वाश्रयनिरसनस्थलम्, तथा तदनन्तरम् अद्वैतनिरसनस्थलम्, पश्चादाह्वाननिरासनस्थलम्, अनन्तरमष्टमूर्तिनिरसनस्थलम्, अनन्तरं सर्वगत्वनिरासनस्थलम्, अनन्तरं शिवजगन्मयस्थलम्, अथ भक्तदेहिकलिङ्गस्थलम् । एवं माहेश्वरमहास्थलं नवविधं नवप्रकारवदिति प्रोक्तं कथितमित्यर्थः । अत्र पुरा शम्भुना यथोक्तं तथा वक्ष्य इत्यनेनोक्तं वक्ष्यमाणं च सर्वं न स्वकपोलकल्पितमिति सूचितम् । अत्राष्टमूर्तित्वनिरसनानन्तरमाह्वननिरसनं वक्तुमुचितमिति केषाञ्चिदाशयः परास्तः, शिवोक्तक्रमविरोधादिति, तथापि शिवस्य व्यापकत्वादाह्वानं न सम्भवतीति नोक्तम्, किन्तु स्वेष्टलिङ्गे प्रतिपत्तिविरोधात् पुनराह्वानं न सम्भवतीति कथितत्वान्न शङ्कावकाशः ॥ ४-६ ॥

आब जेना पूर्वकालमे शम्भु कहने छथि से माहेश्वर स्थल कहि रहल छी । आरम्भमे माहेश्वरक प्रशंसा, तकरा बाद लिङ्गार्चनमे निष्ठा (अतिशय श्रद्धा), तकर बाद पूर्व आश्रयक त्याग, तखन अद्वैतक निराकरण, अह्वानक त्याग, अष्टमूर्त्तिक निराकरण, सर्वगत्व (सब ठाम जएबा)क निरास (त्याग), शिवजगमयत्व ओ शिव तथा भक्तमे अभेद (शिवमयत्व)– ई नओ प्रकारक

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवस्थल कहल गेल अछि । (आह्वानवर्जनसँ तात्पर्य ई जे शिवलिङ्गमे सदा शिव रहितहिं छथि, तें आवाहन नहि करबाक चाही) ॥ ४-६ ॥

अथोद्देशक्रमेण तदवान्तरस्थलानां लक्षणं वक्ष्ये, श्रूयतामित्याह–

आदितः क्रमशो वक्ष्ये स्थलभेदस्य लक्षणम् ।
समाहितेन मनसा श्रूयतां भवता मुने ॥ ७ ॥

स्पष्टम् ॥ ७ ॥

हे मुनिवर ! आब स्थलभेदक लक्षण कहब । अहाँ स्वस्थचित्त भए सुनब ॥ ७ ॥

अत्र– 'विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं, स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु'[१] इति श्वेताश्वतरादिश्रुत्यनुसारेण सप्तभिः सूत्रैर्महेश्वरप्रशंसापूर्वकं माहेश्वरस्वरूपं प्रपञ्चेन प्रकाशयति–

विश्वस्मादधिको रुद्रो विश्वानुग्रहकारकः ।
इति यस्य स्थिरा बुद्धिः स वै माहेश्वरः स्मृतः ॥ ८ ॥

समस्तदेवदानवादिविश्वानुग्राहकः रुद्रः 'एक एव (एको हि) रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे (द्वितीयाय तस्थुः)'[२] इति श्रुतिप्रसिद्धरुद्रः, विश्वस्मात् 'विश्वं नारायणं हरिम्' स इति श्रुतिप्रसिद्धविश्वरूपनारायणाद् अधिक इति यस्य बुद्धिर्दृढा, स वै माहेश्वर इति स्मृत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

'भगवान् शिव संसारसँ बढ़ि कए छथि, उवेह विश्व पर अनुग्रह करए वाला छथि'– एहन जनिका दृढ़ धारणा छनि से माहेश्वर कहल जाइत छथि ॥ ८ ॥

अथ 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते'[३] इति श्रुत्यर्थमनुसरन् माहेश्वरस्वरूपमाह–

ब्रह्माद्यैर्मलिनप्रायैर्निर्मले परमेश्वरे ।
साम्योक्तिं यो न सहते स वै माहेश्वराभिधः ॥ ९ ॥

'ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते' इति श्रुतेर्ब्रह्मादीनां जननमरणपरिपीडितत्वेन समलत्वात्, 'न कारणम्' इति श्रुतेरेतत्कारणीभूत-शिवस्याजातत्वेन

---

१. श्वे०उ० ३।४ २. श्वे०उ० ३।२ ३. श्वे०उ० ६।८

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्मलत्वात्, 'कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसम्पन्नः सर्वेश्वरश्च शम्भुराकाशमध्ये' इत्यग्रे श्रूयमाणत्वात् तैः सह साम्योक्तिं यो न सहते, स माहेश्वराख्य इत्यर्थः ॥ ९ ॥

जे मलिनप्राय ब्रह्मा आदिक संग निर्मल परमेश्वरक तुलनाकेँ नहि सहि सकैत छथि से माहेश्वर थिकाह ॥ ९ ॥

अथ– 'ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्'[1] इति ईशानमन्त्रार्थम्–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ॥[2]

इति भगवद्गीतार्थं चानुस्मरन् माहेश्वरस्वरूपं प्रकाशयति–

ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां महानिति ।
बुद्धियोगात् तदासक्तो भक्तो माहेश्वरः स्मृतः ॥ १० ॥

ब्रह्मादीनां चतुर्मुखप्रभृतीनां सर्वभूतानां समस्तपशुप्राणिनाम् ईश्वरः प्रेरकीभूतपरमेश्वर एक एव महान् श्रेष्ठ इति बुद्धियोगात् तदासक्तः महेश्वरासक्तो भक्तः शिवभक्तो माहेश्वर इति स्मृत इत्यर्थः ॥ १० ॥

ब्रह्मासँ क्षुद्र प्राणीतक मे परमेश्वर महान् छथि– एहि प्रकारक विचार सँ जे भक्त परमेश्वरमे सतत आसक्त रहैत छथि हुनका माहेश्वर कहल गेल अछि ॥ १० ॥

अथ शिव एव एको मुक्तिद इति यो जानाति स माहेश्वर इति सूत्रद्वयेन कथयति–

ब्रह्मादिदेवताजालं मोहितं मायया सदा ।
अशक्तं मुक्तिदाने तु क्षयातिशयसंयुतम् ॥ ११ ॥
अनादिमुक्तो भगवानेक एव महेश्वरः ।
मुक्तिदश्चेति यो वेद स वै माहेश्वरः स्मृतः ॥ १२ ॥

क्षयातिशयसंयुतं जननमरणातिशयेन संयुक्तं ब्रह्मविष्ण्वादिदेवतानीकं निरन्तरं मायया परमेश्वरस्वातन्त्र्यापरपर्यायमायाशक्त्या मोहितम् अन्धीकृतं सद्

१. नारायणोप० ४ । २१ २. भ०गी० १८ । ६१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुक्तिदाने तु परापरमुक्तिप्रदाने अशक्तम् असमर्थम् । अनादिमुक्तो नित्यमुक्तो भगवान् षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नो महेश्वरः 'तत्परं ब्रह्म (यत् परं ब्रह्म) स एकः (य एकः) स एको रुद्रः स ईशानः स भगवान् स महेश्वरः स महादेवः'[१] इत्यथर्वशिरःप्रसिद्धपरमेश्वर एक एव मुक्तिदश्चेति परापरमुक्तिप्रद इति यो वेद जानाति, स वै माहेश्वर इति स्मृत इत्यर्थः ॥ ११-१२ ॥

ब्रह्मा आदि देवतागण सदा मायाग्रस्त छथि, क्षय ओ अतिशय सँ युक्त ओलोकनि मुक्ति देबामे असमर्थ छथि । केवल भगवान् शिव अनादि मायासँ मुक्त छथि, सएह मुक्ति दैत छथि– एहि तरहक ज्ञान जनिका छनि से माहेश्वर कहल गेल छथि ॥ ११-१२

अथ ब्रह्मादिमाहैश्वर्यं तृणवद् ज्ञात्वा शिवानन्दतत्परो वीरमाहेश्वर इत्याह सूत्रद्वयेन–

क्षयातिशयसंयुक्ता ब्रह्मविष्ण्वादिसम्पदः ।
तृणवन्मन्यते युक्त्या वीरमाहेश्वरः सदा ॥ १३ ॥
शब्दस्पर्शादिसम्पन्ने सुखलेशे तु निःस्पृहः ।
शिवानन्दे समुत्कण्ठो वीरमाहेश्वरो भवेत् ॥ १४ ॥

विनाशातिशयेन (याभ्यां) संयुक्ता ब्रह्मविष्ण्वादिसम्पदो वीरमाहेश्वरः शिवभक्तो युक्त्या अनित्यमिति बुद्ध्या तृणवत् सदा मनुते जानाति, तस्मात् शब्दस्पर्शादिसम्पन्ने सोपाधिके सुखलेशे तुच्छसुखे निःस्पृहः सन् शिवानन्दे नित्यसुखे समुत्कण्ठः प्रीतिमान् वीरमाहेश्वरो भवेत् स्यादित्यर्थः ॥ १३-१४ ॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताक ऐश्वर्य क्षयशील ओ अतिशय (जनन-मरणक अतिशय)सँ युक्त अछि । वीर माहेश्वर हुनका सभकेँ युक्तिसँ तृणवत् (तुच्छ) मानैत छथि । ओ तँ शब्द स्पर्श आदि सँ युक्त क्षणिक सुखक इच्छा नहि रखैत छथि तथा शिवानन्दक प्राप्तिक लेल उत्कण्ठित रहैत छथि । एहन व्यक्ति माहेश्वर होइत छथि ॥ १३-१४ ॥

अथ तदाचारभेदस्थितिं च षड्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

परस्त्रीसङ्गनिर्मुक्तः परद्रव्यपराङ्मुखः ।
शिवार्थकार्यसम्पन्नः शिवागमपरायणः ॥ १५ ॥

---

१. अथर्व०उ० २ । ३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवस्तुतिरसास्वाद-मोदमानमनाः शुचिः ।
शिवोत्कर्षप्रमाणानां सम्पादनसमुद्यतः ॥ १६ ॥
निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तक्लेशपञ्जरः ।
अस्पृष्टमदसम्बन्धो मात्सर्यावेशवर्जितः ॥ १७ ॥
निरस्तमदनोन्मेषो निर्धूतक्रोधविप्लवः ।
सदा सन्तुष्टहृदयः सर्वप्राणिहिते रतः ॥ १८ ॥
निवारणसमुद्योगी शिवकार्यविरोधिनाम् ।
सहचारी सदाकालं शिवोत्कर्षाभिधायिभिः ॥ १९ ॥
शिवापकर्षसम्प्राप्तौ प्राणत्यागेऽप्यशङ्कितः ।
शिवैकनिष्ठः सर्वात्मा वीरमाहेश्वरो भवेत् ॥ २० ॥

निरस्तक्लेशपञ्जरो निवारिताविद्या(दि)क्लेशसमूहवान्, निर्धूतक्रोध-विप्लवः निवारितक्रोधबाधावान्, शिवैकनिष्ठः शिवलिङ्गैकनिष्ठः, सर्वात्मा पूर्णाहंभाववान् निरहङ्कारः परिच्छिन्नशरीराद्यहंभावशून्यः । शिष्टं स्पष्टम् । एवमादिविशेषणविशिष्टः श्रीवीरशैवो माहेश्वरः स्यादित्यर्थः । अत्र निरस्तक्लेशपञ्चक इति पाठान्तरम् ॥ १५-२० ॥

परस्त्रीसम्पर्कसँ विरत, आनक धनसँ मुँह मोड़ने, शिवक हेतु भरिपोख काज कएनिहार, शिवागमक अनुशीलनमे तत्पर, शिवक स्तुतिक रस आस्वादनसँ आनन्दित, पवित्र, शिवक उत्कर्षता प्रतिपादक प्रमाणक संग्रहमे लागल, ममतारहित, अहंकाररहित, अविद्यादिक्लेशक नाशक, मदसँ थोड़बो सम्बन्ध नहि रखनिहार, अनकर नीक पर द्वेष नहि रखनिहार, कामवासनाकेँ दूर कएनिहार, क्रोधक प्रचण्डताकेँ दूर फेकनिहार, सतत सन्तुष्ट हृदयवाला, सभ जन्तुक हितमे लागल, शिवकार्यक विरोधीकेँ रोकबामे लागल, सतत शिवक उत्कर्ष कहनिहारक सङ रहनिहार, शिवक हीनताक उपस्थित भेला पर तकर निवारणमे प्राण तक समर्पित कएनिहार, सर्वात्मस्वरूप व्यक्ति वीरमाहेश्वर भए सकैत छथि ॥ १५-२० ॥

इति माहेश्वरप्रशंसास्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ लिङ्गनिष्ठास्थलम्

अथ अनेन माहेश्वरेण विधीयमानां लिङ्गनिष्ठां नवभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

अस्य माहेश्वरस्योक्तं लिङ्गनिष्ठामहास्थलम् ।
प्राणात्ययेऽपि सम्पन्ने यदत्याज्यं विधीयते ॥ २१ ॥

यद् यल्लिङ्गनिष्ठास्थलं प्राणात्यये सम्पन्नेऽपि प्राणसङ्कटे प्राप्ते सत्यपि अत्याज्यं त्यक्तुमयोग्यं विधीयते, तल्लिङ्गनिष्ठामहास्थलम् अस्य माहेश्वरस्य शिवलिङ्गैकतत्परस्य माहेश्वरस्य उक्तं कथितमित्यर्थः ॥ २१ ॥

शिवलिङ्गनिष्ठाक स्थल– जाहि शिवलिङ्गक पूजनक त्याग प्राणसंकटोमे कर्त्तव्य नहि थिक तकरा माहेश्वरक शिवलिङ्गनिष्ठास्थल कहल गेल अछि ॥ २१ ॥

कीदृशोऽयं प्राणसङ्कट इत्यत्र–

भवेत्प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा ।
न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीयाद् भगवन्तं त्रियम्बकम् ॥

इति शिवधर्मवचनानुसारेण कथयति–

अपगच्छतु सर्वस्वं शिरश्छेदनमस्तु वा ।
माहेश्वरो न मुञ्चेत लिङ्गपूजामहाव्रतम् ॥ २२ ॥

स्पष्टम् ॥ २२ ॥

सकल धन वरु चल जाए अथवा मस्तकक छेदन भए जाए किन्तु माहेश्वर व्यक्ति लिङ्गपूजाक महाव्रतकेँ नहि छोड़थि ॥ २२ ॥

अथ ये शिवपूजाव्यतिरेकेण न भुञ्जन्ति, तेषां हस्ते करतलामलकवन्मोक्षलक्ष्मीरुल्लसतीत्याह–

लिङ्गपूजामकृत्वा तु ये न भुञ्जन्ति मानवाः ।
तेषां महात्मनां हस्ते मोक्षलक्ष्मीरुपस्थिता ॥ २३ ॥

मोक्षलक्ष्मीरुपस्थिता वर्तत इत्यर्थः । इदं लिङ्गनिष्ठायाः फलमित्युक्तं भवति ॥ २३ ॥

जे व्यक्ति लिङ्गपूजा बिनु कएने भोजन नहि करैत छथि ओहि महात्माक हाथमे मोक्षलक्ष्मी उपस्थित रहैत छथि ॥ २३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अमुममर्थमेव सूत्रद्वयेन विशेषयति–

किमन्यैर्धर्मकलिलैः कीकषार्थप्रदायिभिः ।
साक्षान्मोक्षप्रदः शम्भोर्धर्मो लिङ्गार्चनात्मकः ॥ २४ ॥

शम्भोः शिवस्य लिङ्गार्चनात्मको धर्मः साक्षान्मोक्षप्रदः । तस्माद् अन्यैः शिवलिङ्गपूजातिरिक्तैः कीकषार्थप्रदायिभिः कुत्सितार्थदायिभिः धर्मकलिलैः क्षुद्रधर्मैः किम् ? किं प्रयोजनमित्यर्थः ॥ २४ ॥

क्षुद्र घृणास्पद अर्थ केँ देबएवाला आन धर्मसँ की प्रयोजन ? अर्थात् किछु नहि । साक्षात् मोक्ष देबएवाला लिङ्गार्चनात्मक धर्मक आश्रयण करबाक चाही ॥ २४ ॥

अथ लिङ्गार्पितान्नपानप्राशनमहत्त्वमाह–

अर्पितेनान्नपानेन लिङ्गे नियमपूजिते ।
ये देहवृत्तिं कुर्वन्ति महामाहेश्वरा हि ते ॥ २५ ॥

हि प्रसिद्धम् । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २५ ॥

नियमपूर्वक पूजित लिङ्ग पर अर्पित अन्न-पान सँ जे व्यक्ति देह केँ जीवित रखैत छथि से महामाहेश्वर थिकाह ॥ २५ ॥

अथ– 'यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति' इति श्रुत्यनुसारेण त्रिकारणपूर्वकं शिवलिङ्गनिष्ठाः शिवा एवेत्याह–

चिन्मये शाङ्करे लिङ्गे स्थिरं येषां मनः सदा ।
विमुक्तेतरसर्वार्थं ते शिवा नात्र संशयः ॥ २६ ॥

येषां मनो विमुक्तेतरसर्वार्थं त्यक्तस्वर्गादितुच्छफलाभिलाषं सत् चिद्रूपे शिवलिङ्गे सदा स्थिरं ते शिवा भूरुद्राः, अत्र अस्मिन्नर्थे न संशय इत्यर्थः ॥ २६ ॥

जनिक मन चिन्मय शाङ्कर लिङ्गमे सतत स्थिर रहैत छनि तथा ताहिसँ भिन्न सब अर्थ (विषय)केँ छोड़ि चुकल रहैत छनि ओ शिव थिकाह, एहिमे सन्देह नहि ॥ २६ ॥

नन्वस्मिन् चिद्रूपलिङ्गे मनोमात्रविश्रान्तिरुक्तेत्याशङ्क्य सूत्रान्तरेण करणत्रयविश्रान्तिं च दर्शयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिङ्गे यस्य मनो लीनं लिङ्गस्तुतिपरा च वाक् ।
लिङ्गार्चनपरौ हस्तौ स रुद्रो नात्र संशयः ॥ २७ ॥

इति स्पष्टम् ॥ २७ ॥

जनिक मन लिङ्गमे लीन रहैत छनि, वचन लिङ्गक स्तुतिमे लागल रहैत छनि आ हाथ लिङ्गक पूजामे लागल रहैत छनि, से रुद्र थिकाह, ताहिमे सन्देह नहि ।। २७ ।।

एवं लिङ्गनिष्ठस्याग्निहोत्रादिकर्मणा प्रयोजनं नस्तीत्याह–

लिङ्गनिष्ठस्य किं तस्य कर्मणा स्वर्गहेतुना ।
नित्यानन्दशिवप्राप्तिर्यस्य शास्त्रेषु निश्चिता ॥ २८ ॥

यस्य लिङ्गनिष्ठस्य नित्यानन्दशिवपदप्राप्तिः शास्त्रेषु वेदागमपुराणेषु निश्चितेति तस्य स्वर्गहेतुना अग्निहोत्रादिकर्मणा किम् ? किं प्रयोजनम् ? न किञ्चित्प्रयोजनमित्यर्थः ॥ २८ ॥

जे लिङ्गमे निष्ठा रखैत छथि तनिका स्वर्गहेतुक कर्मसँ की प्रयोजन ? अर्थात् कोनो नहि । हुनका तँ नित्यानन्द शिवक प्राप्ति शास्त्रमे निश्चित कहल छनि ।। २८ ।।

अथास्य महत्त्वं प्रतिपादयति–

लिङ्गनिष्ठापरं शान्तं भूतिरुद्राक्षसंयुतम् ।
प्रशंसन्ते सदाकालं ब्रह्माद्या देवता मुदा ॥ २९ ॥

स्पष्टम् ॥ २९ ॥

जे लिङ्गमे निष्ठा रखैत छथि आ विभूति–रुद्राक्ष धारण कएने रहैत छथि तनिक प्रशंसा ब्रह्मा आदि देवता सतत करैत छथिन ।। २९ ।।

इति लिङ्गनिष्ठास्थलम्

अथ पूर्वाश्रयनिरसनस्थलम्

अथ–

गुरुसंस्कृतभावः सन् गुरुनिर्मितदेहवान् ।
विस्मृत्य पूर्वदुर्भावं तदधीनः समाचरेत् ॥

इति योगजागमवचनानुसारेण तस्य लिङ्गनिष्ठस्य प्रातिकूल्येन प्राप्तपूर्वाश्रयनिरसनस्थलं सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिङ्गैकनिष्ठहृदयः सदा माहेश्वरो जनः ।
पूर्वाश्रयगतान् धर्मांस्त्यजेत् स्वाचाररोधकान् ॥ ३० ॥

निरन्तरं शिवलिङ्गैकनिष्ठचित्तो वीरमाहेश्वरः स्वाचाररोधकान् स्वसमयाचारविरोधिनः पूर्वाश्रयनिष्ठान् धर्मान् प्राकृताचारान् त्यजेदित्यर्थः ॥ ३० ॥

पूर्वाश्रयनिरासक स्थल कहैत छथि–

एकमात्र लिङ्गमे निष्ठा रखनिहार माहेश्वर व्यक्ति अपन पूर्वाश्रय (लिङ्गनिष्ठा ग्रहणसँ पूर्व)मे वीरशैव सम्प्रदायक विरोधी आचारक त्याग कए देथि ॥ ३० ॥

तर्ह्ययं कीदृश इत्यत्राह–

स्वजातिकुलजान् धर्मान् लिङ्गनिष्ठाविरोधिनः ।
त्यजन् माहेश्वरो ज्ञेयः पूर्वाश्रयनिरासकः ॥ ३१ ॥

लिङ्गनिष्ठाविरोधिनो लिङ्गनिष्ठाप्रतिकूलान् स्वजातिकुलजान् ब्राह्मणत्वादिजातिकुलालादिकुलप्राप्तान् धर्मान् जातप्रेताशौचादीन् त्यजन् वीरमाहेश्वरः पूर्वाश्रयनिरासक इति ज्ञातुं योग्य इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

अपन जाति ओ कुलक एहन धर्म जे लिङ्गनिष्ठाक विरोधी हो तकर त्याग कएनिहार माहेश्वर व्यक्ति पूर्वाश्रयनिरासक कहबैत छथि ॥ ३१ ॥

ननु पूर्वाश्रयप्राप्तनित्यनैमित्तिककर्मपरित्यागे प्रत्यवायश्रवणात् कथं तद्धर्मास्त्यजनीया इत्यत्राह–

शिवसंस्कारयोगेन विशुद्धानां महात्मनाम् ।
किं पूर्वकालिकैर्धर्मैः प्राकृतानां हि ते मताः ॥ ३२ ॥

पूर्वोक्तादानक्षपणलक्षणदीक्षारूपशिवसंस्कारसम्बन्धेन लिङ्गनिष्ठया च विधूतवृत्तवर्तिष्यमाणसकलकल्मषत्वेन निर्मलानां शिवशरणानां पूर्वाश्रयप्राप्तनित्य-नैमित्तिकादिकर्मभिः किं प्रयोजनम् ? न किञ्चित् प्रयोजनमित्यर्थः । ननु प्रत्यवायनिवृत्तिरेव प्रयोजनमिति चेन्न,

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥[1]

इति भगवतैव भाषितत्वात् । अस्यायमर्थः– 'अत्याश्रमिभ्यः परमं

१. भ०गी० २ । ४०

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पवित्रम्' इति श्रुतिसिद्धान्तवर्णाश्रमे इह अभिक्रम आत्माभिमुखीकरणप्रवीणगुरु-कारुण्यप्राप्तभूतिधारणाद्याचारक्रमः, तस्य नाशो नास्ति विस्मृतिशून्यत्वेन तदेकनिष्ठया सदा विधीयमानत्वेन विच्छेदो नास्तीत्यर्थः । नन्वेवं चेत्, नित्यनैमित्तिककर्मलोपात् प्रत्यवायः स्यादित्यत्राह– प्रत्यवायो न विद्यत इति । कुत इत्यत्राह– अस्य धर्मस्य शिवानुसन्धानाङ्गभूतभूतिधारणादिधर्मस्य स्वल्पमपि लेशमात्रमपि महतो भयाद् महापातकादिभयात् त्रायत इति यथा पूर्वाश्रमधर्मपरित्यागे संन्यासिनां प्रत्यवायो नास्ति, तथा शिवाश्रयनिष्ठानां पूर्वाश्रयधर्मपरित्यागे प्रत्यवायो नास्तीति भावः । ते पूर्वाश्रयधर्माः प्राकृतानां हि मायासम्बन्धिनामेव मताः प्रोक्ता इति हि प्रसिद्धम् ॥ ३२ ॥

शिवसंस्कार प्राप्त भेला पर विशुद्ध महात्माकेँ पूर्वकालक धर्मसँ की प्रयोजन ? ओ तँ साधारण लोकक लेल थिक ॥ ३२ ॥

तस्मात्–

शिवसंस्कारयोगेन शिवधर्मानुषङ्गिणाम् ।
प्राकृतानां न धर्मेषु प्रवृत्तिरुपपद्यते ॥ ३३ ॥

नोपपद्यते, न जायते इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

तेँ शिवसंस्कार प्राप्त भेला पर शिवधर्मme लागल साधारणो लोककेँ आन धर्ममे प्रवृत्ति नहि होइत छनि ॥ ३३ ॥

ननु मर्त्येषु द्वैविध्यं कथमित्यत्राह–

विशुद्धा प्राकृताश्चेति द्विविधा मानुषाः स्मृता ।
शिसंस्कारिणः शुद्धा प्राकृता इतरे मताः ॥ ३४ ॥

स्पष्टम् ॥ ३४ ॥

विशुद्ध ओ प्राकृत भेदसँ मनुष्य दू प्रकारक होइत अछि । शिवक संस्कारवाला विशुद्ध ओ ताहिसँ भिन्न प्राकृत मानल गेल अछि ॥ ३४ ॥

ननु वर्णाश्रमधर्मेषु द्वैविध्यं न दृश्यत इत्यत्राह–

वर्णाश्रमादिधर्माणां व्यवस्था हि द्विधा मता ।
एका शिवेन निर्दिष्टा ब्रह्मणा कथिताऽपरा ॥ ३५ ॥

स्पष्टम् ॥ ३५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्णाश्रम आदि धर्मक व्यवस्था दू तरहक अछि– एक शिवक द्वारा निर्दिष्टि अछि आ दोसर ब्रह्माक द्वारा ।। ३५ ।।

तर्हि को धर्मः कस्येत्यत्राह–

शिवोक्तधर्मनिष्ठा तु शिवाश्रमनिषेविणाम् ।
शिवसंस्कारहीनानां धर्मः पैतामहः स्मृतः ।। ३६ ।।

स्पष्टम् ।। ३६ ।।

शिवाश्रमक सेवामे लागल व्यक्तिकेँ शिवोक्त धर्ममे निष्ठा होइत छनि आ जे शिवसंस्कार नहि लेने छथि तनिक धर्म ब्रह्माक द्वारा निर्दिष्ट छनि ।। ३६ ।।

इति पूर्वाश्रयनिरसनस्थलम्

अथ सर्वाद्वैतनिरसनस्थलम्

अथ माहेश्वरो यथा लिङ्गनिष्ठाविरोधित्वात् पूर्वाश्रयनिरासकः, तथा लिङ्गनिष्ठाविरोधित्वात् सर्वाद्वैतनिरासकोऽपि भवेदिति तेन विधीयमानसर्वाद्वैतनिरसनस्थलं प्रतिपादयति–

पूज्यपूजकयोर्लिङ्ग–जीवयोर्भेदवर्जने ।
पूजाकर्माद्यसम्पत्तेर्लिङ्गनिष्ठाविरोधतः ।। ३७ ।।
सर्वाद्वैतविचारस्य ज्ञानाभावो व्यवस्थितेः ।
भवेन्माहेश्वरः कर्मी सर्वाद्वैतनिरासकः ।। ३८ ।।

पूज्यपूजकयोः शिवलिङ्ग–भक्तयोः, भेदाभावे सति लिङ्गनिष्ठाविरोधात् पूजाकर्मादिसम्पत्त्यभावात् सर्वाद्वैतविचारस्य व्यवस्थितेः वर्तनस्य ज्ञानाभावेऽनुपपन्नत्वे सति कर्मी माहेश्वरः शिवलिङ्गपूजादिकर्मनिष्ठवीर–माहेश्वरः सर्वाद्वैतनिरासकः स्यात् 'यावदायुस्त्रयो वन्द्या वेदान्तो गुरुरीश्वरः' इति वेदान्तवचनात् 'क्रियाद्वैतं न कर्तव्यम्' इति सिद्धान्तवचनाच्च लिङ्गनिष्ठो माहेश्वरः सर्वाद्वैतं न कुर्यादिति भावः ।। ३७–३८ ।।

सर्वाद्वैतनिरासक स्थल–

पूज्य ओ पूजकमे तथा लिङ्ग ओ जीवमे भेदबुद्धिक त्याग कएनेँ पूजा, कर्म आदि नहि भए सकैत अछि ओ लिङ्गनिष्ठामे विरोध उपस्थित होइत अछि । सकल अद्वैत (जीव ओ ईश्वरमे अभेद मानब) विचारक

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यवस्थाक ज्ञानक अभाव मानवाक चाही । तेँ माहेश्वर कर्मनिष्ठ भए सकल अद्वैतक निरासक (दूर कएनिहार, नहि माननिहार) होथि ॥ ३७-३८ ॥

अथ भेदेन क्रियमाणपूजाप्रकरः कथमित्यत्राह-

प्रेरकं शङ्करं बुद्ध्वा प्रेर्यमात्मानमेव च ।
भेदात् तं पूजयेन्नित्यं न चाद्वैतपरो भवेत् ॥ ३९ ॥

जीवानां धर्माधर्मगोचरीभूतबुद्धिवृत्तिप्रेरकः परमेश्वरः, तत्प्रेर्या जीवा इति बुद्ध्वा एवंविधभेदात् तं परमेश्वरं नित्यं पूजयेत्, अद्वैतपरो न भवेत्, पूजाविरोधादिति ॥ ३९ ॥

शङ्करकेँ प्रेरक ओ अपनाकेँ प्रेर्य (प्रेरित भेनिहार) मानि भेदज्ञानपूर्वक हुनक नित्य पूजा करबाक चाही आ अद्वैत नहि मानबाक चाही ॥ ३९ ॥

अथ प्रकारान्तरेण भेदमुपपादयति-

पतिः साक्षान्महादेवः पशुरेष तदाश्रयः ।
अनयोः स्वामिभृत्यत्वमभेदे कथमिष्यते ॥ ४० ॥

महादेवः परमश्वेरः 'पतिं विश्वस्य' इति स्मृतेः पतिः जगत्पतिः, तदाश्रय एष जीवः पशुः, अनयोः शिवजीवरूपपतिपश्वोः, अभेदे भेदाभावे स्वामिभृत्यत्वं कथमिष्यते इच्छाविषयीक्रियते ? न कथञ्चिदपीति स्वामिभृत्यत्वलक्षणभेदेनैव पूजनीय इत्यर्थः ॥ ४० ॥

महादेव साक्षात् पति छथि, हुनक अधीन रहएवाला ई जीव पशु थिक। एहि दुनूमे स्वस्वामिभाव सम्बन्ध अछि । अभेद मानला पर ई कोना सम्भव होएत ? ४० ॥

नन्वयं भेदभावः कियत्पर्यन्तमनुवर्तत इत्यत्राह-

साक्षात्कृतं परं तत्त्वं यदा भवति बोधतः ।
तदाद्वैतसमापत्तिर्ज्ञानहीनस्य न क्वचित् ॥ ४१ ॥

बोधतः श्रुतिगुरुस्वानुभवबोधतः परं तत्त्वं परशिवपरब्रह्माख्यमहालिङ्गतत्त्वं यदा साक्षात्कृतं भवति, दशमदृष्टान्तेन स्वात्माभेदेन प्रत्यक्षीकृतं भवति, तदा अद्वैतसमापत्तिरद्वैतस्फूर्तिः, ज्ञानहीनस्य श्रुतिगुरुस्वानुभावरहितस्य केवलकर्मयुतस्य क्वचित् कदाचित् किञ्चिदपि न, नास्तीत्यर्थः ॥ ४१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञान प्राप्ति भेला पर जखन परमतत्त्वक साक्षात्कार भए जाइत अछि तखन अद्वैतक प्राप्ति होइत अछि । ज्ञानसँ रहित मनुष्यकेँ एकर प्राप्ति कदापि सम्भव नहि अछि ॥ ४१ ॥

ननु कर्मिणः कस्मान्नाद्वैतसिद्धिरित्यत्राह–

भेदस्य कर्महेतुत्वाद् व्यवहारः प्रवर्तते ।
लिङ्गपूजादिकर्मस्थो न चाद्वैतं समाचरेत् ॥ ४२ ॥

भेदस्य व्यवहारो जीवेश्वरभेदव्यवहारः, कर्महेतुत्वात् शिवपूजादि-क्रियाहेतुत्वेन प्रवर्तते, अतः शिवलिङ्गपूजाजपादिकर्मनिष्ठः अद्वैतं न समाचेरत् । तस्माल्लिङ्गपूजादिकर्मनिष्ठस्य अद्वैतबोधाविर्भावो नास्तीत्यर्थः ॥ ४२ ॥

भेदक व्यवहार कर्मक कारण होइत अछि । तेँ पूजा आदि कर्म करएवालाकेँ अद्वैतक आचरण नहि करबाक चाही ॥ ४२ ॥

अथोक्तार्थमुपसंहरति–

पूजादिव्यवहारः स्याद् भेदाश्रयतया सदा ।
लिङ्गपूजापरस्तस्मान्नाद्वैते निरतो भवेत् ॥ ४३ ॥

लिङ्गपूजानिष्ठो वीरमाहेश्वरः, अद्वैते निरत आसक्तो न भवेत्, न स्यादित्यर्थः ॥ ४३ ॥

पूजा आदि व्यवहार सदा भेदव्यवहारक कारण होइत अछि, तेँ लिङ्गपूजामे लागल व्यक्तिकेँ अद्वैतमे नहि जएबाक चाही ॥ ४३ ॥

इत्यद्वैतनिरसनस्थलम्

अथाह्वाननिरसनस्थलम्

अथ शिवलिङ्गपूजार्थमद्वैतं निरस्य द्वैताङ्गीकारवान् माहेश्वरः शैव इव पूजार्थं शिवलिङ्गे शिवं नावाहयेदित्याह्वाननिरसनस्थलं कथयति–

लिङ्गार्चनपरः शुद्धः सर्वाद्वैतनिरासकः ।
स्वेष्टलिङ्गे शिवाकारे न तमावाहयेच्छिवम् ॥ ४४ ॥

लिङ्गार्चनपरः शिवलिङ्गपूजातत्परः सन् सर्वाद्वैतनिरासकः शुद्धः नित्यशुद्धवीरमाहेश्वरः शिवाकारे शिवस्वरूपवति स्वेष्टलिङ्गे तं प्रसिद्धं शिवं नावाहयेदित्यर्थः ॥ ४४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिङ्गार्चनमे लागल, सकल अद्वैतक निराकरण कएनिहार शुद्ध माहेश्वर शिवस्वरूप स्वेष्टलिङ्ग शिवक आवाहन नहि करथि ॥ ४४ ॥

अथ कस्मादित्यत्र कारणमाह–

यदा शिवकलायुक्तं लिङ्गं दद्यान्महागुरुः ।
तदारभ्य शिवस्तत्र तिष्ठत्याह्वानमत्र किम् ॥ ४५ ॥

अत्र शिवलिङ्गे आह्वानं किं प्रयोजनकम् ? न किञ्चित् प्रयोजनमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ४५ ॥

महागुरु जाही दिन शिवकलायुक्त शिवलिङ्ग दैत छथिन ताही दिनसँ शिव ओहि लिङ्गमे स्वतः विद्यमान रहैत छथि, तेँ ओहिमे आवाहनक की प्रयोजन ? ॥ ४५ ॥

पुनश्च कारणान्तरमाह–

ससंस्कारेषु लिङ्गेषु सदा सन्निहितः शिवः ।
तत्राह्वानं न कर्तव्यं प्रतिपत्तिविरोधकम् ॥ ४६ ॥

पुनराह्वानं पूर्वाह्वानविरोधि, तद्विसर्जनानन्तरभावित्वादिति भावः ॥ ४६ ॥

संस्कार कएल सब लिङ्गमे शिव सतत सन्निहित रहैत छथि, तेँ ओहिपर आवाहन नहि करक चाही । ओहि पर आवाहन तँ पूर्वमे कएल आवाहनक विरोधी थिक, विसर्जन तँ लिङ्गस्थित शिवक होइतहि नहि अछि, तेँ पुनः आवाहन उचित नहि थिक ॥ ४६ ॥

अथाह्वानासम्भवादेव विसर्जनं च नास्तीत्याह–

नाह्वानं न विसर्गं च स्वेष्टलिङ्गे तु कारयेत् ।
लिङ्गनिष्ठापरो नित्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः ॥ ४७ ॥

स्पष्टम् ॥ ४७ ॥

लिङ्गमे निष्ठा रखनिहार ओहिपर ने आवाहन करथि आ ने विसर्जने, ई शास्त्रक निर्णय अछि ॥ ४७ ॥

इत्याह्वाननिरसनस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ अष्टमूर्तिनिरसनस्थलम्

अथ शिवलिङ्गमेव शिव इत्यभिप्रायेणाह्वानं निराकृत्य पृथिव्याद्यष्टमूर्तित्वं च न सम्भवति, भेदादिति तेन माहेश्वरेण विधीयमानाष्टमूर्तिनिरसनस्थलं प्रदर्शयति–

यथात्मशिवयोरैक्यं न मतं कर्मसङ्गिनः ।
तथा शिवात् पृथिव्यादेरद्वैतमपि नेष्यते ॥ ४८ ॥

कर्मसङ्गिनः शिवपूजादिकर्मनिष्ठस्य माहेश्वरस्य आत्मशिवयोर्जीवलिङ्गयोः ऐक्यमेकत्वं यथा न मतं न सम्मतम्, पूज्यपूजकविवेकासम्भवात्, तथा शिवाद् भूम्यादेरद्वैतमभेदोऽपि नेष्यते, भूम्याद्यष्टमूर्तिष्वात्मनोऽपि प्रविष्टत्वादिति भावः ॥ ४८ ॥

अष्टमूर्तिनिरसनस्थलक वर्णन– जहिना शिवपूजन लिङ्गधारणआदि कर्ममे लागल व्यक्ति आत्मा ओ शिवमे ऐक्य नहि मानैत छथि तहिना पृथिवी, जल आदिक शिवक संग ऐक्य इष्ट नहि थिक ॥ ४८ ॥

अथ शिवस्य पृथिव्यादेरभेदोऽपि न सम्भवतीत्यत्राह–

पृथिव्याद्यष्टमूर्तित्वमीश्वरस्य प्रकीर्तितम् ।
तदधिष्ठातृभावेन न साक्षादेकभावतः ॥ ४९ ॥

'यस्य पृथ्वी शरीरम्'[१] इत्यारभ्य 'यस्यात्मा शरीरम्'[२] इत्यन्तबृहदारण्यश्रुतिप्रोक्ताष्टमूर्तित्वं तदधिष्ठातृभावेन पृथिव्याद्यष्टमूर्तित्वं तदधिष्ठातृभावेन पृथिव्याद्यष्टमूर्त्यधिष्ठातृत्वेन प्रकीर्तितम्, 'विश्वं महेश्वर भवानधितिष्ठतीति विश्वात्मतामुपचरन्ति यदागमास्ते' इत्यभियुक्तोक्तेः । यथा स्तनस्तन्ययोर्भेदेऽपि स्तनं पिबन्तीति व्यवहारः, तथा अभेदव्यवहार औपचारिकः, साक्षदेकभावतो न

द्वयमुष्णं द्वयं शीतमनुष्णाशीतलं द्वयम् ।
द्वयमस्पर्शमित्यष्टौ पान्तु वो हरमूर्तयः ॥

इति तासां परस्परभिन्नत्वात्, शरीरशरीरिभावस्य भेदघटितत्वाच्चेति ॥ ४९ ॥

'पृथिवी आदि ईश्वरक आठ मूर्त्ति थिक, ई जे कहल गेल अछि से हुनक साक्षात् एकभाव सँ नहि, अपितु एहि आठो तत्त्वक ओ अधिष्ठाता छथि ताहि भावसँ । तात्पर्य ई जे जेना स्तन ओ दूधमे भेद रहलो पर 'बालक स्तन

---

१. बृ०उ० ३।७।३ २. बृ०उ० ३।७।२३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पिबैत अछि' ई अभेद व्यवहार होइत अछि तहिना शिव ओ पृथिवी आदिमे वास्तविक भेद रहलो पर अभेदक व्यवहार होइत अछि ॥ ४९ ॥

अथ कार्यकारणभावाच्च तयोरैक्यं न सम्भवतीत्याह–

पृथ्व्यादिकमिदं सर्वं कार्यं कर्ता महेश्वरः ।
नैतत्साक्षान्महेशोऽयं कुलालो मृत्तिका यथा ॥ ५० ॥

'ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सम्प्रसूयन्ते सर्वाणि चेन्द्रियाणि सह भूतैर्न कारणम्, कारणं तु ध्येयः शम्भुराकाशमध्ये' इति श्रुतेः पृथिव्यादेः कार्यकोटिप्रविष्टत्वाच्छिवस्य कारणरूपत्वात् । एवं च मृच्छब्दोपलक्षितघटादेः कुलालस्य च यथैक्यं न सम्भवति, तथा कार्यरूपभूम्यादेः कारणात्मनः शिवस्य चाभेदो न सम्भवतीत्यर्थः ॥ ५० ॥

ई पृथिवी आदि सकल वस्तु कार्य थिक, महेश्वर एकर कर्ता छथि। तेँ ई पृथिवी आदि साक्षात् महेश्वर नहि थिक, जेना माँटि ओ कुम्हार एक नहि थिक ॥ ५० ॥

ननु घटकुलालयोरिवेश्वरस्य भूम्यादेरात्यन्तिकभेदः किमित्यत्राह–

पृथिव्याद्यात्मपर्यन्तप्रपञ्चो ह्यष्टधा स्थितः ।
तनुरीशस्य चात्मायं सर्वतत्त्वनियामकः ॥ ५१ ॥

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशचन्द्रसूर्याग्निहोत्रिरूपेणात्मपर्यन्तमष्टधा स्थितः प्रपञ्चः सर्वोऽपीशस्य शरीरम् । अयमीशः सर्वतत्त्वनियामकः सर्वतत्त्वात्मकशरीरप्रेरकीभूत आत्मा शरीरीत्यर्थः । एवं च घटकुलालयोर्देहदेहिभावशून्यत्वात् ततो विशेष इत्यर्थः ॥ ५१ ॥

पृथिवीसँ लए आत्मा धरि (पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य ओ यजमान = आत्मा) ई प्रपञ्च आठ प्रकारसँ स्थित अछि । ई सब परमेश्वर शिवक शरीर रूप थिक आ स्वयं ओ आत्मा थिकाह जे सब तत्त्वक नियामक छथि ॥ ५१ ॥

तर्ह्यभेदः किमित्यत्राह–

शरीरभूतादेतस्मात् प्रपञ्चात् परमेष्ठिनः ।
आत्मभूतस्य देवस्य नाभेदो न पृथक् स्थितिः ॥ ५२ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परमेष्ठिनः शिवस्य शरीरभूताद् एतस्माद् इदमित्यङ्गुलिनिर्देश्यत्वेन प्रतीयमानात् प्रपञ्चाद् अभेदो न, भेद एवेत्यर्थः। तथाप्यात्मभूतस्य विश्वशरीरिणो देवस्य न पृथक् स्थितिः, घटपटयोरिव परस्परबाह्यत्वे स्थितिर्नास्ति, शिवस्य व्यापकत्वादिति भावः ॥ ५२ ॥

परमेष्ठी स्वरूप शिवक शरीर रूप एहि प्रपञ्चसँ देव शिवक ने तँ अभेद अछि आ ने पृथक् स्थिति अछि ॥ ५२ ॥

तर्हि भेदः कथमित्यत्राह–

अचेतनत्वात् पृथ्व्यादेरज्ञत्वादात्मनस्तथा ।
सर्वज्ञस्य महेशस्य नैकरूपत्वमिष्यते ॥ ५३ ॥

भूम्यादेर्जडत्वाद् आत्मनः अग्निहोत्रिणो यजमानस्याज्ञत्वात्, किञ्चिज्ज्ञत्वादित्यर्थः, महेशस्य चराचरलक्षणविश्वशरीरस्य शिवस्य सर्वज्ञत्वादित्यर्थः, एकरूपत्वं रूपशरीरशरीरिणोरैक्यं नेष्यते नेच्छाविषयीक्रियते। तस्माद् भेद एवेत्यर्थः ॥ ५३ ॥

पृथिवी आदि अचेतन पदार्थ जड़ अछि, जीवात्मा अज्ञ = अल्पज्ञ थिक। तेँ सर्वज्ञ परमेश्वर महेशक एकरूपता एहि सबसँ नहि अछि ॥ ५३ ॥

नन्वेवं भेदज्ञानवान् कोऽसावित्यत्राह–

इति यश्चिन्तयेन्नित्यं पृथ्व्यादेरष्टमूर्तितः ।
विलक्षणं महादेवं सोऽष्टमूर्तिनिरासकः ॥ ५४ ॥

स्पष्टम् ॥ ५४ ॥

जे व्यक्ति एहि प्रकारेँ महादेवकेँ पृथिवी आदि अष्टमूर्तिसँ सदा विलक्षण मानैत ध्यान करैत अछि से अष्टमूर्तिनिरासक मानल जाइत अछि ॥ ५४ ॥

इत्यष्टमूर्तिनिरसनस्थलम्

अथ सर्वगतनिरसनस्थलम्

अथ माहेश्वरस्य लिङ्गनिष्ठाविरोधिसर्वगतनिरसनस्थलं प्रकाशयति–

सर्वगत्वे महेशस्य सर्वत्राराधनं भेवत् ।
न लिङ्गमात्रे तन्निष्ठो न शिवं सर्वगं स्मरेत् ॥ ५५ ॥

महेश्वरस्य सर्वगत्वे सर्वत्राराधनं स्यात्, लिङ्गमात्रे न स्यात्,

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्माल्लिङ्गनिष्ठः शिवं सर्वगतं न स्मरेदित्यर्थः ॥ ५५ ॥

सर्वगतिनिरसनस्थलक वर्णन–

जँ महेश (शिव) सर्वगति (स्र्वव्यापी) मानल जाथि तँ हुनक आराधन (पूजा) सबठाम होइतए, केवल शिवलिङ्गमे नहि । तेँ ओ लिङ्गनिष्ठे (केवल लिङ्गमे स्थित) छथि । अतः शिवकेँ सर्वगामी रूपमे स्मरण नहि करबाक चाही ।। ५५ ।।

ननु शिवस्य सर्वगत्वाभावे परिच्छिन्नत्वेन लोके भक्तबाहुल्यात् तत्तच्छरीरसङ्गतेष्टलिङ्गानां च बाहुल्यादेकत्र विश्वमिताशेषशरीरभारस्यान्यत्रावस्थानासम्भवात् कथं तत्र तत्र स्थितिः सम्भवतीत्यत्राह–

सर्वगोऽपि स्थितः शम्भुः स्वाधारे हि विशेषतः ।
तस्मादन्यत्र विमुखः स्वेष्टलिङ्गे यजेच्छिवम् ॥ ५६ ॥

शम्भुः सर्वगोऽपि व्यापकोऽपि स्वाधारे स्वाश्रयीभूतलिङ्गे विशेषतः अतिशयेन स्थितो भवति । तस्मादन्यत्र विमुखः सन् स्वेष्टलिङ्गे शिवं पूजयेदित्यर्थः ॥ ५६ ॥

यद्यपि शम्भु सर्वव्यापी छथि तथापि अपन आधार शिवलङ्गमे विशेष रूपसँ विराजमान रहैत छथि । ते आन ठामसँ विमुख भए अपन इष्ट लिङ्गमे हुनक पूजा करबाक चाही ।। तात्पर्य ई जे जँ हुनका एकत्र लिङ्गमे स्थित मानी तँ संसारक कोटि संख्यक लिङ्गमे स्थिति कोना मानल जाए, तेँ सर्वगामी तँ ओ अवश्य छथि, मुदा लिङ्गमे ओ पूर्णरूपेँ रहैत छथि । अतः भक्त हुनका लिङ्गनिष्ठे बुझथि, सर्वव्यापी नहि ।। ५६ ।।

ननु सर्वगतः शिवस्तत्र तत्र लिङ्गे कथं विशेषेण तिष्ठतीत्यत्राह–

शिवः सर्वगतश्चापि स्वाधारे व्यज्यते भृशम् ।
शमीगर्भे यथा वह्निर्विशेषेण विभाव्यते ॥ ५७ ॥

वृक्षस्थितो वह्निः शमीवृक्षे यथा विशेषेण भासते, तथा शिवः सर्वगोऽपि स्वाधारे लिङ्गे भृशम् अतिशयेन व्यज्यते प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ५७ ॥

यद्यपि शिव सर्वगत छथि तथपि अपन निर्धारित आधार इष्टलिङ्गमे विशेष रूपसँ प्रकाशित होइत छथि । जेना अग्नि सब गाछमे विद्यमान रहैतो शमी (शनि) गाछमे विशेष रूपसँ प्रकाशित होइत छथि ।। ५७ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ननु लिङ्गे किमर्थं विशेषेण तिष्ठतीत्यत्राह–

सर्वगत्वं महेशस्य सर्वशास्त्रविनिश्चितम् ।
तथाप्याश्रयलिङ्गेन पूजार्थमधिका स्थितिः ॥ ५८ ॥

अत्रादि(पि)शब्देन गुरुचरमूर्ती लक्ष्येते । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ५८ ॥

यद्यपि शिवक सर्वगामिता सकल शास्त्रमे निश्चित अछि तथापि आश्रयस्वरूप लिङ्गमे पूजाक लेल हुनक विशेष स्थिति रहैत अछि ॥ ५८ ॥

अस्मिन्नर्थे– 'या ते रुद्र' इति श्रुत्यर्थमेव श्लोकमुखेनोपन्यस्यति–

नित्यं भसि तदीयस्त्वं'या ते रुद्र शिवा तनूः ।
अघोराऽपापकाशीति' श्रुतिराह सनातनी ॥ ५९ ॥

भो रुद्र ! ते तव या तनूः शिवलिङ्गमूर्तिः, शिवा मङ्गला, अघोरा अभयङ्करा, अपापकाशी दोषरहिता । त्वं तदीयो लिङ्गसम्बन्धी सन् नित्यं भासीति ॥ १ ॥

हे रुद्र ! अहाँ भक्तक लेल नित्य प्रकट भए लिङ्गरूप (मूर्त्ति)मे विराजमान रहैत छी, एहि बातकेँ सनातनी श्रुति (वेद) सेहो कहि रहल अछि–

या ते रुद्र ! शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥

शुक्लयजुः १६/२)

अर्थात् हे रुद्र ! अहाँक जे अघोर (अभयंकर), मंगलमय, निर्दोष, पापनाशिनी, कल्याणमय शरीर अछि ताहि सँ हमरा सबकेँ प्रकाशित करू ॥ ५९ ॥

तस्मादिष्टलिङ्गमेव पूजयेदित्याह–

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वस्थानपराङ्मुखः ।
स्वेष्टलिङ्गे महादेवं पूजयेत् पूजकोत्तमः ॥ ६० ॥

तस्मात् श्रुतिप्रसिद्धत्वात् पूजकोत्तमो महेश्वरः सर्वप्रयत्नेन सर्वस्थानविमुखः सन् स्वेष्टलिङ्गे स्वसम्बन्धवतीष्टलिङ्गे महादेवं पूजयेदित्यर्थः ॥ ६० ॥

तेँ सब प्रयत्न सँ सब स्थानसँ विमुख भए पूजकश्रेष्ठ अपन इष्ट लिङ्गमे महादेवक पूजा करथि ॥ ६० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं बुद्ध्वा स्वेष्टलिङ्गे यजन्नेव सर्वगत्वनिरासक इत्याह–

शिवस्य सर्वगत्वेऽपि सर्वत्र रतिवर्जितः ।
स्वेष्टलिङ्गे यजन् देवं सर्वगत्वनिरासकः ॥ ६१ ॥

स्पष्टम् ॥ ६१ ॥

यद्यपि शिव सर्वग (सब ठाम जाए वाला) छथि तथापि साधक अनुरागहीन भए अपन इष्ट लिङ्गमे पूजा करैत सर्वगत्वनिरासक होथि ॥ ६१ ॥

इति सर्वगत्वनिरसनस्थलम्

अथ शिवजगन्मयस्थलम्

अथ महेश्वरस्य पूजार्थं सर्वगत्वे निराकृतेऽपि प्रमाणबलात् सर्वगत्वं यथाङ्गीक्रियते, तथा प्रमाणबलात् सर्वमयत्वं चाङ्गीकरणीयमिति शिवजगन्मयस्थलं निरूपयति–

पूजाविधौ नियम्यत्वाल्लिङ्गमात्रे स्थितं शिवम् ।
पूजयन्नपि देवस्य सर्वगत्वं विभावयेत् ॥ ६२ ॥

शिवस्य सर्वनियामकत्वेऽपि पूजाकाले भक्तनियाम्यत्वाद् भक्ताधीनत्वाल्लिङ्गमात्रे स्थितं शिवं भक्तः पूजयन्नपि देवस्य लिङ्गस्थितस्य प्रकाशात्मनः शिवस्य सर्वगत्वं विभावयेत्, अन्यथा कुम्भकारवत् परिच्छिन्नत्वप्रसङ्गादिति ॥ ६२ ॥

शिवजगन्मयस्थल– पूजाविधिमे नियमित होएबाक कारण लिङ्गमात्रमे स्थित शिवक पूजा करितो भक्त देवाधिदेवक सर्वव्यापकताक भावना करैत रहथि ॥ ६२ ॥

एवं सर्वगत्वे सिद्धे शिवस्य 'आत्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथ्वी'[१] इति श्रुतेरभिन्ननिमित्तोपादानकारणत्वश्रवणाद् बहुदृष्टान्तपूर्वकं शिवजगन्मयत्वं प्रतिपादयति–

यस्मादेतत् समुत्पन्नं महादेवाच्चराचरम् ।
तस्मादेतत्रन्न भिद्येत यथा कुम्भादिकं मृदः ॥ ६३ ॥

यस्मान्महादेवादिति सम्बन्धः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६३ ॥

---

१. तै०उ० २ । १

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जेँ ई संसार महादेवसँ उत्पन्न अछि तेँ महादेव सँ ई भिन्न नहि थिक जेना माँटिसँ बनल घैला माँटिसँ भिन्न नहि होइछ ।। ६३ ।।

शिवतत्त्वात् समुत्पन्नं जगदस्मान्न भिद्यते ।
फेनोर्मिबुद्बुदाकारं यथा सिन्धोर्न भिद्यते ।। ६४ ।।

स्पष्टम् ।। ६४ ।।

शिवसँ उत्पन्न संसार शिवसँ भिन्न नहि थिक जेना समुद्रसँ उत्पन्न फेन, बुनबुन्ना ओ तरंग समुद्रसँ भिन्न नहि थिक ।। ६४ ।।

यथा तन्तुभिरुत्पन्नः पटस्तन्तुमयः स्मृतः ।
तथा शिवात् समुत्पन्नं शिव एव चराचरम् ।। ६५ ।।

स्पष्टम् ।। ६५ ।।

जहिना सूतसँ बनल कपड़ा सूतमय होइछ तहिना शिवसँ उत्पन्न संसार शिवमय अछि ।। ६५ ।।

ननु मृदादीनां विकारित्वात् शिवस्य निर्विकारित्वाद् उक्तदृष्टान्तो विषम इत्याह–

आत्मशक्तिविकासेन शिवो विश्वात्मना स्थितः ।
कुटीभावाद् यथा भाति पटः स्वस्य प्रसारणात् ।। ६६ ।।

पटः स्वतादात्म्यापन्नप्रसरणशक्त्या कुटीभावात् प्रस्थानकुटीभावाद् यथा भाति, तथा शिवोऽपि स्वात्मशक्तिविकासेन विश्वात्मना स्थितः सन् भातीत्यर्थः ।। ६६ ।।

शिव अपन शक्तिक विकाससँ विश्वक रूपमे ओहिना स्थित छथि जेना कपड़ा अपन विस्तारसँ कुटीरूपमे स्थित भए जाइछ ।। ६६ ।।

ननु प्रसारणशक्तिद्वारा यथा पटस्यापि विकारभाक्त्वम्, तथा शिवस्यापि स्वसमवेतशक्तिद्वारा विकारिता स्यादित्यत्र दृष्टान्तान्तरमुपन्यसन्नुक्तार्थमुपसंहरति–

तस्माच्छिवमयं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।
तदभिन्नतया भाति सर्पत्वमिव रज्जुतः ।। ६७ ।।

रज्जुः स्वनिष्ठदीर्घवृत्तगोधूमवर्णताशक्तिवशाद् विकारराहित्येन यथा सर्पत्वेन भाति, तथा शिवोऽपि विकारराहित्येन स्वसमवेतमायाशक्त्या

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विश्वाभिन्नतया भाति, तस्मात् सर्वमेतच्चराचरं विश्वं शिवमयं न तद्व्यतिरिक्त-मित्यर्थः ॥ 67 ॥

तेँ शिवमय ई सम्पूर्ण जगत् डोरीसँ सापक भ्रमक समान शिवसँ अभिन्न रूपमे भासित होइत अछि ॥ ६७ ॥

अथ दार्ढ्यार्थमुदाहृतदृष्टान्तपूर्वकं बहुदृष्टान्तमाह–

रज्जौ सर्पत्ववद् भाति शुक्तौ च रजतत्ववत् ।
चोरत्ववदपि स्थाणौ मरीच्यां च जलत्ववत् ॥ 68 ॥
गन्धर्वपुरवद्व्योम्नि सच्चिदानन्दलक्षणे ।
निरस्तभेदसद्भावे शिवे विश्वं विराजते ॥ 69 ॥

रज्ज्वां गोधूमवर्णताशक्त्या सर्पत्ववत्, शुक्तौ धावल्यशक्त्या रजतत्ववत्, स्थाणौ दीर्घशक्त्या पुरुषत्ववत्, मरीच्यां स्वच्छतोद्रेकशक्त्या जलत्ववत्, कालशक्त्या व्योम्नि गन्धर्वनगरवत्, निरस्तसमस्तप्रापञ्चिकभेदवति निर्विकारे सच्चिदान्दस्वरूपे परशिवब्रह्मणि, तत्समवेतविमर्शशक्तिप्रतिस्फुरणायमानमायाशक्त्या विश्वं तदभिन्नतया भातीत्यर्थः ॥ 68-69 ॥

डोरीमे सापक, शुक्ति (सितुआ)मे चानीक, स्थाणु (ठूठ गाछ)मे चोरक, मृगतृष्णा (दूरमे नचैत सूर्य किरण)मे जलक ओ आकाशमे गन्धर्वनगरक आरोपक समान सच्चिदानन्द भेदरहित शिवमे संसार आभासित होइत अछि ॥ ६८-६९)

नन्वेभिर्दृष्टान्तैर्विश्वं प्रातीतिकं स्यादित्यत्र दृष्टान्तान्तरमाह–

पत्रशाखादिरूपेण यथा तिष्ठति पादपः ।
तथा भूम्यादिरूपेण शिव एको विराजते ॥ 70 ॥

वृक्षो यथा कालशक्त्या विकारराहित्येन स्वान्तर्लीनस्वविजातीयपत्र-पुष्पादिभेदविशिष्टत्वेन भाति, तथा शिव एव स्वसमवेतशक्तितादाम्यक्रोडीकृत-भूम्यादिरूपेण प्रतिस्फुरणगत्या भातीत्यर्थः । तत्र धृत्या धरणिः, करुणया जलम्, उज्ज्वलतया तेजः, परमानन्दस्पन्दनेन वायुः, चिद्व्याप्त्या व्योम, चितिसङ्कोचचित्त-विशिष्टो जीव इति विवेकः । ननु वृक्षस्य सावयवत्वात्, सदाभाससंयुक्तशिवस्य निरवयवत्वात्, तत्समवेतशक्तेरपि तदभिन्नत्वेन तथात्वात् कथं सावयवप्रपञ्चरूपेण भासनं सम्भवतीति नाशङ्कनीयम्, शक्तेः शिवाभिन्नत्वे सति दुर्घटकारित्वेन अहिकुण्डलन्यायेन स्वस्वातन्त्र्यपरिकल्पितभेदोपस्थितिपरमाणुकार्यभूतद्व्यणुकादा-विव तत्कार्यरूपमायाशक्तेः सांशत्वे सम्भवतीत्युक्तत्वात्, 'विष्टभ्याहमिदं

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्'[1] इति भगवदुक्तेश्च । प्रातीतिकप्रपञ्चरूपेणापि स्वशक्तिन्यूनीभावेन शिव एव भासते, शुक्तिरजतयोः परस्परसत्त्वाद् मेलकांशो नास्तीति वदता निषेधप्रतियोगित्वेन समानयोगेन च सोऽप्यङ्गीकरणीय एव, उत्तरक्षणबाध्यमानत्वात् शक्तिर्न्यूनीभावनिबन्धनेति सर्वं विश्वं शिवमयमेवेति संक्षेपः ।

वस्तुतस्तु बाध एव नास्ति, घटपटयोरिव शुक्तिरजतयोरपि वस्तुत्वात् । नापि शुक्तिज्ञानेन रजतज्ञानस्य बाधः, घटपटज्ञानयोरिव भिन्नकालभिन्नविषयत्वात् । नन्वेकस्मिन्नेव धर्मिणि इदं रजतं नेदं रजतमिति विरुद्धावभासद्वयस्य प्रामाण्यासम्भवात्, अथोत्तरकालिकरजताभावज्ञानेन पूर्वोत्पन्नरजतज्ञानस्य बाधोऽङ्गीक्रियत इति चेन्न, ज्ञानानां त्रिक्षणावस्थायित्वनियमेन रजताभावज्ञान-स्थितिकाले रजतज्ञानस्याभावत् । किञ्च, बाध्यबाधकभावस्य दण्डभाण्डन्यायेन परस्परान्वय-सापेक्षत्वेन ज्ञानानां गुणत्वेन परस्परसम्बन्धाभावात् तस्माद् घटपटज्ञानयोरिवोन्मेष-निमेषयोरङ्गीकरणीयत्वेन बाधस्य वाभावादिति दिक् ॥ 70 ॥

जेना पात डारि आदिक रूपमे गाछ विराजमान रहैत अछि तहिना भूमि, जल आदिक रूपमे एकमात्र शिव रहैत छथि ।

शिवकेँ प्रकाश स्वरूप मानल गेल अछि । ओ अपन विमर्शशक्तिक कारण अनेक रूपमे प्रतिभासित होइत रहैत छथि । ओ धृति सँ युक्त भए धरणी, करुणामय भए जल, उज्ज्वल रूपसँ तेज, आनन्दस्पन्दनसँ वायु, चैतन्यमय रूपसँ आकाश आ संकुचित चैतन्यक कारण जीव रूपमे प्रकाशित भए रहल छथि । शिव तत्त्वतः निरंश (अंशहीन एकाकार) छथि तथापि अपन अद्भुत क्रियाशील शक्तिक कारण अनेक एवं सावयव भए जाइत छथि। पारमार्थिक सत्ताक अछैतो हुनक प्रातिभासिक सत्ता हुनक शक्तिक न्यूनताक कारण भासित होइत अछि । एहि परस्पर विरुद्ध दुनू सत्तामे बाध्यबाधक भाव नहि अछि, किएक तँ शुक्तिमे रजतप्रतीति एवं तकर बाधमे काल भिन्न अछि । ज्ञान गुण ओ निरंश थिक । अतः रजतज्ञान ओ शुक्तिज्ञान शिवक उन्मेष-निमेष थिक ।। ७० ।।

इति शिवजगन्मयस्थलम्

---

१. भ०गी० १० । ४२

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ भक्तदेहिकलिङ्गस्थलम्

अथैवं शिवस्य जगन्मयत्वेऽपि—

वेदवेदान्तवाक्यार्थ-सन्धानातीतवर्तनः ।
भक्तभावपरानन्दो भक्तभावैकगोचरः ॥

इति योगजागमवचनानुसारेण भक्तहृदये प्रकाशत इति भक्तदेहिकलिङ्गस्थलं सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

समस्तजगदात्माऽपि शङ्करः परमेश्वरः ।
भक्तानां हृदयाम्भोजे विशेषेण विराजते ॥ ७१ ॥

शङ्करः सुखङ्करः परमेश्वरः समस्तजगदात्माऽपि भावाभावरूपप्रपञ्चमयोऽपि भक्तानां स्वभक्तानां हृदयाम्भोजे हृदयकमले विशेषेण विराजते आधिक्येन प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ७१ ॥

भक्तदेह्लिलिङ्गस्थल— समस्त संसार स्वरूप व्यापक विराट् परमेश्वर भक्तक हृदयकमलमे विशेष रूपसँ विराजमान छथि ॥ ७१ ॥

तत्कथमित्यत्राह—

कैलासे मन्दरे चैव हिमाद्रौ कनकाचले ।
हृदयेषु च भक्तानां विशेषेण व्यवस्थितः ॥ ७२ ॥

एषु स्थानेषु यथा शिवो विशेषेण भासते, तथा स्वभक्तानां हृदये भासत इत्यर्थः ॥ ७२ ॥

ओ शिव कैलसमे, मन्दर पर्वतमे, हेमाद्रि (सुमेरुपर्वत) मे, कनकाचलमे ओ भक्तक हृदयमे विशेषरूपेँ व्यवस्थित छथि ॥ ७२ ॥

नन्वपरिच्छिन्नः परमेश्वरः कथं परिच्छिन्नः सन् भक्तहृदयेषु राजत इत्यात्राह—

सर्वात्मापि परिच्छिन्नो यथा देहेषु वर्तते ।
तथा स्वकीयभक्तेषु शङ्करो भासते सदा ॥ ७३ ॥

सर्वात्माऽपि परमेश्वरो देवतिर्यङ्मनुष्यलक्षणसकलदेहेषु भिन्नान्तःकरणविशिष्टेषु प्रतिबिम्बगत्या यथा भासते, तथा स्वकीयभक्तेषु सदा प्रकशतइत्यर्थः ॥ ७३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाहि तरहेँ सर्वत्र व्यापको परमात्मा देवादिक देहमे परिच्छिन्न भए प्रतिबिम्बभावसँ रहैत छथि ओही तरहेँ शङ्कर सदा अपन भक्तमे भासित होइत रहैत छथि ।। ७३ ।।

अस्मिन्नर्थे प्रमाणगर्भितवचनमाह–

नित्यं भाति त्वदीयेषु या ते रुद्र शिवाः तनूः ।
अघोराऽपापकाशीति श्रुतिराह सनातनी ।। ७४ ।।

भो रुद्र ते तव या तनूः शिवलिङ्गमूर्तिः, अघोरा सौम्या, अपापकाशी दोषरहिता, सा लिङ्गमूर्तिः, त्वदीयेषु त्वत्सम्बन्धिषु भक्तेषु, नित्यं भातीति सनातनी नित्या श्रुतिराहेत्यर्थः ।। ७४ ।।

हे रुद्र ! अहाँक जे कल्याणमय शरीर नित्य अहाँक भक्तमे रहैत अछि तकरा सनातनी श्रुतिओ कहैत अछि–

'याते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी'– शुक्ल यजुर्वेद १६म अध्याय ।। ७४ ।।

ननु शिवभक्तव्यतिरिक्तेषु न भासते किमित्यत्राह–

विशुद्धेषु विरक्तेषु विवेकिषु महात्मसु ।
शिवस्तिष्ठति सर्वात्मा शिवलाञ्छनधारिषु ।। ७५ ।।

विशुद्धेषु विरक्तेषु षट्स्थलज्ञानिषु भूतिरुद्राक्षमात्रधारिषु चेत्यर्थः सर्वात्मा शिवः, नित्यं तिष्ठति प्रकाशत इत्यर्थः ।। ७५ ।।

शुद्ध वैराग्ययुक्त विवेकी तथा शिवचिह्नक धारणकर्ता महात्माक भीतर सर्वात्मा शिव विराजमान रहैत छथि ।। ७५ ।।

नन्वेवं चेत् साधारणत्वात् शिवभक्तेषु को विशेष इत्यत्राह–

नित्यं सन्तोषयुक्तानां ज्ञाननिर्धूतकर्मणाम् ।
माहेश्वराणामन्तस्थो विभाति परमेश्वरः ।। ७६ ।।

शिवज्ञानेन निर्धूतकल्मषवत्त्वात् शिवसुखानुभाविनां परमेश्वराणां निर्मलदर्पणो मुखादेः स्फुटतया भासनमिवातिस्फुटतया तेषामन्तस्थः सन् भातीत्यर्थः ।। ७६ ।।

नित्य सन्तोषयुक्त ज्ञानक द्वारा समस्त कर्मकेँ भस्म करएवाला

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महेश्वरक भक्तक भीतरमे स्थित परमेश्वर प्रकाशित होइत रहैत छथि ॥ ७६ ॥

अथ वक्ष्यमाणप्रसादिस्थलं सूचयति–

अन्यत्र शम्भो रतिमात्रशून्यो
निजेष्टलिङ्गे नियतान्तरात्मा ।
शिवात्मकं विश्वमिदं विबुध्यन्
माहेश्वरोऽसौ भवति प्रसादी ॥ ७७ ॥

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ माहेश्वरस्य नवविधस्थलप्रसङ्गो नाम दशमः परिच्छेदः ॥ १० ॥



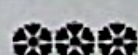
शभोः शिवाद् अन्यत्र देवतान्तरे रतिमात्रशून्यः प्रतिलेशेनापि रहितः सन् निजेष्टलिङ्गे नियतान्तरात्मा नियमितान्तःकरणवानसौ माहेश्वर इदं विश्वम् इदमित्यङ्गुलिनिर्देश्यत्वेन भासमानं विश्वं शिवात्मकमुक्तदृष्टान्तैः शिवमयमिति विबुध्यन् सन् प्रसादी भवतीत्यर्थः । 'शिव एको ध्येयः शिवङ्करः सर्वमन्यत् परित्यज' इत्यत्र श्रुतिः ॥ ७७ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां माहेश्वरस्य नवविधस्थलप्रसङ्गो नाम दशमः परिच्छेदः ॥ १० ॥



शम्भुसँ आन विषयमे अनासक्त अपन इष्टलिङ्गमे संयत अन्तःकरणवाला एवं संसारकेँ शिवस्वरूप मानएवाला ई माहेश्वरे स्वयं प्रसन्न रहैत दोसरोकेँ प्रसन्न करएवाला बनि प्रसादीस्थलक साधक बनि जाइत छथि ॥ ७७ ॥

इति श्रीसिद्धान्तशिखामणिक विद्यावाचस्पति डॉ० शशिनाथझाकृत प्रबोधिनी मैथिली व्याख्यामे नवविधप्रसङ्गस्थल नामक दशम परिच्छेद समाप्त ॥



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकादशः परिच्छेदः

अथ प्रसादिस्थलम्

अगत्स्य उवाच

उक्तो माहेश्वरः साक्षाल्लिङ्गनिष्ठादिधर्मवान् ।
कथमेष प्रसादीति कथ्यते गणनायक ॥ १ ॥

स्पष्टम् ॥ १ ॥

अगस्त्य कहैत छथि– हे गणनायक ! साक्षात् लिङ्गमे निष्ठा आदि धर्मसँ युक्त माहेश्वरक वर्णन अपने कएल । किन्तु ई माहेश्वर प्रसादी किएक कहल जाइत छथि, से कृपया बुझाउ ॥ १ ॥

रेणुक उवाच

लिङ्गनिष्ठादिभावेन ध्वस्तपापनिबन्धनः ।
मनःप्रसादयोगेन प्रसादीत्येष कथ्यते ॥ २ ॥

उक्तलिङ्गनिष्ठादिस्थलपरिज्ञानतदाचरणतो ध्वस्तपापसमूह एष माहेश्वरो मनोनैर्मल्यसम्बन्धेन प्रसादीत्युच्यत इत्यर्थः ॥ २ ॥

रेणुकाचार्य बजलाह– लिङ्गक प्रति निष्ठा आदि भावक द्वारा सकल पापरूपी बन्धनकेँ नष्ट करएवाला माहेश्वर मनक प्रसन्नताक कारण प्रसादी कहबैत छथि ॥ २ ॥

अथैतत्स्थलं कीदृशं कीदृग्विधमित्यत्राह–

प्रसादिस्थलमित्येतदस्य माहात्म्यबोधकम् ।
अन्तरस्थलभेदेन सप्तधा परिकीर्तितम् ॥ ३ ॥

एतत्प्रसादिस्थलमस्य भक्तमाहेश्वरस्थलोक्तसदाचारसमूहस्य महत्त्वबोध-

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कमवान्तरस्थलभेदेन सप्तविधमिति परिकीर्तितमित्यर्थः ॥ ३ ॥

ई 'प्रसादी स्थल' हिनक महिमाक बुझओनिहार थिक । अपन अन्तर्गत भेदक कारण ई सात प्रकारक कहल गेल अछि ॥ ३ ॥

अथ तत्कथमित्यत्रोद्दिशति–

प्रसादिस्थलमादौ तु गुरुमाहात्म्यकं ततः ।
ततो लिङ्गप्रशंसा च ततो जङ्गमगौरवम् ॥ ४ ॥
ततो भक्तस्य माहात्म्यं ततः शरणकीर्तनम् ।
शिवप्रसादमाहात्म्यमिति सप्तप्रकारकम् ॥ ५ ॥

शरणकीर्तनं तन्महत्त्वकीर्तनमित्यर्थः । एवं सप्तप्रकारकमित्युत्तरम् ॥ ४-५ ॥

पहिल भेल प्रसादीस्थल, दोसर गुरुमाहात्म्यस्थल, तकर बाद लिङ्गप्रशंसा स्थल, तखन जंगमगौरव स्थल, तखन भक्तमाहात्म्य स्थल, तखन शरणकीर्तन स्थल आ शिवप्रसादमाहात्म्य स्थल- ई सात प्रकारक भेल ॥ ४-५ ॥

अथोद्दिष्टानां स्थलानां क्रमाल्लक्षणमुच्यत इत्यत्राह–

क्रमाल्लक्षणमेतेषां कथयापि महामुने ।

स्पष्टम् ॥

अथ–

चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम् ।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमक्षयमश्नुते ॥[१]

इति मैत्रेयीश्रुत्यनुसारेण शिवप्रसादजायमानमनःप्रसन्नतां द्वादशसूत्रैः प्रतिपादयति–

नैर्मल्यं मनसो लिङ्गं प्रसाद इति कथ्यते ।
शिवस्य लिङ्गरूपस्य प्रसादादेव सिद्ध्यति ॥ ६ ॥

मनसश्चित्तस्य नैर्मल्यं लिङ्गं प्रसाद इति कथ्यते । एष मनोनिर्मलत्वरूपप्रसादो लिङ्गरूपस्य शिवस्य प्रसादात् सिद्ध्यतीत्यर्थः ॥ ६ ॥

हे महामुने ! आब हम एहि सबहिक लक्षण क्रमशः कहि रहल छी।

---

१. मैत्रेयी उप० १ । ६

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनक निर्मलतारूपी चिह्न प्रसाद कहल जाइछ । ई प्रसाद शिवक कृपासँ प्राप्त होइत अछि ॥ ६ ॥

ननु कोऽयं चित्तनैर्मल्यलक्षणप्रसादकारणीभूतशिवप्रसाद इत्यत्राह–

शिवप्रसादं यद्द्रव्यं शिवाय विनिवेदितम् ।
निर्माल्यं तत्तु शैवानां मनोनैर्मल्यकारणम् ॥ ७ ॥

शिवाय विनिवेदितं समर्पितं यद् द्रव्यं तत् शिवप्रसादः, तन्निर्माल्यं तु विशेषशैवानां वीरशैवानां मनोनैर्मल्यकारणं भवतीत्यर्थः ॥ ७ ॥

शिवक प्रसाद द्रव्य जे हुनका समर्पित निर्माल्य थिक से शैवक मनक निर्मलताक कारण थिक ॥ ७ ॥

अथैवंरूपशिवप्रसादस्वीकारवान् प्रसादीत्याह–

मनःप्रसादसिद्ध्यर्थं निर्मलज्ञानकारणम् ।
शिवप्रसादं स्वीकुर्वन् प्रसादीत्येष कथ्यते ॥ ८ ॥

ज्ञानकारणं शिवज्ञानकारणं शिवप्रसादं निर्माल्यं शिवलिङ्गप्रसादरूप-शिवनिर्माल्यं मनःप्रसादसिद्ध्यर्थं चित्तनैर्मल्यसिद्ध्यर्थं स्वीकुर्वन् एष वीरमाहेश्वरः प्रसादीति कथ्यत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

मनक प्रसन्नताक सिद्धिक लेल निर्मल ज्ञानक कारणस्वरूप शिवप्रसादकेँ स्वीकार करएवाला 'प्रसादी' कहबैत छथि ॥ ८ ॥

तस्मात्– 'आहारशुद्ध्या (शुद्धौ) तत्त्वशुद्धिः'[१] इति छान्दोग्यश्रुतेः शुद्धशिवनिर्माल्यभक्षणेन सकलतत्त्वशुद्धिद्वारा मनोनैर्मल्यं लभते भक्त इत्याह–

अन्नशुद्ध्या हि सर्वेषां तत्त्वशुद्धिरुदाहृता ।
विशुद्धमन्नजातं हि यच्छिवाय समर्पितम् ॥ ९ ॥
तदेवं सर्वकालं तु भुञ्जानो लिङ्गतत्परः ।
मनःप्रसादमतुलं लभते ज्ञानकारणम् ॥ १० ॥

अन्नशुद्ध्या सर्वेषां प्राणिनां तत्त्वशुद्धिर्देहाक्षभुवनप्रपञ्चशुद्धिरिति शास्त्रज्ञैरुदाहृता । यच्छिवाय समर्पितमन्नजातं शुद्धं तदन्नजातमेव लिङ्गतत्परः सन् सदाकालं भुञ्जानः प्रसादी अतुलं शिवज्ञानकारणं मनःप्रसादं मनोनैर्मल्यं लभत इत्यर्थः ॥ ९-१० ॥

१. छा०उ० ७ । २६ । २

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्नक शुद्धिसँ सभक तत्त्वशुद्धि कहल गेल अछि । विशुद्ध अन्न सएह होइत अछि जे शिवकेँ समर्पित कएल गेल रहैत अछि । लिङ्गक आराधनमे तत्पर भक्त सब दिन ओहि अन्नकेँ खएनिहार भक्त ज्ञानसँ भेल अत्यन्त मनःप्रसाद (मनक प्रसन्नता) केँ प्राप्त करैत छथि ॥ ९-१० ॥

तस्मादात्मभोगार्थं नियमितं सद् यद्यद् द्रव्यं प्राप्तं भवति, तत्सर्वं 'यद्यदात्महितं वस्तु.... शिवार्पितम्' इति शिवरहस्यवचनानुसारेण शिवाय समर्प्य भुञ्जीयादित्याह–

आत्मभोगाय नियतं यद्यद् द्रव्यं समाहितम् ।
तत्तत् समर्प्य देवाय भुञ्जीतात्मविशुद्धये ॥ ११ ॥

आत्मभोगाय नियमितं सत् समाहितं सम्पादितं तत्तत् शिवलिङ्गदेवाय समर्प्यात्मविशुद्धये चित्तशुद्ध्यर्थं भुञ्जीयादित्यर्थः ॥ ११ ॥

तकरा आत्मभोगक लेल निश्चित रूपसँ जे जे द्रव्य जमा कएल गेल तकरा आत्मशुद्धिक लेल महादेवकेँ समर्पित कए उपभोग करक चाही ॥ ११ ॥

अथास्य महत्त्वं प्रतिपादयति–

नित्यसिद्धेन देवेन भिषजा जन्मरोगिणाम् ।
यद्यत् प्रसादितं भुक्त्वा तत्तज्जन्मरसायनम् ॥ १२ ॥

जन्मरोगिणां भवरोगिणां भिषजा वैद्येन नित्यसिद्धेन शिवलिङ्गे निरन्तरसिद्धेन देवेन परमेश्वरेण यद् द्रव्यं भुक्त्वा प्रसादितं प्रसादीकृतम्, तत्तद् जंन्मरसायनं संसारव्याधिरसायनमित्यर्थः ॥ १२ ॥

जन्मस्वरूप रोगकेँ प्राप्त कएनिहारक लेल नित्यसिद्ध वैद्यरूपी महादेवकेँ भोग लगाए जे वस्तु प्रसाद बनाओल गेल से सबटा जन्मरसायन थिक, अर्थात् संसाररोगक परमौषध थिक ॥ १२ ॥

अथ ऐहिकारोग्यादिकारणं चेत्याह–

आरोग्यकारणं पुंसामन्तःकरणशुद्धिदम् ।
तापत्रयमहारोग-समुद्धरणभेषजम् ॥ १३ ॥
विद्यावैशद्यकरणं विनिपातविघातनम् ।
द्वारं ज्ञानावतारस्य मोहोच्छेदस्य कारणम् ॥ १४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैराग्यसम्पदो मूलं महानन्दप्रवर्धनम् ।
दुर्लभं पापचित्तानां सुलभं शुद्धकर्मणाम् ॥ १५ ॥
आदृतं ब्रह्मविष्ण्वाद्यैर्वसिष्ठाद्यैश्च तापसैः ।
शिवस्वीकृतमन्नाद्यं स्वीकार्यं सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥ १६ ॥

अत्र पुनस्तदित्यनुवर्तते । तत्प्रसादद्रव्यं पुंसामारोग्यकारणं सद् अन्तःकरणशुद्धिदम् आध्यात्मिकादितापत्रयलक्षणमहारोगोन्मूलनौषधम् । विद्याविशेषसिद्धिकारणम् विनिपातः कृत्रिमदोषस्तस्य घातकम्, शिवज्ञानावतारस्य द्वारम्, अज्ञानोच्छेदकारणम्, वैराग्यसम्पदो मूलकारणम्, नित्यानन्दप्रकाशकम्, पापिष्ठानां दुर्लभं पुण्यात्मनां सुलभं ब्रह्मादिदेवैर्वसिष्ठादिमुनिभिः प्रीतिविषयीकृतम् । एवंरूपं शिवस्वीकृतमन्नाद्यं शिवलिङ्गस्वीकृतान्नादिप्रसादद्रव्यं सिद्धिकाङ्क्षिभिरिह परत्र भोगमोक्षलक्षणसिद्धिकाङ्क्षिभिः प्रसादिभिः स्वीकार्यमित्यर्थः ॥ १३-१६ ॥

एतबे नहि, ओ सभक लेल आरोग्यक कारण, अन्तःकरणक शुद्धि देनिहार, दैविक दैहिक भौतिक एहि तीनू तापरूप महारोगसँ उद्धार करबाक औषध, विद्याक बढ़ओनिहार, पतनक निवारक, ज्ञान अएबाक द्वार, मोहक नाश करबाक कारण, वैराग्यसम्पत्तिक मूल ओ महान् आनन्दक बढ़ओनिहार थिक ॥ १३-१६ ॥

अथैतत्प्रसादस्वीकारेण सर्वपापक्षयश्च भवतीत्याह–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यच्छिवाय निवेदितम् ।
तत्तत्स्वीकारयोगेन सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ १७ ॥

यद् यद् द्रव्यमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १७ ॥

पत्र, पुष्प, फल ओ जल जे किछु शिवकेँ निवेदित होइछ तकरा ग्रहण कएलासँ सभ पापक क्षय होइछ ॥ १७ ॥

अथ शिवलिङ्गप्रसादवदेव श्रीगुरु-शिवयोगिनोरपि प्रसादः स्वीकार्य इत्युक्त्वा प्रसादिस्थलं समापयति–

यथा शिवप्रसादान्नं स्वीकार्यं लिङ्गतत्परैः ।
तथा गुरोः प्रसादान्नं तथैव शिवयोगिनाम् ॥ १८ ॥

लिङ्गनिष्ठैः प्रसादिभिर्यथा प्रसादान्नं स्वीकार्यम्, तथा श्रीगुरुशिवयोगिनां चान्नप्रसादोऽपि स्वीकार्य इत्यर्थः ॥ १८ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवलिङ्गक उपासनामे लागल व्यक्तिक द्वारा जहिना शिवप्रवसाद रूपी अन्न स्वीकार कएल जाइछ तहिना गुरुक एवं शिवयोगीक प्रसादान्न स्वीकार्य कएल जएबाक चाही ॥ १८ ॥

इति प्रसादिस्थलम्

अथ गुरुमाहात्म्यस्थलम्

अथ प्रसादनिष्ठेन ज्ञातव्यं गुरुमाहात्म्यस्थलं निरूपयति–

गुरुरेवात्र सर्वेषां कारणं सिद्धिकर्मणाम् ।
गुरुरूपो महादेवो यतः साक्षादुपस्थितः ॥ १९ ॥

अत्र लोके भोगमोक्षलक्षणसकलसिद्धिकर्मणां गुरुरेव कारणम्, 'न गुरोधिकं न गुरोरधिकम्' इति शिवरहस्यवचनात् । यतः परमेश्वर एव साक्षाद् गुरुरूपः सन् उपस्थितस्तिष्ठतीत्यर्थः ॥ १९ ॥

सभ सिद्धिकर्मक कारण गुरुए थिकाह, कियेक तँ गुरुरूपमे साक्षात् महादेवे उपस्थित रहैत् छथि ।। १९ ।।

ननु निष्कलः शिवः किमर्थं सकलगुरुरूपेण प्रकाशत इत्यत्राह–

निष्कलो हि महादेवो नित्यज्ञानमहोदधिः ।
सकलो गुरुरूपेण सर्वानुग्राहको भवेत् ॥ २० ॥

नित्यज्ञानार्णवपरमेश्वरे निष्कलोऽपि निरव्ययोऽपि गुरुरूपेण सकलः सन् करचरणादिविशिष्टः सन् सर्वानुग्राहको भवेत् लोकानुग्रहार्थं भातीत्यर्थः ॥ २० ॥

नित्यज्ञानक समुद्र महादेव निष्कल छथि, सएह गुरुक रूपमे सकल (कलासहित) भए सब अनुग्रह कएनिहार होइत छथि ।। २० ।।

तस्माद् गुरुशिवयोर्भेदो नास्तीत्याह–

यः शिवः स गुरुर्ज्ञेयो यो गुरुः स शिवः स्मृतः ।
न तयोरन्तरं कुर्याद् ज्ञानावाप्तौ महामतिः ॥ २१ ॥

गुरोर्मोक्षकारणीभूतज्ञानप्रदत्वेन शिवभिन्नत्वात्, अन्यथा ज्ञानानुदयप्रङ्गात् । तदर्थं सूक्ष्मदृक् तयोरन्तरं भेदं न कुर्यादित्यर्थः ॥ २१ ॥

जे शिव थिकाह, सएह गुरुओ थिकाह आ जे गुरु छथि सहए शिव

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

थिकाह । हिनका दुनूमे अन्तर नहि करी । महामति व्यक्ति ज्ञानक प्राप्तिमे हिनका दुनूमे भेद नहि मानैत छथि ॥ २१ ॥

'यथाहं सर्वलोकानां गुरुरम्बिकया सह' इत्यागमोक्तेः शिवसदृशं श्रीगुरुं प्राकृतैः सदृशमनुक्त्वा पूजयेदित्याह–

हस्तपादादिसाम्येन नेतरैः सदृशं वदेत् ।
आचार्यं ज्ञानदं शुद्धं शिवरूपतया स्थितम् ॥ २२ ॥

शुद्धं निर्मलोन्तःकरणं शिवज्ञानप्रकाशकम् उमामहेश्वररूपेण स्थितं श्रीगुरुं हस्तपादादिसाम्येन प्राकृतैः सदृशं सन्तं न वदेत् ॥ २२ ॥

ज्ञानदाता शिवरूपमे स्थित आचार्यकेँ हाथ-पएर आदिक समानताक कारण आन सामान्य लोकक समान नहि कहक चाही ॥ २२ ॥

तेन किं भवतीत्यत्राह–

आचार्यस्यावमानेन श्रेयः प्राप्तिर्विहन्यते ।
तस्मान्निःश्रेयसप्राप्त्यै पूजयेत् तं समाहितः ॥ २३ ॥

आचार्यस्यावमानेन प्राकृतजनसमोक्त्या भोगमोक्षलक्षणश्रेयःप्राप्तिर्विहन्यते । तस्माद् निःश्रेयसप्राप्त्यै भोगमोक्षावाप्त्यै समाहित एकाग्रचित्तः सन् तं श्रीगुरुं पूजयेदित्यर्थः ॥ २३ ॥

आचार्यक अपमान कएलासँ मोक्षप्राप्तिमे बाधा अबैछ । तेँ निःश्रेयस (मोक्ष) प्राप्तिक लेल शुद्ध चित्तसँ गुरुक पूजा करक चाही ॥ २३ ॥

अथ– 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ' इति श्वेताश्वतरश्रुत्यर्थं प्रकटयन् गुरुमहत्त्वस्थलं समापयति–

गुरुभक्तिविहीनस्य शिवभक्तिर्न जायते ।
ततः शिवे यथा भक्तिस्तथा भक्तिर्गुरावपि ॥ २४ ॥

स्पष्टम् ॥ २४ ॥

जे व्यक्ति गुरुभक्तिसँ रहित छथि हुनकामे शिवभक्ति उत्पन्न नहि भए सकैछ । तेँ जेहने शिवमे ओहने गुरुमे भक्ति करक चाही ॥ २४ ॥

इति गुरुमहत्त्वस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ लिङ्गमाहात्म्यस्थलम्

अथ गुरुकृपाप्रकाश्यलिङ्गमहत्त्वस्थलं निरूपयति—

गुरुमाहात्म्ययोगेन निजज्ञानातिरेकतः ।
लिङ्गस्यापि च माहात्म्यं सर्वोत्कृष्टं विभाव्यते ॥ २५ ॥

गुरुमाहात्म्यज्ञानयोगेन निजज्ञानाधिक्याद् लिङ्गस्य शिवलिङ्गस्य माहात्म्यमपि सर्वोत्कृष्टं सद् विभाव्यते विज्ञायत इत्यर्थः ॥ २५ ॥

गुरुक माहात्म्य एवं अपन प्रचुर ज्ञानसँ लिङ्गोक महत्ता सर्वोत्कृष्ट बुझल जाइछ ॥ २५ ॥

ननु लिङ्गज्ञानव्यतिरेकेण तन्माहात्म्यज्ञानासम्भवाद् लिङ्गस्वरूपं केन ज्ञापितमित्यत्राह—

शिवस्य बोधलिङ्गं यद् गुरुबोधितचेतसा ।
तदेव लिङ्गं विज्ञेयं शाङ्करं सर्वकारणम् ॥ २६ ॥

शिवस्य यद्बोधलिङ्गं चिन्मयलिङ्गमस्ति, तच्छाङ्करं लिङ्गं सर्वकारणं विष्ण्वादिसर्वविश्वकारणं सद् गुरुबोधितचेतसैव विज्ञेयं ज्ञातुं योग्यम्, गुरुणैव ज्ञापितमित्यर्थः ॥ २६ ॥

लिङ्गमाहात्म्यस्थल— जे शिवक बोधलिङ्ग अछि, गुरुक द्वारा प्रबोधित चित्तवाला भक्तकेँ ताही बोधलिङ्गकेँ सर्वकारण शाङ्कर (शंकरक) लिङ्ग मानबाक चाही ॥ २६ ॥

अथ तत्कीदृशमित्यत्राह—

परं पवित्रममलं लिङ्गं ब्रह्म सनातनम् ।
शिवाभिधानं चिन्मात्रं सदानन्दं निरङ्कुशम् ॥ २७ ॥
कारणं सर्वलोकानां वेदानामपि कारणम् ।
पूरणं सर्वतत्त्वस्य तारणं जन्मवारिधेः ॥ २८ ॥
ज्योतिर्मयमनिर्देश्यं योगिनामात्मनि स्थितम् ।
कथं विज्ञायते लोके महागुरुदयां विना ॥ २९ ॥

अत्र सर्वतत्त्वस्य पूरणमित्यनेन 'शिखण्ड्यण्डरसन्यायेन' स्वात्मैकरसेन परिपूर्णविश्वमयत्वमुक्तम् । योगिनां शिवयोगिभिरनिर्देश्यं सद् आत्मनि निजस्वरूपे

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थितम् । ज्योतिर्मयं 'स्थाणुवज्ज्वलति लिङ्गमदृश्यम्' इति याज्ञवल्क्यश्रुतेः स्वातिरिक्तमानान्तरागम्यत्वेन स्वयमेव भासमानं परशिवाख्यपरब्रह्ममहालिङ्गम् । 'तज्ज्ञानं सद्गुरोर्ज्ञेयं नान्यथा शास्त्रकोटिभिः' इति शिवरहस्यवचनमप्यस्तीति लोके महागुरुदयां विना कथं केन प्रकारेण विज्ञायते ? केनापि प्रकारेण ज्ञातुमशक्यमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २७-२९ ॥

शिव नामक लिङ्ग परम पवित्र, निर्मल, सनातन, ब्रह्म, चिन्मात्र, सदानन्द, निरंकुश, समस्त लोकक कारण, वेदहुक कारण, सम्पूर्ण तत्त्वक पूरक, जन्मरूपी सागरक पार करएवाला, ज्योतिस्वरूप, अनिर्देश्य योगीक हृदयमे स्थित छथि । एहन जे लिङ्ग से महागुरुक दयाक बिना कोना जानल जा सकैत छथि ।। २७-२९ ।।

नन्वस्मदादीनां गुरुदयाव्यतिरेकेण विज्ञातुमशक्यत्वेऽपि ब्रह्मादीनां सर्वज्ञत्वेन तदपेक्षा नास्तीति कथमुक्तार्थसिद्धिरित्यत्र— 'वराहो विष्णुर्निममज्ज भूमौ ब्रह्मोत्पपात दिवमाशु गृध्र' इति लिङ्गसूत्रोक्ताभिप्रायेणोक्तार्थं स्थापयति—

ब्रह्मणा विष्णुना पूर्वं यल्लिङ्गं ज्योतिरात्मकम् ।
अपरिच्छेद्यमभवत् केन वा परिचोद्यते ॥ ३० ॥

ज्योतिरात्मकं ज्योतिर्मयं यल्लिङ्गं ब्रह्मणा विष्णुना च पूर्वमपरिच्छेद्यं ज्ञातुमयोग्यमभवत्, तन्महाशिवलिङ्गं केन वा परिचोद्यते ? केन विज्ञायत इत्यर्थः ॥ ३० ॥

जाहि ज्योतिस्वरूप लिङ्गक प्राचीन कालमे ब्रह्मा ओ विष्णु पार नहि पाबि सकलाह, तकरा के जानि सकैछ ।। ३० ।।

ननु ब्रह्माद्यगम्यं लिङ्गं कीदृशमित्यत्राह—

बहुनात्र किमुक्तेन लिङ्गं ब्रह्म सनातनम् ।
योगिनो यत्र लीयन्ते मुक्तपाशनिबन्धनाः ॥ ३१ ॥

अत्र बहुभाषणेन किम् ? विश्वलयगमनकारणं नित्यं ब्रह्मैव लिङ्गं यत्र परब्रह्मात्मनि शिवलिङ्गे सनकादियोगिनो मुक्तपाशनिबन्धना विसृष्टाविद्यादिपञ्च-क्लेशपाशबन्धनाः सन्तो लीयन्ते तादात्म्यं भजन्त इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

बहुत कतेक कहल जाय, ई लिङ्गस्वरूप ब्रह्म सनातन छथि । योगीलोकनि पाशबन्धसँ मुक्त भए ओहिमे लीन भए जाइत छथि ।। ३१ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ननु ब्रह्मैव लिङ्गं चेत् किमस्य पीठमित्यत्राह–

पीठिका परमा शक्तिर्लिङ्गं साक्षात् परः शिवः ।
शिवशक्तिसमायोगं विश्वं लिङ्गं तदुच्यते ॥ ३२ ॥

'क्रियाशक्त्यात्मकं पीठं ज्ञानशक्त्यात्मनः प्रभोः' इति शिवागमवचनात् परमा शक्तिः सर्वोत्कृष्टा क्रियाशक्तिः पीठम्, साक्षात्परः शिवश्चिद्रूपपरमेश्वर एव लिङ्गम्, शिवशक्तिसमायोगं शिवशक्तिसम्बन्धवत्तल्लिङ्गं विश्वम्,

'न वज्रचक्राङ्कसरोरुहाङ्कं लिङ्गाङ्कितं पश्य जगद्भगाङ्कम्'।
'ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्विश्वं चित्क्रियालिङ्गरूपकम्'।

इति पुराणोक्तेः सर्वजगद्रूपमित्युच्यत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

पीठिका (जलढरी) परम शक्ति थिक ओ लिङ्ग साक्षात् परमशिव थिकाह। शिव ओ शक्तिक ई समवेत स्वरूप विश्वात्मक लिङ्ग कहल जाइछ ॥ ३२ ॥

अथैवंरूपं लिङ्गं ब्रह्मादयः सम्पूज्य महदैश्वर्यं प्राप्तवन्त इत्याह–

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे मुनयः शौनकादयः ।
शिवलिङ्गार्चनादेव स्वं स्वं पदमवाप्नुयुः ॥ ३३ ॥

अत्र– 'तव श्रियै मरुतोऽमर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिमं चारुचित्रम् । पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि ॥'[1] इति ऋग्वेदश्रुतिः । अयमर्थः–भो रुद्र ! मरुतो ब्रह्मादयो देवाः, श्रियै विष्णोः पदं स्थानं वैकुण्ठादिकम् उपमं दृष्टान्तं निधायि मनसि निधाय चारु मनोहरं चित्रं विचित्रं जनिमम् आविर्भावस्थानं लिङ्गम् अमर्जयन्त अर्चितवन्त इत्यर्थः । वैकुण्ठादिस्थानं महदैश्वर्यं च विष्णुः शिवलिङ्गपूजामहिम्ना लब्धवानिति दृष्टान्तीकृत्य ब्रह्मादयो देवाः सर्वेऽपि शिवलिङ्गं श्रियै पूजितवन्त इति यावत् ॥ ३ ॥

ब्रह्मा आदि देवता, शौनक आदि मुनि– ई सब क्यो शिवलिङ्गक पूजासँ अपन-अपन पदकेँ प्राप्त कएलनि ॥ ३३ ॥

ननु शिवस्यापि विश्वाधिकत्वादिमहदैश्वर्यं कस्यचिदुपासनया समागतं किमित्यत्राह–

---

१. ऋ० वे० ५।३।३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विश्वाधिपत्वमीशस्य लिङ्गमूर्तेः स्वभावजम् ।
अनन्यदेवसादृश्यं श्रुतिराह सनातनी ॥ ३४ ॥

'विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्'[1] 'न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते'[2] इति श्वेताश्वतरश्रुतेर्लिङ्गमूर्तेरीशस्य परमेश्वरस्य आनन्यदेवसादृश्यं विश्वाधिपत्वं चराचरप्रपञ्चनियामकत्वं स्वभावजं स्वतः सिद्धमिति सनातनी श्रुतिराहेत्यर्थः ॥ ३४ ॥

लिङ्गस्वरूप ईश्वरक विश्वाधिप होएब स्वाभाविक थिक । हिनक समान विश्वाधिपत्व आन कोनो देवता मे नहि अछि– ई बात सनातनी श्रुति (वेद) कहैत अछि ॥ ३४ ॥

इति लिङ्गमहत्त्वस्थलम्

अथ जङ्गममाहात्म्यस्थलम्

अथ गुरुलिङ्गमहत्त्वात् संवेद्यं जङ्गमस्थलं प्रकाशयति–

गुरुशिष्यसमारूढ–लिङ्गमाहात्म्यसम्पदः ।
सर्वं चिद्रूपविज्ञानाज्जङ्गमाधिक्यमुच्यते ॥ ३५ ॥

'आचार्यः पूर्वरूपमन्तेवास्युतत्तररूपं विद्यासन्धिः'[3] इति श्रुतेर्गुरुशिष्य-मध्यगतशिवलिङ्गमहत्त्वसम्पदः सर्वं विश्वप्रपञ्चं चिद्रूपविज्ञानात् चित्क्रियारूपत्वेन विज्ञानाद् जङ्गमाधिक्यमुच्यते, गुरुशिष्ययोरिष्टप्राणभावेषु तादात्म्यभावनया समारूढलिङ्गमहत्त्वसम्पत्त्या सर्वं विश्वं शिवशक्त्यात्मकमिति विज्ञानमेव जङ्गमाधिक्यमित्यर्थः ॥ ३५ ॥

जङ्गममाहात्म्यस्थल– गुरु ओ शिष्यक बीच उत्पन्न लिङ्गमाहात्म्यक सम्पत्तिक अपेक्षा चिद्रूप विज्ञानक कारण जङ्गम लिङ्गगक महत्त्व अधिक मानल गेल अछि ॥ ३५ ॥

अथ के ते जङ्गमा इत्यत्राह–

जानन्त्यतिशयाद् ये तु शिवं विश्वप्रकाशकम् ।
स्वस्वरूपतया ते तु जङ्गमा इति कीर्तिताः ॥ ३६ ॥

'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'[4] इति श्रुतेर्ये विश्वप्रकाशकं स्वकीय-

१. श्वे०उ० ३ । ४
२. श्वे०उ० ६ । ८
३. तै०उ० १ । ११ । १
४. श्वे०उ० ६ । १४

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चित्क्रियाशक्तिभ्यां प्रपञ्चप्रकाशं शिवमतिशयेन सर्वासर्वशब्दार्थयोर्मायाकार्यकोटि-प्रविष्टत्वेनाऽसनातनत्वाद् एतज्जीवनभूत-ज्ञत्व-कर्तृत्वयोः सनातनत्वात्, अन्यथा स्वविषयकज्ञानशून्यत्वेन स्फटिकादिप्रकाशवज्जडत्वप्रसङ्गात्, तयोर्जीवेश्वर-साधारणीभूतास्मद्रूपात्मतत्त्वनिजस्वभावत्वात् स्वयं तदनतिरिक्त इति दृढतरनिश्चयेन स्वस्वरूपतया जानन्ति, ते जङ्गमा इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

जे क्यो विश्वप्रकाशक शिवकेँ सर्वातिशय मानि आत्मरूपमे जनैत छथि से (शिवयोगी) जङ्गमलिङ्ग कहबैत छथि । किएक तँ ओ शिवस्वरूपमे विचरण करैत मानल गेल छथि ॥ ३६ ॥

अथ शिवयोगित्वेन प्रसिद्धजङ्गममहत्त्वं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

ये पश्यन्ति जगज्जालं चिद्रूपं शिवयोगतः ।
निर्धूतमलसंस्पर्शास्ते स्मृताः शिवयोगिनः ॥ ३७ ॥

ये जङ्गमा देवा 'विश्वं शिवयोगतो विश्वस्य शिवसम्बन्धाभावे चिद्बाह्यत्वेन सङ्कल्पतापत्तेः शिवसम्बन्धोऽङ्गीकरणीय एव, स च संयोगरूपो न भवति, तस्य क्रियापूर्वत्वेन भिन्नदेशस्थितयोरेवोपपद्यत इति ब्रह्मबाह्यदेशाभावेन तादात्म्यरूप एवेत्युपपादितत्वाच्चिद्रूपं चित्क्रियास्वरूपमिति, पश्यन्ति जानन्ति, ते निर्धूतमलसंस्पर्शा निर्गताणवादिमलसम्बन्धिनः शिवयोगिन इति स्मृता इत्यर्थः ॥ ३७ ॥

जे अपन शिवयोगसामर्थ्यसँ संसारजालकेँ चिद्रूपमे जनैत छथि से अत्यन्त निर्मल व्यक्ति शिवयोगी कहल गेल छथि ॥ ३७ ॥

घोरसंसारतिमिर-परिध्वंसनकारणम् ।
येषामस्ति शिवज्ञानं ते मताः शिवयोगिनः ॥ ३८ ॥

भयङ्करसंसारान्धकारनिवारकं शिवाधिक्यज्ञानं येषामस्ति, ते शिवयोगिन इति मताः स्मृता इत्यर्थः ॥ ३८ ॥

जनिका घोर संसाररूपी अन्धकारनाशक शिवज्ञान छनि से शिवयोगी मानल गेल छथि ॥ ३८ ॥

अथ ते कीदृशाः कथं तिष्ठन्तीत्यत्राह—

जितकामा जितक्रोधा मोहग्रन्थिविभेदिनः ।
समलोष्टाश्मकनकाः साधवः शिवयोगिनः ॥ ३९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समाः शत्रौ च मित्रे च साक्षात्कृतशिवात्मकाः ।
निस्पृहा निरहङ्कारा वर्तन्ते शिवयोगिनः ॥ ४० ॥

स्पष्टम् ॥ ३९-४० ॥

काम ओ क्रोधकेँ जितनिहार, मोहक गीरहकेँ काटि देनिहार ओ ढेपा पाथर आ सोनमे समान भाव रखनिहार साधु शिवयोगी होइत छथि । शत्रु ओं मित्रमे समभाव रखनिहार, शिवक साक्षात्कार करएवाला तथा निस्पृह ओ निरहंकार भए व्यवहार करएवाला व्यक्ति शिवयोगी होइत छथि ।। ३९-४० ।।

एवमुक्तलक्षणज्ञानसम्पन्नाः साक्षाच्छिवा एवेत्याह–

दुर्लभं हि शिवज्ञानं दुर्लभं शिवचिन्तनम् ।
येषामेतद् द्वयं चास्ति ते हि साक्षाच्छिवात्मकाः ॥ ४१ ॥

शिवज्ञानं शिवाधिक्यज्ञानं शिवचिन्तनम् उक्तयुक्तिभिः स्वयमेव शिव इति मननं च दुर्लभम् । एतद् द्वयं येषामस्ति, ते साक्षाच्छिवरूपा इत्यर्थः ॥ ४१ ॥

'शिवक ज्ञान' प्राप्त करब दुर्लभ अछि, शिवक चिन्तन दुर्लभ अछि । ई दुनू जनिका छनि से साक्षात् शिवात्मक शिवयोगी थिकाह ।। ४१ ।।

अथ पुनस्तेषां महत्त्वं श्लोकद्वयेनाह–

पादाग्ररेणवो यत्र पतन्ति शिवयोगिनाम् ।
तदेव सदनं पुण्यं पावनं गृहमेधिनाम् ॥ ४२ ॥
सर्वसिद्धिकरं पुंसां दर्शनं शिवयोगिनाम् ।
स्पर्शनं पापशमनं पूजनं मुक्तिसाधनम् ॥ ४३ ॥

शिवयोगिनां जङ्गमदेवानामित्यर्थः । गृहमेधिनां गृहस्थानामित्यर्थः । पुण्यं पुण्यक्षेत्रमित्यर्थः । पावनं पवित्रम् । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ४२-४३ ॥

जतए शिवयोगीक पएरक आगू धूरा खसैत अछि, गृहस्थक ओ घर पुण्यदायक एवं पवित्र भए जाइछ । शिवयोगीक दर्शन मनुष्यक लेल सर्वसिद्धिकर थिक । हुनक स्पर्श पापक शमन करएवाला ओ पूजन मुक्तिदायक थिक ।। ४२-४३ ।।

अथैवं तादृशशिवयोगिनां सम्पर्कात् सर्वेप्सितार्थसिद्धिरित्याह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महतां शिवतात्पर्य-वेदिनामनुमोदिनाम् ।
किं वा फलं न सिद्ध्येत सम्पर्काच्छिवयोगिनाम् ॥ ४४ ॥

शिवरहस्याभिप्रायवेदिनां शिवसुखानुमोदिनां महतां सत्पुरुषाणां शिवयोगिनां जङ्गमदेवानां सम्पर्कात् किं वा फलं न सिद्ध्येत् ? सर्वं सिद्ध्येदित्यर्थः ॥ ४४ ॥

शिवक तात्पर्यकेँ जानएवाला ओ तकर अनुमोदन करएवाला जे महान् शिवयोगी तनिक सम्पर्कसँ कोन फल नहि सिद्ध होइछ ? अर्थात् सब फल सिद्ध होइछ ॥ ४४ ॥

इति जङ्गममहत्त्वस्थलम्

अथ भक्तमाहात्म्यस्थलम्

अथ गुरुलिङ्गजङ्गममहत्त्वलम्पटस्य भक्तस्य महत्त्वं द्वादशसूत्रैः प्रतिपादयति–

गुरोर्लिङ्गस्य माहात्म्य-कथनाच्छिवयोगिनाम् ।
सिद्धं भक्तस्य माहात्म्यं तथाप्येष प्रशस्यते ॥ ४५ ॥

गुरुलिङ्गजङ्गमेष्वेवंविधमाहात्म्यज्ञानपूर्वकं भक्तेः क्रियमाणत्वेन भक्तमाहात्म्यं सिद्धमिति । तथैवायं शास्त्रे प्रशस्यते उत्कर्षेण भण्यत इत्यर्थः ॥ ४५ ॥

भक्तमाहात्म्यक स्थल–

यद्यपि गुरु, लिङ्ग ओ शिवयोगीक माहात्म्यक कथनसँ भक्तोक माहात्म्य सिद्ध भए जाइछ तथापि भक्तक महात्म्यक प्रशंसा कएल जा रहल छी ॥ ४५ ॥

अथ के भक्ता इत्यत्र– 'यद्धि मनसा ध्यायति, तद्वाचा वदति, तत्कर्मणा करोति' इति श्रुत्यर्थानुसारेण भक्तस्वरूपमाह–

ये भजन्ति महादेवं परमात्मानमव्ययम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ते भक्ता इति कीर्तिताः ॥ ४६ ॥

हस्ताभ्यामर्चनारूपकायिकक्रियया, शिवमूर्तिध्यानरूपमानसक्रियया, स्तुतिरूपवाचिकक्रियया च ये परमात्मानं लिङ्गरूपिणं महादेवं भजन्ति, ते भक्ता इत्यर्थः ॥ ४६ ॥

जे अव्यय-परमात्मा-महादेवक मन वचन ओ कर्मसँ सेवा करैत

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छथि से भक्त कहबैत छथि ।। ४६ ।।

शिवभक्तेर्जातिभेदोऽस्ति किमित्यत्राह–

दुर्लभा हि शिवे भक्तिः संसारभयतारिणी ।
सा यत्र वर्तते साक्षात् स भक्तः परिगीयते ।। ४७ ।।

स्पष्टम् ।। ४७ ।।

संसाररूपी भयसँ पार करएवाली शिवभक्ति दुर्लभ अछि । से जनिका हृदयमे अछि से साक्षात् शिवभक्त थिकाह ।। ४७ ।।

तस्माज्जननमरणपरिपीडितानां जनानां शिवभक्तिव्यतिरेकेण केनापि सत्कर्मणा प्रयोजनं नास्तीत्याह–

किं वेदैः किं ततः शास्त्रैः किं यज्ञैः किं तपोव्रतैः ।
नास्ति चेच्छाङ्करी भक्तिर्देहिनां जन्मरोगिणाम् ।। ४८ ।।

शास्त्रैः वेदार्थानुगैः, शिवागमसूत्रपुराणादिभिरित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।। ४८ ।।

जन्मरूपी रोगसँ ग्रस्त देहधारी मनुष्यकेँ जँ शङ्करक भक्ति नहि छनि तँ हुनका वेद पढ़ि की ? शास्त्र जानि की ? यज्ञ कए की ? आ तपस्या तथा व्रते कए की ? अर्थात् किछु लाभ नहि ।। ४८ ।।

अथ शिवभक्तिव्यतिरेकेण विधीयमानं सत्कर्म विफलं विपरीतफलं चेति दृष्टान्तपूर्वकमाह–

शिवभक्तिविहीनस्य सुकृतं चापि निष्फलम् ।
विपरीतफलं च स्याद् दक्षस्यापि महाध्वरे ।। ४९ ।।

स्यात्, अभवदित्यर्थः ।। ४९ ।।

शिवभक्तिसँ हीन व्यक्तिक सकल पुण्य निष्फल भए जाइछ । ओ भने महान् यज्ञ करबामे दक्ष (निपुण) किएक ने होथि, हुनका यज्ञक विपरीत फल होएतनि जेना महान् यज्ञमे शिवविरोधी दक्षप्रजापतिकेँ भेल छलनि ।। ४९ ।।

अथ शिवभक्त्या दुष्कर्मापि सत्कर्म भवेदिति दृष्टान्तपूर्वकमाह–

अत्यन्तपापकर्माऽपि शिवभक्त्या विशुद्ध्यति ।
चण्डो यथा पुरा भक्त्या पितृहाऽपि शिवोऽभवत् ।। ५० ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवः शिवगणाधीश इत्यर्थः, शिष्टं स्पष्टम् ॥ ५० ॥

अत्यन्त पाप कएनिहारो व्यक्ति शिवभक्तिसँ शुद्ध होइत अछि, जेना पूर्वयुगमे चण्डनामक व्यक्ति यद्यपि पिताकेँ मारने छल, किन्तु अत्यन्त शिवभक्ति कए शिवे बनि गेल छल ॥ ५० ॥

नन्वेवं चेत्, शिवभक्तानां पुण्यपापसम्बन्धोऽस्ति वा न वेत्यत्राह–

सुकृतं दुष्कृतं चापि शिवभक्तस्य नास्ति हि ।
शिवभक्तिविहीनानां कर्मपाशनिबन्धनम् ॥ ५१ ॥

स्पष्टम् ॥ ५१ ॥

शिवभक्तक पुण्य वा पाप नहि रहैत अछि । कर्मक पाशसँ बन्धन तँ शिवभक्तविहीने केँ होइत अछि ॥ ५१ ॥

तत्कथमित्यत्र दृष्टान्तपूर्वकं सूत्रद्वयेनाह–

शिवाश्रितानां जन्तूनां कर्मणां नास्ति सङ्क्रमः ।
वाजिनां दिननाथस्य कथं तिमिरजं भयम् ॥ ५२ ॥

दिननास्थस्य रवेर्वाजिनामश्वानां यथान्धकारप्रयुक्तभीर्नास्ति, तथा शिवभक्तानां कर्मणा पुण्यपापमयेन कर्मणा सङ्क्रमः सम्बन्धो नास्तीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

शिव पर आश्रित प्राणीकेँ कर्मसँ संग नहि रहैत अछि । सूर्यक घोड़ा सभकेँ अन्हारक भय किएक होएत ? ॥ ५२ ॥

निरोद्धुं न क्षमं कर्म शिवभक्तान् विशृङ्खलान् ।
कथं मत्तगजान् रुन्ध्याच्छृङ्खला बिसतन्तुजा ॥ ५३ ॥

शिवदीक्षयाऽऽणवादिमलत्रयस्य निवृत्तत्वेन विशृङ्खलान् शिवभक्तान् कर्म निरोद्धुं न क्षमं न समर्थम् । तत्र दृष्टान्तः–मृणालन्तुनिर्मिता शृङ्खला यथा मत्तगजं न रुन्ध्यात् तथेत्यर्थः ॥ ५३ ॥

बन्धन (शृंखला)सँ रहित शिवभक्तकेँ कर्म नहि बान्हि सकैछ, मत्ता हाथीकेँ कमलनाल कोना बान्हि सकैछ ? ॥ ५३ ॥

तस्माच्छिवभक्त एव पूज्य इत्याह–

ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा शूद्र एव वा ।
अन्त्यजो वा शिवे भक्तः शिववन्मान्य एव सः ॥ ५४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्टम् ॥ ५४ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र अथवा चाण्डाले किएक ने हो जँ शिवक भक्त हो तँ शिवक समान मान्य होइछ ॥ ५४ ॥

ननु शूद्रादीनां ब्राह्मणाद्यपेक्षया निकृष्टत्वात् कथं तेषां तत्समानत्वमित्यत्राह–

शिवभक्तिसमावेशे क्व जातिपरिकल्पना ।
इन्धनेष्वग्निदग्धेषु को वा भेदः प्रकीर्त्यते ॥ ५५ ॥

स्पष्टम् ॥ ५५ ॥

शिवभक्तिक समावेश भेला पर जातिक विचार कतए सँ रहि पाओत ? आगिमे जरल जारनि मे भेद कोना भए सकैछ ? ॥ ५५ ॥

तस्माच्छिवभक्ता एव गणेश्वरा इत्युक्त्वा भक्तमाहात्म्यं समापयति–

शुद्धा नियमसंयुक्ताः शवार्पितफलागमाः ।
अर्चयन्ति शिवं लोके विज्ञेयास्ते गणेश्वराः ॥ ५६ ॥

ये शुद्धा दीक्षया परिपूता नियमसम्पन्नाः शिवव्रतिनः शिवार्पितफलागमाः तदर्पितपुण्यपापफलागमाः सन्तो लोके शिवलिङ्गमर्चयन्ति, ते 'नाशिवस्य शिवोपास्ति (र्घटते कल्पकोटिभिः)', 'नारुद्रो रुद्रमर्चयेत्' इत्यादिवचनैर्गणेश्वरा इति रुद्रा इति विज्ञेया इत्यर्थः ॥ ५६ ॥

जे व्यक्ति नियमपालन करैत शुद्ध भए सकल कर्मफलकेँ शिवमे समर्पित कए शिवक पूजा करैत छथि सएह लोकमे गणेश्वर (शिवक गणमे अधिपति) होइत छथि ॥ ५६ ॥

इति भक्तोमाहात्म्यस्थलम्

अथ शरणमहत्त्वस्थलम्

अथ गुरुलिङ्गादिमहत्त्वं ज्ञात्वा शिव एक एव रक्षक इति प्रपद्यमानस्य शरणस्य महत्त्वं प्रतिपादयति–

गुरुलिङ्गादिमाहात्म्य-बोधान्वेषणसङ्गतः ।
सर्वात्मना शिवापत्तिः शरणस्थानमुच्यते ॥ ५७ ॥

गुरुलिङ्गशिवयोगिशिवभक्तमहत्त्वज्ञानान्वेषणसम्बन्धात् सर्वात्मना

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नानाप्रकारेणापि शिवापत्तिः शिव एक एव रक्षक इति प्रपन्नता शरणस्थानमित्युच्यत इत्यर्थः ॥ ५७ ॥

शरणमहत्त्वस्थल– गुरु, लिङ्ग, शिवयोगी, भक्त अदिक महत्त्वक ज्ञानक अन्वेषण करैत सब तरहेँ शिवक शरणमे जाएब शरणस्थान कहल जाइछ ॥ ५७ ॥

अथ तदेव विशदयति–

ब्रह्मादिविबुधान् सर्वान् मत्वा प्राकृतवैभवान् ।
प्रपद्यते शिवं यत्तु शरणं तदुदाहृतम् ॥ ५८ ॥

'शिव एको ध्येयः शिवङ्करः सर्वमन्यत् परित्यज्य' इति श्रुतेः प्राकृतवैभवान् प्रकृतिजन्यसम्पत्तिमतो ब्रह्मविष्णवादिदेवान् मुक्त्वा त्यक्त्वा शिवं यत् प्रपद्यते प्रपन्नत्वेनाश्रयते, तत् शरणं शरणस्थलमित्युदाहृतं कथतमित्यर्थः ॥ ५८ ॥

कोनो भक्तक द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, कुबेर आदि सब देवताकेँ प्रकृतिक (सांसारिक अथवा अज्ञानरूप प्रकृतिक) वैभव सँ युक्त मानि जे शिवक शरणमे गेल जाइत अछि से शरण कहबैत अछि ॥ ५८ ॥

अथ शरणागतस्य स्वरूपं विशदयति–

शरण्यः सर्वभूतानां शङ्करः शशिशेखरः ।
सर्वात्मना प्रपन्नस्तं शरणागत उच्यते ॥ ५९ ॥

शशिशेखरः शङ्करः परमेश्वरः सर्वभूतानां सकलप्राणिनां शरण्यो रक्षणे समर्थ इति, तं सर्वात्मना सर्वप्रकारेण प्रपन्नो रक्षिष्यतीति प्रपन्नः शरणागतः इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ५९ ॥

चन्द्रशेखर शङ्कर सकल जीवक शरण देनिहार छथि । जे व्यक्ति सब तरहेँ हुनक शरण मे जाइत अछि से शरणागत कहबैछ ॥ ५९ ॥

अथ शरणार्थिस्वरूपं कथयति–

विमुक्तभोगलालस्यो देवतान्तरनिस्पृहः ।
शिवमभ्यर्थयन् मोक्षं शरणार्थीति गीयते ॥ ६० ॥

विमुक्तभोगलम्पटत्ववान् ब्रह्मविष्णवादिपदव्यां विरक्तः सन् शिवं प्रति मोक्षमभ्यर्थयन् शरणार्थीति गीयते कथ्यत इत्यर्थः ॥ ६० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जनिक भोगलालसा समाप्त भए चुकल छनि आ आन देवताक विषयमे निस्पृह छथि एहन व्यक्ति जँ शिवमे अनुरक्त भए मोक्षक लेल प्रार्थना करथि तँ से शरणार्थी कहबैत छथि ॥ ६० ॥

एवं शिवं प्रपन्नानां किमपि सत्कर्म मास्त्वित्याह–

ये प्रपन्ना महादेवं मनोवाक्कायकर्मभिः ।
तेषां तु कर्मजातेन किं वा देवादितर्पणैः ॥ ६१ ॥

ये महादेवं शिवं मनोवाक्कायकर्मभिः ध्यानस्तुतिपूजाकर्मभी रक्षेति (रक्षिष्यतीति) प्रपन्नानां तेषां कर्मजातेन यज्ञादिकर्मसमूहेन देवप्रभृतितर्पणेन च किं वा ? किमपि प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः ॥ ६१ ॥

जे व्यक्ति मन, वचन, कर्म ओ देहसँ महादेवक शरण धएने छथि तनिका कर्मसमूह सँ वा देवता पितरक तर्पणोसँ की प्रयोजन ? अर्थात् कोनो नहि ॥ ६१ ॥

कुत इत्यत्र तदर्थं सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति–

सर्वेषामपि यज्ञानां क्षयः स्वर्गः फलायते ।
अक्षयं फलमाप्नोति प्रपन्नः परमेश्वरम् ॥ ६२ ॥

अक्षयं फलं मोक्षमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६२ ॥

सकल यज्ञक फल क्षयशील अछि, मुदा जे भक्त परमेश्वर शिवक शरणमे आबि गेलाह से अक्षय फल परमेश्वर केँ प्राप्त करैत छथि ॥ ६२ ॥

पापिनां कथमित्यत्राह–

प्रपन्नपारिजातस्य भवस्य परमात्मनः ।
प्रपत्त्या किं न जायेत पापिनामपि देहिनाम् ॥ ६३ ॥

शरणागतकल्पद्रुमस्य परमात्मनः शिवस्य प्रपत्त्या रक्षकत्वेन प्रपत्त्या पापिनां प्राणिनामपि किं न जायेत, सर्वं भवेदित्यर्थः ॥ ६३ ॥

शरणागतक लेल कल्पवृक्षस्वरूप परमात्मा भव (महादेव)क शरणमे गेलासँ पापियो देहीकेँ की नहि प्राप्त होइछ ? ॥ ६३ ॥

तस्मात् शिवप्रपन्ना एव श्रेष्ठा इत्याह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रपन्नानां महादेवं परिपक्वान्तरात्मनाम् ।
जन्मैव जन्म नान्येषां वृथा जननसङ्गिनाम् ॥ ६४ ॥

महादेवं प्रपद्य परिपक्वान्तःकरणानां पुंसां जन्मैव जन्मफलम्, वृथा जननभाजामप्रपन्नानां जन्म न, जन्मैव न, वृथेत्यर्थः ॥ ६४ ॥

महादेवक शरणमे गेल दृढ़ हृदयवाला व्यक्तियेक जन्म जन्म थिक, अर्थात् सफल थिक । आन व्यक्तिक जन्म लेब व्यर्थ थिक ॥ ६४ ॥

अथ तदेव विशदयति–

दुर्लभं मानुषं प्राप्य जननं ज्ञानसाधनम् ।
ये न जानन्ति देवेशं तेषामात्मा निरर्थकः ॥ ६५ ॥

दुर्लभं मानुषं जननं जन्म प्राप्य ज्ञानसाधनमात्मज्ञानप्रदं देवेशं परशिवं ये न जानन्ति, तेषामात्मा जीवो निरर्थकः, अप्रयोजक इत्यर्थः ॥ ६५ ॥

ज्ञानक साधक दुर्लभ मनुष्य जन्मकेँ पाबियो कए जे महादेव केँ नहि जनैत छथि तनिक जीवन व्यर्थ थिक ॥ ६५ ॥

अथ 'कुलं पवित्रं जननी कृतार्था' इति सूतसंहितानुसारेण शरणमहत्त्वं प्रकाश्य तत्स्थलं समापयति–

तत्कुलं हि सदा शुद्धं सफलं तस्य जीवितम् ।
यस्य चित्तं शिवे साक्षाद् विलीनमबहिर्मुखम् ॥ ६६ ॥

यस्य चित्तं सदा साक्षाच्छिवलिङ्गे, अबहिर्मुखं यथा न भवति तथा विलीनं विशेषेण लयं गतम्, तत्कुलं शुद्धं, तस्य जीवितं जीवनं सफलमित्यर्थः ॥ ६६ ॥

तनिके कुल सदा शुद्ध थिक, तनिके जीवन सफल थिक, जनिक चित्त अबहिर्मुख भए (शिवचिन्तनसँ परे नहि भए) साक्षात् शिवमे विलीन भए गेल हो ॥ ६६ ॥

इति शरणमहत्त्वस्थलम्

अथ प्रसादमहत्त्वस्थलम्

अथ पूर्वोक्तगुरुलिङ्गादिमहत्त्वानुभवस्थितेः शिवप्रसादलभ्यत्वात् तत्प्रसादमहत्त्वं कथयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुरुलिङ्गादिमाहात्म्य-विशेषानुभवस्थितिः ।
यस्माच्छिवप्रसादात् स्यात् तदस्य महिमोच्यते ॥ ६७ ॥

गुरुलिङ्गजङ्गमशिवभक्तशिवशरणमहत्त्वविशेषानुभवस्थितिर्यस्मात् कारणात् शिवप्रसादात् स्यात्, तस्मात् कारणाद् अस्य शिवप्रसादस्य महिमा महत्त्वम् उच्यते कथ्यत इत्यर्थः ॥ ६७ ॥

प्रसादमहत्त्वस्थल–

गुरु, लिङ्ग, शिवयोगी इत्यादिक माहात्म्यसँ विशेष अनुभवक स्थिति जेँ शिवप्रसादेसँ होइत छैक तेँ शिवप्रसादक महिमा प्रस्तुत कएल जा रहल अछि ॥ ६७ ॥

ननु शिवप्रसादः कथं गुरुलिङ्गादिमहत्त्वविशेषानुभवस्थितिहेतुरित्यत्राह–

सदा लिङ्गैकनिष्ठानां गुरुपूजानुषङ्गिणाम् ।
प्रपन्नानां विशुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः ॥ ६८ ॥

स्पष्टम् ॥ ६८ ॥

जे सतत लिङ्गार्चनमे लागल, गुरुपूजामे तत्पर, शरणागत तथा विशुद्ध छथि तनिका पर परमेश्वर प्रसन्न रहैत छथिन ॥ ६८ ॥

स च शिवप्रसादः कीदृशस्तेन किं भवतीत्यत्राह–

प्रसादोऽपि महेशस्य दुर्लभः परिकीर्त्यते ।
घोरसंसारसन्तापनिवृत्तिर्येन जायते ॥ ६९ ॥

इतरेषामलिङ्गिनां दुर्लभः । तेन शिवप्रसादेन भयङ्करसांसारिकतापत्रय-निवृत्तिर्जायत इत्यर्थः ॥ ६९ ॥

जनिकासँ घोर संसारक निवृत्ति भए जाइछ एहेन महेश्वरक प्रसन्नता अत्यन्त दुर्लभ थिक ॥ ६९ ॥

ननु– 'तमेवं (तं) वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन'[1] इति श्रुतेर्यज्ञादीनां विज्ञानसाधनत्वश्रवणात् तेनैव सांसारिक-दुःखनिवृत्तेः किं महेश्वरप्रसादेनेत्यत्राह–

---

१. बृ०उ० ४।२२

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यज्ञास्तपांसि मन्त्राणां जपश्चिन्ता प्रबोधनम् ।
प्रसादार्थं महेशस्य कीर्तितानि न संशयः ॥ ७० ॥

अत्र चिन्ता ध्यानम्, प्रबोधनं शिवाधिक्यज्ञानम् । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ७० ॥

यज्ञ, तप, मन्त्रक जप, ध्यान ओ ज्ञान ई सब महेश्वर प्रसन्नताक लेल कहल गेल अछि, एहिमे सन्देह नहि ॥ ७० ॥

ननु मोक्षस्य भक्तिमूलकत्वात् किं प्रसादेनेत्यत्राह–

प्रसादमूला सर्वेषां भक्तिरव्यभिचारिणी ।
शिवप्रसादहीनस्य भक्तिश्चापि न सिद्ध्यति ॥ ७१ ॥

सर्वेषां समस्तजनानाम् अव्यभिचारिणी अनन्यगामिनी भक्तिः प्रसादमूला, शिवप्रसादशून्यस्य भक्तिरेव न सिद्ध्यतीत्यर्थः ॥ ७१ ॥

शिवक प्रसाद (प्रसन्नता वा कृपा)सँ उत्पन्न भेल जे भक्ति से सभक लेल व्यभिचरित (अन्यत्र गमनशीला) नहि होइत अछि, अर्थत् सदा शिवेमे लागल रहैछ । शिवप्रसादसँ हीन भक्ति भेलो पर सिद्ध नहि होइत अछि ॥ ७१ ॥

तस्मात्–

गर्भस्थो जायमानो वा जातो वा ब्राह्मणोऽथवा ।
अन्त्यजो वापि मुच्येत प्रसादे सति शाङ्करे ॥ ७२ ॥

स्पष्टम् ॥ ७२ ॥

तेँ शिवक प्रसाद भेला पर गर्भस्थ, जनमैत तथा उत्पन्न भेल ब्राह्मण हो वा चाण्डाले कियेक ने हो, सभ मुक्त भए जाइछ ॥ ७२ ॥

अथ ब्रह्मादयोऽपि शिवप्रसादेनैव नित्यसिद्धा इत्याह–

ब्रह्माद्या विबुधाः सर्वे स्वस्वस्थाननिवासिनः ।
नित्यसिद्धा भवन्त्येव प्रसादात् पारमेश्वरात् ॥ ७३ ॥

स्पष्टम् ॥ ७३ ॥

ब्रह्मा आदि समस्त देवगण परमेश्वरक प्रसादे सँ अपन पद पर रहैत नित्य सिद्ध छथि ॥ ७३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ननु सर्वशिवात्मकज्ञानेनैव सांसारिकदुःखनिवृत्तेः किं प्रसादेनेत्यत्र–

भोक्ता भोग्यं प्रेरयिता भोगोपकरणानि च ।
सर्वं शिवमयं भाति प्रसादात् पारमेश्वरात् ॥

इति सूतसंहितावचनानुसारेणाह–

प्रसादे शाम्भवे सिद्धे परमानन्दकारणे ।
सर्वं शिवमयं विश्वं दृश्यते नात्र संशयः ॥ ७४ ॥

स्पष्टम् ॥ ७४ ॥

परम आनन्दक कारण शाम्भव (शम्भुक कृपासँ प्राप्त) प्रसादक सिद्ध भेला पर सम्पूर्ण संसार शिवमय देखि पड़ैत अछि, एहिमे सन्देह नहि ॥ ७४ ॥

अथ शिवप्रसादमहत्त्वं पुनः सूत्रद्वयेन कथयति–

संसारचक्रनिर्वाह-निमित्तं कर्म केवलम् ।
प्रसादेन विना शम्भोर्न कस्यापि निवर्तते ॥ ७५ ॥

संसारचक्रनिर्वाहकारणं कर्मैव, तद् यज्ञादिना न नश्यति, तस्यापि कर्मरूपत्वेन पुनः परिपोषकत्वात् । तस्मात् कस्यापि शिवप्रसादेन विना कर्म न नश्यतीति भावः ॥ ७५ ॥

कर्म तँ केवल सांसारिक व्यवहारक लेल कएल जाइछ । से शम्भुक प्रसादक बिना ककरो निवृत्त नहि होइछ ॥ ७५ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन नास्ति नास्ति जगत्त्रये ।
समानमधिकं चापि प्रसादस्य महेशितुः ॥ ७६ ॥

स्पष्टम् ॥ ७६ ॥

एहिमे विशेष कहबाक काज की, महेश्वर प्रसादक समान वा ओहिसँ अधिक एहि संसारमे किछु नहि अछि ॥ ७६ ॥

शिवप्रसादे सति योगभाजि
सर्वं शिवैकात्मतया विभाति ।
स्वकर्ममुक्तः शिवभावितात्मा
स प्राणलिङ्गीति निगद्यतेऽसौ ॥ ७७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण प्रणीते सिद्धान्तशिखामणौ प्रसादिनः सप्तविधस्थलप्रसङ्गो नामैकादशः परिच्छेदः ॥ ११॥



योगभाजि स्वरूपहानिवृद्धिव्यतिरेकेण सजातीयसमरसशिवयोगवति शिवप्रसादे सति सिद्धे सति सर्वं विश्वं कृत्स्नं जगत् शिवैकात्मतया शिवाभेदेन विभाति। तस्मात् शिवभावितात्मा शिवाभेदेन भावितस्वरूपवान् सोऽसौ प्रसादी स्वकर्ममुक्तः कर्मणोऽपि शिवमयत्वेन स्वस्वरूपतयाऽप्रतिबन्धकत्वात् स्वकर्मपाशविनिर्मुक्तः सन् प्राणलिङ्गीति निगद्यते कथ्यत इत्यर्थः ॥ ७७ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां प्रसादिनः सप्तविधप्रसङ्गो नामैकादशः परिच्छेदः ॥ ११ ॥



शिवक प्रसाद प्राप्त भेला पर सब किछु शिवमय प्रतीत होमए लगैछ। जे व्यक्ति शिवभावनामय भए जाइछ से अपन कर्मसँ मुक्त भए प्राणलिङ्गी कहल जाइछ ॥ ७७ ॥

एहि तरहेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणिक विद्यावाचस्पति डॉ० शशिनाथ झाक कएल प्रबोधिनी मैथिली व्याख्यामे प्रसादीक सप्तविध स्थल नामक एगारहम परिच्छेद समाप्त ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्वादशः परिच्छेदः

अथ प्राणलिङ्गिस्थलम्

अगस्त्य उवाच

भक्तो माहेश्वरश्चेति प्रसादीति निबोधितः ।
एक एव कथं चैष प्राणलिङ्गीति कथ्यते ॥ १ ॥

एक एव भक्तो माहेश्वरः प्रसादीति निबोधितः । एष च कथं केन प्रकारेण प्राणलिङ्गीति कथ्यत इति प्रश्नार्थः ॥ १ ॥

अगस्त्य कहलथिन– एके व्यक्ति भक्त, माहेश्वर, प्रसादी होइछ से तँ अपने कहल । आब कहल जाय जे उवेह व्यक्ति प्राणलिङ्गी कोना कहबैछ ॥ १ ॥

श्रीरेणुक उवाच

भक्तो माहेश्वरश्चैष प्रसादीति च कीर्तितः ।
कर्मप्राधान्ययोगेन ज्ञानयोगोऽस्य कथ्यते ॥ २ ॥

एष अयं शिवलिङ्गदीक्षासम्पन्नः कर्मप्राधान्ययोगेन एवंरूपकर्मकाण्डोक्त-क्रियाप्रधानयोगेन भक्त इति, माहेश्वर इति, प्रसादीति कीर्तितः । अस्य एवंविधरूपत्रयसम्पन्नस्य ज्ञानयोगो ज्ञानकाण्डोक्तज्ञानयोगः कथ्यते । अनेन ज्ञानयोगेन प्रसाद्येव प्राणलिङ्गीत्युच्यत इत्यर्थः ॥ २ ॥

श्रीरेणुक बजलाह–

एके व्यक्तिकेँ जे भक्त, माहेश्वर ओ प्रसादी कहि देल अछि से ओ अपन कर्मक कारणेँ एहि नामसँ जानल जाइत छथि । उवेह ज्ञानक कारणेँ प्राणलिङ्गी कहबैत छथि, से आब कहि रहल छी ॥ २ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ कोऽयं प्राणलिङ्गीत्यत्र–

सर्वतत्त्वमयः प्राणः सर्वज्ञानमयः शिवः ।
अनयोर्योगमेवैतत् प्राणलिङ्गमिहोच्यते ॥

इति वीरागमोक्तरूपप्राणलिङ्गवान् प्राणलिङ्गीत्याह–

लिङ्गं चिदात्मकं ब्रह्म तच्छक्तिः प्राणरूपिणी ।
तद्रूपलिङ्गविज्ञानी प्राणलिङ्गीति कथ्यते ॥ ३ ॥

चिद्रूपं ब्रह्मवै शिवलिङ्गम्, तच्छक्तिः शिवलिङ्गपीठशक्तिः प्राणरूपिणी प्रणवात्मप्राणस्वरूपवती, प्रणवस्य वेद्यसंस्कारलक्षणबिन्दुघटितत्वात्, चित्क्रियासामरस्यलक्षणोन्मेषशक्तिघटितत्वाच्च सर्वतत्त्वमयत्वमुक्तम् । तद्रूपलिङ्गविज्ञानी तत्प्रकारकलिङ्गज्ञानवान् प्राणलिङ्गीति कथ्यत इत्यर्थः ॥ ३ ॥

चित्स्वरूप (चैतन्यमय) ब्रह्म लिङ्ग थिकाह, हुनक शक्ति प्राण थिक । एहि रूपवाला लिङ्गकेँ विशेषरूपेँ जननिहार व्यक्ति प्राणलिङ्गी कहबैत छथि ॥ ३ ॥

अथास्यापि स्थलभेदाः सन्ति किमित्यत्राह–

प्राणलिङ्गिस्थलं चैतत् पञ्चस्थलसमन्वितम् ।
प्राणलिङ्गिस्थलं चादौ प्राणलिङ्गार्चनं ततः ॥ ४ ॥
शियोगसमाधिश्च ततो लिङ्गनिजस्थलम् ।
अङ्गलिङ्गिस्थलं चाथ क्रमादेषां भिदोच्यते ॥ ५ ॥

स्पष्टम् ॥ ४-५ ॥

ई प्राणलिङ्गी पाँच स्थलसँ युक्त छथि । पहिल प्राणलिङ्गिस्थल, दोसर प्राणलिङ्गार्चनस्थल, तेसर शिवयोग-समाधिस्थल, चरिम निजलिङ्गस्थल आ अन्तिम पाँचम अङ्गलिङ्गिस्थल थिक । आब क्रमसँ एहि सबहिक भेद कहैत छी ॥ ४-५ ॥

'अथ प्राणेष्वन्तर्मनसो लिङ्गमाहुः', 'ऊर्ध्वं प्राणमुन्नमयत्यपानं प्रत्ययस्यति । मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ।'[1] इत्यथर्वशिरःकठवल्लीश्रुत्यनुसारेण प्राणिलिङ्गिस्थलं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

---

१. कठोप० २ । ६ । ३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्राणपानसमाघातात् कन्दमध्यात्तदुत्थितम् ।
प्राणलिङ्गं तदाख्यातं प्राणापाननिरोधिभिः ॥ ६ ॥

प्राणापानसमाघाताद् देशिकोपदेशेन प्राणापानवायुसङ्घट्टने सति कन्दमध्याद् नाभिकन्दमध्याद् यज्ज्योतिरुत्थितम् उद्भूतं भवति, तत् तज्ज्योतिः प्राणलिङ्गमिति प्राणापानवायुनिरोधवद्भिः शिवयोगिभिराख्यातं कथितमित्यर्थः ॥ ६ ॥

प्राण ओ अपान वायुक परस्पर आघातसँ नाभिक कन्दसँ जे ज्योति ऊपर उठैत अछि तकरा प्राण-अपानक निरोध कएनिहार योगी लोकनि प्राणलिङ्ग कहैत छथिन ।। ६ ।।

नन्विदं केन विज्ञातमित्यत्राह—

प्राणो तत्र लयं याति भास्करे तुहिनं यथा ।
तत्प्राणलिङ्गमुद्दिष्टं तद्धारी स्यात् तदाकृतिः ॥ ७ ॥

प्राणः प्राणवायुः, यत्र यस्मिन् परब्रह्ममयशिवलिङ्गे लयं भास्करे तुहिनमिव याति, तस्मात् प्राणलिङ्गमित्युद्दिष्टमुपदिष्टम्, तद्धारी तत्परामर्शी तदाकृतिः तत्स्वरूपः स्यादित्यर्थः । देशकालद्यचुम्बितत्वेन सामान्याकारेण भासमानचिदहन्तैव प्राणलिङ्गमिति भावः ॥ ७ ॥

जाहिमे प्राण लीन होइत अछि जेना वर्फ सूर्यमे लीन होइत अछि, से प्राणलिङ्ग कहल गेल अछि । ओकरा धारणकएनिहार ओकरे स्वरूपमे प्राणलिङ्गी भए जाइत छथि ।। ७ ।।

अथ तल्लिङ्गं केषां स्फुरतीत्यत्राह—

ज्ञानिनां योगयुक्तानामन्तः स्फुरति दीपवत् ।
चिदाकारं परब्रह्म-लिङ्गमज्ञैर्न भाव्यते ॥ ८ ॥

चिदाकारं स्फुरणं परब्रह्मलिङ्गं परब्रह्ममयप्राणलिङ्गं योगयुक्तानां शिवयोगयुक्तानां ज्ञानिनां शिवज्ञानिनाम् अन्तः हृदयकमले दीपवत् स्फुरति प्रकाशते, अज्ञैः गुरूपदेशरहितैः प्राकृतैर्न भाव्यते न हृदयङ्गमीक्रियते । हृदये वै ब्रह्म सोमसूर्याग्निमण्डले निवातदीपोपमस्थायि, 'हृद्यन्तज्योर्तिः पुरुषः'[१] इत्याद्युपनिषत्प्रसिद्धम् ॥ ८ ॥

---

१. बृ०उ० ४ । ३ । ७

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चिदाकार परब्रह्म, योगयुक्त ज्ञानीक भीतर दीप जकाँ चमकैत छथि। अज्ञानी व्यक्ति हुनक अनुभव नहि कए सकैछ ॥ ८ ॥

अथैतादृशप्राणलिङ्गं विहाय बाह्यलिङ्गनिष्ठा मूढा इत्याह–

अन्तःस्थितं परं लिङ्गं ज्योतीरूपं शिवात्मकम् ।
विहाय बाह्यलिङ्गस्था विमूढा इति कीर्तिताः ॥ ९ ॥

अत्र बाह्यलिङ्गमिष्टलिङ्गातिरिक्तप्राकृतलिङ्गपरम्, इष्टलिङ्गस्य चिदानन्दघनत्वेनान्तरत्वादिति भावः ॥ ९ ॥

शिवात्मक ज्योतिस्वरूप तथा अपन भीतर स्थित उत्कृष्ट लिङ्गकेँ छोड़ि बाह्य लिङ्गमे आस्था रखनिहार मूर्ख कहल गेल अछि ॥ ९ ॥

तस्माद् बाह्यलिङ्गविमुखः सन् चिल्लिङ्गपरामर्श्येव प्राणलिङ्गीत्याह–

संविल्लिङ्गिपरामर्शी बाह्यवस्तुपराङ्मुखः ।
यः सदा वर्तते योगी प्राणलिङ्गी स उच्यते ॥ १० ॥

बाह्यवस्तुशब्देन बाह्यलिङ्गं तत्पूजासाधनीभूतद्रव्यं च कथ्यते । तत्र विमुखः सन् सदा निरन्तरं संविल्लिङ्गपरामर्शी अभ्यन्तरे चिद्रूपप्राणलिङ्गविचारवान् यः शिवयोगी वर्तते, स शिवयोगी प्राणलिङ्गीति कथ्यत इत्यर्थः ॥ १० ॥

जे संवित् रूपी लिङ्गक बारम्बार ध्यान करैत छथि एवं बाहरी वस्तुसँ पराङ्मुख भए व्यवहार करैत छथि से योगी प्राणलिङ्गी कहबैत छथि ॥ १० ॥

ननु बाह्यलिङ्गादौ वैमुख्यं किंनिबन्धनमित्यत्राह–

मायाविकल्पजं विश्वं हेयं सञ्चिन्त्य नित्यशः ।
चिदानन्दमये लिङ्गे विलीनः प्राणलिङ्गवान् ॥ ११ ॥

विश्वं मायाविकल्पजं मायिकगुणभेदसञ्जातमिति हेयं त्यजनीयमिति सञ्चिन्त्य सम्यग् विभाव्य नित्यशः सदा चिदानन्दमये सच्चिदानन्दरूपे लिङ्गे प्राणलिङ्गे विलीनो मनोलयवान् प्राणलिङ्गवानिति कथ्यत इत्यर्थः ॥ ११ ॥

प्रतिदिन संसारकेँ मायावी सभसँ निर्मित त्याज्य बुझैत चिदानन्दमय लिङ्गमे सदा लीन रहएवाला प्राणलिङ्गी होइत छथि ॥ ११ ॥

ननु चिल्लिङ्गस्य नादबिन्दुकलातीतत्वात् प्राणस्य नादबिन्दुकलारूपत्वात् कथं तस्य पीठरूपत्वं सम्भवतीति शङ्कां शमयन् प्राणलिङ्गिस्थलं समापयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्ता प्राणमयी शक्तिः सद्रूपं प्राणलिङ्गकम् ।
तत्सामरस्यविज्ञानात् प्राणलिङ्गीति कथ्यते ॥ १२ ॥

सतो भवः सत्तेति, अस्मीत्युत्तमपुरुषान्तर्गतस्फूर्तिरेव चिल्लिङ्गस्य प्राणमयी जीवनभूता शक्तिः, तादृशस्फुरणाभावे जडत्वप्रसङ्गात्, सद्रूपं तादृशस्फुरणवदुक्तपुरुषमयं प्राणलिङ्गमित्यर्थः । तत्सामरस्यविज्ञानात् तयोः शिवशक्त्योरन्योन्यसामरस्यविज्ञानात् प्राणलिङ्गीति कथ्यत इत्यर्थः ॥ १२ ॥

'हम छी' एहि तरहक अनुभव स्वरूपा सत्ता प्राणमयी शक्ति थिकीह आ प्राणलिङ्गस्वरूप शिव 'सत्' स्वरूप छथि । एहि दुनूक समरसताक विशिष्ट ज्ञान रखबाक कारण व्यक्ति प्राणलिङ्गी कहबैत छथि ॥ १२ ॥

इति प्राणलिङ्गिस्थलम्

अथ प्राणलिङ्गार्चनस्थलम्

अथ प्राणलिङ्गिना विधीयमानसकलयोगशास्त्रप्रसिद्धप्राणलिङ्गार्चनप्रकारं सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

अन्तर्गतं चिदाकारं लिङ्गं शिवमयं परम् ।
पूज्यते भावपुष्पैर्यत् प्रणलिङ्गार्चनं हि तत् ॥ १३ ॥

हृत्कमलगतं चिदाकारं घटस्य कम्बुग्रीवादिमत्त्वमिव चित्स्फुरणमाकारं स्वरूपं यस्य तादृशं परं सर्वोत्कृष्टं यत् शिवमयं लिङ्गं शिवस्वरूपविश्वप्राणलिङ्गं भवपुष्पैरन्तःकरणवृत्तिविशेषैः पूज्यते, तत् प्राणलिङ्गार्चनमिति हि प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ १३ ॥

हृदयकमलक अन्तर्गत जे चित्स्वरूप शिवमय उत्तम लिङ्ग छथि, तनिक भावात्मक फूलसँ जे पूजा कएल जाइत अछि से प्राणालिङ्गार्चन थिक ॥ १३ ॥

अथ कुत्र पूजनीयमित्यत्र प्राणलिङ्गाश्रयभूतोर्ध्वहृत्कमलं वर्णयित्वा भावपुष्पैः पूजयनीयमित्याह–

अन्तःपवनसंस्पृष्टे सुसूक्ष्माम्बरशोभिते ।
मूर्धन्यचन्द्रविगलत्सुधासेकातिशीतले ॥ १४ ॥
बद्धेन्द्रियनवद्वारे बोधदीपे हृदालये ।
पद्मपीठे समासीनं चिल्लिङ्गं शिवविग्रहम् ।
भावयित्वा सदाकालं पूजयेद् भाववस्तुभिः ॥ १५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्तःपवनसंस्पृष्टे प्राणवायुव्याप्ते सुसूक्ष्माम्बरशोभिते अतिसूक्ष्माकाशविलसिते ब्रह्मरन्ध्रगतपूर्णचन्द्रमण्डलस्रवत्सुधासेकेनातिशीतले प्रतिबद्धश्रोत्रादिपञ्चेद्रियनवद्वारे शिवज्ञानप्रदीपे ऊर्ध्वहृदयसदने पद्मपीठे द्वादशदलकमलकर्णिकायां समासीनं विद्यमानं शिवविग्रहं मङ्गलमूर्त्तिं चिल्लिङ्गं प्राणलिङ्गं भावयित्वा गुरूपदिष्टप्रकारेण ध्यात्वा भाववस्तुभिर्मानसिकपदार्थैः सदा पूजयेदित्यर्थः ॥ १४-१५ ॥

प्राणवायुसँ भरल सूक्ष्म आकाशसँ सुशोभित सहस्रार (मस्तकस्थित सहस्रदलकमल)मे स्थित चन्द्रमासँ चुबैत अमृतसँ सींचल शीतल आ बान्हल नओ इन्द्रियक द्वारवाला बोधदीपसँ युक्त जे हृदय तकर अन्दर स्थित कमल पर विराजमान चित्स्वरूप शिवक भावना कए सतत भावात्मक (हृदयमे कल्पित वस्तु (कल्पित फूल चानन आदि)सँ हुनक पूजा करबाक चाही ॥ १४-१५ ॥

अथ तानि वस्तूनि कानीत्यत्राह–

क्षमाऽभिषेकसलिलं विवेको वस्त्रमुच्यते ।
सत्यमाभरणं प्रोक्तं वैराग्यं पुष्पमालिका ॥ १६ ॥
गन्धः समाधिसम्पत्तिरक्षता निरहङ्कृतिः ।
श्रद्धा धूपो महाज्ञानं जगद्भासि प्रदीपिका ॥ १७ ॥
भ्रान्तिमूलप्रपञ्चस्य निवेद्यं तन्निवेदनम् ।
मौनं घण्टापरिस्पन्दस्ताम्बूलं विषयार्पणम् ॥ १८ ॥
विषयभ्रान्तिराहित्यं तत्प्रदक्षिणकल्पना ।
बुद्धेस्तदात्मिका शक्तिर्नमस्कारक्रिया मता ॥ १९ ॥
एवंविधैर्भावशुद्धैरुपचारैरदूषितैः ।
प्रत्युन्मुखमना भूत्वा पूजयेल्लिङ्गमान्तरम् ॥ २० ॥

क्षमैवाभिषेकोदकम्, नित्यानित्यवस्तुविवेक एव वसनम्, सत्यमनन्नृतवचनमाभरणम्, वैराग्यम् इहामुत्रफलभोगविराग एव कुसुममालिका, चित्तैकाग्रतैव गन्धः, निरहङ्कार एवाक्षताः, विश्वास एव धूपः, विश्वप्रकाशकं महाज्ञानं दीपः । अत्र भ्रान्तिशब्देनाज्ञानं लक्ष्यते, नाहमीश्वर इत्यज्ञानस्य मूलप्रपञ्चस्य शरीराद्यहङ्कारवर्गस्य यन्निवेदनं तन्नैवेद्यम्, मौनं घण्टानादः, तस्य अनाहतनादानुसन्धानहेतुत्वात् । विषयाणां मातृमानमेयात्मकानां फेनादेस्तरङ्गद्वारा समुद्रैकलोलीभाव इव मेयं माने मानं मातरि तं परमप्रमातरि ज्योतिर्लिङ्गे लयचिन्तनमेव

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूगपर्णचूर्णात्मकताम्बूलसमर्पणमित्यर्थः । विषयाणां शब्दादीनां शिवापेक्षया भेदभ्रान्तिराहित्यं प्रदक्षिणम्, बुद्धेस्तदात्मिका लिङ्गरूता शक्तिः सामर्थ्यं बुद्धिवृत्तेर्लिङ्गे लय इत्यर्थः, स च नमस्कारः एवंविधैर्भावशुद्धैरनिन्दितैरुपचारैरबहिर्मुखमनाः सन् आन्तरं चिल्लिङ्गं प्राणलिङ्गं पूजयेदित्यर्थः ॥ १६-२० ॥

एहि (मानस पूजा) लेल क्षमा अभिषेक जल, विवेक वस्त्र, सत्य गहना, वैराग्य फूलक माला, समाधि चानन, अहंकारशून्यता अच्छत, श्रद्धा धूप, महाज्ञान संसारप्रकाशक दीप, मूलप्रपञ्चकेँ भ्रम मानब नैवेद्य, मौन घण्टावाद्य, काम-क्रोधआदिक त्याग ताम्बूल, विषयभ्रमक दूरीकरण प्रदक्षिणा तथा बुद्धिवृत्तिक लिङ्गमे लय भेनाइ केँ नमस्कार कहल गेल अछि । एहि तरहक दोषरहित भावशुद्ध पूजासामग्रीक द्वारा अन्तर्मुख भए शिवक आन्तर (हृदयस्थ) पूजा करबाक़ चाही ॥ १६-२० ॥

इति प्राणलिङ्गार्चनस्थलम्

अथ शिवयोगसमाधिस्थलम्

अथ 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'[१] इति योगसूत्रानुसारेण प्राणलिङ्गार्चनलभ्य-शिवयोगसमाधिस्थलं निरूपयति-

अन्तःक्रियारतस्यास्य प्राणलिङ्गार्चनमक्रमैः ।
शिवात्मध्यानसम्पत्तिः समाधिरिति कथ्यते ॥ २१ ॥

प्राणलिङ्गार्चनक्रमैः पूर्वोक्तप्राणलिङ्गार्चनप्रकारैः, अन्तरङ्गक्रियातत्परस्यास्य प्राणलिङ्गिनः शिवात्मध्यानसम्पत्तिः लिङ्गाङ्गरूपशिवजीवसमानसामरस्या-नुसन्धानसम्पत्तिरेव समाधिरित्यर्थः ॥ २१ ॥

प्राणलिङ्गार्चनक क्रमसँ आभ्यन्तरपूजामे लागल प्राणलिङ्गी व्यक्तिकेँ जे शिवध्यान-सम्पत्तिक प्राप्ति होइत छनि से समाधि कहबैछ ॥ २१ ॥

तत्कथमित्यत्र- 'योऽसावसौ पुरुषः सोऽहम्' इति श्रुत्यनुसारेणाजपा-गायत्रीरूपशिवयोगेन समाधिं कथयति-

सर्वतत्त्वोपरिगतं सच्चिदानन्दभासुरम् ।
स्वप्रकाशमनिर्देश्यमवाङ्मनसगोचरम् ॥ २२ ॥

---

१. पा०यो०सू० १।२

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपाख्यया महाशक्त्या दीपितं चित्स्वरूपया ।
हंसरूपं परात्मानं सोऽहंभावेन भावयेत् ।
तदेकतानतासिद्धिः समाधिः परमो मतः ॥ २३ ॥

सर्वतत्त्वोपरिगतं भूम्यादिशिवान्तषट्त्रिंशत्तत्त्वोत्तीर्णत्वेन विद्यमानं सच्चिदानन्दरूपेण प्रकाशमानम्, 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'[1] इति श्रुतेर्वाङ्मनोमार्गातीतम् अत एवेदमेतादृगिति लक्षितुमशक्यं प्रत्यक्षादिमानान्तरागम्यं शुक्लपटन्यायेन स्वसमवेतस्फुरणरूपोमाख्यमहाशक्तिप्रदीपितं हंसरूपं परमात्मानं सोऽहंभावेन स एवाहमिति भावेन भावयेत् । तदेकतानतासिद्धिः तयोर्जीवेश्वरयोरेकत्वसिद्धिः, परमः समाधिः उत्कृष्टसमाधिरिति मतं सम्मतमित्यर्थः । तच्छब्दवाच्यस्य षडध्वोत्तीर्णत्वेन सूतसंहितोक्तेः, अकारादिहकारान्तवर्णाध्वपाशबद्धस्य जीवात्मनश्च 'अहमस्मि प्रथमजा'[2] इति, 'अहमादिर्हि देवानाम्'[3], 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते'[4] इत्यादिप्रमाणबलात् 'अकारः शिव आख्यातो हकारः शक्तिरुच्यते'[5] इतिवक्ष्यमाणप्रकारेण षडध्वकारणीभूतानाहतनादलक्षणपरावाक्शक्तिमयास्मद्रूपसमाविष्टात्मकत्वानतिरिक्तत्वेन तादात्म्यचिन्तनं समाधिरिति भावः ॥ २२-२३ ॥

पृथिवी आदि सकल छत्तीस तत्त्वसँ ऊपर, सत् चित् आनन्द स्वरूपमे चमकैत, स्वयंप्रकाश, अनिर्देश्य (जनिका देखाओल नहि जा सकैछ), वाणी ओ मनक पकड़सँ बाहर, उमानामक महाशक्ति जे चित्स्वरूप होइछ ताहिसँ प्रकाशित, हंसरूप परमात्माक सोऽहम्, अर्थात् सैह परब्रह्म हम छी एहि प्रकारक भावसँ चिन्तन करक चाही । एहन भावनाक एकतान (एकमात्र ओकरे, आन कथूक नहि) परम समाधि कहल गेल अछि ॥ २२-२३ ॥

अथ-

प्राणरूप इह जीव उच्यते लिङ्गरूप इति शङ्करः स्मृतः ।
यस्तदैक्यमिति वेदितानयोः प्राणिलिङ्गविदसौ शिवयोगी ॥

इति शङ्करसंहितावचनानुसारेण समाधिस्थस्य लक्षणमाह-

परब्रह्म महालिङ्गं प्राणो जीवः प्रकीर्तितः ।
तदेकभावमननात् समाधिस्थः प्रकीर्तितः ॥ २४ ॥

---

१. तै०उ० २।४।१ २. तै०उ० ३।१०.६ ३. भ०गी० १०।२
४. भ०गी० १०।८ ५. सि०शि० २०।३९

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महालिङ्गमेव परब्रह्म परब्रह्माख्यपरशिवतत्त्वमिति प्रोक्तम्, 'प्राणारूढो भवेज्जवीः' इत्यागमोक्तेः प्राणः 'प्राण एव जीव' इति प्रोक्तः। तदेकभावमननाद् लिङ्गप्राणमधिकृत्य विद्यमानयोर्लिङ्गाङ्गिनोः शिवजीवयोः समानसमरसैक्यचिन्तावान् समाधिस्थः शिवयोगसमाधिनिष्ठ इति प्रकीर्तित इत्यर्थः ॥ २४ ॥

परब्रह्मकेँ महालिङ्ग ओ प्राणकेँ जीव कहल गेल अछि। एहि दुनूकेँ एक ओ अभिन्न माननिहार व्यक्ति समाधिस्थल कहल गेल छथि ॥ २४ ॥

अथ 'गुदमवष्टभ्याधाराद्वायुमुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मणिपूरकं गत्वा अनाहतमतिक्रम्य विशुद्धौ प्राणलिङ्गं निरुध्य आज्ञामनुध्यायन् ब्रह्मरन्ध्रं ध्यायन् त्रिमात्रोऽहमिति सर्वदा ध्यायेत्'[1] इति हंसोपनिषद्वचनानुसारेण सकलसमाधिं प्रकाशयति–

अन्तः षट्चक्ररूढानि पङ्कजानि विभावयेत्।
ब्रह्मादिस्थानभूतानि भ्रूमध्यान्तानि मूलतः ॥ २५ ॥
भ्रूमध्यादूर्ध्वभागे तु सहस्रदलमम्बुजम्।
भावयेत्तत्र विमलं चन्द्रबिम्बं तदन्तरे ॥ २६ ॥
सूक्ष्मरन्ध्रं विजानीयात् तत्कैलासपदं विदुः।
तत्रस्थं भावयेच्छम्भुं सर्वकारणकारणम् ॥ २७ ॥

अन्तः जीवेश्वराश्रयीभूतसूक्ष्मशरीरमध्ये, षट्चक्ररूढानि षट्चक्रोत्पन्नानि पङ्कजानि षट्कमलानि मूलतः आधारमारभ्य भ्रूमध्यान्तानि आज्ञाचक्रान्तानि ब्रह्मादिस्थानभूतानि भावयेद् गुरूपदिष्टप्रकारेण चिन्तयेत्। भ्रूमध्यादूर्ध्वभागे तु ब्रह्मरन्ध्र इत्यर्थः, सहस्रदलमम्बुजं सहस्रशक्तिदलालङ्कृतकमलं भावयेत्। तत्र तत्कमलमध्ये विमलं निर्मलं चन्द्रबिम्बं सोममण्डलं भावयेत्। एतदन्तरे तच्चन्द्रमण्डलमध्ये सूक्ष्मरन्ध्रं वालाग्रसमानातिसूक्ष्मरन्ध्रं विजानीयात् उपदेशाज्जानीयात्। तत् तत्सूक्ष्मरन्ध्रं कैलासपदं कैलासस्थानं सद् विदुः शास्त्रज्ञा जानीयुः। तत्रस्थं शम्भुं शिवं सर्वकारणकारणं ब्रह्मादिकारणेशानामपि कारणीभूतं सन्तं भावयेत् स्वात्माभेदेन ध्यायेदित्यर्थः ॥ २५-२७ ॥

शिवभक्त अपना भीतर छओ चक्र (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा) पँर स्थित छओ कमलक (४,६,१०,१२,१६,२ दल) भावना करथि। ई मूलाधारसँ भ्रूमध्य (मूलाधार, लिंगमूल, नाभि, हृदय,

१. हंसोपनिषत्- ४

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कण्ठ, भ्रूमध्य) धरि स्थित अछि आ ब्रह्मा (विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, शिव+शक्ति) आदिक स्थान थिक । भ्रूमध्य सँ ऊपर भागमे सहस्रदल कमलक भावना करथि । तकर भीतर चन्द्रमण्डलक ध्यान करथि । ओकर भीतर सूक्ष्म छिद्रक भावना करथि जकरा कैलासस्थान कहल गेल अछि । ओहि पर सकल कारणक कारण शम्भु बैसल छथि –एहन भावना करक चाही ।। २५-२७ ।।

अथाधारस्वाधिष्ठानगतपृथ्वीजलसङ्घट्टे मणिपूरकाख्य-नाभिकन्दमुत्पत्य तदनुद्भूतानाहताख्यहृदयद्वादशदलकमले तापिन्यादिद्वदशकलायुक्तसूर्यमण्डलं भाति । तदुपरि षेडशदलयुक्तविशुद्धकमले अमृतादिषोडशकलायुक्तचन्द्रमण्डलं विभाति । तदुपरि द्विदलयुक्ताज्ञाचक्रे ज्वालिन्यादिदशकलात्मकवह्निमण्डलं प्रकाशते । तदुपरि सहस्रदलालङ्कृतब्रह्मचक्रे तदष्टात्रिंशत्कलोपेतकुण्डलीमण्डलोपरि लिङ्गाङ्गसामरस्य-लक्षणशिवयोगसमाधिसम्पन्नस्य प्राणलिङ्गिनः शिवानन्दव्यतिरेकेण मायिक-सुखानुभवो नास्तीति सूत्रद्वयेनाह–

बहिर्वासनया विश्वं विकल्पार्थं प्रकाशते ।
अन्तर्वासितचित्तानामात्मानन्दः प्रकाशते ॥ २८ ॥

इदमिति बहिर्मुखेन संस्कारेण सर्वं जगत् सङ्कल्पविकल्पार्थं प्रकाशते । अहमित्यन्तर्मुखे परिमिलितचित्तानाम् आत्मानन्दः शिवानन्द एव प्रकाशत इत्यर्थः ॥ २८ ॥

बाहरी वासनाक कारण विकल्पात्मक विषयवाला संसार प्रकाशित होइत अछि । मुदा, जनिक चित्त अन्तर्मुखी छनि तनिका आत्मानन्दक साक्षात्कार होइत छनि ।। २८ ।।

ननु बहिर्वासना कथं गच्छतीति तत्राह–

आत्मारणिसमुत्थेन प्रमोदमथनात् सुधीः ।
ज्ञानाग्निना दहेत् सर्वं पाशजालं जगन्मयम् ॥ २९ ॥

सुधीः प्राणलिङ्गी प्रमोदमथनात् शिवसुखस्य विचाराद् आत्मारणिसमुत्थेन ज्ञानाग्निना शिवाभेदाग्निना सर्वं जगन्मयं मलमायादिपाशसमूहं दहेद् भस्मीकुर्या-दित्यर्थः ॥ २९ ॥ १ ॥

साधक शिवानन्दरूपी विचारमन्थनक द्वारा आत्मरूपी अरणि (अग्निक

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उद्भावक काष्ठ)सँ उत्पन्न ज्ञानरूपी अग्निक द्वारा संसाररूपी सम्पूर्ण पाशजालकेँ दग्ध कए देथि ।। २९ ।।

अथ शिवध्यानमहत्त्वं सूत्रद्वयेन कथयन् शिवयोगसमाधिस्थलं समापयति–

संसारविषवृक्षस्य पञ्चक्लेशपलाशिनः[1] ।
छेदने कर्ममूलस्य परशुः शिवभावना ।। ३० ।।

धर्माधर्मलक्षणकर्ममूलस्य अविद्यादिपञ्चक्लेशलक्षणपर्णवतो जननमरणलक्षणसंसारविषवृक्षस्य छेदने शिवध्यानमेव परशुरित्यर्थः ।। ३० ।।

कर्मसँ उत्पन्न ई संसार विषक गाछ थिक । एकर पाँच टा पात अछि पञ्चक्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष ओ अभिनिवेश) । एकरा कटबाक लेल शिवभावना कुरहरि थिक ।। ३० ।।

अज्ञानराक्षसोन्मेष-कारिणः संहृतात्मनः ।
शिवध्यानं तु संसार-तमसश्चण्डभास्करः ।। ३१ ।।

अज्ञानलक्षणराक्षसनयनोन्मीलनकारिणो निबिडतरसंसारान्धकारस्य शिवध्यानं चण्डभास्करः प्रचण्डमार्तण्ड इत्यर्थः ।। ३१ ।।

संसाररूपी अन्धकार जे अज्ञानरूपी राक्षसकेँ जगाबए वाला एवं आत्माकेँ आच्छादित करएवाला थिक, तकरा दूर करबाक लेल शिवक ध्यान प्रचण्डसूर्यक समान अछि ।। ३१ ।।

इति शिवयोगसमाधिस्थलम्

अथलिङ्गनिजस्थलम्

अथैवंविधशिवयोगसम्पन्नस्य प्रत्यक्षीभूतलिङ्गनिजस्थलं निरूपयति–

स्वान्तस्थशिवलिङ्गस्य प्रत्यक्षानुभवस्थितिः ।
यस्यैव परलिङ्गस्य निजमित्युच्यते बुधैः ।। ३२ ।।

स्वात्मनि तादात्म्येन स्थितस्य शिवलिङ्गस्य यया प्रत्यक्षानुभवस्थिति-र्देशकालाकारकृतसङ्कोचाभावेन सामान्यतोऽहमिति प्रत्यक्षानुभवस्थितिरस्ति, सैव परलिङ्गस्य महालिङ्गस्य निजमिति निजस्वरूपमिति बुधैरात्मतत्त्वज्ञानिभिरुच्यते कथ्यत इत्यर्थः ।। ३२ ।।

---

१. अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः (पा०यो०सू० २ । ३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिङ्गनिजस्थल– जनिका अपन अन्तस्थित जाही शिवलिङ्गक प्रत्यक्ष अनुभव होमए लगैत छनि तनिका लेल सहए परलिङ्ग निज कहबैत अछि ॥ ३२ ॥

अथ तत्स्वरूपं सूत्रद्वयेन प्रकटयति–

ब्रह्मविष्ण्वादयो देवाः सर्वे वेदादयस्तथा ।
लीयन्ते यत्र गम्यन्ते तल्लिङ्गं ब्रह्म केवलम् ॥ ३३ ॥

ब्रह्माविष्णुप्रभृतिदेवा वेदागमपुराणादिशब्दसमूहाश्च यत्र लयं गच्छन्ति पुनः प्रकाशयन्ति, तद् लिङ्गं लिङ्गशब्दाभिधेयं केवलं ब्रह्म ब्रह्मैवेत्यर्थः ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा वष्णु आदि सकल देवता ओ वेद, वेदाङ्ग आदि जाहिमे लीन होइत छथि तथा पुनः उत्पन्न होइत छथि से लिङ्ग केवल ब्रह्म थिक ॥ ३३ ॥

ननु लिङ्गशब्दाभिधेयं विश्वोत्पत्तिलयस्थानं ब्रह्मैव चेत्, तच्छिवस्वरूपं वा तद्व्यतिरिक्तं वेत्यत्राह–

चिदानन्दमयः साक्षाच्छिव एव निरञ्जनः ।
लिङ्गमित्युच्यते नान्यद् यतः स्याद्विश्वसम्भवः ॥ ३४ ॥

यतो ब्रह्मस्वरूपलिङ्गाद् विश्वसम्भवो विश्वोत्पत्तिः स्यात्, तल्लिङ्गं ब्रह्मस्वरूपलिङ्गं चिदानन्दमयः सच्चिदानन्दस्वरूपः, निरञ्जनः दोषरहितः, साक्षात् प्रत्यक्षीभूतः शिव एवेत्युच्यते, नान्यत्, अन्यद्वस्तु नोच्यत इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

चिदानन्दमय निरञ्जन साक्षात् शिवे लिङ्ग कहल जाइत छथि । हुनके सँ संसारक उत्पत्ति होइत अछि ॥ ३४ ॥

अथ निष्कर्षमाह–

बहुनात्र किमुक्तेन लिङ्गमित्युच्यते बुधैः ।
शिवाभिधं परं ब्रह्म चिद्रूपं जगदास्पदम् ॥ ३५ ॥

अत्र अस्मिन् विषये बहुभाषणेन किम् ? जगदाधारभूतस्फुरणस्वभावं परब्रह्मैव शिवाभिधं परशिवाभिधानं लिङ्गं निलजिङ्गमिति बुधैः शास्त्रज्ञैरुच्यत इत्यर्थः ॥ ३५ ॥

बहुत कहबाक की काज ? शिव नामक परब्रह्म जे चिद्रूप तथा संसारक आधार छथि, सएह विद्वानलोकनिक द्वारा लिङ्ग कहल जाइत छथि ॥ ३५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मायिकवेदान्तमतसिद्धं लिङ्गं निजलिङ्गं न भवतीति सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति–

वेदान्तवाक्यजां विद्यां लिङ्गमाहुस्थाऽपरे ।
तदसज्ज्ञेयरूपत्वाल्लिङ्गस्य ब्रह्मरूपिणः ॥ ३६ ॥

वेदान्तवाक्यजां 'प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादिवेदान्तवाक्यप्रकाशितां विद्यां तथा तत्प्रकाशकं निजलिङ्गं सद् अपरे वेदान्तज्ञानिन आहुः, तत् तद्वेदान्तवाक्यप्रकाशितज्ञानलिङ्गं ब्रह्मरूपिणः परब्रह्मस्वरूपिणो लिङ्गस्य ज्ञेयरूपत्वाद् निजलिङ्गरूपचिदहं प्रकाशवेद्यत्वात्, असद् अप्रशस्तमित्यर्थः, प्रमाणानां प्रमातृभित्तिलग्नत्वेनैव प्रमेयप्रकाशकत्वनियमात्, अन्यथा बौद्धमतप्रवेशापत्तेः, ब्रह्मलिङ्गस्य प्रमेयपदप्रविष्टत्वेन प्रमात्रन्तर-सापेक्षत्वादिति ॥ ३६ ॥

किछु व्यक्ति 'तत् त्वमसि' इत्यादि वेदान्तवाक्य सँ उत्पन्न ज्ञानकेँ लिङ्ग कहैत छथि, तनिक कहब असंगत छनि, कारण, ब्रह्मरूपी लिङ्ग ज्ञेय छथि आ हुनक कथनक ब्रह्म ज्ञेय नहि भए वाणी ओ मनसँ अगोचर छथि ॥ ३६ ॥

अथ मतान्तरं निराकरोति–

अव्यक्तं लिङ्गमित्याहुर्जगतां मूलकारणम् ।
लिङ्गी महेश्वरश्चेति मतमेतदसङ्गतम् ॥ ३७ ॥

जगतां मूलकारणमव्यक्तं मायातत्त्वं लिङ्गमित्याहुः, महेश्वरो लिङ्गी चेति लिङ्गवानित्याहुः । एतन्मतम् 'मायां तु प्रकृतिं विन्द्यान्मायिनं तु महेश्वरम्'[1] इति श्वेताश्वतराणां मतम्, असङ्गतं प्राणलिङ्गिनामसम्मतम्, प्रकृतेर्जडत्वेन हेयकोटिप्रविष्टत्वादिति ॥ ३७ ॥

केओ-केओ संसारक मूल कारण अव्यक्त तत्त्वकेँ लिङ्ग कहैत छथि तथा महेश्वरकेँ लिङ्गी मानैत छथि । इहो मत असंगत थिक, कारण, प्रकृति जड़ थिक आ तेँ त्याज्य थिक, किन्तु शैवमतमे परमेश्वरक शक्ति चेतन अछि ॥ ३७ ॥

अथ– न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

१. श्वे०उ० ४।१०

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेण प्राणलिङ्गिनां सम्मतं निजलिङ्गस्वरूपं सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति–

न सूर्यो भाति तत्रेन्दुर्न विद्युन्न च पावकः ।
न तारका महालिङ्गे द्योतमाने परात्मनि ॥ ३८ ॥

परात्मनि परमात्मनि महालिङ्गे द्योतमाने सति तत्र तस्मिन् महाप्रकाशे न सूर्यः सूर्यो न भाति, नेन्दुः चन्द्रो न भाति, पावको न भाति, विद्युच्च न भाति, नक्षत्राणि च न भान्ति ॥ ३८ ॥

ओहि परमात्मा लिङ्गक प्रकाशमान भेला पर ने सूर्य प्रकाशित होइत छथि, ने चन्द्रमा, ने विद्युत्, ने अग्नि आ ने तरेगने चमकैत छथि ॥ ३८ ॥

तर्हि तेषा भासनं कथमित्यत्राह–

ज्योतिर्मयं परं लिङ्गं श्रुतिराह शिवात्मकम् ।
तस्य भासा सर्वमिदं प्रतिभाति न संशयः ॥ ३९ ॥

शिवात्मकं परं लिङ्गं महालिङ्गमेव ज्योतिर्मयमन्यानपेक्षप्रकाशरूपम् । तस्मात् तस्य भासा ज्योतिर्लिङ्गप्रकाशेनैव इदं सर्वं सूर्यचन्द्रादिकं सर्वं प्रतिभाति । अत्र सन्देहो नास्तीति कठवल्लीश्रुतिराहेत्यर्थः । अयं भावः– वह्न्यर्कसोमानां मातृमानमेयात्मकत्रिपुटीमयप्रपञ्चरूपत्वाद् एतेषां प्रकाशो महालिङ्गप्रकाशाधीन इति सिद्धत्वेन पुनस्तन्महालिङ्गं वेदान्तजन्यज्ञानप्रकाश्यमित्यङ्गीकृतं चेत्, पराधीनप्रकाशत्वेनात्यन्तजडत्वप्रसङ्गात् । अप्रमेयं स्वप्रकाशं वस्तु निजलिङ्गशब्दार्थः । अस्मन्मते निगमागमादिप्रमाणानां स्वशक्तिमयत्वेन स्वसंवेद्यत्वान्न दोष इति ॥ ३९ ॥

श्रुति त शिवात्मक परलिङ्गकेँ ज्योतिर्मय कहैत अछि । ओही परलिङ्गक प्रकाशसँ ई सम्पूर्ण संसार प्रकाशित भए रहल अछि, एहिमे सन्देह नहि ॥ ३९ ॥

अथ सूत्रद्वयेन लिङ्गमहत्त्वमुक्त्वा निजलिङ्गस्थलं समापयति–

लिङ्गान्नास्ति परं तत्त्वं यदस्माज्जायते जगत् ।
यदेतद्रूपतां धत्ते यदत्र लयमश्नुते ॥ ४० ॥

यत्र लिङ्गे यतो यस्मात् कारणाद् यज्जगज्जायते उत्पद्यते, यज्जगद् एतद्रूपतां स्थितिरूपतां धत्ते दधाति, यज्जगद् लयं संहारम् अश्नुते अनुभवति,

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्मात् कारणाद् अस्मालिङ्गाद् अन्यानपेक्षभासमानस्वप्रकाशमयनिजलिङ्गात् परं तत्त्वं नास्ति ॥ ४० ॥

लिङ्गसँ पैघ कोनो तत्त्व नहि अछि, कियेक तँ एहीसँ संसारक उत्पत्ति होइत अछि । ओही लिङ्गमे संसार एहि रूपमे स्थित होइत अछि आ ओहीमे विलीन भए जाइछ ॥ ४० ॥

तस्माल्लिङ्गं परं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ।
निजरूपमिति ध्यानात् तदवस्था प्रजायते ॥ ४१ ॥

तस्मात् सच्चिदानन्दस्वरूपं परब्रह्मैव निजरूपं लिङ्गमिति ध्यानात् चिन्तनात् तदवस्था लिङ्गमेव निजमित्यवस्था प्रजायते प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ४१ ॥

तेँ सत् चित् आनन्दस्वरूप ब्रह्मे लिङ्ग थिकाह ॥ 'उवेह अपन रूप थिक' एहन ध्यान कएला सँ निजलिङ्गावस्था उत्पन्न होइत अछि ॥ ४१ ॥

इति लिङ्गनिजस्थलम्

अथाङ्गलिङ्गस्थलम्

अथ लिङ्गनिजाङ्गिनमङ्गलिङ्गिनं सूत्रद्वयेन निरूपयति—

ज्ञानमङ्गमिति प्राहुर्ज्ञेयं लिङ्गं सनातनम् ।
विद्यते तद्द्वयं यस्य सोऽङ्गलिङ्गीति कीर्तितः ॥ ४२ ॥

ज्ञानं शिवज्ञानवान् जीवः, अङ्गम् अङ्गमिति प्राहुरित्यर्थः । ज्ञेयं तेन शिवज्ञानवतानेन साक्षात्करणीयं वस्तु सनातनं नित्यं लिङ्गमिति प्राहुः, 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया"[१] इति श्रुतेः । एतद्द्वयम् अङ्गलिङ्गद्वयं यस्य प्राणलिङ्गिनो वर्तते, सोऽङ्गलिङ्गी कीर्तित इत्यर्थः ॥ ४२ ॥

अङ्गलिङ्गस्थल— विद्वानलोकनि ज्ञानकेँ अङ्ग ओ ज्ञेयकेँ सनातन लिङ्ग कहैत छथि । एहि दुनूक ज्ञान जनिका छनि से अङ्गलिङ्गी कहल गेल छथि ॥ ४२ ॥

अथैवं चेद् भेदवादिमतप्रवेशो जात इत्यत्राह—

अङ्गे लिङ्गं समारूढं लिंङ्गे चाङ्गमुपस्थितम् ।
एतदस्ति द्वयं यस्य स भवेदङ्गलिङ्गवान् ॥ ४३ ॥

---

१. मुं० उ० ३ । १ । १

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अङ्गे जीवात्मनि लिङ्गं शिवलिङ्गं समारूढं सामरस्येनास्ति, लिङ्गे शिवलिङ्गे अङ्गं जीव उपस्थितं सामरस्येनास्ति । एतद्द्वयं यस्यास्ति बीजाङ्कुरन्यायेनैवंविधज्ञानद्वयं यस्य प्राणलिङ्गिनोऽस्ति, सोऽङ्गलिङ्गवानित्यर्थः ॥ ४३ ॥

अंगमे लिङ्ग आरूढ़ अछि ओ लिङ्गमे अंग उपस्थित अछि । ई दुनू ज्ञान जनिका छनि से अङ्गलिङ्गवान् होइत छथि ॥ ४३ ॥

नन्वत्र ज्ञानमात्रमेव विवक्षितं किमित्यत्राह–

ज्ञात्वा यः सततं लिङ्गं स्वान्तःस्थं ज्योतिरात्मकम् ।
पूजयेद् भावयेन्नित्यं तं विन्द्यादङ्गलिङ्गिनम् ॥ ४४ ॥

यः प्राणलिङ्गी स्वान्तःस्थं स्वहृदयकमलस्थं ज्योतिरात्मकं ज्योतिर्मयं सततं नित्यं लिङ्गं निजलिङ्गं ज्ञात्वा सामरस्यरूपं श्रुतिगुरुस्वानुभवैर्विदित्वा पूजयेद् ध्यायेत् तं प्रालिङ्गिनं विन्द्याद् ज़ानीयादित्यर्थः ॥ ४० ॥

जे अपन अन्दर ज्योतिस्वरूप लिङ्गकेँ सतत जनैत नित्य पूजा करथि ओ ध्यान करथि, हुनका अङ्गलिङ्गी बुझक चाही ॥ ४४ ॥

अथ निजलिङ्गपर्यायनामान्युक्त्वा तत्र दृढ़चित्तवान् जीवन्मुक्त इति सूत्रत्रयेण कथयति–

ज्ञायते लिङ्गमेवैकं सर्वैः शास्त्रैः सनातनैः ।
ब्रह्मेति विश्वधामेति विमुक्तेः परमित्यपि ॥ ४५ ॥
मुक्तिरूपमिदं लिङ्गमिति यस्य मनःस्थितिः ।
स मुक्तो देहयोगेऽपि स ज्ञानी स महागुरुः ॥ ४६ ॥

एकं निजलिङ्गमेव परब्रह्मेति, जगदाधारमिति, परमुक्तिस्थानमिति, 'वाचा विरूपनित्यया' इति श्रुतेरारम्भविवक्षाध्यवसायोक्तिरूपेण शिवशक्तिमयत्वात् सनातनैः नित्यैः सर्वैः शास्त्रैः निगमागमादिप्रमाणैर्ज्ञायते, इदं निजलिङ्गं मुक्तिरूपं परमुक्तिस्वरूपमिति यस्य प्राणिलिङ्गिनो मनःस्थतिः, स देहयोगेऽपि मुक्तः पुनर्जन्मान्तराभावाज्जीवन्मुक्तः, स ज्ञानी, स एव शिवज्ञानवान्, स महागुरुः श्रीगुरुरित्यर्थः ॥ ४५-४६ ॥

एके लिङ्गकेँ समस्त सनातन शास्त्र ब्रह्म, विश्वधाम ओ मुक्तिपदक रूपमे जनैत अछि । 'ई लिङ्ग मुक्तिरूप थिक'– ई विषय जनिका मनमे छनि से देहसँ युक्त रहैतो जीवन्मुक्त छथि । सएह ज्ञानी ओ महागुरु होइत छथि ॥ ४५-४६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथैवं लिङ्गनिजज्ञानशून्यानां मुक्तिर्नास्तीत्याह–

अनादिनिधनं लिङ्गं कारणं जगतामिति ।
ये न जानन्ति ते मूढा मोक्षमार्गबहिष्कृताः ॥ ४७ ॥

अनादिनिधनम् उत्पत्तिविनाशरहितमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ४७ ॥

ई लिङ्ग अनादि ओ अनन्त रहैत संसारक कारण थिक, से जे नहि जनैत अछि से मूर्ख मोक्षमार्गसँ बहिष्कृत भए जाइछ ॥ ४७ ॥

अथ प्राणलिङ्गार्चनादिधर्मवान् प्राणलिङ्ग्येव ज्ञानपरिपाकवशात् शरण इत्यभिधानवानित्युक्त्वा प्राणलिङ्गिस्थलं समापयति–

यः प्राणलिङ्गार्चनभावपूर्वै-
धर्मैरुपेतः शिवभावितात्मा ।
स एव तुर्यः परिकीर्तितोऽसौ
संविद्विपाकाच्छरणाभिधानः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ प्राणलिङ्गिनः पञ्चस्थलप्रसङ्गो नाम द्वादशः परिच्छेदः ॥ १२ ॥



यः प्राणलिङ्गी प्राणिलिङ्गपूजाचारप्रमुखैः धर्मैः शिवाचारैः समेतः सन् लिङ्गरूपेण भाविताङ्गस्वरूपवान्, तुर्यः भक्तापेक्षया चतुर्थः, स एवासौ प्राणलिङ्गी ज्ञानपरिपाकवशात् शरण इत्यभिधानवानित्यर्थः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां प्राणलिङ्गि-पञ्चस्थलप्रसङ्गनामा द्वादशः परिच्छेदः ॥ १२ ॥



जे व्यक्ति प्राणलिङ्गार्चन भावपूर्वक धर्मसँ युक्त भए अपना अन्दर शिवक भावना करैत छथि सएह चतुर्थ अवस्था केँ प्राप्त कहबैत छथि आ संवित्परिपाक होएबाक कारण ओ शरणस्थल कहल जाइत छथि ॥ ४८ ॥

एहि तरहेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणिक प्राणलिङ्गिपञ्चस्थलप्रसङ्ग नामक बारहम परिच्छेदक विद्यावाचस्पति पं० शशिनाथ झाकृत प्रबोधिनी मैथिली व्याख्या समाप्त ॥



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रयोदशः परिच्छेदः

अथ शरणस्थलम्

अथागस्त्यप्रश्नः । अगस्त्य उवाचेति–

माहेश्वरः प्रसादीति प्राणलिङ्गीति बोधितः ।
कथमेष समादिष्टः पुनः शरणसंज्ञकः ॥ १ ॥

माहेश्वरः प्रसादीति बोधितः । प्राणलिङ्ग्येव पुनः कथं केन प्रकारेण शरणाभिधानवानित्यर्थः ॥ १ ॥

शरणस्थल– अगस्त्य बजलाह– माहेश्वर, प्रसादी ओ प्राणलिङ्गीकें तँ बुझाए देल । आब कहल जाओ जे इएह शरणस्थल किएक कहल जाइत छथि ॥ १ ॥

अस्य प्रश्नस्योत्तरं निरूपयति रेणुक उवाचेति–

अङ्गलिङ्गी ज्ञानरूपः सती ज्ञेयः शिवः पतिः ।
यत्सौख्यं तत्समावेशे तद्वान् शरणनामवान् ॥ २ ॥

ज्ञानरूपः शिवज्ञानमेव स्वरूपं यस्य स तादृशः, शिवज्ञानवानित्यर्थः । अङ्गलिङ्गी अङ्गलिङ्गसामरस्यवान् प्राणलिङ्गी सतीति ज्ञेयः । शिवः शिवलिङ्गमेव पतिः पतिरिति ज्ञेयः । तत्समावेशे तयोरङ्गलिङ्गरूपयोः स्त्रीपुरुषयोः समानसमरसरूपयोगे यत्सौख्यं 'यथा स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्'[१] इति बृहदारण्यकश्रुतिप्रसिद्धं यत्सौख्यमस्ति, तद्वान् तादृशसौख्यवान् शरणनामवानित्यर्थः ॥ २ ॥

रेणुकाचार्य बजलाह– ज्ञानस्वरूप अङ्गलिङ्गी सती थिकीह आ हुनक पति शिव छथि । एहि सती आ शिवक जे एकरूपता सुख अछि तकर

---

१. बृहदारण्यकोपनिषद्– ४ । ३ । २१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुभवकर्ता शरणस्थल कहल जाइत छथि ॥ २ ॥

अथ अस्यापि स्थलभेदोऽस्ति किमित्यत्राह–

स्थलमेतत्समाख्यातं चतुर्धा धर्मभेदतः ।
आदौ शरणमाख्यातं ततस्तामसवर्जनम् ॥ ३ ॥
ततो निर्देशमुद्दिष्टं शीलसम्पादनं ततः ।
क्रमाल्लक्षणमेतेषां कथयामि निशाम्यताम् ॥ ४ ॥

एतत्स्थलं शरणस्थलं धर्मभेदत आचारभेदात् चतुर्धा चतुर्विधमिति समाख्यातम् । आदौ शरणस्थलम्, तदनन्तरं तामसनिरसनस्थलम्, ततो निर्देशस्थलम्, अथ शीलसम्पादनस्थलम् उद्दिष्टमुपष्टिम् । एषां चतुर्णां लक्षणं क्रमाद् वदिष्यामि, श्रूयतामित्यर्थः ॥ ३-४ ॥

धर्मक भेदसँ ई स्थल चारि प्रकरक कहल गेल अछि । पहिल भेल शरणस्थल, दोसर तामस-निरसनस्थल, तेसर निर्देशस्थल ओ चारिम शीलसम्पादनस्थल होइत अछि । आब क्रमसँ एहि सबहिक लक्षण कहैत छी, से सुनू ॥ ३-४ ॥

सती चाहं पतिर्लिङ्गं हृदियुक्तः स्वयं प्रभुः ।
प्रापञ्चिकसुखं नास्ति शरणस्थलमुत्तमम् ॥

इति शङ्करसंहितावचनानुसारेण शरणस्थलं निरूपयति–

सतीव रमणे यस्तु शिवे शक्तिं विभावयन् ।
तदन्यविमुखः सोऽयं ज्ञातः शरणनामवान् ॥ ५ ॥

रमणे प्राणकान्तविषये सतीव पतिव्रता स्त्रीव यस्तु शिवे शिवलिङ्गविषये स्वात्मानं शक्तिं स्त्रियं भावयन् तदन्यविमुखः शिवलिङ्गादन्यत्र देवतान्तरे तिर्यङ्मुखः सन् अस्ति, सोऽयं शरणवान् शरणस्थलवानिति ज्ञातो ज्ञातुं योग्य इत्यर्थः ॥ ५ ॥

जेना सती स्त्री अपन प्रियतमक प्रति भावना रखैत अछि तहिना जे व्यक्ति शिवमे शक्तिक भावना करैत हुनकासँ भिन्नक प्रति विमुख रहैत छथि से शरणवान् मानल गेल छथि ॥ ५ ॥

अथ बहुदृष्टान्तपूर्वकं शिवलिङ्गासक्त एव शरण इत्युपपादयति–

परिज्ञाते शिवे साक्षात् को वान्यमभिकाङ्क्षति ।
निधाने महति प्राप्ते कः काचं याचतेऽन्यतः ॥ ६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवे परमशिवे साक्षात् प्रसिद्धश्रुत्यादिप्रमाणैः परिज्ञाते ब्रह्मादिभ्यो महानिति ज्ञाते सति को वान्यं काङ्क्षति न काङ्क्षतीत्यर्थः । यथा महति निधाने प्राप्ते सति, अन्यतः अन्यस्मात् काचं काचमणिं को याचते ? न कोऽपि इत्यर्थः, तथा शिवादन्यत्र देवतान्तरे विमुखः शरण इत्यर्थः ॥ ६ ॥

शिवक साक्षात् ज्ञान भेला पर कोन एहन व्यक्ति होएत जे कोनो दोसरक इच्छा करत ? पर्याप्त धन प्राप्त भेला पर के दोसर ठाम काचक याचना करत ? ॥ ६ ॥

शिवानन्दं समासाद्य को वान्यमुपतिष्ठते ।
गङ्गामृतं परित्यज्य कः काङ्क्षेन्मृगतृष्णिकाम् ॥ ७ ॥

शिवानन्दं शिवलिङ्गसुखं समासाद्य प्राप्य को देवतान्तरम् उपतिष्ठते आश्रयति, नाश्रयतीत्यर्थः । गङ्गोदकं परित्यज्य को मृगतृष्णिकां मरीचिकाजलं काङ्क्षेद् इच्छेत्, तथा शिवादन्यत्र विमुखः शरण इत्यर्थः ॥ ७ ॥

शिवानन्दकेँ पाबि के व्यक्ति आनक उपासना करत ? अमृत स्वरूप गंगाजलकेँ छोड़ि के व्यक्ति मृगतृष्णाक पाछू दौड़त ? ७ ॥

संसारतिमिरच्छेदे विना शङ्करभास्करम् ।
प्रभवन्ति कथं देवाः खद्योता इव देहिनाम् ॥ ८ ॥

खद्योता अल्पप्रकाशिनः प्राणिविशेषाः यथान्धकारनिवारणे समर्था न भवन्ति, भास्करः समर्थो भवति, तथा संसारतिमिरच्छेदे शङ्करभास्करं विना ब्रह्मादयो देवाः समर्था न भवन्तीति शिवादन्यत्र विमुखः शरण इत्यर्थः ॥ ८ ॥

संसार रूपी अन्धकारक नाश करबामे शङ्कररूपी सूर्यक विना कोना देवता समर्थ भए सकैत छथि ? जेना मनुष्यक लेल भकजोगनी अन्धकारक नाश नहि कए सकैछ तहिना शङ्करक बिना आन देवता संसाररूपी अन्धकारक नाश नहि कए सकैत छथि ॥ ८ ॥

संसारार्तः शिवं यायाद् ब्रह्माद्यैः किं फलं सुरैः ।
चकोरस्तृषितः पश्येच्चन्द्रं किं तारका अपि ॥ ९ ॥

तृषितः पिपासार्दितचकोरः, चन्द्रं यथा पश्येत्, तारका न पश्येत्, तथा संसारेण श्रमितो ब्रह्माद्यैः किं फलमिति शिवमेवाश्रयेत् । तादृशचकोरवदन्यत्र विमुखः शिवशरण इत्यर्थः ॥ ९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संसारसँ दुःखी व्यक्तिकेँ शिवक लग जएबाक चाही, ब्रह्मा आदि देवतासँ कोनो फलक आशा नहि । पियासल चकोर चन्द्रमाकेँ देखैत अछि, की ओ ताराकेँ सेहो देखैत अछि ? नहि ।। ९ ।।

शिव एवं समस्तानां शरण्यः शरणार्थिनाम् ।
संसारोरगदष्टानां सर्वज्ञः सर्वदोषहा ।। १० ।।
शिवज्ञाने समुत्पन्ने परानन्दः प्रकाशते ।
तदासक्तमना योगी नान्यत्र रमते सुधीः ।। ११ ।।

संसारसर्पदष्टानां समस्तानां शरणार्थिनां सर्वज्ञः सर्वदोषघ्नः शिव एव रक्षक इति शिवमाहात्म्यज्ञाने समुत्पन्ने सति परमानन्दाविर्भावो जायते । तदासक्तचित्तः शिवयोगी अन्यत्र देवतान्तरे न रमत इत्यर्थः ।। १०-११ ।।

संसाररूपी रोगसँ ग्रस्त सकल शरणागतक शरण सकलदोषनाशक शिवे छथि । शिवज्ञान उत्पन्न भेला पर परानन्द प्रकाशित होइछ । ओहिमे लागल चित्तवाला बुद्धिमान योगी आन ठाम नहि जाइत छथि ।। १०-११ ।।

अथोक्तार्थमुपसंहरन् शरणस्थलं समापयति—

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शङ्करं शरणं गतः ।
तदनन्तसुखं प्राप्य मोदते नान्यचिन्तया ।। १२ ।।

तस्मात् कारणात् सर्वप्रयत्नेन मनोवाक्कायकर्मणा शिवं शरणं गतो रक्षणविचक्षण इति ज्ञात्वा प्रपन्नः, तदनन्तसुखं प्राप्य तस्माच्छिवाद् अनन्तसुखं लब्ध्वा मोदते, अन्यचिन्तया देवतान्तरचिन्तया न मोदत इत्यर्थः ।। १२ ।।

तेँ पूर्ण प्रयत्न सँ शङ्करक शरणकेँ प्राप्त योगी अनन्त सुख केँ प्राप्त करैत छथि, आनक ध्यानसँ नहि ।। १२ ।।

इति शरणस्थलम्

अथ तामसनिरसनस्थलम्

अथ शरणेन विधीयमानतामसनिराकरणस्थलं निरूपयति—

शिवासक्तपरानन्द-मोदिना गुरुणा यतः ।
निरस्यन्ते तमोभावाः स तामसनिरासकः ।। १३ ।।

शिवासक्तः सन् परानन्दानुमोदिना गुरुणा श्रेष्ठेन शरणेन

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तमोभावास्तमोविकारा यतः कारणाद् निरस्यन्ते निवार्यन्ते, ततः तस्मात् स तामसनिरासको भवेदित्यर्थः ॥ १३ ॥

तामसनिरसन स्थल–

शिवमे आसक्त रहलाक कारण परानन्दमय गुरुक द्वारा तमोभाव निरस्त भेल स्थलकेँ तामसनिरासक कहल जाइछ ॥ १३ ॥

ननु तमोभावाः किमर्थं निराकरणीया इत्यत्राह–

यस्य ज्ञानं तमोमिश्रं न तस्य गतिरिष्यते ।
सत्त्वं हि ज्ञानयोगस्य नैर्मल्यं विदुरुत्तमाः ॥ १४ ॥

नैर्मल्यं निर्मलसाधनं सदित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् । तस्मात् तमोविकारा निराकरणीया इति भावः ॥ १४ ॥

जनिक ज्ञान तमस् (अन्धकार)सँ मिश्रित छनि हुनका सद्‌गति नहि होइत छनि । ज्ञानयोगक निर्मलताक कारणेँ ओकरा उत्तमव्यक्ति सत्त्व कहने छथि ॥ १४ ॥

अथ–

सत्त्वात् सुखं च ज्ञानं च वैराग्यं सौख्यमेव च ।
दुःखप्रवृत्तिरागौ च लौहित्यं रजसो भवेत् ॥
मोहो भ्रान्तिस्तथालस्यं कार्ष्ण्यं च तमसो भवेत् ॥

इति सूतसंहितावचनानुसारेण गुणत्रययुक्तान् प्रकाशयति–

शमो दमो विवेकश्च वैराग्यं पूर्णभावना ।
क्षान्तिः कारुण्यसम्पत्तिः श्रद्धा सत्यसमुद्भवा ॥ १५ ॥
शिवभक्तिः परो धर्मः शिवज्ञानस्य बान्धवाः ।
एतैर्युक्तो महायोगी सात्त्विकः परिकीर्तितः ॥ १६ ॥

शमः क्षान्तिः (मनसो निग्रहो वा), दमो बाह्येन्द्रियनिग्रहः, विवेको नित्यानित्यवस्तुविचारः, वैराग्यं विषयविरक्तिः, पूर्णभावना अखण्डध्यानम्, क्षान्तिः (= तितिक्षा) क्षमा, कारुण्यसम्पत्तिः भूतदया, सत्यसमुद्भवा यथार्थवस्तुसम्भवा श्रद्धा विश्वासः, शिवभक्तिः, परो धर्म उत्कृष्टशिवाचारः, शिवज्ञानस्य बान्धवा एते शिवज्ञानस्य सम्बन्धिनः । एतैर्दशगुणैर्युक्तो महायोगी सात्त्विक इति सत्त्वगुणयुक्त इति प्रकीर्तितः ॥ १५-१६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शम, दम, विवेक, वैराग्य, पूर्णभावना (अखण्डध्यान), क्षमा, करुणा, सत्यसँ उत्पन्न श्रद्धा, शिवभक्ति ओ परमधर्म– ई शिवज्ञानक बान्धव थिक। एहि सबहिसँ युक्त महायोगी सात्त्विक कहल गेल छथि ॥ १५-१६ ॥

नन्वेतैर्गुणैर्युक्तस्य महायोगिनः कदाचिद् वा कामक्रोधादयः सम्भवन्ति किमित्यत्राह–

कामक्रोधमहामोह-मदमात्सर्यवारणाः ।
शिवज्ञानमृगेन्द्रस्य कथं तिष्ठन्ति सन्निधौ ॥ १७ ॥

शिवज्ञानस्य मत्तमनोगजनिग्रहकरत्वेन सिंहरूपत्वात् तस्य सन्निधौ कामक्रोधादिगजस्थितेरवकाशो नास्तीत्यर्थः ॥ १७ ॥

काम, क्रोध, महामोह, महामद ओ मात्सर्य (अन्यशुभद्वेष) रूपी हाथीक झुण्ड शिवज्ञानरूपी सिंहक लग कोना रहि सकैछ ॥ १७ ॥

अथ रजोगुणयुक्तं प्रदर्शयति–

यत्र कुत्रापि वा द्वेष्टि प्रपञ्चे शिवरूपिणि ।
शिवद्वेषी स विज्ञेयो रजसाविष्टमानसः ॥ १८ ॥

यो रजसाविष्टमानसो रजोगुणकार्यभूतकामक्रोधाद्यावृतचित्तः सन् शिवरूपिणि प्रपञ्चे यत्र क्वापि द्वेष्टि, स शिवद्वेषी राजस इति शेषः, विज्ञेयो ज्ञातुं योग्य इत्यर्थः ॥ १८ ॥

शिवरूप प्रपञ्चमे जतए कतहु क्यो द्वेष करैत अछि, त ओ रजोगुणसँ आविष्ट चित्तवाला शिवद्वेषी बुझल जाइत अछि ॥ १८ ॥

अथ तमोगुणयुक्तं लक्ष्यति–

यो द्वेष्टि सकलान् लोकान् यो वाऽहङ्कुरुते सदा ।
योऽसत्यभावनायुक्तः स तामस इति स्मृतः ॥ १९ ॥

स्पष्टम् ॥ १९ ॥

जे व्यक्ति सभसँ द्वेष करैत अछि अथवा सतत अहङ्कारसँ युक्त रहैत अछि आ असत्य भावनासँ युक्त अछि से तामस मानल गेल अछि ॥ १९ ॥

अथायं तमोगुणः शिवशरणानां नास्तीति श्लोकद्वयेनोक्त्वा तामसनिरसनस्थलं समापयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तमोमूला हि सञ्जाता रागद्वेषादिपादपाः ।
शिवज्ञानकुठारेण छेद्यन्ते हि निरन्तरम् ॥ २० ॥

तमोगुणारूपमूलवन्तः सन्तः सञ्जाता रागद्वेषादिपादपाः कामक्रोधादिराजसवृक्षाः शिवज्ञानकुठारेण सात्त्विकशिवज्ञानरूपपरशुना सदा छेद्यन्ते हि प्रसिद्धम् ॥ २० ॥

राग-द्वेष आदि रूपी गाछ तमोमूलक होइछ, से शिवज्ञान रूपी कुरहड़िसँ निरन्तर काटल जाइत अछि ॥ २० ॥

ननु तमोमूलकत्वेन सञ्जातराद्वेषादिपादपानां शिवज्ञानकुठारेण छेदनमस्तु, एतत्कारणीभूततमोगुणनिवृत्तिः केन भवेत्, तद्विना तदङ्कुरनिवृत्तिर्न सम्भवतीत्यत्राह–

शिवज्ञाने समुत्पन्ने सहस्रादित्यसन्निभे ।
कुतस्तमोविकाराः स्युर्महतां शिवयोगिनाम् ॥ २१ ॥

सहस्रादित्यसङ्काशे शिवज्ञाने समुत्पन्ने सति महतां महापुरुषाणां शिवयोगिनां शिवशरणानां तमोविकाराः तमोङ्कुराः कुतः स्युः कस्मात् कारणाद् भवेयुः ? कारणीभूतस्य तमसो मूलनाशादिति भावः ॥ २१ ॥

हजार सूर्यक समान जे शिवज्ञान, तकरा उत्पन्न भेला पर महान् शिवयोगीकेँ कतएसँ तमोविकार भए सकैत छनि ॥ २१ ॥

इति तामसनिरसनस्थलम्

अथ निर्देशस्थलम्

अथ तामसनिराकरणेन भासमानं निर्देशस्थलं निरूपयति–

निराकृत्य तमोभागं संसारस्य प्रवर्तकम् ।
निर्दिश्यते तु यज्ज्ञानं स निर्देश इति स्मृतः ॥ २२ ॥

संसारप्रवृत्तेर्मूलकारणं तमोभागं निराकृत्य यद् ज्ञानं निर्दिश्यते उपदिश्यते, स तद् ज्ञानं निर्देश इति निर्देशस्थलमिति स्मृतः स्मृतमित्यर्थः ॥ २२ ॥

निदेशस्थल– संसारक प्रवर्तक (प्रारम्भ कएनिहार) जे तमोभाग, तकरा दूर कए जे ज्ञान उदित होइत अछि से निर्देश कहबैत अछि ॥ २२ ॥

अथ तज्ज्ञानं केनोपदिश्यत इत्यत्र गुरुरेवेति तन्महत्त्वं बहुधा प्रकाशयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुरुरेव परं तत्त्वं प्रकाशयति देहिनाम् ।
को वा सूर्यं विना लोके तमसो विनिवर्तकः ॥ २३ ॥

(यथा) लोके सूर्यं विना तमोनिराकरणद्वारा पदार्थप्रकाशको (कोऽप्यन्यो) नास्ति, तथा गुरुं विना तमोनिराकरणद्वारा परतत्त्वप्रकाशको (कोऽपि) नास्तीत्यर्थः ॥ २३ ॥

गुरुए लोकके परम तत्त्वक ज्ञान करबैत छथि । सूर्यक बिना संसारमे अन्हारकेँ के हटा सकैछ ? ॥ २३ ॥

पुनर्दृष्टान्तमाह–

अन्तरेण गुरुं सिद्धं कथं संसारनिष्कृतिः ।
निदानज्ञं विना वैद्यं किं वा रोगो निवर्तते ॥ २४ ॥

सिद्धं गुरुमन्तरेण ज्ञानसिद्धगुरुं विनेत्यर्थः, संसारनिष्कृतिः भवरोगनिवृत्तिः कथं स्यात् कथं भेवत् ? तत्र दृष्टान्तः–निदानम् एतद्धेतुकस्यास्य रोगस्येदमौषधमिति रोगज्ञानपूर्वकचिकित्साभिज्ञं वैद्यं विना रोगो निवर्तते किं वा ? न निवर्तते तथा ज्ञानसिद्धगुरुव्यतिरेकेण संसारनिवृत्तिर्न सम्भवतीति तात्पर्यम् ॥ २४ ॥

सिद्ध गुरुक बिना संसारसँ छुटकारा कोना भए सकैछ ? की निदानक ज्ञाता वैद्यक बिना रोगक नाश भए सकैछ ? २४ ॥

नन्वयं गुरुः कथं ज्ञायत इत्यत्राह–

अज्ञानमलिनं चित्त-दर्पणं यो विशोधयेत् ।
प्रज्ञाविभूतियोगेन तमाहुर्गुरुसत्तमम् ॥ २५ ॥

अज्ञानमलिनं चित्तदर्पणं यः प्रज्ञाविभूतियोगेन 'प्रज्ञानं ब्रह्म'[1] इति श्रुतिप्रसिद्धशिवज्ञानविभूतिसम्बन्धेन शोधयेद् निर्मलं कुर्यात् तं गुरुसत्तमं गुरुश्रेष्ठं सन्तम् आहुरित्यर्थः ॥ २५ ॥

जे प्रज्ञारूपी भस्मसँ अज्ञानसँ मलिन चित्तरूपी दर्पणकेँ शुद्ध करैत छथि, तनिके विद्वान् लोकनि उत्तम गुरु कहैत छथि ॥ २५ ॥

अथ तादृशगुरुकटाक्षात् सकलसिद्धिर्भवतीत्याह–

अपरोक्षिततत्त्वस्य जीवन्मुक्तस्वभाविनः ।
गुरोः कटाक्षे संसिद्धे को वा लोकेषु दुर्लभः ॥ २६ ॥

---

१. ऐ०उ० ३।५।३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अरोक्षिततत्त्वस्य स्वस्वरूपेण साक्षात्कृतशिवतत्त्ववतो जीवन्मुक्त-स्वभाविनः—

विकल्परहितं ज्ञानं निषेधरहिता क्रिया ।
अलोकरञ्जकं रूपं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥

इति वासिष्ठवचनाद् जीवन्मुक्तस्वरूपवतो गुरोः सद्गुरोः कटाक्षे कृपारसपूरितापाङ्गे संसिद्धे सति लोकेषु को वा दुर्लभः, न कोऽप्यलभ्य इत्यर्थः । भोगमोक्षलक्षणसकलसिद्धिर्भवतीति भावः ॥ २६ ॥

तत्त्वक साक्षात्कार कएनिहार स्वभावतः जीवन्मुक्त गुरुक कृपादृष्टि प्राप्त भए गेला पर संसारमे कोन वस्तु दुर्लभ अछि ? २६ ॥

नन्वेतादृशगुरवः सन्ति किमित्यत्र—

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः ।
शिष्यहृत्तापहारस्तु गुरुरेकोऽपि दुर्लभः ॥

इति शिवरहस्यवचनानुसारेणाह—

कैवल्यकल्पतरवो गुरवः करुणालयाः ।
दुर्लभा हि जगत्यस्मिन् शिवाद्वैतपरायणाः ॥ २७ ॥

स्पष्टम् ॥ २७ ॥

कैवल्य (मोक्ष) देबामे कल्पवृक्ष स्वरूप करुणाक सागर शिवाद्वैतपरायण गुरु एहि संसारमे दुर्लभ छथि ॥ २७ ॥

तस्माच्छिवलिङ्गात्परः श्रीगुरुः प्राकृतगुरुभ्यः श्रेष्ठ इति वदन् निर्देशस्थलं समापयति—

क्षीराब्धिरिव सिन्धूनां सुमेरुरिव भूभृताम् ।
ग्रहाणामिव तिग्मांशुर्मणीनामिव कौस्तुभः ॥ २८ ॥
द्रुमाणामिव भद्रश्रीर्देवानामिव शङ्करः ।
गुरुः शिवः परः श्लाघ्यो गुरूणां प्राकृतात्मनाम् ॥ २९ ॥

भद्रश्रीर्मलयज इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २८-२९ ॥

जेना समुद्रसबमे क्षीरसागर, पहाड़मे सुमेरु, ग्रहमे सूर्य, मणिमे

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कौस्तुभ, वृक्षमे चन्दन ओ देवतामे शङ्कर श्रेष्ठ आ प्रशंसनीय छथि तहिना सामान्य गुरुक अपेक्षा शिवज्ञानी गुरु श्रेष्ठ होइत छथि ।। २८-२९ ।।

इति निर्देशस्थलम्

अथ शीलसम्पादनस्थलम्

अथ श्रीगुरुनिर्देश्यज्ञानयोगात् शिवतत्त्वस्य जिज्ञासा शीलमित्युक्त्वा शीलवतः स्वरूपं सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

जिज्ञासा शिवतत्त्वस्य शीलमित्युच्यते बुधैः ।
निर्देश्ययोगादार्याणां तद्वान् शीलीति कथ्यते ।। ३० ।।

आचार्याणां पूर्वोक्तलक्षणवदाचार्यैर्निर्देश्ययोगाद् उपदेश्यज्ञानयोगात् शिवतत्त्वस्य जिज्ञासा ज्ञातुमिच्छा शीलमिति बुधैः ज्ञानिभिरुच्यते, तद्वान् तादृशजिज्ञासालक्षणशीलवान् शीलीति कथ्यत इत्यर्थः ।। ३० ।।

शीलसम्पादन स्थल–

गुरुक द्वारा निर्देश्य (उपदेश कए अभ्यास करबा योग्य) होएबाक कारण विद्वान लोकनि शिवतत्त्वक जिज्ञासाकेँ शील कहैत छथि (शील उपधारणे, उपधारणम् अभ्यासः), से जनिका लग हो से व्यक्ति शीली कहल जाइत छथि ।। ३० ।।

अथ निष्कर्षमाह–

प्रपन्नार्तिहरे देवे परमात्मनि शङ्करे ।
भावस्य स्थिरतायोगः शीलमित्युच्यते बुधैः ।। ३१ ।।

पालयस्वेति शरणागतानां क्लेशहरे परब्रह्मस्वरूपशिवे चित्तस्थिरीकरणं शीलमिति बुधैः शिवशास्त्रज्ञैः कथ्यत इत्यर्थः ।। ३१ ।।

शरणागतक कष्टकेँ दूर कएनिहार देवाधिदेव परमात्मा शङ्करक प्रति भावक स्थिरताकेँ विद्वान् शील कहैत छथि ।। ३१ ।।

अथ प्रकारान्तरेण तल्लक्षणमाह–

शीलं शिवैकविज्ञानं शिवध्यानैकतानता ।
शिवप्राप्तिसमुत्कण्ठा तद्योगी शीलवान् स्मृतः ।। ३२ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवे विज्ञानं शिव एव विशेषज्ञानं, शिवध्यानैकतानता शिवध्यान एव अनन्यवृत्तित्वं शीलमित्युच्यते । तद्योगी शीलविशिष्टः शिववज्ञानसमुत्कण्ठातः शिवाभिगमनलालस्यात् शीलवानिति स्मृत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

एकमात्र शिवक ज्ञान, निरन्तर शिवक ध्यान ओ शिवक प्राप्तिक उत्कण्ठा शील कहबैत अछि, से जनिका अछि से शीलवान् मानल गेल छथि ॥ ३२ ॥

इममर्थमेव स्फुटीकृत्याह–

शिवादन्यत्र विज्ञाने वैमुख्यं यस्य सुस्थिरम् ।
तदासक्तमनोवृत्तिस्तमाहुः शीलभाजनम् ॥ ३३ ॥

शिवात् शिवलिङ्गाद् अन्यत्र विज्ञाने देवतान्तरविशेषज्ञाने वैमुख्यं विमुखत्वं यस्य शरणस्य सुस्थिरं दृढम्, यस्य मनोवृत्तिः मनोव्यापारः, तदासक्ता शिवलिङ्ग एव लम्पटा, तं शीलभाजनं शीलभजकं सन्तम् आहुः ॥ ३३ ॥

शिवसँ भिन्न विज्ञानमे जनिक विमुखता सुस्थिर छनि तथा जनिक मनोवृत्ति शिवेमे आसक्त छनि से शीलक पात्र (शीलवान्) कहल गेल छथि ॥ ३३ ॥

अत्र दृष्टान्तमाह–

पतिव्रताया यच्छीलं पतिरागात् प्रशस्यते ।
तथा शिवानुरागेण सुशीलोऽभक्त उच्यते ॥ ३४ ॥

पतिव्रताया यच्छीलं पातिव्रत्यं पतिरागात् पुरुषप्रीतिवशात् प्रशस्यते, तथा शिवानुरागेण शिवोपरि प्रीत्या अभक्तः अवियुक्तः शरणः सुशीलः शोभनशीलवानित्यर्थः । शरणलिङ्गयोः सतीपतिभावस्योक्तत्वात् पतिव्रतादृष्टान्तः कथितः ॥ ३४ ॥

जेना पतिव्रता स्त्रीक शील पतिक अनुरागक कारण प्रशंसित होइत अछि तहिना शिवक प्रति अनुरागक कारण शिवक प्रीतिसँ अवियुक्त व्यक्ति सुशील कहबैत छथि ॥ ३४ ॥

अथेममर्थमेव विशदयति–

पतिं विना यथा स्त्रीणां सेवाऽन्यस्य तु गर्हणा ।
शिवं विना तथान्येषां सेवा निन्द्या कृतात्मनाम् ॥ ३५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्त्रीणां पतिं विना प्राणकान्तं विना अन्यस्य परपुरुषस्य सेवा यथा गर्हणा निन्दिता, तथा कृतात्मनां कृतकृत्यानां शिवशरणानां शिवं विना शिवलिङ्गं विना अन्येषां विष्णवादिदेवानां सेवा निन्द्या भवतीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

जहिना स्त्रीक लेल पतिसँ भिन्न पुरुषक सेवा निन्दनीय होइत अछि तहिना शिवमे समर्पित व्यक्तिक लेल शिवसँ भिन्न देवताक सेवा निन्दनीय थिक ॥ ३५ ॥

अथोक्तार्थं सङ्गृह्याह–

बहुनात्र किमुक्तेन शिवज्ञानैकनिष्ठता ।
शीलमित्युच्यते सद्भिः शीलवांस्तत्परो मतः ॥ ३६ ॥

अत्र शीलविषये बहुभाषणेन किम् ? शिवज्ञानैकनिष्ठता श्रीगुरुनिर्दिष्ट-शिवज्ञान एकस्मिन्नेव निष्ठा शीलमिति सत्पुरुषैरुच्यते । तत्परस्तच्छीलासक्तः शीलवानिति मतः सम्मत इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

एहि प्रसंग विशेष कहबाक काज नहि, सज्जनलोकनि शिवज्ञानक प्रति एकनिष्ठताकेँ शील कहैत छथि आ ताहिमे लागल व्यक्ति शीलवान् मानल गेल छथि ॥ ३६ ॥

अथैवंविधशीलवान् शरण एव शिवलिङ्गैक्य इति शरणस्थलं समापयति–

शिवात्मबोधैकरतः स्थिराशयः
शिवं प्रपन्नो जगतामधीशम् ।
शिवैकनिष्ठाहितशीलभूषणः
शिवैक्यवानेष हि कथ्यते बुधैः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते
सिद्धान्तशिखामणौ शरणस्य चतुःस्थलप्रसङ्गो नाम
त्रयोदशः परिच्छेदः ॥ १३ ॥



शिवात्मबोधैकरतो लिङ्गाङ्गज्ञानैकनिष्ठः सन् जगतामधीशं शिवं प्रपन्नो रक्षेति शरणं गतः स्थिराशयः शिवशरणयोर्दृढीभूतसतीपतिभावयुक्तचित्तः शिवैकनिष्ठाहितशीलभूषणः शिवलिङ्गैकनिष्ठाकृतिशीलालङ्कारवानेष शरणः शिवैक्यवानिति बुधैः शिवशास्त्रप्रवीणैः कथ्यते, हि प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ ३७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति श्रीमत्पदावाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां शरणस्य चतुःस्थलप्रसङ्गनामा त्रयोदशः परिच्छेदः ॥ १३ ॥



केवल शिवबोधमे लागल, स्थिरभावनासँ युक्त, संसारक स्वामी शिवक शरणापन्न, केवल शिवमे निष्ठारूपी आभूषणकेँ धारण कएनिहार व्यक्ति विद्वानक द्वारा शिवैक्यवान् कहल गेल छथि ॥ ३७ ॥

एहि तरहेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणिक 'शरणक चतुःस्थलप्रसङ्ग' नामक परिच्छेदक विद्यवाचस्पति पं. शशिनाथझाकृत प्रबोधिनीमैथिली व्याख्या पूर्ण भेल ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्दशः परिच्छेदः

अथ ऐक्यस्थलम्

अथागतस्यप्रश्नः–अगस्त्य उवाचेति–

तामसत्यागसम्बन्धान्निर्देशाच्छीलतस्तथा ।
शरणाख्यस्य भूयोऽस्य कथमैक्यनिरूपणम् ॥ १ ॥

तमोभागनिराकरणाद् ज्ञाननिर्देशात् तथा शीलसम्पादनात् शरणाख्यस्यास्य एतावन्मात्रेण कथमैक्यनिरूपणम् लिङ्गाङ्गयोर्भेदघटितत्वादिति ॥ १ ॥

ऐक्यस्थल– अगस्त्य बजलाह– तामस गुणक त्याग, ज्ञान-निर्देश तथा शीलसम्पादन द्वारा शरण नामक साधककेँ ऐक्य कोना होइत छनि, से कहल जाए ॥ १ ॥

अस्योत्तरं ददाति–श्रीरेणुक उवाचेति–

प्राणलिङ्गादियोगेन सुखातिशयमेयिवान् ।
शरणाख्यः शिवेनैक्य-भावनादैक्यवान् भवेत् ॥ २ ॥

प्राणलिङ्गादियोगेन बाह्यलिङ्गपूजावैमुख्येनान्तर्लिङ्गपूजाध्यानयोगेन सुखातिशयं शिवसुखातिशयम् एयिवान् लब्धवान् शरणाख्यः शिवेन शिवलिङ्गेन ऐक्यभावनाद् एकत्वचिन्तनाद् ऐक्यवान् शिवलिङ्गैक्यवान् भवेत् स्यादित्यर्थः । अयं भावः–लिङ्गात्मनोर्भेदो न सम्भवति, चिदेकरूपत्वात् । ननु चिद्रूपत्वेऽपि व्यक्तिभेदोऽस्तीति चेत्, उच्यते– स जीवः परिच्छिन्नचित्प्रकाशरूपो वा अपरिच्छिन्नचित्प्रकाशरूपो वा ? नाद्यः, परिमितघटादिप्रकाशवत् स्वविषयस्वमात्रनिष्ठत्वेन परविषयपरस्वरूपेष्वन्धबधिरप्रायत्वेन चैत्रो मैत्राद् भिन्नः, मैत्रश्चैत्राद् भिन्नः, चैत्रमहं जानामि, मैत्रमहं जानामि इति बाह्याभ्यन्तरानुसन्धानं न सम्भवतीति, चैत्रोऽहमिति प्रकाशस्य तन्मात्रनिष्ठत्वात्,

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मैत्रस्वरूपतद्विषययोरन्धबधिरप्रायत्वात्, एवं मैत्रोऽहमिति प्रकाशः स्यादिति । अथ परिच्छिन्नप्रकाशत्वे तादृशप्रकाशद्वयाङ्गीकारो न सम्भवति, सेव्यसेवकभवाद्यसम्भवात्, प्रकाशैक्ये कल्पितभेदमादाय तत्सम्भवात् प्रकाशैक्यमङ्गीकरणीयम्, सर्वासर्वशब्दयोर्माया- कार्यकोटिप्रविष्टत्वेनान्तरालिकत्त्वात्, ज्ञत्वकर्तृत्वयोरेव स्वाभाविकत्वादिति तदेकत्वचिन्तनादैक्यवान् स्यादिति ॥ २ ॥

रेणुक बजलाह– प्राणलिङ्गक ध्यानयोगद्वारा अतिशय सुखकेँ प्राप्त कएनिहार शरण नामक शिवयोगी शिवमे ऐक्यभावना (अभेदज्ञान)सँ ऐक्यवान् भए जाइत छथि ॥ २ ॥

वस्तुतः लिङ्ग ओ आत्मा चित्स्वरूप होएबाक कारण अभिन्ने छथि । किन्तु जेँ शैवसिद्धान्तमे शिव ओ जीवमने सेव्य-सेवक भाव मानल गेल अछि, तेँ भेदक कल्पना कएल जाइत अछि । आब एहि भेदमे ऐक्यभावना कएल जाइत अछि ।

अथास्यापि स्थलभेदाः सन्ति किमित्यत्राह–

ऐक्यस्थलमिदं प्रोक्तं चतुर्धा मुनिपुङ्गव ।
ऐक्यमाचारसम्पत्तिरेकभाजनमेव च ।
सहभोजनमित्येषां क्रमाल्लक्षणमुच्यते ॥ ३ ॥

स्पष्टम् ॥ ३ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! ई ऐक्यस्थल चारि प्रकारक अछि– ऐक्यस्थल, आचारसम्पत्ति स्थल, एकभाजन स्थल ओ सहभोजन स्थल । आब क्रमसँ एहि सबहिक लक्षण कहल जाइत अछि ॥ ३ ॥

'एकमेव तद्भवत्यविकल्पो नाविकल्पोऽपि नात्र काचन भिदास्ति नैवात्र काचन भिदास्त्यत्र भिदामिव मन्यमानः शतधा सहस्रधा भिन्नो मृत्योर्मृत्युमाप्नोति । तदेतदद्वयं स्वप्रकाशम्'[1] इत्युत्तरतापनीयश्रुत्यनुसारेण लिङ्गैक्यस्य लक्षणं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

विषयानन्दकणिका-निस्पृहो निर्मलाशयः ।
शिवानन्दमहासिन्धु-मज्जनादैक्यमुच्यते ॥ ४ ॥

विषयानन्दकणिकानिस्पृहः शब्दादिविषयानन्दशीकरेषु विरक्तः सन्

१. नृसिंहोत्तरतापिनी उपनिषद्- ८।७

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्मलाशयो निर्मलचित्तवानेव शिवानन्दमहासिन्धुमज्जनात् शिवानन्दमहासमुद्रे तादात्म्यानुप्रवेशनाद् ऐक्यं लिङ्गैक्यस्थलमित्युच्यत इत्यर्थः ॥ ४ ॥

विषयानन्दक लेशमात्रोमे निःस्पृह, निर्मल हृदयवाला व्यक्ति शिवानन्दरूपी महासमुद्रमे मिलबाक कारण ऐक्यस्थल कहबैत छथि ॥ ४ ॥

नन्विदमैक्यं कीदृशस्य सम्भवतीत्यत्राह–

निर्धूतमलसम्बन्धो निष्कलङ्कमनोगतः ।
शिवोऽहमिति भावेन निरूढो हि शिवैक्यताम् ॥ ५ ॥

निवारिताणवादिमलसम्पर्कवान् कलङ्करहितमनोव्यापारवान् शिवोऽहमिति परामर्शनेन शिवलिङ्गैक्यतां निरूढो हि भज(व)तीति प्रसिद्धम् ॥ ५ ॥

मलसम्बन्धसँ दूर एवं निष्कलङ्क मनवला व्यक्ति 'हम शिव छी' एहि भावनासँ शिवैक्यकेँ प्राप्त करैत छथि ॥ ५ ॥

अथ किं पश्यन्नास्तीस्त इत्यत्राह–

शिवेनैक्यं समापन्नश्चिदानन्दस्वरूपिणा ।
न पश्यति जगज्जालं मायाकल्पितवैभवम् ॥ ६ ॥

मायाशक्तिपरिकल्पितं विश्वमपश्यन्नास्त इत्यर्थः ॥ ६ ॥

चिदानन्दस्वरूप शिवसँ ऐक्यकेँ प्राप्त व्यक्ति मायाक द्वारा रचित वैभववाला संसार रूपी जलकेँ नहि देखैत छथि ॥ ६ ॥

तत्कुतो न पश्यतीत्यत्राह–

ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भेद-विजृम्भी तत्त्ववीचिमान् ।
मायासिन्धुर्लयं याति शिवैक्यवडवानले ॥ 7 ॥

ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भेदविजृम्भी ब्रह्माण्डरूपबुद्बुदाविर्भावेन वर्धिष्णुः, तत्त्ववीचिमान् षट्त्रिंशत्तत्त्वलक्षणवीचिमान् मायासिन्धुः शिवैक्यवडवानले शिवलिङ्गैक्यरूपवडवाग्नौ लयं याति । अतः कारणात् प्रपञ्चदर्शनं नास्ति, उपादानकारणनाशात् कार्यनाशस्यावश्यमङ्गकरणीयत्वात् ॥ ७ ॥

ब्रह्माण्डरूपी बुनबुन्नाक उद्भवसँ बढ़ल ओ छत्तीस तत्त्वरूपी लहरिसँ युक्त मायारूपी समुद्र शिवैक्य रूपी बड़वानल (समुद्रक आगि)मे लीन भए जाइछ ॥ ७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ तदेव विशदयति–

मायाशक्तितिरोधानाच्छिवे भेदविकल्पना ।
आत्मनस्तद्विनाशे तु नाद्वैतात्किञ्चिदिष्यते ॥ ८ ॥

शिवे मायाशक्तेस्तिरोधानात् प्रसरणाद् आत्मनो जीवस्य भेदविकल्पना स्यात् । तद्विनाशे मायाप्रसरणस्य नाशे, अद्वैतात् किञ्चिद् ईषद्भेदोऽपि नेष्यते नेच्छाविषयीक्रियते ॥ ८ ॥

मायाशक्तिक शिवमे विलीन भए गेला पर जीवकेँ शिवसँ भेदक कल्पना कएल जाइत अछि, ओहि भेदभावक नष्ट भेला पर अद्वैतक अतिरिक्त किछु अवशिष्ट नहि रहि जाइछ ॥ ८ ॥

ननु शिवजीवयोः पतिपशुलक्षणभेदश्रवणात् कथं किञ्चिद्भेदोऽपि नेष्यत इत्युक्तमित्यत्र–

अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित् ।
न तं पश्यामि यस्याहं न तं पश्यामि यो मम ॥

इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेण शिवलिङ्गैक्यस्य प्रसिद्धशिवाद्वैतं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

पशुत्वं च पतित्वं च मायामोहविकल्पितम् ।
तस्मिन् प्रलयमापन्ने कः पशुः को नु वा पतिः ॥ ९ ॥

स्पष्टम् ॥ ९ ॥

पशुभाव ओ पतिभाव ई दुनू मायामोहक विकल्पना थिक । ओहि मायामोहक नाश भेला पर के पशु ओ के पति, तकर कोनो स्थितिए नहि बनैत अछि ॥ ९ ॥

अथास्य संसारस्य भेदवल्मीकनिष्ठसर्परूपत्वात् किमस्यौषधमित्यत्राह–

घोरसंसारसर्पस्य भेदवल्मीकशायिनः ।
बाधकं परमाद्वैत-भावना परमौषधम् ॥ १० ॥

भेदवल्मीकशायिनो जडाजडभेदः, जीवाजीवभेदः, जीवजडभेदः, जीवेश्वरभेदः, जडेश्वरभेद इत्येवंरूपपञ्चविधभेदविशिष्टवल्मीकस्थितस्य घोरसंसारसर्पस्य जननमरणादिभयङ्करस्य संसारसर्पस्य बाधकमौषधं परमाद्वैतभावना जडचेतनैक्यभावनेत्यर्थः ॥ १० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ई घोर संसाररूपी साँप जे भेदरूपी दिबड़ाक भीड़मे सुतैत अछि, तकरा बाधित करबाक लेल परम अद्वैत भावना परम औषध थिक ।

ई दिबड़ाक भीड़स्वरूप भेद पाँच तरहक अछि– जड़ ओ अजड़क भेद, जीव ओ निर्जीवक भेद, जीव-जड़क भेद, जीव ओ ईश्वरक भेद आ जड़-ईश्वरक भेद।। १० ।।

नन्वस्य संसारस्य भेदबुद्धिसमुत्पन्नमहासागरत्वादिमं केनोपायेन को वा तरतीत्यत्राह–

भेदबुद्धिसमुत्पन्न-महासंसारसागरम् ।
अद्वैतबुद्धिपोतेन समुत्तरति देशिकः ॥ ११ ॥

देशिकः शिवलिङ्गैक्य इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ११ ॥

एहि भेदबुद्धिसँ उत्पन्न संसाररूपी महासागरकेँ देशिक परमशिवाचार्य अद्वैत बुद्धि रूपी जहाज सँ पार कए जाइत छथि ।। ११ ।।

नन्वियं संसृतिः कामरक्षःक्रियाकरी कालरात्रिर्भवन्ती केन नश्यतीत्यत्राह–

अज्ञानतिमिरोद्रिक्ता कामरक्षःक्रियाकरी ।
संसारकालरात्रिस्तु नश्येदद्वैतभानुना, ॥ १२ ॥
तस्मादद्वैतभावस्य सदृशो नास्ति योगिनाम् ।
उपायो घोरसंसारमहातापनिवृत्तये ॥ १३ ॥

अज्ञानतिमिरोद्रिक्ता अज्ञानलक्षणगाढ़ान्धकारेणोत्पन्ना सती कामरक्षः-क्रियाकरी कामलक्षणराक्षसकृत्यं कुर्वती संसारकालरात्रिः, अद्वैतभानुना शिवाद्वैतसूर्येण नश्यतीत्यर्थः ॥ १२-१३ ॥

अज्ञानरूपी अन्धकारसँ भरल, कामरूपी राक्षसक आचरण करएवाली संसाररूपी कालरात्रि त अद्वैतरूपी सूर्यसँ नष्ट होइत अछि । तेँ योगीक लेल घोर-संसाररूपी महातापकेँ दूर करबाक लेल अद्वैतभावक समान दोसर कोनो उपाय नहि अछि ।। १२-१३ ।।

अथ शिवाद्वैतातिशयमुक्त्वा सूत्रद्वयेनैक्यस्थलं समापयति–

अद्वैतभावनाजातं क्षणमात्रेऽपि यत्सुखम् ।
तत्सुखं कोटिवर्षेण प्राप्यते नैव भोगिभिः ॥ १४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चित्तवृत्तिसमालीन-जगतः शिवयोगिनः ।
शिवानन्दपरिस्फूर्तिर्मुक्तिरित्यभिधीयते ॥ १५ ॥

भोगिभी राजभोगिभिरित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १४-१५ ॥

अद्वैतभावसँ उत्पन्न एको छनक जे सुख से करोड़ो वर्षमे भोगी व्यक्तिकेँ नहि भेटि सकैत छनि । जे संसारकेँ अपन चित्तवृत्तिमे लीन कए लेने छथि, एहन शिवयोगीक शिवानन्दपरिस्फूर्ति मुक्ति कहल जाइत अछि ॥ १४-१५ ॥

इत्यैक्यस्थलम्

अथ आचारसम्पत्तिस्थलम्

अथ–

'यथा रविः सर्वरसान् प्रभुङ्क्ते हुताशनश्चापि हि सर्वभक्षकः ।
तथैव योगी विषयान् प्रभुङ्क्ते न लिप्यते कर्मशुभाशुभैश्च ॥'

इति शिवरहस्यवचनानुसारेण लिङ्गैक्यस्य सदाचारसम्पत्तिं द्वादशसूत्रैः प्रतिपादयति–

शिवैकभावनापन्न-शिवत्वो देहवानपि ।
देशिको हि न लिप्येत स्वाचारैः सूतकादिभिः ॥ १६ ॥

शिवैकभावनया लब्धशिवत्ववान् देशिकः शिवलिङ्गैक्यो देहवानपि जीवन्मुक्तः सन् सूतकादिभिः सूतकप्रभृतिभिः स्वाचारैः स्वेच्छाचारैः, न लिप्येतेत्यर्थः ॥ १६ ॥

आचारसम्पत्ति स्थल– एकमात्र शिवक भावनासँ युक्त शिवरूप आचार्य देहधारण कएनहुँ अपन सामाजिक सूतक (जनमाशौच आदि) दोष व्यवहारसँ दूषित नहि होइत छथि ॥ १६ ॥

कस्मादित्यत्राह–

शिवद्वैतपरिज्ञाने स्थिते सति मनस्विनाम् ।
कर्मणा किं नु भाव्यं स्यादकृतेन कृतेन वा ॥ १७ ॥

मनस्विनां लिङ्गैक्यनिष्ठचित्तवृत्तीनां शिवाद्वैतज्ञाने स्थिरे सति, अकृतेन कर्मणा दुष्कर्मणा, कृतेन वा सत्कर्मणा वा किं नु भाव्यं स्यात्, न किञ्चिदपि स्यादित्यर्थः ॥ १७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवाद्वैतक परिज्ञान भेला पर साधककेँ सत्कर्म वा दुष्कर्मक कएला वा नहि कएलाक कोनो फल नहि होइत छनि ।। १७ ।।

तत्कुत इत्यत्राह–

शम्भोरेकत्वभावेन सर्वत्र समदर्शनः ।
कुर्वन्नपि महाकर्म न तत्फलमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥

सर्वत्र समदर्शनो लोष्टाश्मकाञ्चनादिषु सर्वत्र समदर्शनः शिवलिङ्गैक्यः शम्भोरेकत्वभावेन ऐक्यभावेन महाकर्म पुण्यपापरूपं महाकर्म कुर्वन्नपि तत्फलं नाप्नुयात् । सर्वस्यापि शिवमयत्वेन दर्शनात् तल्लेपो नास्तीति भावः ॥ १८ ॥

शम्भुसँ अपन एकत्व भाव कएला पर सबठाम समानदृष्टिवाला शिवयोगी पुण्य-पापक महान् कर्म करितो ओकर फल नहि पबैत छथि ।। १८ ।।

सुकृती दुष्कृती वापि ब्राह्मणो वान्त्यजोऽपि वा ।
शिवैकभावयुक्तानां सदृशो भवति ध्रुवम् ॥ १९ ॥

शिवैकभावयुक्तानां सर्वत्र शिवाभेदज्ञानयुक्तानां शिवलिङ्गैक्यानां सुकृती पुण्यात्मा वा दुष्कृती पापात्मा वा ब्राह्मणो अन्त्यजो वा श्वपचो वा सदृशः समानो भवति ध्रुवं निश्चयः ॥ १९ ॥

भने पुण्यकएनिहार होथि वा पापी होथि, ब्राह्मण वा चाण्डाल होथि, शिवैकभावसँ युक्त ओहि योगीक लेल ओ सब निश्चित रूपेँ समान होइत छनि ।। १९ ।।

ननु शिवज्ञानिनामपि वर्णाश्रमप्राप्तधर्माः कथं त्यजनीया इत्यत्राह–

वर्णाश्रमसदाचारैर्ज्ञानिनां किं प्रयोजनम् ।
लौकिकस्तु सदाचारः फलाभावेऽपि भाव्यते ॥ २० ॥

वर्णाश्रमप्राप्तैर्ब्राह्मणादिवर्णब्रह्मचर्याद्याश्रमप्राप्तैः सदाचारैः ज्ञानिनां शिवज्ञानिनां किं प्रयोजनं, न किञ्चित् प्रयोजनमित्यर्थः । कुत इत्यत्राह– लौकिकस्तु सदाचारो वर्णाश्रमगतनित्यनैमित्तिकसदाचारः फलाभावेऽपि भाव्यते विधीयत इत्यर्थः ॥ २० ॥

शिवज्ञानीकेँ लौकिक वर्णाश्रमक सदाचारसँ कोन काज ? लौकिक सदाचारक फल हुनका नहि चाही तथापि ओ लोकमर्यादाक लेल करैत छथि ।। २० ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ननु ज्ञानिनामपि शरीरसम्बन्धस्य विद्यमानत्वात् कथं ते परित्यजनीयाः, अकरणे प्रत्यवायश्रवणादित्यत्राह–

निर्दग्धकर्मबीजस्य निर्मलज्ञानवह्निना ।
देहिवद् भासमानस्य देहयात्रा तु लौकिकी ॥ २१ ॥

निर्मलशिवसंविद्वह्निना पुनरुत्पत्तिशङ्काशून्यत्वेन नितरामतिशयेन दग्धपुण्यपापलक्षणकर्मबीजवतः शिवज्ञानिनः प्रत्यवायसम्बन्धो नास्त्येव । दग्धपटन्यायेन शरीरीव भासमानस्य तस्य देहयात्रा तु करचरणसञ्चालनादि-व्यवहृतिस्तु लौकिकी विदेहकैवल्यपर्यन्तमनुवर्तत इत्यस्थिरेत्यर्थः ॥ २१ ॥

जे निर्मलज्ञान रूपी आगिसँ समस्त कर्मबीजकेँ डाहि चुकल छथि आ सामान्य प्राणीजकाँ देहधारण कएने छथि तनिक शारीरिक व्यवहार लोकाचारप्रयुक्त होइत छनि ॥ २१ ॥

अथ– 'तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये'[१], 'तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां, द्विषन्तः पापकृत्याम्', 'यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेव विदि पापं कर्म न श्लिष्यते'[२], 'स उत्तमः पुरुषः स तत्र पर्येति'[३] इति छान्दोग्यश्रुत्यनुसारेणाह–

शिवज्ञानसमापन्न-स्थिरवैराग्यलक्षणः ।
स्वकर्मणा न लिप्येत पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ २२ ॥

शिवज्ञानलब्धदृढवैराग्यचिह्नः शिवलिङ्गैक्यः स्वकर्मणा स्वेच्छाकर्मणा अम्भसा जलेन पद्मपत्रमिव न लिप्येत इत्यर्थः ॥ २२ ॥

शिवज्ञानसँ युक्त स्थिरवैराग्यवाला व्यक्ति अपन कर्मसँ लिप्त नहि होइत अछि जेना जलसँ कमलक पात ॥ २२ ॥

'यथा वायुः सुशीघ्रोऽपि मुक्त्वाकाशं न गच्छति' इति निःश्वासकारिकानुसारेण शिवलिङ्गनिष्ठस्य सर्वापि क्रिया शिवलिङ्गपूजारूपेति पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि जाग्रद् वापि महामतिः ।
शिवज्ञानसमायोगाच्छिवपूजापरः सदा ॥ २३ ॥

महामतिः शिवलिङ्गैक्यः, गच्छन् गमनसमये, तिष्ठन् स्थितिसमये-स्वपन्

१. छा०उ० ६।१२।२ 2. छा०उ० ४।१४।३ ३. छा०उ० ८।१२।३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निद्रासमये, जाग्रद् विषयदर्शनसमये, सदा निरन्तरं, शिवज्ञानसमायोगात् शिवानुसन्धानसम्बन्धात् शिवपूजापरः लिङ्गनिष्ठ इत्यर्थः ॥ २३ ॥

चलैत, ठाढ़ रहैत, सुतैत अथवा जगैत महाबुद्धिमान् व्यक्ति शिवज्ञानसँ सम्बद्ध होएबाक कारण सतत शिवपूजन करैत रहैत छथि ॥ २३ ॥

ननु विषयदर्शनसमये कथं शिवानुसन्धानमित्यत्राह–

यद्यत्पश्यति सामोदं वस्तु लोकेषु देशिकः ।
शिवदर्शनसम्पत्तिस्तत्र तत्र महात्मनः ॥ २४ ॥

देशिकः शिवलिङ्गैक्यः, लोकेषु यद्यद्वस्तु घटपटादिकं सामोदं प्रीतियुक्तं (यथा स्यात्तथा) सन् पश्यति, तत्र तत्र तस्मिंस्तस्मिन् वस्तुनि महात्मनः शिवलिङ्गैक्यस्य शिवदर्शनसम्पत्तिः शिवालोकनसम्पत्तिर्भवेत् शिवातिरेकेण पदार्थान्तराभावात् चिन्मयत्वबुद्धिर्भवेदित्यर्थः ॥ २४ ॥

शिवयोगी आचार्य एहि संसारमे आनन्दसहित जाहि–जाहि वस्तुकेँ देखैत छथि, ताहि–ताहिमे ओहि महात्माकेँ शिवक प्रतीति होइत छनि ॥ २४ ॥

अथ–

आत्मा त्वं, गिरिजा मतिः, परिचराः प्राणाः, शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना, निद्रा समाधिस्थितिः ।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः, स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो ! तवाराधनम् ॥

इत्यभियुक्तवचनानुसारेण त्रिकरणशुद्धशिवलिङ्गपूजोपचारं त्रिभिः सूत्रैः प्रतिपादयन् आचारसम्पत्तिस्थलं समापयति–

यद्यच्चिन्तयते योगी मनसा शुद्धभावनः ।
तत्तच्छिवमयत्वेन शिवध्यानमुदाहृतम् ॥ २५ ॥

शुद्धभावनो निर्मलभावनावानित्यर्थः, शिष्टं स्पष्टम् ॥ २५ ॥

शुद्ध भावनावला योगी मनसँ जाहि–जाहि प्रकरक ध्यान करैत छथि से–से शिवमय भेलासँ शिवध्यान कहल जाइत अछि ॥ २५ ॥

यत्किञ्चिद् भाषितं लोके स्वेच्छया शिवयोगिना ।
शिवस्तोत्रमिदं सर्वं यस्मात् सर्वात्मकः शिवः ॥ २६ ॥

स्पष्टम् ॥ २६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवयोगी स्वेच्छासँ एहि संसारमे जे किछु बजैत छथि से शिवस्तोत्र भए जाइत अछि, किएक त शिव सबमे विद्यमान छथि ॥ २६ ॥

या या चेष्टा समुत्पन्ना जायते शिवयोगिनाम् ।
सा सा पूजा महेशस्य सर्वदा तद्गतात्मनाम् ॥ २७ ॥

शिवयोगिनां शिवलिङ्गैक्यानां या या चेष्टा कायक्रिया जायते, तद्गतात्मनां शिवलिङ्गे तादात्म्येन प्रविष्टिस्वरूपवतां तेषां सा सा क्रिया सर्वदा महेशस्य शिवलिङ्गस्य पूजेत्यर्थः ॥ २७ ॥

शिवयोगीक जे जे चेष्टा होइत अछि से से महादेवेक पूजा थिक, कारण शिवयोगीक आत्मा शिवमय रहैत छनि ॥ २७ ॥

इत्याचारसम्पत्तिस्थलम्

अथैकभाजनस्थलम्

अथ– 'परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति' इति मुण्डकोपनिषद्वचनानुसारेण सर्वाचारसम्पत्तिमतः शिवलिङ्गैक्यस्य एकभाजनस्थलं पञ्चभिः सूत्रैःप्रतिपादयति–

विश्वं शिवमयं चेति सदा भावयतो धिया ।
शिवैकभाजनात्मत्वा-देकभाजनमुच्यते ॥ २८ ॥

लिङ्गैक्यस्य शिवैक्यभाजनात्मत्वात् शिवैकाश्रयत्वाद् एकभाजनस्थल-मित्युच्यत इत्यर्थः ॥ २८ ॥

एकभाजन स्थल– 'संसार शिवमय अछि'– एहि प्रकारक मनसँ सदा भावना कएनिहार भक्त एकमात्र शिवतत्त्वक भाजन (पात्र) होएबाक कारण एकभाजन कहबैत छथि ॥ २८ ॥

ननु किमनेन भवतीत्यत्राह–

स्वस्य सर्वस्य लोकस्य शिवस्याद्वैतदर्शनात् ।
एकभाजनयोगेन प्रसादैक्यमतिर्भवेत् ॥ २९ ॥

स्वस्य स्वात्मनः सर्वस्य लोकस्य समस्तजनस्य अद्वैतदर्शनाद् अहमिति चिदैक्यदर्शनाद् एकभाजनयोगेन एककूटत्वेन प्रसादैक्यमतिः शिवप्रसाद एव स्वप्रसादः, स्वप्रसाद एव शिवप्रसादः, स एष स्वातिरिक्त इव भासमानस्य शिवभक्तस्य प्रसाद इति प्रसादैक्यमतिर्भवेदिति चरमूर्तिपादोदकप्रसादावपि शिवस्य स्वस्य च योग्यावितिभावः ॥ २९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपन सम्पूर्ण संसार ओ शिवकेँ एक बुझबाक कारण एक पात्र भेलासँ प्रसादविषयक अद्वैत बुझि होइत छनि ।। २९ ।।

ननु शिवस्य विश्वस्यैकरूपत्वे तयोः स्थितिः कथमित्यत्राह–

शिवे विश्वमिदं सर्वं शिवः सर्वत्र भासते ।
आधाराधेयभावेन शिवस्य जगतः स्थितिः ।। ३० ।।

शिवे विश्वं, विश्वस्मिन् शिव इति बीजाङ्कुरन्यायेनाधाराधेयभावेन सम्बन्धेन सामरस्येन शिवस्य जगतः स्थितिरित्यर्थः ।। ३० ।।

शिवमे ई सकल विश्व अछि ओ शिव सम्पूर्ण विश्वमे छथि । एहि प्रकारेँ आधाराधेय भावसँ शिव ओ संसारक स्थिति अछि । अर्थात् शिव आधार ओ विश्व आधेय छथि आ कखनो एकर ठीक विपरीतो भए जाइत छथि ।। ३० ।।

एवं चिदेकभाजनतां प्राप्तस्य मायिकभेदेन प्रयोजनं नास्तीत्याह–

चिदेकभाजनं यस्य चित्तवृत्तेः शिवात्मकम् ।
नान्यत् तस्य किमेतेन मायामूलेन वस्तुना ।। ३१ ।।

यस्य लिङ्गैक्यस्य चित्तवृत्तेर्मनोव्यापारस्य चिद् मनोव्यापाररूपा ज्ञप्तिरेव शिवात्मकमेकभाजनं शिवस्वरूपैकभाजनम्, तस्य मायामूलेन मायामूलकेन एतेन भेदेन किम्, किं प्रयोजनम्, न किञ्चित्प्रयोजनमित्यर्थः ।। ३१ ।।

जनिक चित्तवृत्ति एकमात्र शिवात्मक आ केवल चैतन्य-विषयात्मक छनि, कोनो अपन विषयात्मक नहि, तनिका माया-मूलक एहि वस्तु सबसँ की प्रयोजन ? ३१ ।।

नन्विदं विश्वं कथं शिवात्मकमित्यत्राह–

चित् प्रकाशयते विश्वं तद्विना नास्ति वस्तु हि ।
चिदेकनिष्ठचित्तानां किं मायापरिकल्पितैः ।। ३२ ।।

विश्वं घटाद्युपलक्षित-निखिलप्रपञ्चं चित् प्रकाशयते । तद्विना चित्प्रकाशं विना वस्तु घटादिवस्तु नास्ति । विषयसत्त्वोपगमे संविदेव भगवती शरणमिति प्राभाकरा अपि मन्यन्ते । अतो यदधीनतया भासते, तत्तदात्मकं जलतरङ्गादिवदिति चिदेकनिष्ठचित्तानां मायापरिकल्पितैः प्रापञ्चिकवेद्यपदार्थैः किं प्रयोजनमित्यर्थः ।। ३२ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चित् वस्तुकेँ प्रकाशित करैत अछि, ताहि विना कोनो वस्तु नहि अछि । जनिक मन चित्मात्र मे लागल छनि, तनिका एहि मायापरिकल्पित वस्तुसँ की प्रयोजन ? ३२ ॥

अथैकभाजनस्थलं समापयति–

वृत्तिशून्ये स्वहृदये शिवलीने निराकुले ।
यः सदा वर्तते योगी स मुक्तो नात्र संशयः ॥ ३३ ॥

यः शिवयोगी वृत्तिशून्ये व्यापारशून्ये निराकुले क्षोभरहिते शिवलीने शिवलिङ्गैक्यभूते स्वहृदये सदा वर्तते, स मुक्तः जीवन्मुक्त इत्यर्थः । अत्र सन्देहो नास्तीत्यर्थः ॥ ३३ ॥

जे योगी शिवमे लीन निराकुल (शान्त) वृत्तिशून्य अपन हृदयमे ध्यानस्थ रहैत छथि, से मुक्त छथि, ताहि मे कोनो सन्देह नहि ॥ ३३ ॥

इत्येकभाजनस्थलम्

अथ सहभोजनस्थलम्

अथ– 'अग्राह्यमग्राह्येण, वायुं वायव्येन, सोमं सौम्येन ग्रसति, स्वेन तेजसा तस्मादुपसंहर्त्रे महाग्रासाय वै नमो नमः' इत्यथर्वश्रुत्यनुसारेणैकभाजनस्थल-निष्ठस्य सहभोजनस्थलं दशभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

गुरोः शिवस्य शिष्यस्य स्वस्वरूपतया स्मृतिः ।
सहभोजनमाख्यातं सर्वग्रासात्मभावतः ॥ ३४ ॥

श्रीगुरोः शिवलिङ्गस्य शिष्यस्य च स्वरूपतया स्वात्माभेदेन अस्मत्प्रत्ययानतिरिक्तत्वेन स्मृतिः सर्वग्रासात्मभावतो घटो मया ज्ञातः, पटो मया ज्ञातः, चैत्रो मया ज्ञातः, मैत्रो मया ज्ञात इति विश्वभेदग्रसनमेव स्वरूपत्वात् सहभोजनम्, अनुभूतपदार्थस्य पुनः स्वात्मविश्रान्तत्वेन परामर्शनलक्षणं सहभोजनमित्यर्थः ॥ ३४ ॥

सहभोजनस्थल–

गुरु, शिव ओ शिष्यक एकरूपताक स्मरण सर्वग्रासक (संसारक भेदकेँ गीरि लेबाक) कारण सहभोजन कहल गेल अछि । अर्थात् शिष्यक कर्तव्य थिक जे एहि सबमे अभेद मानथि ॥ ३४ ॥

अथ निष्कर्षमाह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवं विश्वं गुरुं साक्षाद् योजयेन्नित्यमात्मनि ।
एकत्वेन चिदाकारे तदिदं सहभोजनम् ॥ ३५ ॥

साक्षाच्चिदाकार आत्मनि शिवं गुरुं विश्वं च एकत्वेन एकरूपत्वेन नित्यं संयोजयेत् । संयोजनं नाम अस्मद्रूपानतिरिक्तत्वेन परामर्शनं यदस्ति तदिदं सहभोजनम् । अत्र गुरुशिवयोरस्मद्रूपानतिरिक्तत्वात् स्वात्मैक्येन संयोजनं सम्भवति, इदंरूपतया भासमानस्य जड़स्य कथमात्मैक्संयोजनं सम्भवतीति नाशङ्कनीयम्, तस्याप्युक्तरीत्यात्मविश्रान्तत्वात् । अन्यथा स्मृतिर्न स्यात्, संसारस्यापि सविषयत्वेनैवात्मसमवेतत्वात् ॥ ३५ ॥

शिव, विश्व ओ गुरुकेँ प्रतिदिन साक्षात् चिदाकार आत्मामे एकरूपसँ जोड़एवाला सहभोजन थिक ॥ ३५ ॥

अथ पुनरपि निष्कर्षमाह–

अयं शिवो गुरुश्चैष जगदेतच्चराचरम् ।
अहं चेति मतिर्यस्य नास्त्यसौ विश्वभोजकः ॥ ३६ ॥

अयं शिवः, एष गुरुः स्वामी, एतत्स्थावरजङ्गमात्मकं विश्वम्, अहं च इति यस्य बुद्धिर्भेदबुद्धिर्नास्ति, सोऽसौ शिवलिङ्गैक्यो विश्वभोजको जगद्भेदभक्षक इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

ई शिव थिकाह, ई गुरु थिकाह, ई चराचार जगत् थिक आ ई हम (साधक) छी– एहि प्रकारक बुगि जनिका नहि होइत छनि से विश्वभोजक थिकाह ॥ ३६ ॥

अथेतोऽपि निष्कर्षमाह–

अहं भृत्यः शिवःस्वामी शिष्योऽहं गुरुरेव वै ।
इति यस्य मतिर्नास्ति स चाद्वैतपदे स्थितः ॥ ३७ ॥

शिवः स्वामी, अहं भृत्य, एष गुरुरहं शिष्य इति यस्य मतिर्भेदबुद्धिर्नास्ति, स च शिवलिङ्गैक्यः, अद्वैतपदे विश्वभेदग्रासात्मकशिवाद्वैतस्थाने, स्थितः तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ३७ ॥

हम सेवक छी आ शिव स्वामी छथि, हम शिष्य छी आ शिव गुरु छथि– एहि प्रकारक भेदबुद्धि जनिका नहि छनि से अद्वैत पदमे स्थित होइत छथि ॥ ३७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथैवंविधसहभोजनसम्पन्न एव विश्वहोमीति कथ्यत इत्याह–

परहन्तामये स्वात्मपावके विश्वभास्वति ।
इदन्ताहव्यहोमेन विश्वहोमीति कथ्यते ॥ ३८ ॥

विश्वप्रकाशे उत्कृष्टमूलाहङ्कारमये स्वात्माग्नौ इदन्तारूपहवनद्रव्यहोमेन विश्वहोमीति कथ्यत इत्यर्थः ॥ ३८ ॥

संसारकेँ प्रकाशित करएवाला परम अहङ्कारमय आत्मा रूपी आगिमे इदन्ता (ई संसार) रूपी हव्यक होम करएवाला विश्वहोमी कहबैत छथि ॥ ३८ ॥

ननु कासौ पराहन्तेत्यत्राह–

अहं शिवो गुरुश्चाहमहं विश्वं चराचरम् ।
यया विज्ञायते सम्यक् पूर्णाहन्तेति सा स्मृता ॥ ३९ ॥

शिवोऽहं गुरुरहं च चराचरं विश्वमहमिति यया चित्या सम्यग् विज्ञायते ।

अत्र–

'प्रत्यवमर्शात्मासौ, चितिः स्वरसवाहिनी परा वाग् या ।
आद्यन्तप्रत्याहृत- वर्णगणा सत्यहन्ता सा ॥'

इति पञ्चाशिकाशास्त्रस्थित्या देशकालाद्याकार- कृतसङ्कोचराहित्येन तद्वाचक-सकलमातृकार्णक्रोडीकारलक्षणप्रत्याहृताकार-हकारसम्मेलनात्मक-तदन्तर्गतवेद्यसंस्कारलक्षणबिन्दुस्पन्दस्फुरितपरशक्ति-शिवात्मकत्वेन स्थूलप्रपञ्चोत्पत्तेः प्राक् तत्कारणत्वेनाण्डरसन्यायेन सामान्यतोऽहमिति पश्चाद् अन्यव्यामिश्रमस्वतन्त्रं भेदाशक्यावभासनं प्रतिबिम्बमिति तल्लक्षणयोगसाम्येन प्रतिबिम्बगत्या विश्वमयत्वेन स्वातन्त्र्येण भासमाना पूर्णाहन्तेति स्मृतेत्यर्थः ॥ ३९ ॥

हम शिव छी, हम गुरु छी, हम चराचर विश्व छी– एहन जनिका ज्ञान भए गेल छनि से पूर्णाहन्ता कहबैत छथि ।

वर्णमालाक आदि ओ अन्तक अक्षरकेँ लए अ-ह बनैछ, ताहि पर बिन्दु देला पर 'अहं' ई सम्पूर्ण ब्रह्माण्डक वाचक थिक । तकरे भाव अहंता थिक ॥ ३९ ॥

अथोक्तलक्षणविश्वहोम्येव ज्ञानयज्ञदीक्षित इत्याह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आधारवह्नौ चिद्रूपे भेदजातं जगद्धविः ।
जुहोति ज्ञानयज्वा यः स ज्ञेयो विश्वहव्यभुक् ॥ ४० ॥

चिद्रूपे ज्ञानस्वरूपे आधारवह्नौ आज्ञाचक्रगतवह्नौ भेदजातं मायाकल्पितं जगद्धविः विश्वहविः यो जुहोति, स विश्वहव्यभुग् विश्वहविर्भोक्ता ज्ञानयज्वा ज्ञानयज्ञदीक्षित इति ज्ञेयो ज्ञातुं योग्य इत्यर्थः ॥ ४० ॥

ज्ञानयज्ञकर्ता जे व्यक्ति चित् रूपी आधारवह्नि (आज्ञाचक्र)मे स्थित भेदमय-संसार रूपी हवनसामग्रीसँ हवन करैत छथि से विश्वहव्यभोजी कहल जाइत छथि ॥ ४० ॥

ननु प्रत्यक्षवह्नौ तद्व्यतिरिक्तकाष्ठादौ निक्षिप्ते सति तन्नाशो दृश्यते, ज्ञानाग्नौ निक्षिप्तजगतो नाशः कथमित्यत्राह–

चिदाकारे पराकाशे परमानन्दभास्वति ।
विलीनचित्तवृत्तीनां का वा विश्वक्रमस्थितिः ॥ ४१ ॥

चिदाकारे पराकाशे ऊर्ध्वहृत्कमलकर्णिकाविवरे परमानन्दभास्वति नित्यानन्दमयमहालिङ्गाख्यभानौ विलीनचित्तवृत्तीनां लयीभूतमनोव्यापारवतां लिङ्गैक्यानां विश्वक्रमस्थितिः विश्वव्यापारवर्तनम्, (का) कापि नास्तीत्यर्थः ॥ ४१ ॥

परमानन्दसूर्यस्वरूप चिदाकार पराकाशमे जनिक चित्तवृत्ति विलीन छनि हुनका लेल संसारक क्रम (व्यवहार)क स्थिति केहन भए सकैछ, अर्थात् केहनो नहि ॥ ४१ ॥

अथ तस्य सहभोजनसम्पन्नस्य लिङ्गैक्यस्य मुक्तिस्वरूपं सूत्रद्वयेन कथयति–

निरस्तविश्वसम्बाधे निष्कलङ्के चिदम्बरे ।
भावयेल्लीनमात्मानं सामरस्यस्वभावतः ॥ ४२ ॥
सैषा विद्या परा ज्ञेया सत्तानन्दप्रकाशिनी ।
मुक्तिरित्युच्यते सद्भिर्जगन्मोहनिवर्तिनी ॥ ४३ ॥

निवारितजननमरणादिक्लेशे दोषरहिते चिदाकाशस्वरूपे महालिङ्गे, अङ्गशब्दवाच्यमात्मानं स्वरूपहानिवृद्धिव्यतिरेकेण सजातीयसमानसमरसभावेन लीनं स्थिरसिद्धिमन्तं भवयेत् । सैषा सच्चिदानन्दस्वरूपप्रकाशिनी परा विद्येति ज्ञातुं

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

योग्या, जगन्मोहनिर्वर्तिनी विश्वभेदभ्रान्तिनिवर्तिनी परा मुक्तिरिति सत्पुरुषैरुच्यत इत्यर्थः ॥ ४२-४३ ॥

विश्वक क्लेश जन्म-मरणादिक निरस्त भए गेल छैक जाहिमे एहन निष्कलङ्क चिदाकाशमे अपनाकेँ समरसताक भावसँ लीन बुझक चाही । सत्तानन्दप्रकाशिनी ई परा विद्या ज्ञातव्य थिक जे सज्जनक द्वारा एहि जगतक मोहकेँ दूर कराबए वाली मुक्ति कहबैछ ॥ ४२-४३ ॥

अथायं शिवलिङ्गैक्य एव मोक्षलक्ष्मीनिवासस्थानभूत इत्युक्त्वा सहभोजनस्थलं समापयति–

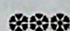
भक्तादिधामार्पितधर्मयोगात् प्राप्तैकभावः परमाद्भुतेन ।
शिवेन चिद्व्योममयेन साक्षान्मोक्षश्रियो भाजनतामुपैति ॥ ४४ ॥

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ शिवलिङ्गैक्यस्य चतुर्विधस्थलप्रसङ्गो नाम चतुर्दशः परिच्छेदः ॥ १४ ॥



चिद्व्योममयेन ऊर्ध्वहृत्कमलमध्यस्थचिदाकाशस्वरूपेण परमाद्भुतेन परमाश्चर्यरूपेण शिवेन शिवलिङ्गेन स्वरूपहानिवृद्धिव्यतिरेकेण समानसमरसत्वेन लब्धैकत्ववान् शिवलिङ्गैक्यो भक्तादिधामार्पितधर्मयोगाद् भक्तादिस्थलगत- सदाचार- सम्बन्धात् प्रत्यक्षमोक्षलक्ष्म्या भाजनताम् आश्रयत्वम् उपैति प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां शिवलिङ्गैक्यस्य चतुर्विधस्थलप्रसङ्गनामा चतुर्दशः परिच्छेदः ॥ १४ ॥



भक्त आदि स्थलक लेल समर्पित धर्मयोगक कारण चिदाकाशमय परम अद्भुत शिवलिङ्गक संग एकताकेँ प्राप्त ऐक्यस्थलवाला व्यक्ति साक्षात् मोक्षक पात्र थिकाह ॥ ४४ ॥

एहि प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणि ग्रन्थक विद्यावाचस्पति डॉ० शशिनाथ झाकृत प्रबोधिनी व्याख्यामे शिवलिङ्गैक्यसम्बन्धी चतुर्विध स्थल नामक चौदहम परिच्छेद समाप्त ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चदशः परिच्छेदः

अथ लिङ्गस्थलानि, दीक्षागुरुस्थलम्

अथ भक्तादिशिवलिङ्गैक्यान्तषट्स्थलोक्तपिण्डादिसहभोजनान्तचतुश्चत्वारिंशदवान्तरस्थलनिरूपित-सदाचारसम्पन्नस्य लिङ्गैक्यस्य वर्णाश्रमादिसङ्कल्पविकल्पशून्यत्वेन प्राकृताचारिनिवृत्त्या सहभोजनसम्पन्नत्वाल्लिङ्गरूपत्वेन तदाचरणीयलिङ्गाचारस्थलानि निरूपयति श्रीरेणुकः –

षट्स्थलोक्तसदाचार-सम्पन्नस्य यथाक्रमम् ।
लिङ्गस्थलानि कथ्यन्ते जीवन्मुक्तिपराणि च ॥ १ ॥

अङ्गषट्स्थलोक्तसदाचारसम्पन्नस्य शिवलिङ्गैक्यस्य क्रमेण जीवन्मुक्तिपराणि लिङ्गषट्स्थलानि कथ्यन्त इत्यर्थः ॥ १ ॥

लिङ्गस्थल– श्रीरेणुकाचार्य बजलाह– छओ स्थलमे वर्णित सदाचारीक जीवन्मुक्तिपरक लिङ्गस्थल क्रमशः कहैत छी ॥ १ ॥

अथागस्त्यप्रश्नः । अगस्त्य उवाचेति–

भक्ताद्यैक्यावसानानि षडुक्तानि स्थालानि च ।
लिङ्गस्थलानि कानीह कथ्यन्ते कति वा पुनः ॥ २ ॥

स्पष्टम् ॥ २ ॥

अगस्त्य बजलाह– भक्तस्थलसँ लए ऐक्यस्थल तक छओ स्थल तँ कहल गेल । आब एतए लिङ्गस्थल कोन–कोन ओ कतेक अछि से अपने कहल जाए ॥ २ ॥

श्रीरेणुक उवाच

गुर्वादिज्ञानशून्यान्ता भक्तादिस्थलसंश्रिताः ।
स्थलभेदाः प्रकीर्त्यन्ते पञ्चाशत् सप्त चाधुना ॥ ३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भक्ताद्यैक्यान्ताङ्गषट्स्थलसंश्रिता दीक्षागुर्वादिवृत्तिज्ञानशून्यान्ताः सप्तोत्तरपञ्चाशल्लिङ्गस्थलभेदा अधुना कथ्यन्त इत्यर्थः ॥ ३ ॥

श्रीरेणुक बजलाह–

भक्त आदि स्थलपर आधारित गुरुस्थलसँ लए ज्ञानशून्य स्थल धरि सतावन स्थलभेद आब कहि रहल छी ॥ ३ ॥

अथ भक्तस्थलगतलिङ्गस्थलभेदान् सूत्रत्रयेण कथ्यति–

आदौ नव स्थलानीह भक्तस्थलसमाश्रयात् ।
कथ्यन्ते गुणसारेण नामान्येषां पृथक् शृणु ॥ ४ ॥

इह लिङ्गषट्स्थले भक्तस्थलसमाश्रयाद् आदौ नव स्थलानि गुणसारेण श्रेष्ठत्वेन एषां नवस्थलानां नामानि पृथक् पृथक् कथ्यन्ते, शृण्वित्यर्थः ॥ ४ ॥

भक्तस्थलक आधार पर एहिठाम पहिने नओ स्थलकेँ ओकर गुणक अनुसार कहि रहल छी । ओहि सबहिक पृथक्-पृथक् नाम सुनू ॥ ४ ॥

अथ तान्युद्दिशति–

दीक्षागुरुस्थलं पूर्वं ततः शिक्षागुरुस्थलम् ।
प्रज्ञागुरुस्थलं चाथ क्रियालिङ्गस्थलं ततः ॥ ५ ॥
भवलिङ्गस्थलं चाथ ज्ञानलिङ्गस्थलं ततः ।
स्वयं परं चरं चेति तेषां लक्षणमुच्यते ॥ ६ ॥

स्पष्टम् ॥ ६ ॥

पहिने दीक्षागुरुस्थल, तखन शिक्षागुरुस्थल, प्रज्ञागुरुस्थल, क्रियालिङ्गस्थल, भवलिङ्गस्थल, ज्ञानलिङ्गस्थल, स्वयंस्थल, परस्थल ओ चरस्थल ई नवो स्थल थिक, एहि सबहुक लक्षण कहल जाइत अछि ॥ ५-६ ॥

अथ–

दीयते च यथा ज्ञानं क्षीयते च मलत्रयम् ।
सा दीक्षा संज्ञिता तस्यां गुरुर्दीक्षागुरुर्मतः ॥

इति वातुलोत्तरवचनानुसारेण शिवलिङ्गैक्य एव दीक्षागुरुरिति कथयति–

दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम् ।
यया दीक्षेति सा तस्यां गुरुर्दीक्षागुरुः स्मृतः ॥ ७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यया परमज्ञानम् उत्कृष्टशिवज्ञानं 'दा दाने' इति धातुगत्या दीयते, पाशबन्धनं मलमायादिपाशबन्धनं 'क्षि क्षये' इति धातुगत्या क्षीयते, सा दीक्षेति मता सम्मता, तस्यां चित्क्रियालक्षणदीक्षायां गुरुः 'गृ निगरणे' इति धातुगत्या उपदेशकृच्छिवलिङ्गैक्यो दीक्षागुरुरिति स्मृत इत्यर्थः ॥ ७ ॥

दीक्षागुरुस्थल– जे परम ज्ञान दैत अछि आ पाशबन्धकेँ दूर करैत अछि से दीक्षा थिक। ताहि विषयमे जे गुरु होथि से दीक्षागुरु कहबैत छथि ॥ ७ ॥

अथ गुरुस्वरूपं विशदयति–

गुणातीतं गुकारं च रूपातीतं रुकारकम् ।
गुणातीतमरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः ॥ ८ ॥

गुकारं प्राकृतगुणातीतम्, रुकारम् अशुद्धमायारूपातीतम्, गुणातीतमरूपं च मण्डलत्रयात्मकगुणत्रयं ज्योतिर्मयबैन्दवकलाशून्यचिन्मयवस्तु यो ददाति उपदिशति, स गुरुः स्मृतः, गुरुरिति स्मृत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

'गु' शब्दक अर्थ थिक गुणातीत, 'रु' शब्दक अर्थ थिक रूपातीत। जे गुणसँ पर निर्गुण एवं रूपरहित तत्त्वकेँ दैत होथि से गुरु कहल गेल छथि ॥ ८ ॥

अथैतत्प्रसङ्गादाचार्यस्वरूपं च विशदयति–

आचिनोति च शास्त्रार्थानाचारे स्थापयत्यलम् ।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन चोच्यते ॥ ९ ॥

शास्त्रार्थान् वीरशैवशास्त्ररहस्यार्थान् प्रकटीकृत्य कथयति, आचारे वीरशैवाचारे शिष्यान् अलम् आधिक्येन स्थापयति नियमयति, स्वयं च वीरशैवाचारान् आचरते, तेन हि तेन कारणेन– 'अचार्यो[1] वक्ता कुशलोऽस्य लब्धः'[2] इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेणाचार्य इत्युच्यते इत्यर्थः ॥ ९ ॥

जे शास्त्रक तात्पर्यक संग्रह करैत छथि आ तकरा व्यवहारमे स्थापित करैत छथि आ स्वयं आचरण करैत छथि, तेँ हुनका आचार्य कहल जाइछ ॥ ९ ॥

अथ देशिकशब्दनिर्वचनं च कृत्वा शिवलिङ्गैक्य एव जगद्गुरुरिति

---

१. 'आचार्यो' इत्यस्य स्थाने कठोनिषदि 'आश्चर्यो' इति पाठो लभ्यते ।

२. कठोप० १।२।७

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूत्रद्वयेनोक्तदीक्षागुरुस्थलं समापयति–

षडध्वातीतयोगेन यतते यस्तु देशिकः ।
मायाब्धितारणोपाय-हेतुर्विश्वगुरुः शिवः ॥ १० ॥

'ज्ञानान्मुक्तिं दिशति यः स देशिक इति स्मृतः' इति कामिकवाक्यप्रसिद्धो यो देशिकः षडध्वातीतयोगेन 'अध्वनामध्वपते श्रेष्ठस्याध्वनः पारमय' इति श्रुतिप्रसिद्धवर्णपदादिषडध्वातीतयोगेन यतते उद्योगवानास्ते, स शिवः शिवलिङ्गैक्यो मायाब्धितारणोपायहेतुभूतो जगद्गुरुरित्यर्थः ॥ १० ॥

जे देशिक (ज्ञानसँ मुक्तिक मार्ग बुझओनिहार) षडध्वा (वर्ण, पद, वाक्यादि छओ मार्ग) सँ ऊपरक योगकेँ आश्रित कए चलैत छथि से मायारूपी समुद्रक पार होएबाक उपायक कारण विश्वगुरु शिव थिकाह ॥ १० ॥

अथ कथमयं जगद्गुरुरित्याह–

अखण्डं येन चैतन्यं व्यज्यते सर्ववस्तुषु ।
अत्मयोगप्रभावेण स गुरुर्विश्वभासकः ॥ ११ ॥

सर्ववस्तुषु नीलपीतादिसकलवस्तुषु, आत्मयोगप्रभावेण स्वानुभवबलाद् अखण्डं सच्चिदानन्दात्मकं चैतन्यं येन व्यज्यते, नीलपीतादिप्रतिनियतपदार्थावसान-कालेऽप्यहमित्यखण्डचैतन्यमनुवर्तत एव, अन्यथा तद्वेद्यदर्शनं न स्यादिति स्फुटीक्रियते, स गुरुर्विश्वभासको विश्वप्रकाशक इत्यर्थः ॥ ११ ॥

जे अपन योगक प्रभावसँ सब वस्तुमे अखण्ड चैतन्यक अभिव्यक्ति करबैत छथि से गुरु विश्वप्रकाशक थिकाह ॥ ११ ॥

इति दीक्षागुरुस्थलम्

अथ शिक्षागुरुस्थलम्

अथ–

बोध्यबोधकभावेन ज्ञानद्वारेण शास्यते ।
शिष्यो हि येन गुरुणा स शिक्षागुरुरुच्यते ॥

इति वातुलोत्तरवचनानुसारेण शिक्षागुरुस्थलं निरूपयति–

दीक्षागुरुरसौ शिक्षा-हेतुः शिष्यस्य बोधकः ।
प्रश्नोत्तरप्रवक्ता च शिक्षागुरुरितीर्यते ॥ १२ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

असौ दीक्षागुरुः शिष्यस्य बोधकः सन् प्रश्नोत्तरप्रवक्ता शिष्यकृतप्रश्नस्योत्तरं दत्त्वा शिक्षाहेतुश्च शिक्षाकरणः सन् शिक्षागुरुरिति कथ्यत इत्यर्थः ॥ १२ ॥

शिक्षागुरुस्थल– ई दीक्षागुरु शिष्यकेँ बुझएबाक कारण शिक्षागुरु होइत छथि । जे शिष्यक प्रश्नक उत्तर देबएवाला होइत छथि से शिक्षागुरु कहबैत छथि ॥ १२ ॥

अथामुमेवार्थं स्फुटयति–

बोधकोऽयं समाख्यातो बोध्यमेतदिति स्फुटम् ।
शिष्ये नियुज्यते येन स शिक्षागुरुरुच्यते ॥ १३ ॥

अयं शिवसिद्धान्तबोधकः परतत्त्वप्रकाशक इत्यर्थः, 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते'[१] इति वैयाकरणोक्तेः स्फुटं देशिकोपदेशस्फुटीभूतम् एतत् शिवयोगज्ञानं बोध्यम् इति येन गुरुणा शिष्यः समाख्यातो बोधकः सन् नियुज्यते नियम्यते, स शिक्षागुरुरित्युच्यत इत्यर्थः ॥ १३ ॥

ई गुरु सिद्धान्तक बोधक कहल गेल छथि आ शिवज्ञान बोध्य (जनबायोग्य) थिक । जे शिष्यमे एहि ज्ञानकेँ नियुक्त करथि से शिक्षागुरु कहल जाइत छथि ॥ १३ ॥

अथ– 'आचार्यः पूर्वरूपं अन्तेवास्युत्तररूपं विद्याः सन्ति'[२], 'आचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति'[३] इति श्रुत्यनुसारेण द्वैविध्येन तत्स्वरूपं वर्णयति–

संसारतिमिरोन्माथि-शरच्चन्द्रमरीचयः ।
वाचो यस्य प्रवर्तन्ते तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १४ ॥

यस्य वाच उपदेशवाक्यानि संसारतिमिरविनाशने शरच्चन्द्रमरीचय इव प्रवर्तन्ते, तम् आचार्यं सन्तं प्रचक्षते कथयन्ति ॥ १४ ॥

संसाररूपी अन्हारकेँ नष्ट करबाक लेल जनिक वाणी शरदक चान जकाँ काज करैत छनि तनिका विद्वानलोकनि आचार्य कहैत छथि ॥ १४ ॥

ददाति यः पतिज्ञानं जगन्मायानिवर्तकम् ।
अद्वैतवासनोपायं तमाचार्यवरं विदुः ॥ १५ ॥

---

१. 'अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥' इति श्लोकोत्तरार्द्धम् । –वाक्यप० १ । १२३
२. तै०उ० २ । २–३ ३. तै०उ० ११ । १

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यो जगन्मायानिवर्तकं प्रापञ्चिकभेदभ्रान्तिनिवर्तकं पतिज्ञानम्, 'पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम्'[१] इति नारायणोपनिषत्प्रसिद्धस्वात्माभिन्न-शिवज्ञानं ददाति प्रकाशयति, तम् आचार्यवरम् आचार्यश्रेष्ठं सन्तं विदुः, जानन्तीत्यर्थः ॥ १५ ॥

जे संसार रूपी मायाकेँ हटाबएवाला पतिज्ञान (स्वात्मा सँ अभिन्न शिव ज्ञान) दैत छथि, ताहि अद्वैतभावनाक उपायस्वरूप मानवकेँ विद्वानलोकनि आचार्यरूपेँ जनैत छथि ॥ १५ ॥

अथ शिवाद्वैतज्ञानसम्पन्नः सन् शिष्यसन्देहवारक एव गुरुः श्रेष्ठ इति सूत्रद्वयेनाह–

पूर्वपक्षं समादाय जगद्भेदविकल्पनम् ।
अद्वैतकृतसिद्धान्तो गुरुरेष गुणाधिकः ॥ १६ ॥

जगद्भेदविकल्पनं प्रापञ्चिकभेदद्वैविध्यविशिष्टं पूर्वपक्षं समादाय अङ्गीकृत्य अद्वैतकृतसिद्धान्तवानेष गुरुः शिक्षागुरुरेव गुणाधिकः श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥ १६ ॥

संसारक भेदकल्पनाकेँ पूर्वपक्ष बनाए जे सिद्धान्तपक्षक रूपमे अद्वैतवादकेँ स्थापित करैत छथि से गुरु श्रेष्ठ थिकाह ॥ १६ ॥

सन्देहवनसन्दोह-समुच्छेदकुठारिका ।
यत्सूक्तिधारा विमला स गुरूणां शिखामणिः ॥ १७ ॥

विमला निर्मला यत्सूक्तिधारा यस्य गुरोरूपदेशवाक्यधारा सन्देहवनसन्दोह-समुच्छेदकुठारिका संशयारण्यसमुच्छेदपरशुः, स गुरूणां शिखामणिः श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥ १७ ॥

जनिक निर्मल सूक्तिधारा सन्देहरूपी वनक समुदायकेँ कटबाक लेल कुरहड़िक समान होइछ से गुरुमे शिखामणि थिकाह ॥ १७ ॥

अथेममेवार्थं विशेषयति सूत्रद्वयेन–

यत्सूक्तिदर्पणाभोगे निर्मले दृश्यते सदा ।
मोक्षश्रीर्बिम्बरूपेण स गुरुर्भवतारकः ॥ १८ ॥

---

१. ना०उ० १३।१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्मले यस्योपदेशोक्तिदर्पणमण्डले मोक्षलक्ष्मीर्बिम्बरूपेण प्रतिबिम्बरूपेणेत्यर्थः, दृश्यते प्रकाशते, स गुरुर्भवतारकः संसारार्णवतारक इत्यर्थः ॥ १८ ॥

जनिक निर्मल सूक्तिरूपी दर्पणक विस्तारमे मोक्षलक्ष्मी सतत बिम्बक रूपमे देखि पड़ैत छथि से गुरु संसारसँ पार कराबएवाला होइत छथि ॥ १८ ॥

अथ प्रकारान्तरेणाह–

शिष्याणां हृदयालेख्यं प्रद्योतयति यः स्वयम् ।
ज्ञानदीपिकयाऽनेन गुरुणा कः समो भवेत् ॥ १९ ॥

यः श्रीगुरुः शिष्याणां हृदयालेख्यं हृत्कमलस्थनिजरूपचित्रं ज्ञानदीपिकया ज्ञानदीपेन प्रद्योतयति प्रकाशयति, अनने गुरुणा शिक्षागुरुणा कः समो भवेत्, न कोऽपि सम इत्यर्थः ॥ १९ ॥

जे स्वयं शिष्यक हृदयस्थ चित्रकेँ प्रकाशित करैत छथि ओहि गुरुक समान के अछि ? ॥ १९ ॥

अथैतादृशगुरुरस्ति वेत्यत्रास्ति दुर्लभ इत्युक्त्वा शिक्षागुरुस्थलं समापयति–

परमाद्वैतविज्ञान-परमौषधिदानतः ।
संसाररोगनिर्माथी देशिकः केन लभ्यते ॥ २० ॥

शिवकारुण्यरहितेन केनापि न लभ्यत इत्यर्थः ॥ २० ॥

परमाद्वैतरूपी परमौषधिक दानसँ संसाररूपी रोगकेँ नष्ट करएवाला आचार्य किनका भेटैत छथि ? शिवक कृपे सँ एहन गुरुक लाभ सम्भव थिक ॥ २० ॥

इति शिक्षागुरुस्थलम्

अथ ज्ञानगुरुस्थलम्

अथ–

शिवरूपानुसन्धायि ज्ञानं येनोपदिश्यते ।
मुमुक्षोर्मोक्षसिद्ध्यर्थं स ज्ञानगुरुरुच्यते ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति वातुलोत्तरवचनानुसारेण ज्ञानगुरुस्थलं निरूपयति–

उपदेष्टोपदेशानां संशयच्छेदकारकः ।
सम्यग्ज्ञानप्रदः साक्षादेष ज्ञानगुरुः स्मृतः ॥ २१ ॥

उपदेशानां रहस्यार्थानाम् उपदेष्टा उपदेशकृत् संशयच्छेदकारकः शिष्यसन्देहवारक एष शिक्षागुरुरेव सम्यक् साक्षाद् ज्ञानप्रदः प्रत्यक्षीभूतशिवो ज्ञानप्रदः सन् ज्ञानगुरुरिति स्मृत इत्यर्थः ॥ २१ ॥

ज्ञानगुरु स्थल– उपदेशकेर उपदेशक, संशयक निवारक, समुचित ज्ञानदायककेँ साक्षात् ज्ञानगुरु कहल गेल अछि ॥ २१ ॥

ननु शिवज्ञानं कीदृशं तत्कथं प्रत्यक्षीकरोतीत्यत्राह–

निरस्तविश्वसम्भेदं निर्विकारं चिदम्बरम् ।
साक्षात्करोति यो युक्त्या स ज्ञानगुरुच्यते ॥ २२ ॥

निरस्तविश्वसम्भेदं न किञ्चिदवेदिषमिति शून्यप्रतीतिबलान्निराकृत-विश्वभेदं विकाररहितं चिदाकाशं चिद्व्योम युक्त्या स्फुटतरभासमाननीलखादि-प्रमात्रन्वेषणद्वारा पारमार्थिकप्रमातृलाभ इहोपदिश्यत इति शिवाद्वैतशास्त्रोक्त-स्वानुभवयुक्त्या यः प्रत्यक्षीकरोति, स ज्ञानगुरुरित्यर्थः ॥ २२ ॥

जे व्यक्ति युक्तिक द्वारा संसारक भेदकेँ समाप्त करएवाला निर्विकार चिदाकाशक प्रत्यक्ष करैत छथि से ज्ञानगुरु कहबैत छथि ॥ २२ ॥

अथ शिवज्ञानं प्रस्तौति सूत्रद्वयेन–

कलङ्कवानसौ चन्द्रः क्षयवृद्धपरिप्लुतः ।
निष्कलङ्कस्थितो ज्ञानचन्द्रमा निर्विकारवान् ॥ २३ ॥

क्षयवृद्धिपरिप्लुतः क्षयवृद्धिपीड्यमानः, असौ चन्द्रः कलङ्कवान् । निर्विकारवान् विकाररहितो ज्ञानचन्द्रमाः चिच्चद्रः, निष्कलङ्कस्थितः कलङ्करहितः सन् तिष्ठतीत्यर्थः ॥ २३ ॥

ई चन्द्रमा कलङ्कसँ युक्त एवं घटला-बढ़लासँ विकारवान् छथि, मुदा, ज्ञानरूपी चन्द्रमा निष्कलङ्क आ निर्विकार छथि ॥ २३ ॥

पार्श्वस्थतिमिरं हन्ति प्रदीपो मणिनिर्मितः ।
सर्वगामि तमो हन्ति बोधदीपो निरङ्कुशः ॥ २४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मणिनिर्मितो रत्ननिर्मितो दीपः पार्श्वस्थान्धकारं निवारयति, निरङ्कुशोऽनर्गलो बोधदीपश्चित्प्रदीपः सर्वगामि तमः सर्वत्र विद्यमानं तमो निवारयतीत्यर्थः ॥ २४ ॥

मणिनिर्मित दीप त लगक अन्हारकेँ हटबैत अछि, मुदा, निरङ्कुश ज्ञानरूपी दीप सबठामक अन्हारकेँ दूर करैत अछि ॥ २४ ॥

अथ शिवज्ञानोपदेशतत्परं श्रीगुरुं सूत्रद्वयेन प्रस्तौति–

सर्वार्थसाधकज्ञान–विशेषादेशतत्परः ।
ज्ञानाचार्यः समस्तानामनुग्रहकरः शिवः ॥ २५ ॥

भोगमोक्षलक्षणसर्वप्रयोजनसाधकशिवज्ञानविशेषोपदेशासक्तो ज्ञानगुरुरेव स्मस्तानां मुमुक्षूणाम् अनुग्रहकरः, साक्षाच्छिव इत्यर्थः ॥ २५ ॥

सब अर्थक साधनस्वरूप विशेषज्ञानक दानमे लागल एवं सभक ऊपर कृपा कएनिहार ज्ञानाचार्य साक्षात् शिव होइत छथि ॥ २५ ॥

कटाक्षचन्द्रमा यस्य ज्ञानसागरवर्धनः ।
संसारतिमिरच्छेदी स गुरुर्ज्ञानपारगः ॥ २६ ॥

यस्याचार्यस्य कटाक्षचन्द्रमाः शिवज्ञानोदधिवर्धनः संसारतिमिरच्छेदी, स गुरुः श्रीगुरुः, ज्ञानपारगः परापरज्ञानपारङ्गत इत्यर्थः ॥ २६ ॥

जनिक कटाक्ष (थोड़ दृष्टि) स्वरूप चन्द्रमा ज्ञानसागरकेँ बढ़बैत अछि, संसाररूपी अन्हारकेँ नाशकरएवाला से गुरु ज्ञानक पार पहुँचनिहार होइत छथि ॥ २६ ॥

अथ तमेव गुरुं भानुत्वेन वर्णयन् ततोऽप्याधिक्यं प्रतिपादयति–

बहिस्तिमिरविच्छेत्ता भानुरेष प्रकीर्तितः ।
बहिरन्तस्तमश्छेदी विभुर्देशिकभास्करः ॥ २७ ॥

एष भानुः, बहिस्तिमिरविच्छेत्ता बाह्यान्धकारनिवारकः, विभुः चिद्व्यापको देशिकभास्करो ज्ञानाचार्यसूर्यो बहिरन्तरस्तमश्छेदी, नायं शिव इति विषयगतमज्ञानम्, नाहं शिव इत्यन्तर्गताज्ञानं च भिनत्तीति प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥

ई सूर्य बाहरी अन्हारक नाश करैत छथि, मुदा आचार्यरूपी महान् सूर्य बाहर ओ भीतर स्थित अज्ञानरूपी अन्हारकेँ नाश करैत छथि ॥ २७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ शिववेदकं शिवज्ञानं सूचयित्वा ज्ञानगुरुस्थलं सूत्रद्वयेन समापयति–

कटाक्षलेशमात्रेण विना ध्यानादिकल्पनम् ।
शिवत्वं भावयेद्यत्र स वेदः शाम्भवो मतः ॥ २८ ॥

ध्यानधारणादिसङ्कल्पं विना श्रीगुरोः कृपाऽपाङ्गदर्शनमात्रेण शिवत्वं भावयेत् स्फुटं भवेत्, स वेदः शाम्भव इति मतः सम्मत इत्यर्थः ॥ २८ ॥

जाहिसँ ध्यानादि कल्पनाक विना केवल कृपाकटाक्षसँ शिवत्वक भावना दृढ़ होइत छैक से शाम्भव ज्ञान कहबैत अछि ॥ २८ ॥

शिववेदकरे ज्ञाने दत्ते येन सुनिर्मले ।
जीवन्मुक्तो भेवच्छिष्यः स गुरुर्ज्ञानसागरः ॥ २९ ॥

येन श्रीगुरुणा शिववेदकरे स्वात्मशिवतास्फुटीकरणप्रवीणे निर्मले शिवज्ञाने दत्ते सति शिष्यो जीवन्नपि मुक्तः स्यात्, स गुरुः शिवज्ञानसागर इत्यर्थः ॥ २९ ॥

जनिका द्वारा शिवत्वभावना उत्पन्न करएवाला निर्मल ज्ञान देलापर शिष्य जीवन्मुक्त भए जाइत छथि से गुरु ज्ञानक सागर थिकाह ॥ २९ ॥

इति ज्ञानगुरुस्थलम्

अथ क्रियालिङ्गस्थलम्

अथ– 'इष्टमूर्जं तपसानुयच्छति' इत्याथर्वणी श्रुतिः, एतद्विवरणरूपेण–

सकलं दृक्कलाग्राह्यमिष्टलिङ्गस्थलं महत् ।
इष्टावाप्तिकरं साक्षादनिष्टपरिहारकम् ॥
इष्टमूर्जं स्वभक्तानामनुयच्छति सर्वदा ।
इष्टलिङ्गमिति प्राह तस्मादाथर्वणी श्रुतिः ॥

इति वातुलतन्त्रवचनेन ज्ञानगुरूपदिष्टक्रिया यत्र लयं गच्छति, तत्क्रियालिङ्गस्थलमिति सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

गुरोर्विज्ञानयोगेन क्रिया यत्र विलीयते ।
तत्क्रियालिङ्गमाख्यातं सर्वैरागमपारगैः ॥ ३० ॥

गुरोः ज्ञानगुरोः विज्ञानयोगेन विशेषज्ञानयोगेन क्रिया यत्र यस्मिन्नधिकरणे विलीयते तत्क्रियालिङ्गं क्रियार्थमभीष्टलिङ्गमित्यागमपारगैः शिवसिद्धान्तपारङ्गतैः सर्वैर्वीरशैवाचार्यैराख्यातं प्रोक्तमित्यर्थः ॥ ३० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्रियालिङ्ग स्थल– गुरुक विज्ञानयोगसँ जाहिमे क्रिया विलीन हो, तकरा सभ आगमक पारङ्गत विद्वान क्रियालिङ्ग कहैत छथि ॥ ३० ॥

ननु किं तत्स्वरूपमित्यत्राह–

परानन्दचिदाकारं परब्रह्मैव केवलम् ।
लिङ्गं सद्रूपतापन्नं लक्ष्यते विश्वसिद्धये ॥ ३१ ॥

नित्यानन्दस्वरूपं सद् अन्तर्मुखज्ञानस्वरूपं सद् अस्तितारूपं गतं केवलं परब्रह्मैव विश्वसिद्धये समस्तसत्क्रियासिद्ध्यर्थं लिङ्गम् इष्टलिङ्गमिति लक्ष्यत इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

परानन्द चिदाकार अद्वितीय परब्रह्मो संसारक रचनाक सिद्धिक लेल सद्रूपक (स्थूलरूपक) धारण करैत छथि ॥ ३१ ॥

अथ सा सिद्धिः कथं भवतीत्यत्राह–

लिङ्गमेव परं ज्योतिर्भवति ब्रह्म केवलम् ।
तस्मात् तत्पूजनादेव सर्वकर्मफलोदयः ॥ ३२ ॥

परं ज्योतिःस्वरूपं केवलं परब्रह्मैव क्रियार्थलिङ्गम् । तस्मात् तत्पूजनादेव सर्वकर्मफलोदयः सकलसत्कर्मफलाविर्भावो भवति जायत इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

परज्योति केवल परब्रह्मे लिङ्ग थिकाह, तेँ हुनक पूजासँ सकल कर्मफलक उदय होइत अछि ॥ ३२ ॥

तस्माल्लिङ्गमेव श्रेष्ठमित्याह–

परित्यज्य क्रियाः सर्वा लिङ्गपूजैकतत्पराः ।
वर्तन्ते योगिनः सर्वे तस्माल्लिङ्गं विशिष्यते ॥ ३३ ॥

सर्वे योगिनः सनकादिसमस्तयोगिनः सर्वाः क्रियाः समस्ता योगादिक्रियाः परित्यज्य इष्टलिङ्गपूजैकतत्पराः सन्तो वर्तन्ते, तस्माल्लिङ्गं क्रियालिङ्गं विशिष्यत इत्यर्थः ॥ ३३ ॥

सभ योगी लोकनि सकल क्रियाकेँ छोड़ि केवल लिङ्गपूजामे लागल रहैत छथि । तेँ क्रियालिङ्ग श्रेष्ठ थिक ॥ ३३ ॥

ननु सनकादीनां यज्ञादिक्रियापरित्यागः किंनिबन्धन इत्यत्राह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यज्ञादयः क्रियाः सर्वा लिङ्गपूजांशसम्मिताः ।
इति यत्पूज्यते सिद्धैस्तत्क्रियालिङ्गमुच्यते ॥ ३४ ॥

यज्ञादयः क्रियाः सर्वा लिङ्गपूजालेशभागिन इति मत्वा सनकादिभिः सिद्धैर्यल्लिङ्गं पूज्यते, तस्मात्क्रियालिङ्गं सकलक्रियार्थलिङ्गमित्युच्यत इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

यज्ञ आदि सकल क्रिया लिङ्गपूजाक बहुत थोड़ अंशक तुल्य थिक– एहि भावनासँ सिद्धव्यक्ति जनिक पूजा करैत छथि से क्रियालिङ्ग कहल जाइत छथि ॥ ३४ ॥

तस्माल्लिङ्गपूजासम्पन्नस्य कापि क्रिया मास्त्वित्याह–

किं यज्ञैरग्निहोत्राद्यैः किं तपोभिश्च दुश्चरैः ।
लिङ्गार्चनरतिर्यस्य स सिद्धः सर्वकर्मसु ॥ ३५ ॥

सर्वकर्मसु सकलकर्मविषये सिद्धः सिद्धिमानित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३५ ॥

अग्निहोत्र आदि यज्ञे सँ की आ दुश्चर तपस्ये सँ की ? जनिका लिङ्गपूजनमे रति छनि से सबकर्ममे सिद्ध छथि ॥ ३५ ॥

अथ किमु ब्रह्मादयोऽपीष्टलिङ्गपूजामहिम्नैव जगन्निर्माणादिक्रियासिद्धिमन्तः सन्तः स्वस्वस्थानेषु लसन्तीत्युक्त्वा क्रियालिङ्गस्थलं समापयति–

ब्रह्मविष्ण्वादयः सर्वे विबुधा लिङ्गमाश्रिताः ।
सिद्धाः स्वस्वपदे भान्ति जगत्तन्त्राधिकारिणः ॥ ३६ ॥

सिद्धाः प्रसिद्धाश्चेत्यर्थः । जगत्तन्त्राधिकारिणः जगन्निर्माणादिक्रियाधिकारिण इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३६ ॥

ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवता लिङ्गक सेवा कएला सँ अपन-अपन पद पर सिद्ध रहि संसारक संचालनक अधिकारी छथि ॥ ३६ ॥

इति क्रियालिङ्गस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ भावलिङ्गस्थलम्

अथ– 'भावग्राह्यमनीड्याख्यं भावाभावकरं परम् । कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥'[1] इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण, 'निष्कलं भावलिङ्गं स्याद् भावग्राह्यं परात्परम्' इति वातुलन्त्रवचनानुसारेण च क्रियेव भावोऽपि यत्र लयं गच्छति, तद्भावलयकारणीभूतप्राणलिङ्गमिति भावलिङ्गस्थलं निरूपयति–

क्रिया यथा लयं प्राप्ता तथा भवोऽपि लीयते ।
यत्र तद् देशिकैरुक्तं भावलिङ्गमिति स्फुटम् ॥ ३७ ॥

यथा क्रियालयस्थानं क्रियालिङ्गं तथा भावलयस्थानं भावलिङ्गं भावलयकारणीभूतं प्राणलिङ्गमिति देशिकैः स्फुटमुक्तमित्यर्थः ॥ ३७ ॥

भावलिङ्गस्थल– जहिना क्रिया लिङ्गमे लीन भए जाइछ तहिना भाव जतए लीन भए जाए तकरा आचार्यलोकनि स्पष्टरूपेँ भावलिङ्ग कहलनि अछि ॥ ३७ ॥

अथानयोः किं वैशिष्ट्यमित्यत्र भावलिङ्गं सूत्रद्वयेन विशेषयति–

भावेन गृह्यते देवो भगवान् परमः शिवः ।
किं तेन क्रियते तस्य नित्यपूर्णो हि स स्मृतः ॥ ३८ ॥

भगवान् षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नः परमेश्वरो भावेन गृह्यते निर्मलान्तःकरणवृत्त्या प्रकाश्यत इति । तेन बाह्यक्रियालयेन किं, किं प्रयोजनम् ? न किञ्चित्प्रयोजनमित्यर्थः । कुत इत्यत्राह– सः परमेश्वरो हि यस्मात् कारणान्नित्यपूर्णो नित्यतृप्त इति स्मृतः, तस्मात् कारणात् क्रियापूजनेन प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

भगवान् परमशिव निर्मल हृदयक भावक द्वारा वशमे होइत छथि । ओहि क्रियात्मक पूजनसँ हुनका की ? ओ त स्वयं नित्यपूर्ण छथि ॥ ३८ ॥

अखण्डपरमानन्द बोधरूपः परः शिवः ।
भक्तानामुपचारेण भावयोगात् प्रसीदति ॥ ३९ ॥

अपरिच्छिन्नपरमानन्दचिद्रूपः परमेश्वरः शिवभक्तानां भक्तिपूर्वक-मानसोपचारेण भावयोगाद् मनससन्निवेशात् प्रसीदति प्रसन्नो भवतीति भावलिङ्गं प्रशस्तमिति भावः ॥ ३९ ॥

परम शिव अखण्ड, परमानन्द ओ ज्ञानरूपक छथि । भक्तक

१. श्वे० उ० ५ । १४

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

द्वारा देल गेल उपचारक (पूजोपकरणक) द्वारा भावे सँ ओ प्रसन्न होइत छथि ॥ ३९ ॥

तस्माद् भावलिङ्गमेव प्रशस्तमिति कण्ठोक्त्यैवाह–

मृच्छिलाविहिताल्लिङ्गाद् भावलिङ्गं विशिष्यते ।
निरस्तसर्वदोषत्वातद् ज्ञानमार्गप्रवेशनात् ॥ ४० ॥

मृच्छिलादिनिर्मिताल्लिङ्गाद् भावलिङ्गं भावलयकारणीभूतप्राणलिङ्गं विशिष्यते विशिष्टं भवति । कुत इत्यत्राह–निरस्तसर्वदोषत्वात् छेदनभेदनादि-दोषरहितत्वाद् ज्ञानमार्गप्रवेशनादिति ॥ ४० ॥

माँटि-पाथर आदिक बनल लिङ्गक अपेक्षया भावलिङ्ग श्रेष्ठ अछि, कारण ओहिमे सब दोष निरस्त भए जाइत अछि तथा ओ ज्ञानमार्गमे प्रवेश करबैत अछि ॥ ४० ॥

अथ भावलिङ्गिनं कथयति–

विहाय बाह्यलिङ्गानि चिल्लिङ्गं मनसि स्मरन् ।
पूजयेद् भावपुष्पैर्यो भावलिङ्गीति कथ्यते ॥ ४१ ॥

यो मृच्छिलादिनिर्मितबाह्यलिङ्गानि परित्यज्य 'तंत्प्राणेष्वन्तर्मनसो लिङ्गमाहुः' इत्याथर्वणश्रुतिप्रसिद्धचिन्मयप्राणलिङ्गं मनसि हृत्कमले स्मरन् सन् भावपुष्पैः भावकल्पिताहिंसाद्यष्टपुष्पैः पूजयेत्, स भावलिङ्गीति भावगोचरीभूतप्राणलिङ्गवानिति कथ्यत इत्यर्थः ॥ ४१ ॥

जे व्यक्ति बाहरी लिङ्गकेँ छोड़ि चित्-लिङ्गक मनमे स्मरण करैत भावपुष्पसँ हुनक पूजा करैत छथि से भावलिङ्गी कहल जाइत छथि ॥ ४१ ॥

अथ तत्प्राणलिङ्गपूजक एव शिवयोगीति कथ्यते–

मूलाधारेऽथवा चित्ते भ्रूमध्ये वा सुनिर्मलम् ।
दीपाकारं यजन् लिङ्गं भावद्रव्यैः स योगवान् ॥ ४२ ॥

मूलाधारे मूलकमले अथवा चित्ते मध्यहृदये भ्रूमध्ये ऊर्ध्वहृदये वा दीपाकारम्, 'हृदयकमलमध्ये दीपवद्वेदसारं प्रणवमयमतर्क्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम्' इति योगाशास्त्रप्रसिद्धदीपोपमम् अत्यन्तनिर्मलं लिङ्गं प्राणलिङ्गं भावद्रव्यैः पूर्वोक्तभावपुष्पैर्यः पूजयेत्, स योगवान् शिवयोगवानित्यर्थः ॥ ४२ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मूलाधार, हृदय अथवा भौँहक बीचमे निर्मल दीपकलिकाक आकारक लिङ्गक जे भावद्रव्यसँ पूजा करैत छथि से योगवान् (शिवयोगी) थिकाह ।। ४२ ।।

अथ भावपूजामेव विशेषय्य शिवयोगी क्रियालिङ्गनिष्ठो नेति कथयति–

स्वानुभूतिप्रमाणेन ज्योतिर्लिङ्गेन संयुतः ।
शिलामृद्दारुसम्भूतं न लिङ्गं पूजयत्यसौ ।। ४३ ।।

असौ शिवयोगी स्वानुभूतिप्रमाणेन अहमस्मीत्यकर्मकस्वानुभवप्रमाणेन ज्योतिर्लिङ्गेन चिन्मयप्राणलिङ्गेन संयुक्तः सन् पाषाणमृत्काष्ठनिर्मितं लिङ्गं न पूजयेद् नार्चयतीत्यर्थः ।। ४३ ।।

जे व्यक्ति अपन अनुभवसँ प्रमाणित ज्योतिर्लिङ्गसँ युक्त होइत छथि से पाथर, माँटि ओ काठक लिङ्गक पूजा नहि करैत छथि ।। ४३ ।।

अथ भावसिद्धज्योतिर्लिङ्गपूजां विशिष्टीकृत्य भावलिङ्गस्थलं समापयति–

क्रियारूपा तु या पूजा सा ज्ञेया स्वल्पसंविदाम् ।
आन्तरा भावपूजा तु शिवस्य ज्ञानिनां मता ।। ४४ ।।

शिवस्य शिवलिङ्गस्य क्रियारूपा तु या पूजा, कर्मकाण्डप्रसिद्धक्रिया-स्वरूपिणी या पूजाऽस्ति, सा स्वल्पसंविदाम् अज्ञानिनामेव मता सम्मता सती ज्ञेया । आन्तरा भावपूजा तु ज्ञानकाण्डप्रसिद्धान्तःपूजा ज्ञानिनां परिपूर्णशिवज्ञानिनां मता सम्मता ।। ४४ ।।

शिवक जे क्रियात्मक पूजा अछि से अल्पज्ञानीक लेल अछि । हुनक आन्तरिक भावपूजा ज्ञानीक लेल मानल गेल अछि ।। ४४ ।।

इति भावलिङ्गस्थलम्

अथ ज्ञानलिङ्गस्थलम्

अथ– 'अचिन्त्यं चाप्रमेयं च व्यक्ताव्यक्तं परं च यत् । सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञानं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।' इति श्रुत्यनुसारेण, 'परात्परं तु यत्प्रोक्तं तृप्तिलिङ्गं तदुच्यते । भावनातीतमव्यक्तं परं ब्रह्म शिवाभिधम् ।।' इति प्रवृत्तवातुलोत्तरवचनानुसारेण च भावलिङ्गप्रकाशकज्ञानलयस्थानं तृप्तिलिङ्गा-परपर्यायं ज्ञानलिङ्गस्थलं निरूपयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तद्भावज्ञापकज्ञानं लयं यत्र समश्नुते ।
तज्ज्ञानलिङ्गमाख्यातं शिवतत्त्वार्थकोविदैः ॥ ४५ ॥

तद्भावज्ञापकज्ञानं तद्भावलिङ्गप्रकाशकज्ञानं यत्र लयं गच्छति, तद् ज्ञानलिङ्गं ज्ञानाश्रयीभूततृप्तिलिङ्गमिति शिवतत्त्वरहस्यार्थवेदिभिर्वीर-शैवैराख्यातमित्यर्थः ॥ ४५ ॥

ज्ञानलिङ्ग स्थल– पूर्वोक्त भावलिङ्गप्रकाशक ज्ञानक जतए लय भए जाइछ, शिवतत्त्वार्थवेत्तागण तकरा ज्ञानलिङ्ग कहैत छथि ॥ ४५ ॥

अथ तदेव विशदयति–

त्रिमूर्तिभेदनिर्मुक्तं त्रिगुणातीतवैभवम् ।
ब्रह्म यद् बोध्यते तत्तु ज्ञानलिङ्गमुदाहृतम् ॥ ४६ ॥

ब्रह्मविष्णुरुद्रलक्षणमूर्तित्रयभेदरहितं सत्त्वरजस्तमोरूपगुणत्रयोत्तीर्ण-तुर्यतुर्यातीतसम्पत्तिमद् ब्रह्म बोध्यते श्रुतिगुरुत्वानुभवैः प्रकाश्यते, तज्ज्ञानलिङ्गं ज्ञानस्याश्रयीभूततृप्तिलिङ्गमित्युच्यत इत्यर्थः ॥ ४६ ॥

ब्रह्मा, विष्णु ओ रुद्र एहि त्रिदेवमूर्तिक भेदसँ रहित ओ सत्त्व रजस् तथा तमस् एहि तीनू गुणसँ रहित वैभववाला ब्रह्म जनिका द्वारा बुझाओल जाइत छथि से ज्ञानलिङ्ग कहल गेल छथि ॥ ४६ ॥

अथ तद् ज्ञानलिङ्गं सूत्रद्वयेन विशेषयति–

स्थूले क्रियासमापत्तिः सूक्ष्मे भावस्य सम्भवः ।
स्थूलसूक्ष्मपदातीते ज्ञानमेव परात्मनि ॥ ४७ ॥

स्थूले स्थूलरूपेष्टलिङ्गे क्रियारूपपूजासम्पत्तिः, सूक्ष्मे प्राणलिङ्गे भावोद्भवः, निर्मलत्वमित्यर्थः । स्थूलसूक्ष्मपदातीते परात्मनि तृप्तिलिङ्गरूपपरमात्मनि ज्ञानमेव ॥ ४७ ॥

स्थूल लिङ्गक प्रति क्रिया करब आवश्यक होइछ, सूक्ष्म लिङ्गक प्रति भावात्मक ध्यान स्तुति आदि वस्तुक अपेक्षा होइछ आ जे स्थूल-सूक्ष्म सँ ऊपर छथि, ताहि परमात्माक प्रतित ज्ञाने पूजासामग्री होइछ ॥ ४७ ॥

ननु उपासनार्थं स्थूलसूक्ष्मरूपाणि शिवस्यावश्यमपेक्षणीयानीत्यत्राह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कल्पितानि हि रूपाणि स्थूलानि परमात्मनः ।
सूक्ष्माण्यपि च तैः किं वा परबोधं समाचरेत् ॥ ४८ ॥

परमात्मनः स्थूलसूक्ष्मरूपाणां मायाकल्पितत्वेन केवलमुमुक्षूणां तैः प्रयोजनाभावात् परबोधं परब्रह्ममयतृप्तिलिङ्गमेव समाचरेद् उत्कृष्टत्वेन जानीयादित्यर्थः ॥ ४८ ॥

स्थूल आ सूक्ष्म ई दुनू परमात्मेक मायाद्वारा कल्पित अछि, ओहिसँ की प्रयोजन ? ओ मोक्षक साधन नहि भए सकैछ । तेँ परमज्ञानक आश्रयण करी ॥ ४८ ॥

अथ उत्कृष्टपरबोधाभिज्ञ एव ज्ञानलिङ्गीति कथयति–

परात्परं तु यद् ब्रह्म परमानन्दलक्षणम् ।
शिवाख्यं ज्ञायते येन ज्ञानलिङ्गीति कथ्यते ॥ ४९ ॥

परात्परं विश्वापेक्षया परमुत्कृष्टशक्तितत्त्वं तदाश्रयत्वात् ततोऽप्युत्कृष्टं परमानन्दलक्षणं शिवाख्यं यत्परब्रह्म, तद् येन ज्ञायते, स ज्ञानलिङ्गीति भण्यत इत्यर्थः ॥ ४९ ॥

जे परात्पर ब्रह्म परमानन्द शिवकेँ जनैत छथि से ज्ञानलिङ्गी कहबैत छथि ॥ ४९ ॥

अथ ज्ञानलिङ्ग्येव परमुक्त इत्युक्त्वा ज्ञानलिङ्गस्थलं समापयति–

बाह्यक्रियां परित्यज्य चिन्तामपि च मानसीम् ।
अखण्डज्ञानरूपत्वं यो भनेन्मुक्त एव सः ॥ ५० ॥

यो बाह्यक्रियाम् इष्टलिङ्गसम्बन्धिनीं बाह्यक्रियापूजाम्, मानसीं चिन्तामपि च प्राणलिङ्गसम्बन्धिनीमान्तरध्यानपूजां च परित्यज्य अखण्डज्ञानरूपत्वं परिपूर्णतृप्तिलिङ्गं भजेत्, स मुक्त एवेत्यर्थः ॥ ५० ॥

जे व्यक्ति बाहरी क्रिया एवं मानस ध्यानकेँ छोड़ि अखण्ड ज्ञानरूपक सेवन करैत छथि से मुक्ते छथि ॥ ५० ॥

इति ज्ञानलिङ्गस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ स्वयंस्थलम्

अथ– परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते । स उत्तमः पुरुषस्तत्र पर्येति'[१] इति छान्दोग्यश्रुतेः–

प्राणलिङ्गपरिज्ञानानन्दः स शिवलाञ्छनः ।
बाह्यकर्मपरित्यागी स स्वयं लिङ्गमुच्यते ॥

इति वातुलोत्तरवचनाच्च ज्ञानलिङ्ग्येव स्वयंस्थलसम्पन्न इति निरूपयति–

तद्भावज्ञापकज्ञानं यत्र ज्ञाने लयं व्रजेत् ।
तद्वानेष समाख्यातः स्वाभिधानो मनीषिभिः ॥ ५१ ॥

तद्भावज्ञापकज्ञानलयस्थानवानेष ज्ञानलिङ्गी स्वाभिधानः स्वयंलिङ्गाभिधान इति मनीषिभिः शिवज्ञानिभिः समाख्यात इत्यर्थः ॥ ५१ ॥

स्वयंस्थल– भावलिङ्गक ज्ञापक-ज्ञानक जतए लय हो, मनीषिगण ओहन ज्ञानबाला व्यक्तिकेँ 'स्व' शब्दसँ विख्यात कएने छथि ॥ ५१ ॥

अथ तदाचारं प्रकाशयति सूत्रचतुष्टयेन–

स्वच्छन्दाचारसन्तुष्टो ज्योतिर्लिङ्गपरायणः ।
आत्मस्थसकलाकारः स्वाभिधो मुनिसत्तमः ॥ ५२ ॥

ज्योतिर्लिङ्गपरायणो बाह्यलिङ्गवैमुख्येन चिल्लिङ्गनिष्ठः स्वैराचारसन्तुष्टः शिवात्मनि विद्यमानसकलाकारवान् मुनिश्रेष्ठ एव स्वयंलिङ्गाभिधानवानित्यर्थः ॥ ५२ ॥

स्वाधीन आचारसँ सन्तुष्ट, ज्योतिर्लिङ्गक पूजनमे तत्पर, अपन आत्मामे सम्पूर्ण संसारकेँ रखनिहार मुनिवर 'स्वयंलिङ्ग' कहबैत छथि ॥ ५२ ॥

निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तक्लेशपञ्चकः ।
भिक्षाशी समबुद्धिश्च मुक्तप्रायो मुनिर्भवेत् ॥ ५३ ॥

विषयेषु ममताशून्यः शरीरादिष्वहमित्यभिमानशून्यः, अविद्यादिपञ्चक्लेशरहितः, भिक्षान्नभोक्ता, लोष्टाश्मकाञ्चनेषु समबुद्धिमान् मुनिः स्वयंलिङ्गाभिधानवान् यतिः, मुक्तप्रायः परमुक्तसदृशः स्यात्, चरमदेहत्वादिति ॥ ५३ ॥

विषयक प्रति ममतारहित, शरीरमे आत्मभावनारूप अहङ्कारसँ रहित

---

१. छा० उ० ८ । १२ । ३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं अविद्यादि पाँच क्लेश कें समाप्त करएवाला, भीख माँगि भोजनक करएवाला समबुद्धि मुनि मुक्तप्राय होइत छथि ।। ५३ ।।

यदृच्छालाभसन्तुष्टो भस्मनिष्ठो जितेन्द्रियः ।
समवृत्तिर्भवेद् योगी भिक्षुके वा नृपेऽथवा ।। ५४ ।।

स्पष्टम् ।। ५४ ।।

अनायास जे किछु भेटि जाइत छनि ताही सँ सन्तुष्ट, भस्मधारी, जितेन्द्रिय, सब व्यक्तिमे अर्थात् चाहे ओ राजा होथि वा भिक्षुक ताहिमे समान भाव रखनिहार शिवयोगी होइत छथि ।। ५४ ।।

पश्यन् सर्वाणि भूतानि संसारस्थानि सर्वशः ।
स्मयमानः परानन्दे लीनात्मा वर्तते सुधीः ।। ५५ ।।

सुधीः शोभनबुद्धिमान् स्वयंलिङ्गयतिः सर्वशः सर्वत्र संसारस्थानि संसारचक्रस्थितानि सर्वाणि भूतानि पश्यन् स्मयमानः सन् विस्मयवान् सन् परानन्दे परमानन्दमयमहालिङ्गे लीनात्मा लयं गतः सन् वर्तत इत्यर्थः ।। ५५ ।।

संसारस्थित सकल प्राणीकेँ सबठाम देखैत मुसुकाइत विद्वान् शिवयोगी परानन्दमे लीन रहैत छथि ।। ५५ ।।

अथ तस्य यतीश्वरस्य नित्यकर्मोक्त्वा स्वयंस्थलं समापयति—

ध्यानं शैवं तथा ज्ञानं भिक्षा चैकान्तशीलता ।
यतेश्चत्वारि कर्माणि न पञ्चममिहेष्यते ।। ५६ ।।

शिवज्ञानं शिवाधिक्यज्ञानम्, शिवध्यानम्, भिक्षाहारः, एकान्तशीलत्वम्— यतेः स्वयंलिङ्गशिवयोगिन एतानि चत्वारि कर्माणि । पञ्चमं कर्म नेच्छाविषयी- क्रियते ।। ५६ ।।

शिवक ध्यान, शिवक ज्ञान, भिक्षा ओ एकान्तवास— इएह चारि कर्म शिवयोगीकेँ होइत छनि । एहि संसारमे हुनका लेल पाँचम कर्म नहि छनि ।। ५६ ।।

इति स्वयंस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ चरस्थलम्

अथ– 'आत्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति। तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति'[1] इति छान्दोग्यश्रुतेः–

अहंममत्वशून्यात्मा निजबोधैकरूपदृक्।
स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतीति चरः स्मृतः॥

इति वातुलोत्तरवचनाच्च स स्वयंलिङ्गसम्पन्न एव स्वयं भूत्वा सञ्चरतीति चरलिङ्गस्थलरूप इति कथयति–

स्वरूपज्ञानसम्पन्नो ध्वस्ताहंममताकृतिः।
स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतीति चराभिधः॥ ५७॥

स्वयंलिङ्गीति शेषः। निरस्ताहङ्कारममकारवान् स्वस्वरूपज्ञानसम्पन्नः स्वयंलिङ्गी स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतीति चरलिङ्गाभिधानवानित्यर्थः॥ ५७॥

चरस्थल– स्वरूपक ज्ञानवान् स्वयंलिङ्गी अहङ्कार ओ ममताकेँ समाप्त कएनिहार आ स्वयमेव स्वयं भए जे एहि संसारमे विचरण करैत छथि से चरस्थल कहबैत छथि॥ ५७॥

अथ तस्य चरलिङ्गस्याचारं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

कामक्रोधादिनिर्मुक्तः शान्तिदान्तिसमन्वितः।
समबुद्ध्या चरेद् योगी सर्वत्र शिवबुद्धिमान्॥ ५८॥

स्पष्टम्॥ ५८॥

काम, क्रोध आदिसँ रहित, शम-दमसँ युक्त, शिवबुद्धिमान् शिवयोगी समबुद्धिसँ सभठाम विचरण करैत छथि॥ ५८॥

इदं मुख्यमिदं हीनमिति चिन्तामकल्पयन्।
सर्वत्र सञ्चरेद् योगी सर्वं ब्रह्मेति भावयन्॥ ५९॥

योगी शिवयोगीत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्॥ ५९॥

'ई मुख्य' ओ 'ई गौण' एहन चिन्तन नहि कएनिहार योगी 'सब किछु ब्रह्में थिकाह'– एहन भावना करैत सबठाम सञ्चरण करथि॥ ५९॥

न सम्मानेषु सम्प्रीतिं नावमानेषु च व्यथाम्।
कुर्वाणः सञ्चरेद् योगी कूटस्थे स्वात्मनि स्थितः॥ ६०॥

---

१. छा०उ० ७।२५।२

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुटस्थे स्वात्मनि तुर्यसाक्षिकप्रत्यगात्मलक्षणनिजरूपे विद्यमानः शिवयोगी सम्मानेषु सम्प्रीतिमवमानेषु दुःखं च न कुर्वाणः अकुर्वाणः सन् सञ्चरेत् ॥ ६० ॥

ने सम्मान भेला पर हर्ष आ ने अपमान भेला पर विषाद पओनिहार योगी कूटस्थ (अविचल) आत्मामे रहि व्यवहार करथि ॥ ६० ॥

अप्राकृतैर्गुणैः स्वीयैः सर्वं विस्मापयन् जनम् ।
अद्वैतपरमानन्दमुदितो देहिवच्चरेत् ॥ ६१ ॥

शिवाद्वैतोद्भूतपरमानन्दसन्तोषितः शिवयोगी अप्राकृतैर्लोकोत्तरैः स्वकीयैर्गुणैः सर्वजनं विस्मययुक्तं सन्तं कुर्वन् सन् शरीरीव चरेत् चरतीत्यर्थः ॥ ६१ ॥

अपन अलौकिक गुणसँ सम्पूर्ण संसारकेँ आश्चर्यित करैत अद्वैत परमानन्दमे रमैत शिवयोगी सामान्य मनुष्य जकाँ आचरण करथि ॥ ६१ ॥

न प्रपञ्चे निजे देहे न धर्मे न च दुष्कृते ।
गतवैषम्यधीर्धीरो यतिश्चरति देहिवत् ॥ ६२ ॥

गतवैषम्यधीः विधिनिषेधादिषु विगतविषमबुद्धिर्धीरः स्थिरचित्तः, यतिः शिवयोगी, निजे देहे सति देहिवत् प्राकृतवत् प्रपञ्चे न चरति, धर्मे पुण्यकृत्ये पापकृत्येऽपि न चरतीत्यर्थः ॥ ६२ ॥

शास्त्रविहित विधि एवं निषेधमे विषमबुद्धिकेँ हटाए स्थिरचित्त शिवयोगी अपन देह धारण पर्यन्त सामान्य मनुष्य जकाँ ने प्रपञ्चमे (संसारमे), ने देहमे, ने धर्ममे आ ने पापेमे व्यवहार करथि ॥ ६२ ॥

अथ चरलिङ्गस्थलं समापयति–

प्राकृतैश्वर्यसम्पत्ति-पराङ्मुखमनःस्थितिः ।
चिदानन्दनिजात्मस्थो मोदते मुनिपुङ्गवः ॥ ६३ ॥

प्रकृतितत्त्वसमुद्भूतब्रह्मविष्णवाद्यैश्वर्यसम्पत्तिविमुखीभूतचित्तवृत्तिर्यतिश्रेष्ठश्चिदानन्दस्वरूपनिष्ठः सन् मोदते सुखमनुभवन्नास्त इत्यर्थः ॥ ६३ ॥

प्रकृतिक ऐश्वर्य वैभवक प्रति निःस्पृह भेल चिदानन्द रूप आत्मामे स्थित भेल मुनिश्रेष्ठ आनन्दित रहैत छथि ॥ ६३ ॥

इति चरस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ परस्थलम्

अथ– 'तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म सम्पद्यते परम्' इत्यमृत-बिन्दुश्रुतेः[1],

स्वयं स्वयंत्वमासाद्य चरतो न परः स्मृतः ।
असौ ततोऽतीतवर्णाश्रमत्वेन परः स्मृतः ॥

इति वातुलोत्तरवचनाच्च स्वरूपसिद्धत्वेन चरतस्तस्य शिवयोगीश्वरस्य परं नास्तीति ज्ञानस्य परलिङ्गस्थलं सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतः स्वस्वरूपतः ।
परं नास्तीति बोधस्य परत्वमभिधीयते ॥ ६४ ॥

स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतस्तस्य शिवयोगिनः स्वस्वरूपतः परं नास्तीति ज्ञानस्य परलिङ्गत्वमभिधीयत इत्यर्थः ॥ ६४ ॥

परस्थल– स्वाभाविक रूपसँ स्वयं बनि अपन स्वरूपसँ आचरण करएवाला शिवयोगीक लेल शिवकेँ छोड़ि आन केओ नहि छथि । ई ज्ञान हुनक परज्ञान करबैत अछि ॥ ६४ ॥

अथ तस्य वर्तनप्रकारमाह–

स्वतन्त्रः सर्वकृत्येषु स्वं परत्वेन भावितः ।
तृणीकुर्वन् जगज्जालं वर्तते शिवयोगिराट् ॥ ६५ ॥

स्वं परत्वेन विश्वाधिकत्वेन भावितः परामृष्टः शिवयोगिराट् शिवयोगीश्वरः सर्वकृत्येषु स्वतन्त्रः सन् जगज्जालं जगत्समूहं तृणीकुर्वन् सन् वर्तत इत्यर्थः ॥ ६५ ॥

सब काजमे स्वतन्त्र आ अपनाकेँ परत्व रूपमे बुझनिहार एवं संसारकेँ तृणवत् तुच्छ मानएवाला व्यक्ति शिवयोगिराज थिकाह ॥ ६५ ॥

अथ स कथं मोदत इत्यत्राह–

वर्णाश्रमसमाचार-मार्गनिष्ठापराङ्मुखः ।
सर्वोत्कृष्टं स्वमात्मानं पश्यन् योगी तु मोदते ॥ ६६ ॥

योगी शिवयोगीत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६६ ॥

वर्णाश्रमक आचरणक पथसँ निवृत्त शिवयोगी अपनाकेँ पर= सर्वोत्कृष्ट

---

१. ब्रह्मबि०उ० ८

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानैत आनन्दित रहैत छथि ।। ६६ ।।

अथ किमिदं सर्वोत्कृष्टत्वमित्यत्राह–

विश्वातीतं परम्ब्रह्म शिवाख्यं चित्स्वरूपकम् ।
तदेवाहमिति ज्ञानी सर्वोत्कृष्टः स उच्यते ।। ६७ ।।

स्पष्टम् ।। २ ।।

संसारसँ परे शिवनामक चित्स्वरूप ब्रह्म परम तत्त्व थिकाह । 'हम उवेह छी' –एहन ज्ञान राखएवाला 'पर' कहल जाइत छथि ।। ६७ ।।

ननु ब्रह्मस्वरूपत्वे ब्रह्मवन्मुक्त एव स्यादित्यत्राह–

अचलं ध्रुवमात्मानमनुपश्यन्निरन्तरम् ।
निरस्तविश्वविभ्रान्तिर्जीवन्मुक्तो भवेन्मुनिः ।। ६८ ।।

अचलमचलञ्चलं ध्रुवं नित्यमात्मानं स्वरूपं निरन्तरमखण्डित्वेन अनुपश्यन् अनन्यत्वेन पश्यन् मुनिः शिवयोगी निरस्तविश्वविभ्रान्तिः निराकृत-प्रापञ्चिकभ्रान्तिमान् सन् जीवन्मुक्त आहारव्यवहारादिना जीवन्नपि पुनर्जन्मान्तराभावान्मुक्त इत्यर्थः ।। ६८ ।।

अपनाकेँ निरन्तर अचल ध्रुव बुझएवाला एवं समस्त सांसारिक भ्रमकेँ निरस्त कएनिहार मुनि जीवन्मुक्त होइत छथि ।। ६८ ।।

ननु वर्णाश्रमगतसमाचारपरित्यागेन कर्मदेवताः कुपिता भवन्तीति कथं जीवन्मुक्त इत्यत्राह–

ब्रह्माद्याः किं न कुर्वन्ति देवताः कर्ममार्गगाः ।
कर्मातीतपदस्थस्य स्वयं ब्रह्मस्वरूपिणः ।। ६९ ।।

स्वयं स्वयमेव ब्रह्मस्वरूपिणः ब्रह्मस्वरूपवतः कर्मातीतपदस्थस्य पुण्यपापादिकर्मकाण्डोत्तीर्णस्थानगतस्य शिवयोगिनः कर्ममार्गगा ब्रह्मविष्णवाद्या देवताः किं न कुर्वन्ति न किमपि कर्तुं कुशला इत्यर्थः ।। ६९ ।।

कर्मसँ परे स्वयं ब्रह्मरूपी योगीकेँ कर्ममार्गी ब्रह्मा आदि देवगण की कए सकैत छथि ? ६९ ।।

पुनरयं शिवयोग्येवाज्ञानं विमोचयतीत्याह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वेच्छया सञ्चरेद् योगी विमुञ्चन् देहमानिताम् ।
दर्शनैः स्पर्शनैः सर्वानज्ञानपि विमोचयेत् ॥ ७० ॥

देहमानितां देहाभिमानं विमुञ्चन् शिवयोगी स्वेच्छया सञ्चरन्नपि स्वैराचारसम्पन्नोऽपि दर्शनस्पर्शनाभ्यां सर्वानज्ञान् प्राकृतजनान् विमोचयेद् मुक्तान् कुर्यादित्यर्थः ॥ ७० ॥

देहमे अहम्भाव ओ ममभाव कें त्याग कएनिहार योगी एहि संसारमे स्वेच्छासँ व्यवहार करैत छथि आ अपन दर्शन ओ स्पर्शसँ समस्त अज्ञानीकेँ विमुक्त कराए दैत छथि ॥ ७० ॥

अथ– 'निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति दिव्यम्' इति श्रुतेः परलिङ्गरूपशिवयोगीश्वर एव शिवभावसम्पन्नत्वाज्जीवन्मुक्त इत्युक्त्वा परस्थलं समापयति–

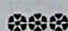
नित्ये निर्मलभावने निरुपमे निर्धूतविश्वभ्रमे
सत्तानन्दचिदात्मके परशिवे साम्यं गतः संयमी ।
प्रध्वस्ताश्रमवर्णधर्मनिगलः स्वच्छन्दसञ्चारवान्
देहीवाद्भुतवैभवो विजयते जीवन्विमुक्तः सुधीः ॥ ७१ ॥

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ लिङ्गस्थले भक्तस्थलगतनवविधलिङ्गप्रसङ्गो नाम पञ्चदशः परिच्छेदः समाप्तः ॥ १५ ॥



नित्ये निर्मलस्वरूपे, उपमातीते निरस्तसमस्तदोषे सच्चिदानन्दात्मके परशिवे ज्ञातृत्वकर्तृत्वयोगात् साम्यं गतः प्रध्वस्तचतुर्वर्णचतुराश्रमधर्मशृङ्खलः स्वच्छन्दाचारवान् स्वेच्छाचारवान् जीवन्मुक्तः सुधीः परलिङ्गरूपशिवयोगी, देहीव देहवानपि, अद्भुतवैभवः सन् आश्चर्यभूतमहत्त्वसम्पत्तिमान् सन्, विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्तत इत्यर्थः ॥ ७१ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां भक्तस्थलस्य नवविधलिङ्गप्रसङ्गनामा पञ्चदशः परिच्छेदः ॥ १५ ॥



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नित्य निर्मल भाव रूप, अनुपम, संसारक भ्रमकेँ दूर कएनिहार, सत् चित् आनन्द स्वरूप परशिवक संग सामरस्य स्थापित करएवाला संयमी संन्यासी वर्णाश्रमबन्धन शृंखलाकेँ तोड़ि अपन इच्छानुसार विचरण कएनिहार विद्वान् अद्‌भुत वैभव सँ युक्त, जीवन्मुक्त भैओ कए सामान्य व्यक्ति जकाँ व्यवहार करैत छथि ।। ७१ ।।

एहि तरहेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणिक विद्यावाचस्पति डॉ० शशिनाथ झाकृत प्रबोधिनी मैथिली व्याख्यामे भक्तस्थलक नवविधलिङ्गस्थल प्रसङ्ग नामक पञ्चदश परिच्छेद समाप्त ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

षोडशः परिच्छेदः

अथ क्रियागमस्थलम्

अथागस्त्यप्रश्नः । अगस्त्य उवाचेति–

स्थलानां नवकं प्रोक्तं भक्तस्थलसमाश्रयम् ।
माहेश्वरस्थले सिद्धं स्थलभेदं वदस्व मे ॥ १ ॥

स्पष्टम् ॥ १ ॥

क्रियागमस्थल– अगस्त्य बजलाह– हे रेणुकाचार्य ! अपने भक्तस्थलक अन्तर्गत नओ स्थलक वर्णन त कएल, आब माहेश्वर स्थलमे सिद्ध स्थल भेदक वर्णन करू ॥ १ ॥

श्रीरेणुकः प्रत्युत्तरं वक्ति, रेणुक उवाचेति–

माहेश्वरस्थले सन्ति स्थलानि नव तापस ।
क्रियागमस्थलं पूर्वं ततो भावागमस्थलम् ॥ २ ॥
ज्ञानागमस्थलं चाथ सकायस्थलमीरितम् ।
ततोऽकायस्थलं प्रोक्तं परकायस्थलं ततः ॥ ३ ॥
धर्माचारस्थलं चाथ भावाचारस्थलं ततः ।
ज्ञानाचारस्थलं चेति क्रमादेषां भिदोच्यते ॥ ४ ॥

स्पष्टम् ॥ २-४ ॥

रेणुक बजलाह– हे तपस्वी ! माहेश्वर स्थलमे नओ गोट स्थल अछि । पहिल क्रियागम स्थल, दोसर भावागम स्थल, तेसर ज्ञानागम स्थल, चारिम सकाय स्थल, पाँचम अकायस्थल, छठम परकाय स्थल, सातम धर्माचारस्थल, आठम भावाचार स्थल आ नवम ज्ञानाचार स्थल थिक-। आब

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्रमसँ एहि सबहिक भेद कहि रहल छी ॥ २-४ ॥

अथ- 'यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि'[1] इति श्रुतेः, 'अल्पक्रिया बहुफलं वीरशैवे महेश्वरि' इति वातुलतन्त्रवचनाच्च पूर्वोक्तपरस्थलसम्पन्नः शिवयोगीश्वर एव शिवः, तस्य पूजैव क्रिया, तत्परागम एव क्रियागम इति क्रियागमस्थलं निरूपयति-

शिवो हि परमः साक्षात् पूजा तस्य क्रियोच्यते ।
तत्परा आगमा यस्मात् तदुक्तोऽयं क्रियागमः ॥ ५ ॥

परमः पूर्वोक्तपरलिङ्गशिवयोगीश्वर एव साक्षाच्छिवो हि प्रत्यक्षीभूतः शिवः, तस्य पूजा क्रियोच्यते, क्रियेत्युच्यत इत्यर्थः । आगमा यस्मात् कारणात् तत्पराः क्रियाप्रधानाः, तत् तस्मात् कारणाद् अयं क्रियागम इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ५ ॥

परम शिवयोगी साक्षात् शिव थिकाह आ हुनक पूजाक नाम क्रिया थिक । जेँ ओकर बोधक ई आगम थिक तेँ ई क्रियागम कहल गेल अछि ॥ ५ ॥

अथ तत्पूजाक्रियामेव पञ्चभिः सूत्रैर्विशेषयति-

प्रकाशते यथा नाग्निररण्यां मन्थनं विना ।
क्रियां विना तथान्तःस्थो न प्रकाशो भवेच्छिवः ॥ ६ ॥

अरण्यां दारुपात्रे वह्निर्मन्थनं विना यथा न प्रकाशते, तथा पूजाक्रियां विना अन्तःस्थो लिङ्गमध्यस्थः शिवः प्रकाशो न भवेदित्यर्थः ॥ ६ ॥

जेना अरणिक (अग्निक उत्पादक काठक) मन्थनक विना आगि नहि प्रकाशित होइछ तहिना हृदयस्थित शिव क्रियाक विना प्रकाशित नहि होइत छथि ॥ ६ ॥

अथ सा पूजा कथं कर्तव्येत्यत्राह-

न यथा विधिलोपः स्याद्यथा देवः प्रसीदति ।
यथागमः प्रमाणं स्यात्तथा कर्म समाचरेत् ॥ ७ ॥

विधिलोप इतिकर्तव्यतालक्षणनियमलोप इत्यर्थः । विधेर्लोपे शिवो न प्रसीदति, तथागमस्याप्रामाण्यं प्राप्नुयात् । तस्माद् यथा विधेर्लोपो न भवति, तथा पूजा कर्तव्येत्यर्थः ॥ ७ ॥

---

१. तै०उ० ११ । १

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्म तेना करी जाहिसँ विधिक लोप नहि हो, देवता प्रसन्न होथि आ आगम-प्रमाणित हो ॥ ७ ॥

ननु शिवपूजा किमर्थं कर्तव्येत्यत्राह–

विधिः शिवनियोगोऽयं तस्माद् विहितकर्मणि ।
शिवाराधनबुद्ध्यैव निरतः स्याद् विचक्षणः ॥ ८ ॥

विहितकर्मणि शास्त्रोक्तकर्मण्ययं विधिः शिवपूजा कर्तव्येति विधिः शिवनियोगः शिवस्याज्ञारूपः, तस्माद् विचक्षणः प्रवीणः शिवाराधनबुद्धौ निरत आसक्त स्यात्, अन्यथा शिवाज्ञानलङ्घने नरकं व्रजेदित्यर्थः ॥ ८ ॥

आगमक द्वारा विहित कर्मक विषयमे शिवक आज्ञा अछि– से बूझि विद्वान्कें शिवाराधनबुद्धिएसँ पूजनकर्ममे लगबाक चाही ॥ ८ ॥

अथ शिवपूजाप्रकारः कथं ज्ञातव्य इत्यत्राह–

गुरोरादेशमासाद्य पूजयेत् परमेश्वरम् ।
पूजिते परमेशाने पूजिताः सर्वदेवताः ॥ ९ ॥

गुरूपदिष्टप्रकारेण शिवलिङ्गं पूजयेत्, तस्मिन् पूजिते सर्वे देवाः पूजिताः स्युः, शिवलिङ्गस्य सर्वदेवमयत्वेन सर्वदेवाः प्रसन्नाः स्युरित्यर्थः ॥ ९ ॥

साधक गुरुक आज्ञा लए परमेश्वर शिवक पूजा करथि, कारण, शिवक पूजा भेला पर सब देवताक पूजा भए जाइछ ॥ ९ ॥

ननु शिवपूजनस्य किं फलमित्यत्राह–

सदा शिवार्चनोपाय-सामग्रीव्यग्रमानसः ।
शिवयोगरतो योगी मुच्यते नात्र संशयः ॥ १० ॥

सर्वदा शिवलिङ्गपूजासाधनसामग्रीसम्पादनरूपशिवयोगनिष्ठः शिवयोगी मलमायादिपाशमुक्तो भवति । अस्मिन्नर्थे संशयो नास्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

शिवपूजाक सामग्री जुटएबामे सतत व्यस्तचित्त वाला एवं शिवयोगमे निरन्तर लागल योगी मुक्त भए जाइत छथि, एहिमे सन्देह नहि ॥ १० ॥

ननु– 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' इत्यादिवचनैर्ज्ञानस्यैव मोक्षसाधत्वं प्रतीयते, न कर्मण इत्याशङ्क्य–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न क्रियारहितं ज्ञानं न ज्ञानरहिता क्रिया ।
अपश्यन्नन्धको दग्धोऽगच्छन् पङ्गुश्च दह्यते ॥

इति शिवरहस्यवचनानुसारेण समाधत्ते–

अन्धपङ्गुवदन्योऽन्य-सापेक्षो ज्ञानकर्मणी ।
फलोत्पत्तौ विरक्तस्य तस्मात् तद्द्वयमाचरेत् ॥ ११ ॥

ज्ञानकर्मणी ज्ञानक्रिये अन्धपङ्गुवदन्योन्यसापेक्षे इति तद्द्वयं ज्ञानक्रियाद्वयम् । तस्मात् फलोत्पत्तौ परापरमुक्तिरूपफलोत्पत्तौ विरक्त आचरेदित्यर्थः ॥ ११ ॥

ज्ञान ओ कर्म परस्पर एक-दोसराक अपेक्षा रखैत अछि जेना आन्हर ओ नाङर व्यक्तिमे रहैत अछि । तेँ फलक उत्पत्तिमे अनासक्त (उदासीन) योगी ज्ञान ओ कर्म दुनूक आदर करथि ।

आन्हर व्यक्ति नाङरकेँ कान्ह पर बैसाय ओकर देखाओल बाट पर चलैत आन गाम जा सकैछ ॥ ११ ॥

ननु सिद्धज्ञानिनां कर्मणा प्रयोजनं नास्तीत्यत्राह–

ज्ञाने सिद्धेऽपि विदुषां कर्मापि विनियुज्यते ।
फलाभिसन्धिरहितं तस्मात् कर्म न सन्त्यजेत् ॥ १२ ॥

'न कर्मणा' इति श्रुतेः काम्यकर्मपरत्वाद् विदुषां ज्ञाने सिद्धेऽपि वेदान्तेऽग्निहोत्रवत् फलापेक्षारहितं कर्म विधीयत एव, तत्तदाश्रमविहितकर्मपरित्यागे पातित्यात्–

ज्ञानं प्रधानं न तु कर्महीनं
कर्म प्रधानं न तु चिद्विहीनम् ।
तस्माद् द्वयोरेव भवेत्-प्रसिद्धि-
र्नह्येकपक्षो विहगः प्रयाति ॥

इत्यभियुक्तोक्तेश्च निष्कामकर्मानुष्ठानं न सन्त्यजेदित्यर्थः ॥ १२ ॥

विद्वान् ज्ञानक सिद्धि रहलहु पर कर्म करैत रहथि । तेँ फलक इच्छा नहियों रहला पर कर्मक त्याग नहि करथि ॥ १२ ॥

अथाचारस्याधिक्यं प्रतिपादयति–

आचार एव सर्वेषामलङ्काराय कल्प्यते ।
आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥ १३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्टम् ॥ १३ ॥

आचारे सभक अलङ्कार मानल गेल अछि । आचारहीन पुरुष लोकमे निन्दित होइत छथि ॥ १३ ॥

तस्मात् सत्कर्माचरणवान् भवेदित्युक्त्वा क्रियागमस्थलं समापयति–

ज्ञानेनाचारयुक्तेन प्रसीदति महेश्वरः ।
तस्मादाचारवान् ज्ञानी भवेदादेहपातनम् ॥ १४ ॥

स्पष्टम् ॥ १४ ॥

सदाचारयुक्त ज्ञानसँ महेश्वर प्रसन्न होइत छथि । तेँ ज्ञानीकेँ चाही जे ओ यावत् शरीरपात नहि होइन्ह तावत् तक आचारवान् बनल रहथि ॥ १४ ॥

इति क्रियागमस्थलम्

अथ भावागमस्थलम्

अथ– 'यं यथोपासते तदेव भवति, यद्भावं तद्भवति, यथाकारि तथाचारि तथा भवति' इति बृहदारण्यकश्रुतेः, 'शिवभावानुसन्धानाच्छिवो भावे प्रकाशते' इति योगजागमस्थितेश्च निष्कामकर्मानुष्ठानवतो विरक्तस्य भावचिह्नमेव भावागमस्थलमिति निरूपयति–

भावचिह्नानि विदुषो यानि सन्ति विरागिणः ।
तानि भावागमत्वेन वर्तन्ते सर्वदेहिनाम् ॥ १५ ॥

विरागिणः असत्क्रियाफलविरक्तस्य विदुषो ज्ञानिनः शिवयोगिनः, यानि भावचिह्नानि सन्ति, तानि सर्वदेहिनां प्राकृतानां भावागमत्वेन वर्तन्त इत्यर्थः ॥ १५ ॥

भावागमस्थल– वैरागी विद्वान् केँ जे भावचिह्न होइत छनि सएह सकल सामान्य लोकक लेल भावरूपी आगम शास्त्ररूपमे प्रमाण होइत अछि ॥ १५ ॥

अथ पूर्वोक्तज्ञानाचारापेक्षया भाव एव विशिष्ट इति सूत्रद्वयेन कथयति–

शिवोऽहमिति भावोऽपि शिवतापत्तिकारणम् ।
न ज्ञानमात्रं नाचारो भावयुक्तः शिवो भवेत् ॥ १६ ॥

शिवोऽहमिति भावः शिवत्वप्राप्तिकारणम्, ज्ञानमात्रं न, शिवतापत्तिकारणं न भवतीत्यर्थः । आचारः केवलसत्क्रियाचारोऽपि न, शिवत्वप्राप्तिकारणं

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न, किन्तु भावयुक्तः शिवोऽहमिति भावेन संयुक्त एव शिवः शिवस्वरूपो भवेदित्यर्थः ॥ १६ ॥

'हम शिव छी'– ई भाव सेहो शिवत्वक प्राप्तिमे कारण होइत अछि। भक्त ने त ज्ञानमात्र सँ आ ने आचारमात्रसँ, किन्तु भावयुक्त भेलासँ शिवस्वरूप भए जाइछ ॥ १६ ॥

ननु ज्ञानभावयोः को भेद इत्यत्राह–

ज्ञानं वस्तुपरिच्छेदो ध्यानं तद्भावकारणम् ।
तस्माद् ज्ञाते महादेवे ध्यानयुक्तो भवेत् सुधीः ॥ १७ ॥

वस्तुपरिच्छेद इदमेतादृशमिति वस्तुस्वरूपनिर्णायकं ज्ञानम्, तद्भावकारणं निर्णीतस्य वस्तुनो भावस्य धर्मलाभस्य कारणं ध्यानं तदेवाहमिति मननम् । तस्मात् शिवे ज्ञाते सति सुधीः सुज्ञानी ध्यानयुक्तो भावेन संयुक्तो भवेत् स्यादित्यर्थः ॥ १७ ॥

ज्ञान वस्तुक परिच्छेद (परिचायक) होइत अछि आ ध्यान ओहि भावक कारण थिक । तेँ महादेवक ज्ञान भेला पर विद्वानकेँ शिवध्यानसँ युक्त होएबाक चाही ॥ १७ ॥

अथ कथं भावयेदित्यत्राह–

अन्तर्बहिश्च सर्वत्र परिपूर्णं महेश्वरम् ।
भावयेत् परमानन्दलब्धये पण्डितोत्तमः ॥ १८ ॥

अन्तर्बहिश्च शरीरान्तर्बहिश्चेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १८ ॥

उत्तम पण्डितकेँ चाही कि ओ परमानन्द प्राप्तिक लेल शरीरक भीतर ओ बाहर सबठाम परिपूर्ण महेश्वरक ध्यान ओ भावना करथि ॥ १८ ॥

अथ सा क्रियापूजा भावरहिता चेत् वृथेति सदृष्टान्तं सूत्रद्वयेनाह–

अर्थहीना यथा वाणी पतिहीना यथा सती ।
श्रुतिहीना यथा बुद्धिर्भावहीना तथा क्रिया ॥ १९ ॥

श्रुतिहीना वेदश्रुतिसम्मतिरहिता बुद्धिर्ज्ञानमित्यर्थः ॥ १९ ॥

जहिना अर्थहीन वाणी, पतिहीन सती स्त्री ओ वेदज्ञानहीन बुद्धि व्यर्थ होइत अछि तहिना शिवभावनासँ हीन क्रिया व्यर्थ थिक ॥ १९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चक्षुर्हीनो यथा रूपं, न किञ्चिद्वीक्षितुं क्षमः ।
भावहीनस्तथा योगी, न शिवं द्रष्टुमीश्वरः ॥ २० ॥

ईश्वरः समर्थ इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २० ॥

जेना आँखिसँ हीन व्यक्ति किछुओ देखबामे समर्थ नहि होइत अछि तेना भावहीन योगी शिवक साक्षात्कारमे अक्षम होइत छथि ॥ २० ॥

भावशुद्धेन मनसा पूजयेत् परमेष्ठिनम् ।
भावहीनां न गृह्णाति पूजां सुमहतीमपि ॥ २१ ॥

भावशुद्धेन ध्यानशुद्धेनेत्यर्थः । सः स परमेश्वर इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २१ ॥

तेँ भक्तजन शुद्ध भावसँ युक्त मनक द्वारा परमेश्वर शिवक पूजा करथि । बहुत पैघो पूजा जँ भावसँ हीन हो, त परमेश्वर ओकर ग्रहण नहि करैत छथि ॥ २१ ॥

अथ–

भ्रमद्भ्रमरचिन्तायां कीटोऽपि भ्रमरायते ।
शिवचिन्तासमाक्रान्तः शिवरूपी भवेद् ध्रुवम् ॥

इति वीरागमवचनानुसारेण भावमहत्त्वं प्रकाशयति–

नैरन्तर्येण सम्पन्ने भावे ध्यातुं शिवं प्रति ।
तद्भावो जायते यद्वत् क्रिमेः कीटस्य चिन्तनात् ॥ २२ ॥

क्रिमेः कीटस्य भ्रमरस्य चिन्तनाद् यद्वद् यथा तद्भावो भ्रमरकीटभावो जायते, तथा भावे चित्ते चित्तविशिष्टे शिवं ध्यातुं नैरन्तर्येण सम्पन्ने सति तद्भावः शिवस्वरूप एव जायते, शिवं प्रतीयत इत्यर्थः ॥ २२ ॥

जेना भौँराक चिन्तन करैत-करैत कीड़ा सेहो भौँरा भए जाइत अछि तहिना निरन्तर शिवक ध्यान करैत-करैत योगी सेहो शिव भए जाइत छथि ॥ २२ ॥

अथ निष्कलशिवचिन्तने यद्यसमर्थः, तद्विभूतिं वा चिन्तयेदित्युक्त्वा भावागमस्थलं समापयति–

निष्कलङ्कं निराकारं परब्रह्म शिवाभिधम् ।
निर्ध्यातुमसमर्थोऽपि तद्विभूतिं विभावयेत् ॥ २३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तद्विभूतिं सर्वज्ञत्वादिमहदैश्वर्यमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २३ ॥

निष्कलङ्क, निराकार, शिवनामक परब्रह्मक ध्यानमे असमर्थो व्यक्ति हुनक ऐश्वर्यक ध्यान करथि ॥ २३ ॥

इति भावागमस्थलम्

अथ ज्ञानागमस्थलम्

अथ– 'ज्ञानी विज्ञानतत्परः' इत्यमृतबिन्दुश्रुते, 'ज्ञानमेतच्छैवसंस्थम्' इति पतिपरातन्त्रवचनाच्च तद्भावागमसम्पन्नस्य परयोगिनो ज्ञानचिह्नमेव ज्ञानागमस्थलमिति प्रतिपादयति–

परस्य ज्ञानचिह्नानि यानि सन्ति शरीरिणाम् ।
तानि ज्ञानागमत्वेन प्रवर्तन्ते विमुक्तये ॥ २४ ॥

परस्य भावागमसम्पन्नस्य परमशिवयोगिनो ज्ञानचिह्नान्येव प्राकृतानां पशुजनानां विमुक्तये तद्गतये ज्ञानागमत्वेन प्रवर्तन्त इत्यर्थः ॥ २४ ॥

ज्ञानागम स्थल– भावागमसम्पन्न परमयोगीक जे पदचिह्न होइत अछि, सएह सामान्य मनुष्यक लेल मोक्षार्थज्ञानागमक रूपमे प्रवृत्त होइत अछि ॥ २४ ॥

अथ– 'यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते',[1] 'ज्ञात्वा देवं मृत्युपाशान् छिनत्ति'[2] इति श्रुत्यनुसारेण पूर्वोक्तकेवलभव-कर्मभ्यां फलं नास्तीत्युक्त्वा ज्ञानमेव पञ्चभिः सूत्रैर्विशेषयति–

भावेन किं फलं पुंसां कर्मणा वा किमिष्यते ।
भावकर्मसमायुक्तं ज्ञानमेव विमुक्तिदम् ॥ २५ ॥

अहं ब्रह्मास्मीत्यपरोक्षज्ञानमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २५ ॥

केवल भावसँ लोककेँ कोनो फल नहि भेटि सकैछ, तहिना केवल कर्मसँ कोनो लाभ नहि । तेँ भाव ओ कर्म दुनूसँ युक्त ज्ञाने मोक्षदायक थिक ॥ २५ ॥

केवलं कर्ममात्रेण जन्मकोटिशतैरपि ।
नात्मनां जायते मुक्तिर्ज्ञानं मुक्तेर्हि कारणम् ॥ २६ ॥

हि 'न कर्मणा'[3] इति, 'तरति शोकमात्मवित्'[4] इत्यादिबहुश्रुत्यादि-

---

१. छा०उ० ८ । १ । ६ २. तुलनीय– ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः (श्वे०उ० १ । ११)

३. कै०उ० ३ ४. छा०उ० ७ । १ । ३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रसिद्धोऽयमर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २६ ॥

केवल कर्मसँ कोटि जन्मोमे आत्माक मुक्ति नहि भए सकैछ । ज्ञाने मुक्तिक एकमात्र कारण थिक ॥ २६ ॥

अथ कर्मणा मुक्तिर्नास्तीत्येतदेव न, किन्तु कर्म ज्ञानहीनं चेत् पुनः संसारकारणमित्याह–

ज्ञानहीनं सदा कर्म पुंसां संसारकारणम् ।
तदेव ज्ञानयोगेन संसारविनिवर्तकम् ॥ २७ ॥

स्पष्टम् ॥ २७ ॥

मनुष्यकेँ ज्ञानहीन कर्म सदा संसारबन्धनक कारण होइत अछि । उवेह कर्म ज्ञानसँ युक्त भेला पर संसारक निवर्तक अर्थात् मोक्षदायक थिक ॥ २७ ॥

अथ ज्ञानहीनं कर्म कथं पुनः संसारकारणमित्यत्राह–

फलं क्रियावतां पुंसां स्वर्गाद्यं नश्वरं यतः ।
तस्मात् स्थायिफलप्राप्त्यै ज्ञानमेव समभ्यसेत् ॥ २८ ॥

'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'[१] इत्यादिवचनबलात् केवलक्रियानिष्ठानां पुंसां स्वर्गाद्यं फलं नश्वरं नाशशीलम्, तस्मात् स्थयिमोक्षफलप्राप्त्यै ज्ञानमेव सम्यगभ्यसेदित्यर्थः ॥ २८ ॥

क्रियावान् पुरुषक स्वर्गादि फल जेँ कि नश्वर होइत अछि तेँ स्थायी फलक प्राप्ति हेतु ज्ञानक अभ्यास करक चाही ॥ २८ ॥

ननु तज्ज्ञानं कथमभ्यसनीयमित्यत्राह–

शास्त्राभ्यासादियत्नेन सद्गुरोरुपदेशतः ।
ज्ञानमेव समभ्यस्येत् किमन्येन प्रयोजनम् ॥ २९ ॥

शास्त्राभ्यासादियत्नेन निगमागमशिरःशिद्धवीरशैवशास्त्राभ्यासादिप्रयत्नेन सद्गुरोरुपदेशतोऽनुग्रहाद् ज्ञानमेव शिवज्ञानमेव समभ्यस्येत् सम्यगभ्यासं कुर्यात् । अन्येन पाशव-हविर्भक्षणोपयुक्तपूर्वमीमांसादिशास्त्रेण किं प्रयोजनम् ? न किञ्चित् प्रयोजनमित्यर्थः ॥ २९ ॥

शास्त्रक अभ्यास आदि प्रयास तथा सद्गुरुक उपदेश सँ ज्ञानेक

१. भ०गी० ९ । २१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अभ्यास करक चाही, आन साधनसँ कोनो प्रयोजन नहि ॥ २९ ॥

अथ तज्ज्ञानमहत्त्वं सूत्रद्वयेन प्रकाशयति–

ज्ञानं परशिवाद्वैत-परिपाकविनिश्चयः ।
येन संसारसम्बन्ध-विनिवृत्तिर्भवेत् सताम् ॥ ३० ॥

परब्रह्मलिङ्गादन्यन्नास्तीति परिपक्वनिश्चय एव ज्ञानम्, येन ज्ञानेन सतां संसारबाधानिवृत्तिर्भवेदिति ॥ ३० ॥

ज्ञानक अर्थ थिक परशिवक अद्वैतभावक परिपाक विषयक निश्चित अवधारणा । एकरहि द्वारा सत्पात्र (वीरशैव)केँ संसारक विनिवृत्ति (मोक्षप्राप्ति) होइत छनि ॥ ३० ॥

अथ तदेव विशदयति–

शिवात्मकमिदं सर्वं शिवादन्यन्न विद्यते ।
शिवोऽहमिति या बुद्धिस्तदेव ज्ञानमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

स्पष्टम् ॥ ३१ ॥

'ई सब किछु शिवे थिकाह', 'शिवसँ आन किछु नहि अछि' आ 'हमहूँ शिवे छी'– एहने बुद्धि उत्तम ज्ञान थिक ॥ ३१ ॥

अथ तज्ज्ञानमहत्त्वं सूत्रद्वयेन प्रकाशयति–

अन्धो यथा पुरस्थानि वस्तूनि च न पश्यति ।
ज्ञानहीनस्तथा देही नात्मस्थं वीक्षते शिवम् ॥ ३२ ॥

स्पष्टम् ॥ ३२ ॥

जेना आन्हर व्यक्ति सामनेमे राखल वस्तुकेँ नहि देखैत अछि, तहिना ज्ञानहीन व्यक्ति अपना अन्दर स्थित शिवकेँ नहि देखैत अछि ॥ ३२ ॥

ननु शिवदर्शनेन किमित्यत्राह–

शिवस्य दर्शनात् पुंसां जन्मरोगनिवर्तनम् ।
शिवदर्शनमप्याहुः सुलभं ज्ञानचक्षुषाम् ॥ ३३ ॥

अत्र स्यादिति शेषः । जन्मरोगनिवर्तनं स्यादिति सम्बन्धः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवक साक्षात्कार भेलासँ मनुष्यक जन्मरूपी रोग दूर भए जाइत छैक। ज्ञानरूपी आँखिवाला महात्माकेँ शिवक दर्शन सुलभ होइत छनि ॥ ३३ ॥

तस्माद् ज्ञानेन विना अज्ञाननिवृत्तिर्नास्तीत्युक्त्वा ज्ञानागमस्थलं समापयति–

दीपं विना यथा गेहे नान्धकारो निवर्तते ।
ज्ञानं विना तथा चित्ते मोहोऽपि न निवर्तते ॥ ३४ ॥

ज्ञानं विना शिवज्ञानं विनेत्यर्थः । मोहोऽज्ञानम् । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३४ ॥

जेना घरक अन्हार दीपक विना दूर नहि होइत छैक तहिना शिव ज्ञानक विना चित्तमे स्थित मोह नहि हटैत छैक ॥ ३४ ॥

इति ज्ञानागमस्थलम्

अथ सकायस्थलम्

अथ– 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'[१] इति वचनानुसारेण तच्छिवज्ञान-सम्पन्नस्य योगिनः शरीरस्य क्रियाभावज्ञानकारणत्वेनात्मत्वनिरूपणादयं लोकः सकाय इति षड्भिः सूत्रैः सकायस्थलं प्रतिपादयति–

परस्य या तनुर्ज्ञेयाऽदेहकर्माभिमानिनः ।
तया सकायो लोकोऽयं तदात्मत्वनिरूपणात् ॥ ३५ ॥

अदेहकर्माभिमानिनः स्थूलोऽहं कर्म करोमीति लौकिकवद् देहकर्माभिमान-शून्यस्य परस्य पूर्वोक्तज्ञानसम्पन्नस्य योगिनः परैर्ज्ञेया या तनुरस्ति, तया तन्वा तदात्मत्वनिरूपणात् तच्छरीरस्य आत्मत्वनिरूपणाद् अयं लोकः सकाय इति कायेन सहित इत्यर्थः ॥ ३५ ॥

सकायस्थल– देह ओ कर्मक अभिमानसँ रहित जे योगीक परतनु (अनका द्वारा बुझल जाइत शरीर) तकरे द्वारा ई संसार सकाय कहबैत अछि, कारण ओहि ज्ञानी योगीक शरीरे आत्माक रूपमे प्रतिपादित अछि ॥ ३५ ॥

ननु देहाभिमानशून्यस्य परयोगिनः कायापेक्षा किमर्थमित्यत्राह–

कायं विना समस्तानां न क्रिया न च भावना ।
न ज्ञानं यत्ततो योगी कायवानेव सञ्चरेत् ॥ ३६ ॥

यद्यस्मात् कारणात् समस्तानां च कायं विना क्रियाध्यानशून्यत्वात्

१. कुमारसम्भवम्-सर्गः -५

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवज्ञानसम्पन्नः शिवयोगी कायवानेव सञ्चरेदिति ॥ ३६ ॥

शरीरक विना ने त कोनो क्रिया भए सकैछ, ने भावना आ ने ज्ञाने। तेँ देहाभिमान नहियों रहलापर योगी कायवान् बनि संसारमे विचरण करथि ॥ ३६ ॥

नन्वस्य योगिनः शिवज्ञानसम्पन्नत्वात् किमिति कायापेक्षेत्यत्राह–

शिवैकज्ञानयुक्तस्य योगिनोऽपि महात्मनः ।
काययोगेन सिद्ध्यन्ति भोगमोक्षादयः सदा ॥ ३७ ॥

मोक्षस्य ज्ञानमूलत्वात्, ज्ञानस्य कायमूलत्वादिति भावः ॥ ३७ ॥

शिवज्ञानसँ युक्त महात्मा योगिओकेँ भोग-मोक्ष आदि सदा काययोगे सँ सिद्ध होइत छनि, किएक त मोक्षप्राप्तिक साधन ज्ञान आ ज्ञानक साधन काय थिक ॥ ३७ ॥

अत्र दृष्टान्तमाह–

काष्ठं विना यथा वह्निर्जायते न प्रकाशवान् ।
मूर्तिं विना तथा योगी नात्मतत्त्वप्रकाशवान् ॥ ३८ ॥

स्पष्टम् ॥ ३८ ॥

जेना काठक बिना आगि प्रकाशित नहि भए सकैत अछि तहिना मूर्ति (शरीरक) धारणक बिना योगी आत्मतत्त्वक प्रकाश नहि कए सकैत छथि ॥ ३८ ॥

पुनश्च दृष्टान्तान्तरमाह–

मूर्त्यात्मनैव देवस्य यथापूज्यत्वकल्पना ।
तथा देहात्मनैवास्य पूज्यत्वं परयोगिनः ॥ ३९ ॥

स्पष्टम् ॥ ३९ ॥

जेना मूर्तियुक्त होएबाक कारण देवताकेँ पूज्य मानल जाइत अछि तहिना परमयोगिओ देहधारणे सँ पूजनीय होइत छथि ॥ ३९ ॥

किमुत शिवोऽपि मूर्त्यात्मनैव सृष्ट्यादीन् करोतीत्याह–

निष्कलो हि महादेवः परिपूर्णः सदाशिवः ।
जगत्सृष्ट्यादिसंसिद्ध्यै मूर्तिमानेव भासते ॥ ४० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्टम् ॥ ४० ॥

महादेव निष्कल, परिपूर्ण ओ सदाशिव छथि, किन्तु संसारक सृष्टि-पालन-संहारक सिद्धिक लेल ओहो मूर्त्तिमान भए जाइत छथि ॥ ४० ॥

अथ ब्रह्मादिदिव्यज्ञानिनोऽपि कायवन्त एवेत्याह-

ब्रह्माद्या देवताः सर्वा मुनयोऽपि मुमुक्षवः ।
कायवन्तो हि कुर्वन्ति तपः सर्वार्थसाधकम् ॥ ४१ ॥

स्पष्टम् ॥ ४१ ॥

ब्रह्मा आदि देवता ओ मोक्षक इच्छुक मुनिगणो देहधारण कैए कए सकल प्रयोजन साधक तपस्या करैत छथि । ४१ ॥

अथ- 'वैराग्येण वपुस्त्यागो नैव कार्यो मनीषिभिः' इति देवीकालोत्तर-वचनानुसारेण शरीरस्य सकलसिद्धिमूलत्वान्न तत्परित्यागो युक्त इत्युक्त्वा सकायस्थलं समापयति-

तपो हि मूलं सर्वासां सिद्धीनां यज्जगत्त्रये ।
तपस्तत्कायमूलं हि तस्मात् कायं न सन्त्यजेत् ॥ ४२ ॥

सर्वासां सिद्धीनां तपः कारणम्, तपसः शरीरं कारणम्, तस्मात् कायं वैराग्येण न परित्यजेदिति ॥ ४२ ॥

तीनू लोकमे सकल सिद्धिक मूल तपस्ये थिक । आ ओ तपस्या कायमूलके थिक, तेँ कायक त्याग उचित नहि थिक ॥ ४२ ॥

इति सकायस्थलम्

अथ अकायस्थलम्

अथ 'अच्छायम्'[१] 'अशरीरम्'[२] इति श्रुतेः परयोगिनश्चौपचारिक-देहित्वादकाय इति पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति-

औपचारिकदेहित्वाज्जगतात्मत्वभावनात् ।
मायासम्बन्धराहित्यादकायो हि परः स्मृतः ॥ ४३ ॥

पर उक्तलक्षणसकायः परयोगी, औपचारिकदेहित्वाद् देहाभिमानशून्यत्वाद् जगदात्मत्वभावनात् 'स्वशक्तिप्रचयो विश्वम्'[३] इति शिवसूत्रस्थितेः सर्वं विश्वं

१. बृ०उ० ३।८।८ २. छा०उ० ८।१२।१ ३. शि०सू० ३।३०

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवस्वभावभूतचित्क्रियाशक्तिमयम्, तद्विषयत्वात्, अन्यथा तद्बाह्यत्वेनाप्रमेयकार्यं स्यादिति चिन्तनाद् मायासम्बन्धराहित्यात्, अत एवान्योन्यभावलक्षणभेद-बुद्धिराहित्याद् अकाय इति स्मृतः, हि प्रसिद्ध इत्यर्थः ४३ ॥

अकाय स्थल– सकाय शिवयोगीक जे देह अछि से औपचारिक (आरोपित, वास्तव नहि) थिक । ओ योगी संसारमे आत्मभाव मानने छथि आ मायाक सम्बन्धसँ रहित छथि, तेँ ओ अकाय मानल गेल छथि ॥ ४३ ॥

नन्वस्य देहाभिमानशून्यत्वेनाकायत्वेऽपि देहसम्बन्धस्य विद्यमानत्वात् तत्कृतविकारोऽस्ति किमित्यत्राह–

परस्य देहयोगेऽपि न देहाश्रयविक्रिया ।
शिवस्येव यतस्तस्मादकायोऽयं प्रकीर्तितः ॥ ४४ ॥

शिवस्य देहयोगेऽपि यथा शरीरप्रयुक्तकामादिविकारो नास्ति, तथा परयोगिनः शिवतुल्यत्वाद् देहप्रयुक्तविकारो नास्तीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

जेना शिवकेँ देहयोग भेलहु पर शरीरप्रयुक्त कामादि विकार नहि होइत छनि तहिना परयोगीकेँ देहाश्रय विकार नहि छनि आ तेँ ई अकाय कहल गेल छथि ॥ ४४ ॥

नन्वकायकायत्वेन भासनं किंप्रत्युक्तमित्यत्राह–

परलिङ्गे विलीनस्य परमानन्दचिन्मये ।
कुतो देहेन सम्बन्धो देहिवद्भासनं भ्रमः ॥ ४५ ॥

द्रष्टृणां भ्रम इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ४५ ॥

परम आनन्दस्वरूप चिन्मय परलिङ्गस्वरूप शिवमे विलीन शिवयोगीक देहसँ सम्बन्ध कतए सँ रहत ? ओ जे देही जकाँ बुझाइत छथि, से भ्रम थिक ॥ ४५ ॥

अथ देहसम्बन्धे सत्यपि तेन बाधकं नास्तीत्याह–

देहाभिमानहीनस्य शिवभावे स्थितात्मनः ।
जगदेतच्छरीरं स्याद् देहेनैकेन का व्यथा ॥ ४६ ॥

देहाभिमानशून्यत्वेन शिवभावे स्थितस्वरूपवत एतत्परयोगिनः शिववद् विश्वं शरीरं स्यादित्येकेन शरीरेण का व्यथा, न काऽपीत्यर्थः ॥ ४६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देहाभिमान सँ रहित शिवभावमे स्थित शिवयोगीक लेल ई समग्र संसारे शरीर होइत छनि, तखन एक शरीरसँ कोन व्यथा ? ॥ ४६ ॥

अथ शिववत् स्वातन्त्र्याभावात् कस्मान्नास्तीत्यत्राह–

शिवज्ञानैकनिष्ठस्य नाहङ्कारभवभ्रमः ।
न चेन्द्रियभवं दुःखं त्यक्तदेहाभिमानिनः ॥ ४७ ॥

शिवाहम्भावनिष्ठस्य परिच्छिन्नशरीराहङ्कारशून्यत्वाद् नाहमीश्वर इति तत्कृतभ्रान्तिरिन्द्रियजन्यं दुःखं च नास्तीत्यर्थः ॥ ४७ ॥

जे एकमात्र शिवज्ञानमे निष्ठा रखैत छथि हुनका अहङ्कारसँ उत्पन्न भ्रम नहि भए सकैत छनि जे देहाभिमानकेँ त्यागि देने छथि तनिका आँखि-नाक आदि इन्द्रियसँ उत्पन्न दुःख नहि होइत छनि ॥ ४७ ॥

अथोक्तार्थमेव स्फुटीकृत्याकायस्थलं समापयति–

न मनुष्यो न देवोऽहं न यक्षो नैव राक्षसः ।
शिवोऽहमिति यो बुद्ध्यात् तस्य किं देहकर्मणा ॥ ४८ ॥

तस्याकायस्य शारीरकर्कणा किम्, किं प्रयोजनम्, न किमपीत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ४८ ॥

ने हम मनुष्य छी, ने देवता, ने यक्ष आ ने राक्षसे छी, हम त शिव छी– जे एहन भावना रखैत छथि, तनिका शरीरक कर्मसँ कोन काज ? ॥ ४८ ॥

इत्यकायस्थलम्

अथ परकायस्थलम्

'स एवैतत्परमं ब्रह्मधाम'[1] इति मुण्डकश्रुतेः, अकायपरयोगी प्रकृतिमायातीत इति परब्रह्मशरीरत्वात् परकाय इति पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

वशीकृतत्वात् प्रकृतेर्मायामार्गातिवर्तनात् ।
परकायोऽयमाख्यातः सत्यज्ञानसुखात्मकः ॥ ४९ ॥

अयमकायः शिवयोगी प्रकृतेर्वशीकृतत्वाद् वशीकृतेर्मायामार्गोल्लङ्घनात् सत्यज्ञानसुखात्मकः सच्चिदानन्दस्वरूपवान् परकाय इत्याख्यात इत्यर्थः ॥ ४९ ॥

परकाय स्थल– प्रकृतिकेँ अपना अधीन कएलासँ आ मायाक

---

१. मु०उ० ३।२।१ ('स वेदैतत्परमम्'– इति मुण्डकोपनिषदि ।)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मार्गक अतिक्रमण कएलासँ ई सत्य ज्ञान सुखात्मक योगी परकाय कहबैत छथि ।। ४९ ।।

नन्वेवं परकायत्वे कथितेऽपि स्थूलशरीरस्य विद्यमानत्वात् कथमधुनैव परकायत्वमित्यत्राह–

परब्रह्मवपुर्यस्य प्रबोधानन्दभासुरम् ।
प्राकृतेन शरीरेण किमेतेनास्य जायते ।। ५० ।।

चिदानन्दाभ्यां प्रकाशमानं परब्रह्म यस्य वपुः शरीरं जायते, अस्य परकायस्य प्राकृतेन शरीरेण किम् ? अन्योन्यभेदाभावबुद्धिरूपमायामार्गोल्लङ्घनेन तत्कार्यरूपप्रकृतितत्त्वस्य वशीकरणात् सागरतरङ्गन्यायेन स्वाधीनीकरणात् प्रकृतिसम्भवेन शरीरेण किं बाधकम् ? न किमपि बाधकमित्यर्थः ।। ५० ।।

जनिक शरीर परब्रह्मस्वरूप प्रबोधक आनन्दसँ प्रकाशित छनि तनिका एहि प्रकृतिसम्बन्धी शरीरसँ की भए सकैत छनि ।। ५० ।।

ननु तथापि शरीरमेव प्रतिबन्धकमित्यत्राह–

सम्यग्ज्ञानाग्निसन्दग्ध–जन्मबीजकलेवरः ।
शिवतत्त्वावलम्बी यः परकायः स उच्यते ।। ५१ ।।

सम्यग्ज्ञानाग्निना दृढ़तरशिवाद्वैतज्ञानाग्निना सन्दग्धं पुनरुत्पत्तिशङ्का यथा न भवति तथा सम्यग् दग्धं जन्मैव बीजं यस्य तादृशः कलेवरो भवान्तरकारणी-भूतसूक्ष्मशरीरो यस्य स तथाविधः शिवतत्त्वावलम्बी परशिवस्वरूपवान् यः अस्ति, स परकाय इत्युच्यत इत्यर्थः । जन्मरोगप्रवर्तकस्य नष्टत्वात् स्थूलशरीरे सत्यपि बाधकं नास्तीति भावः ।। ५१ ।।

दृढ़तर शिवाद्वैतज्ञानरूपी अग्निसँ जनिक जन्मबीजवाला शरीर दग्ध भए गेल होनि तथा जे शिवतत्त्वक अवलम्बन कएने होथि से परकाय कहल गेल छथि ।। ५१ ।।

ननु शरीरस्य विद्यमानत्वेनेन्द्रियव्यापारानुवृत्तेर्बाधकमेवेत्यत्राह–

इन्द्रियाणि मनोवृत्ति–वासनाः कर्मसम्भवाः ।
यत्र यान्ति लयं तेन सकायोऽयं परात्मना ।। ५२ ।।

कर्मसम्भवाः कर्मपाशसम्भूता मनोवृत्तिवासना इन्द्रियार्थवासना इन्द्रियाणि

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

च दशेन्द्रियव्यापारा यत्र लयं यान्ति, तेन परात्मना परब्रह्मणा अयम् एष परकायः सकायः कायेन सहितः सन् वर्तते । एतत्कायस्यापि ब्रह्ममयत्वादिति भावः ॥ ५२ ॥

कर्मसँ उत्पन्न मानसिक वासना तथा इन्द्रिय जाहिमे लीन भऽ जाइछ ताहि परमात्माक चलते (हेतुसँ) ई परकाय कहल जाइत अछि ॥ ५२ ॥

ननु शरीरस्य कथं ब्रह्ममयत्वमित्यत्राह–

पराहन्तामनुप्राप्य पश्येद् विश्वं चिदात्मकम् ।
सदेहोऽतिभ्रमस्तस्य निश्चिता हि शिवात्मता ॥ ५३ ॥

पराहन्तां परब्रह्मपरशिवपरात्मपर्यायपरतत्त्वमेव स्वयमिति भावमनुप्राप्य विश्वं सकलजगज्जालं चिदात्मकं परब्रह्मस्वभावभूतचित्क्रियान्तर्गतत्वात्तन्मयमिति यः पश्यति, तस्य सदेहः देहेन सह वर्तमानत्वम्, अतिभ्रमः पश्यतां प्राकृतानां भ्रमः । निश्चिता हि शिवात्मता, किन्तु तस्य शरीरस्य शिवात्मता निश्चिता, शक्तिमयत्वादिति ॥ ५३ ॥

पर=उत्कृष्ट अहन्ता= 'अहं परः शिवः' एहि रूपकेँ पाबि योगी सम्पूर्ण संसारेकेँ चिन्मय देखथि । हुनक विश्वरूपता निश्चित अछि, हुनका सदेह बुझब भ्रम थिक ॥ ५३ ॥

तर्हि स परकायः शिववदकायः सन् परममुक्त एव स्यादित्यत्राह–

स्वस्वरूपं चिदाकारं ज्योतिः साक्षाद्विचिन्तयन् ।
देहवानपि निर्देहो जीवन्मुक्तो हि साधकः ॥ ५४ ॥

स्वस्वरूपं साक्षाच्चिदाकरं ज्योतिरिति चिन्तयन् साधको देहवानपि पुनर्देहान्तराभावान्निर्देहो जीवन्मुक्त इति, हि प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ ५४ ॥

अपन स्वरूपकेँ चिदाकार एवं साक्षात् ज्योतिस्वरूपमे चिन्तन करैत देहधारी रहैतो साधक देहरहित जीवन्मुक्त भए जाइत छथि ॥ ५४ ॥

तदेवोपपादयति–

देहस्तिष्ठतु वा यातु योगिनः स्वात्मबोधिनः ।
जीवन्मुक्तिर्भवेत् सद्यश्चिदानन्दप्रकाशिनी ॥ ५५ ॥

स्पष्टम् ॥ ५५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आत्मज्ञानवान् योगीक देह रहनु वा समाप्त भए जाइन्ह, हुनका सद्यः चिदानन्दप्रकाशिनी जीवन्मुक्ति भए जाइत छनि ।। ५५ ।।

अत्र दृष्टान्तमाह–

आत्मज्ञानावसानं हि संसारपरिपीडनम् ।
सूर्योदयेऽपि किं लोकस्तिमिरेणोपरुद्ध्यते ।। ५६ ।।

उपरुध्यते व्याप्यत इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।। ५६ ।।

आत्मज्ञान लग संसरक पीडाक अन्त भए जाइत अछि । की सूर्योदय भेलो पर लोक अन्हारसँ आच्छादित रहैछ ? ५६ ।।

अथ परकायस्थलं समापयति–

देहाभिमाननिर्मुक्तः कलातीतपदाश्रयः ।
कथं याति परिच्छेदं शरीरेषु महाबुधः ।। ५७ ।।

शरीरकलाभिमानशून्यः सन् शरीरस्य पाञ्चभौतिकत्वात् तत्कारणीभूत-निवृत्त्यादिकलातीतपरब्रह्मपदाश्रितो महाबुधः परमज्ञानी परकायः शरीरेषु परिच्छेदं परिमितत्वं कथं केन प्रकारेण याति ? न केनापि यातीत्यर्थः ।। ५७ ।।

जे देहाभिमानसँ रहित एवं निष्कल पद पर प्रतिष्ठित भए गेल छथि, एहन महान् विद्वान् शरीर धरि सीमित कोना रहि सकैत छथि ।। ५७ ।।

इति परकायस्थलम्

अथ धर्माचारस्थलम्

अथ– 'यद्विद्याधिगमः स्वधर्मस्यानुचरणं स्वाश्रमेष्वेवानुक्रमणं स्वधर्म एव संवर्धते स्तम्भशाखेवेतराण्यनेनोर्ध्वभाग् भवत्यन्यथा पतति'[1] इति मैत्रेयश्रुतेस्तस्य परकायस्याचार एव सर्वजनानां धर्माचार इति धर्माचारस्थलं प्रतिपादयति–

तस्यैव परकायस्य समाचारो य इष्यते ।
स धर्मः सर्वलोकानामुपकाराय कल्प्यते ।। ५८ ।।

तस्य परब्रह्मकायस्य शिवयोगिनो य आचार इच्छाविषयीक्रियते, स धर्मः सन् समस्तजनानाम् उपकाराय कल्प्यत इत्यर्थः ।। ५८ ।।

---

१. ''यद्येव विद्याधिगमस्य धर्मस्यानुचरणम्...'' मैत्रारणि उ० ४ । ३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धर्माचार स्थल– ओही परकाय योगीक जे आचरण होइत अछि से धर्मस्वरूप सबलोकक उपकारक भए जाइत अछि ।। ५८ ।।

अथ तद्धर्माचारं सूत्रत्रयेण कथयति–

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दया क्षमा ।
दानं पूजा जपो ध्यानमिति धर्मस्य संग्रहः ।। ५९ ।।

दानं सहजदानम्, पूजा शिवलिङ्गपूजा, ध्यानं शिवलिङ्गचिन्तनम्, जपः शैवपञ्चाक्षराभ्यास इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।। ५९ ।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरि नहि कएनाइ), ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, दान, पूजा, जप ओ ध्यान– ई सब धर्मक संग्रह थिक ।। ५९ ।।

नन्विदं धर्माचरणं किमर्थं कर्तव्यमित्यत्राह–

शिवेन विहितो यस्मादागमैर्धर्मसंग्रहः ।
तस्मात्तमाचरन् विद्वान् तत्प्रसादाय कल्प्यते ।। ६० ।।

आगमैः शिवेन धर्मसमूहो विहत इति विधेय एव । तस्माद्धर्माचारवान् शिवप्रसादाय समर्थो भवति, अन्यथा शिवप्रसादशून्यः सन् नरकं व्रजेदित्यर्थः ।। ६० ।।

जेँ शैवागमक द्वारा शिव धर्मसंग्रह कएने छथि तेँ ओकर आचरण करैत विद्वान् हुनक प्रसन्नता बढ़बैत छथि ।। ६० ।।

ननु स धर्मः कथं कर्तव्य इत्यत्राह–

अधर्मं न स्पृशेत् किञ्चिद् विहितं धर्ममाचरेत् ।
तं च कामविनिर्मुक्तं तमपि ज्ञानपूर्वकम् ।। ६१ ।।

विहितमहिंसादिरूपमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।। ६१ ।।

अधर्मक कनेको स्पर्श नहि करबाक चाही आ विहित धर्म करक चाही । से निष्काम भए करक चाही आ सेहो ज्ञानपूर्वके ।। ६१ ।।

अथ तज्ज्ञानं कीदृशमित्यत्र–

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स धर्मिराट् ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति श्रुत्यनुसारेण सूत्रद्वयेनाह–

आत्मवत्, सर्वभूतानि संपश्येद् योगवित्तमः ।
जगदेकात्मताभावान्निग्रहादिविरोधतः ॥ ६२ ॥

योगवित्तमो योगीश्वरो जगदेकात्मताभावाज्जगतः प्रकाशैकरूपत्वचिन्तनान्निग्रहादिविरोधतो निग्रहानुग्रहयोरवकाशाभावात् सर्वभूतानि आत्मवत् स्वात्मवत् संपश्येत्, अपक्षपातेन पश्येदित्यर्थः ॥ ६२ ॥

योगकेँ जननिहार व्यक्ति संसारकेँ केवल परमात्माक रूप बुझैत निग्रह ओ अनुग्रहकेँ अवसर नहि दैत सकल जीवकेँ आत्मवत् (अपन समान) देखथि ॥ ६२ ॥

एवं पश्यतो ममकारो नैवेत्याह–

एक एव शिवः साक्षाज्जगदेतदिति स्फुटम् ।
पश्यतः किं न जायेत, ममकारो हि विभ्रमः ॥ ६३ ॥

शिव एक एवैतज्जगदिति स्फुटं साक्षात् पश्यतः किं न जायते ? सर्वं स्यादेव । तस्मिन् जगति ममकारः प्रतिनियतमस्तु ममेत्यभिमानो विभ्रमो नास्तीत्यर्थः ॥ ६३ ॥

'एकमात्र साक्षात् शिव ई संसार थिकाह' से स्पष्ट देखैत व्यक्ति की नहि भए सकैत अछि ? तेँ ममकार (वस्तुमे स्वाधिकारक भावना) भ्रम थिक ॥ ६३ ॥

अथ तद्धर्माचारं विरक्तोऽपि न त्यजेदित्याह–

धर्म एव समस्तानां यतः संसिद्धिकारणम् ।
निःस्पृहोऽपि महायोगी धर्ममार्गं च न त्यजेत् ॥ ६४ ॥

संसिद्धिकारणं भोगमोक्षकारणमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६४ ॥

जेँ धर्मे सब सिद्धिक कारण थिक, तेँ निःस्पृहो महायोगी धर्ममार्गक त्याग नहि करथि ॥ ६४ ॥

ननु ज्ञानिनां किं धर्माचरणेनेत्यत्राह–

ज्ञानामृतेन तृप्तोऽपि योगी धर्मं न संत्यजेत् ।
आचारं महतां दृष्ट्वा प्रवर्तन्ते हि लौकिकाः ॥ ६५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानामृतेन शिवज्ञानामृतेन तृप्तोऽपि महायोगी लोकहितार्थं धर्माचारं न परित्यजेदित्यर्थः ॥ ६५ ॥

ज्ञानरूपी अमृत सँ तृप्तो योगी धर्मक त्याग नहि करथि, किएक त महान् व्यक्तिक आचारकेँ देखि सामान्य जनता कर्ममे प्रवृत्त होइत अछि ॥ ६५ ॥

अथ कारणान्तरमप्याह–

सदाचारप्रियः शम्भुः सदाचारेण पूज्यते ।
सदाचारं विना तस्य प्रसादो नैव जायते ॥ ६६ ॥

ज्ञानिनोऽपि शिवप्रसादसिद्ध्यर्थमहिंसाधर्माचरणमावश्यकमिति भावः ॥ ६६ ॥

शम्भुकेँ सदाचार प्रिय छनि, तेँ ओ सदाचारेसँ पूजित होइत छथि । विना सदाचार सँ हुनक प्रसन्नता नहि होइछ ॥ ६६ ॥

इति धर्माचारस्थलम्

अथ भावाचारस्थलम्

अथ–

ज्योतीरूपं शिवं पूर्णं विश्वतेजोनिवर्तकम् ।
आशयं भासयन्तं च भावयँस्तन्मयो भवेत् ॥

इति कामिकवचनानुसारेण धर्माचारसम्पन्नस्य शिवयोगिनो भाव एव सर्वेषां भावाचार इत्युपपादयति–

भाव एवास्य सर्वेषां भावाचारः प्रकीर्तितः ।
भावो मानसचेष्टात्मा परिपूर्णः शिवाश्रयः ॥ ६७ ॥

अस्य धर्माचारसम्पन्नस्य शिवयोगिनो भाव एव सर्वेषां प्राकृतानां भावाचार इति परिकीर्तितः । भावो नाम क इत्यत्राह–मानसेति । मनोव्यापाररूपः सन् परिपूर्णशिवाश्रयोऽन्तर्बहिश्च पूर्णशिव एव आश्रयो यस्य, तादृशस्तु विशेषणभाव इत्यर्थः ॥ ६७ ॥

भावाचार स्थल– धर्माचारयुक्त योगीक भावे सामान्यलोकक लेल भावाचार कहल गेल अछि । मानस चेष्टा स्वरूप भाव पूर्णतः शिवाश्रित होइत अछि ॥ ६७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ भावयुक्तकर्म सूत्रद्वयेन विशेषयति–

भावनाविहितं कर्म पावनादपि पावनम् ।
तस्माद् भावनया युक्तं परधर्मं समाचरेत् ॥ ६८ ॥

स्पष्टम् ॥ ६८ ॥

भावनासँ विहित कर्म पावनहुँ सँ पावन थिक । तेँ भावनासँ युक्त परम धर्म करबाक चाही ॥ ६८ ॥

ननु भावेन किमित्यत्राह–

भावेन हि मनःशुद्धिर्भावशुद्धिश्च कर्मणा ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा योगी भावं न संत्यजेत् ॥ ६९ ॥

स्पष्टम् ॥ ६९ ॥

भावसँ मनक शुद्धि ओ कर्मसँ भावक शुद्धि होइत छैक– ई बूझि योगी अपन मनसँ भावक त्याग नहि करथि ॥ ६९ ॥

ननु भावेन कर्मसिद्धिश्चेत् प्रतिबन्धकं स्यादित्यत्राह–

शिवभावनया सर्वं नित्यनैमित्तिकादिकम् ।
कुर्वन्नपि महायोगी गुणदोषैर्न बाध्यते ॥ ७० ॥

शिव एव कर्तेति शिवभावनया (कर्म) कुर्वन् योगी गुणदोषैर्न लिप्यत इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ७० ॥

महायोगी शिवभावनाक संग सकल नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म करैतो ओकर गुण-दोष सँ बाधित नहि होइत छथि ॥ ७० ॥

ननु परयोगीश्वरस्य नित्यनैमित्तिककर्मसङ्गाभावात् कथं तदाचरणमङ्गीकृतमित्यत्राह–

अन्तः प्रकाशमानस्य संवित्सूर्यस्य सन्ततम् ।
भावेन यदुपस्थानं तत्सन्ध्यावन्दनं विदुः ॥ ७१ ॥

अन्तः ऊर्ध्वं हृत्कमले निरन्तरं भासमानस्य चिदादित्यस्य भावेन यदुपस्थानमनुवर्तनम्, तत् सन्ध्यावन्दनमिति वीरशैवाचार्या जानन्तीत्यर्थः ॥ ७१ ॥

अपना अन्दर प्रकाशमान सवित्स्वरूप सूर्यक सदा भावसँ ऊठि कए

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्तुति कएल जाइत अछि तकरा विद्वानलोकनि सन्ध्यावन्दन कहैत छथि ।। ७१ ।।

तर्हि होमोऽप्यावश्यक इति स कीदृश इत्यत्राह–

अत्मज्योतिषि सर्वेषां विषयाणां समर्पणम् ।
अन्तर्मुखेन भावेन होमकर्मेति गीयते ।। ७२ ।।

आत्मज्योतिषि चिदग्नौ, अन्तर्मुखेन भावेन अबहिर्मुखेन भावेन सर्वेषां विषयाणां यत्समर्पणं सागरतरङ्गन्यायेन लयचिन्तनं तदेकलोलीभावचिन्तनं यदस्ति, तद् होमकर्मेति गीयते कथ्यत इत्यर्थः ।। ७२ ।।

आत्मज्योतिमे सब विषयक अन्तर्मुख भावसँ समर्पणकेँ होमकर्म कहल जाइछ ।। ७२ ।।

एवं नित्यनैमित्तिककर्माणि भावयन् सङ्गरहितः स्यादित्याह–

भावेयत् सर्वकर्माणि नित्यनैमित्तिकानि च ।
शिवप्रीतिकराण्येव सङ्गराहित्यसिद्धये ।। ७३ ।।

संसारसम्बन्धनिवृत्त्यर्थं नित्यनैमित्तिकानि सर्वाणि कर्माणि शिवप्रीतिकाराण्येवेति भावयेदित्यर्थः ।। ७३ ।।

नित्य–नैमित्तिक सबकर्म शिवप्रीतिकरे करक चाही, एहिसँ संसारक आसक्तिक निवृत्ति होइत छैक ।। ७३ ।।

ननु कर्मणः सङ्गहेतुत्वात् कथं सङ्गराहित्यं स्यादित्यत्राह–

शिवे निवेश्य सकलं कार्याकार्यं विवेकतः ।
वर्तते यो महाभागः स सङ्गरहितो भवेत् ।। ७४ ।।

विवेकतः कर्ता कारयिता कर्म तत्फलं च शिव एवेति विवेकतः कार्याकार्यं कर्तुं योग्यमयोग्यं च शिवे निवेश्य समर्प्य यो महाभागो महापुरुषो वर्तते, स सङ्गरहितो भवसङ्गरहित इत्यर्थः ।। ७४ ।।

जे व्यक्ति अपन सकल कार्य ओ अकार्यकेँ विवेकपूर्वक शिवमे समर्पित करैत छथि से महाभाग संगरहित भए जाइत छथि ।। ७४ ।।

ननु भवसङ्गराहित्यं शिवदर्शनेन विना न सम्भवतीत्यत्राह–

आत्मानमखिलं वस्तु शिवमानन्दचिन्मयम् ।
एकभावेन सततं सम्पश्यन्नेव पश्यति ।। ७५ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आत्मानं स्वात्मानम् अखिलं वस्तु सर्वं विश्वम् आनन्दचिन्मयं परशिवं च एकभावेन एकत्वेन सततं पश्यन्नेव चिद्रूपत्वाच्छिवजीवैक्यं शिवस्वभावभूत-चित्क्रियाव्याप्तत्वात् तदबाह्यत्वेन सर्वं विश्वं शिवात्मकमिति पश्यन्नेव पश्यति शिवं पश्यतीत्यर्थः ॥ ७५ ॥

आत्मा, सकल वस्तु ओ आनद चिन्मय शिवकेँ जे सतत एकभावसँ देखैत छथि, सएह वस्तुतः देखैत छथि ॥ ७५ ॥

इति भावाचारस्थलम्

अथ ज्ञानचारस्थलम्

अथ– 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'[1] इति श्रुतेस्तस्य भावाचारसम्पन्नस्य शिवयोगिनो ज्ञानाचार एव सर्वदेहिनां ज्ञानाचार इति ज्ञानाचारस्थलं निरूपयति–

अस्य ज्ञानसमाचारो योगिनः सर्वदेहिनाम् ।
ज्ञानाचारो यदुक्तोऽयं ज्ञानाचारः स कथ्यते ॥ ७६ ॥

भावाचारसम्पन्नस्यास्य योगिनो ज्ञानसमाचार एव सर्वदेहिनां ज्ञानाचार इति यद्यस्मात् कारणादुक्तः, तस्मात्कारणात् सोऽयं ज्ञानाचार इति कथ्यत इत्यर्थः ॥ ७६ ॥

ज्ञानाचार स्थल– एहि भावाचारसम्पन्न योगीक ज्ञानाचार सकल मानवक लेल ज्ञानाचार थिक । इयेह ज्ञानाचारस्थल थिक ॥ ७६ ॥

अथ तज्ज्ञानाचारमेव लक्षणपूर्वकं सूत्रत्रयेण कथयति–

शिवाद्वैतपरं ज्ञानं ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ।
सिद्धेन वाप्यसिद्धेन फलं ज्ञानान्तरेण किम् ॥ ७७ ॥

शिवाद्वैतमेव परं प्रधानं यस्य तादृशं ज्ञानं बुधैर्ज्ञानमित्युच्यते, शास्त्रसिद्धेन वा तदसिद्धेन वा ज्ञानान्तरेण भिन्नज्ञानेन किं फलम् न किमपीत्यर्थः ॥ ७७ ॥

शिवाद्वैतपरक जे ज्ञान तकरे विद्वानलोकनि ज्ञान कहैत छथि । आन ज्ञान सिद्ध हो वा असिद्ध, ताहिसँ की फल ? ॥ ७७ ॥

अथ तत्कथमित्यत्राह–

निर्मलं हि शिवज्ञानं निःश्रेयस्करं परम् ।
रागद्वेषादिकलुषं भूयः संसृतिकारणम् ॥ ७८ ॥

---

१. तै०उ० २।१।१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवज्ञानं शिवाद्वैतज्ञानं निर्मलम् आणवादिमलसङ्करहितं सत् परं निःश्रेयकारणं सर्वोत्कृष्टमोक्षप्रदमित्यर्थः । तद्व्यतिरिक्तभेदज्ञानं रागद्वेषादिकलुषं कामक्रोधादिमिश्रं सद् भूयः पुनः पुनः संसृतिकारणं यातायातकारणमिति हि प्रसिद्धमित्यर्थः ॥ ७८ ॥

शिवज्ञान निर्मल अछि आ तेँ मोक्षदायक थिक । जे ज्ञान रागद्वेष आदिक कारण मलिन अछि, से संसारक (जन्म-मृत्युक) कारण थिक ॥ ७८ ॥

एवं ज्ञानस्वरूपमुक्त्वा तादाचारस्वरूपं कथयति-

परिपूर्णं महाज्ञानं परतत्त्वप्रकाशकम् ।
अवलम्ब्य प्रवृत्तो यो ज्ञानाचारः स उच्यते ॥ ७९ ॥

परतत्त्वप्रकाशकं परिपूर्णम् अपिरिच्छिन्नं महाज्ञानं शिवाद्वैतज्ञानमवलम्ब्य धृत्वा य आचारः प्रवृत्तः, स ज्ञानाचार इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ७९ ॥

परतत्त्वक प्रकाशक परिपूर्ण महाज्ञानकेँ अवलम्बित कए जे प्रवृत्त होइत अछि से ज्ञानाचार कहल जाइछ ॥ ७९ ॥

अथ तज्ज्ञानाचारिणं प्रकाशयति-

निर्विकल्पे परे धाम्नि निष्कले शिवनामनि ।
ज्ञानेन योजयेत् सर्वं ज्ञानाचारी प्रकीर्तितः ॥ ८० ॥

निष्कले निरवयवे निर्विकल्पे भेदरहिते शिवनामनि शिव इत्यभिधानवति परे धाम्नि परब्रह्माधारे सर्वं जगज्जालं ज्ञानेन अभेदज्ञानेन यो योजयेत्, स ज्ञानाचारीति कीर्तित इत्यर्थः ॥ ८० ॥

जे व्यक्ति निर्विकल्प परमधाम निष्कल शिवनाममे सब वस्तुकेँ ज्ञानसँ जोड़ि देथि से ज्ञानाचारी कहल गेल छथि ॥ ८० ॥

अथ तस्य ज्ञानाचारिणः कर्मकार्पण्यं नास्तीति सूत्रद्वयेन कथयति-

ज्ञांन मुक्तिप्रदं प्राप्य गुरुदृष्टिप्रसादतः ।
कः कुर्यात् कर्मकार्पण्ये वाञ्छां संसारवर्धने ॥ ८१ ॥

मुक्तिप्रदं परापरमोक्षदं शिवज्ञानं गुरुकृपादृष्टिप्रसन्नतावशात् प्राप्य संसारवर्धने कर्मकार्पण्ये वाञ्छाम् इच्छां कः कुर्यात् ? न कोऽपि कुर्यादित्यर्थः ॥ ८१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुरुक कृपादृष्टिसँ मुक्तिप्रद ज्ञानकेँ पाबि, के व्यक्ति कर्मक कारण दुःखद संसारकेँ बढ़एबाक इच्छा कए सकैत छथि ? ॥ ८१ ॥

कुत इत्यत्राह–

कर्म ज्ञानाग्निना दग्धं न प्ररोहेत् कथञ्चन ।
यदाहुः संसृतेर्मूलं प्रवाहानुगतं बुधाः ॥ ८२ ॥

यत्कर्म बुधाः संसृतेर्मूलं मूलकारणं सत् प्रवाहानुगतं जलप्रवाहन्यायेनानादित्वेन श्रुतेरनुगतं सद् आहुः, तत्कर्मबन्धनं शिवज्ञानाग्निना दग्धं सत् कथञ्चन केनापि प्रकारेण न प्ररोहेद् नाङ्कुरेदित्यर्थः ॥ ८२ ॥

ज्ञानरूपी आगिसँ जरल कर्मक प्रादुर्भाव नहि भए सकैछ, जेँ कि विद्वानलोनि प्रवाहक्रमानुगत संसारक मूल कर्मेकेँ मानने छथि, तेँ मूलभूत कर्मक जरि गेलासँ संसारोक जन्म असम्भव थिक ॥ ८२ ॥

तर्हि कर्मबन्धनं कस्येत्यत्राह–

ज्ञानेन हीनः पुरुषः कर्मणा बद्ध्यते सदा ।
ज्ञानिनः कर्मसङ्कल्पा भवन्ति किल निष्फलाः ॥ ८३ ॥

'यथा पुष्करपलाश आपो न शिलष्यन्ते, एवमेवंविदि पापकर्म न शिलष्यते', 'स उत्तमः पुरुषः' इति छान्दोग्यश्रुतेः,

अद्वैतभक्तियुक्तस्य योगिनः सकलाः क्रियाः ।
सन्ति दग्धपटन्यायात् क्रियामात्रा हि न क्रियाः ॥

इति वीरागमोक्तेश्च ज्ञानिनः कर्मपाशो नास्तीत्यर्थः ॥ ८३ ॥

ज्ञानसँ रहित पुरुष सदा कर्मद्वारा बन्धनमे बान्हल जाइछ, किन्तु ज्ञानीक कर्मसंकल्प निश्चितरूपेँ निष्फल होइछ ॥ ८३ ॥

अथ ज्ञानाचारस्थलं समापयति–

शुद्धाचारे शुद्धभावो विवेकी
ज्योतिः पश्यन् सर्वतश्चैवमेकम् ।
ज्ञानध्वस्तप्राकृतात्मप्रपञ्चो
जीवन्मुक्तश्चेष्टते दिव्ययोगी ॥ ८४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शियोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ माहेश्वरस्थलाश्रितनवलिङ्गप्रसङ्गो नाम षोडशः परिच्छेदः ॥ १६ ॥

❀❀❀

शुद्धाचारे निर्मलज्ञानाचारे शुद्धभावे निर्मलभाववान् विवेकी, एवं प्रतियोगिरहितं शैवं तेजः सर्वतः पश्यन् ज्ञानध्वस्तप्राकृतात्मप्रपञ्चः शिवाद्वैतज्ञाननाशितप्रकृतिजन्यदेहप्रपञ्चवान् दिव्ययोगी स्वयंप्रकाशरूपः शिवयोगी जीवन्मुक्तः सन् चेष्टते लौकिकवद् व्यवहरतीत्यर्थः ॥ ८४ ॥

शुद्ध ज्ञानाचार भेलापर शुद्ध भाववाला विवेकी दिव्ययोगी सर्वत्र एकमात्र शिवज्योतिक साक्षात्कार कए ज्ञानसँ प्राकृत प्रपञ्चकेँ नष्ट कए जीवन्मुक्त भए जाइत छथि आ सामान्य लोक जकाँ व्यवहार करैत छथि ॥ ८४ ॥

❀❀❀

एहि तरहेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणिमे विद्यावाचस्पति डॉ० शशिनाथ झाकृत प्रबोधिनी मैथिली व्याख्याक माहेश्वरस्थलप्रसङ्गनामक सोलहम परिच्छेद समाप्त भेल ।

❀❀❀

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सप्तदशः परिच्छेदः

अथ प्रसादिस्थलम्

(अथ कायानुग्रहस्थलम्)

अथागस्त्यप्रश्नः । अगस्त्य उवाचेति–

स्थलानि तानि चोक्तानि यानि माहेश्वरस्थले ।
वदस्व स्थलभेदं मे प्रसादिस्थलसंश्रितम् ॥ १ ॥

वदस्व उपदिशेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १ ॥

प्रसादिस्थल– अगस्त्य बजलाह– हे आचार्य ! अपने माहेश्वर स्थलमे जतेक स्थल अछि ताहि सबहिक वर्णन कएलहुँ । आब प्रसादिस्थलक अन्तर्गत स्थलभेद कहल जाए ॥ १ ॥

श्रीरेणुक उवाच

स्थलभेदा नव प्रोक्ताः प्रसादिस्थलसंश्रिताः ।
कायानुग्रहणं पूर्वमिन्द्रियानुग्रहं ततः ॥ २ ॥
प्राणानुग्रहणं पश्चात् ततः कायार्पितं मतम् ।
करणार्पितमाख्यातं ततो भावार्पितं मतम् ॥ ३ ॥
शिष्यस्थलं ततः प्रोक्तं शुश्रूषास्थलमेव च ।
ततः सेव्यस्थलं चैषां क्रमशः शृणु लक्षणम् ॥ ४ ॥

श्रीरेणुक बजलाह– प्रसादिस्थलक अन्तर्गत नओ स्थलभेद कहल गेल अछि । से सब ई अछि– कायानुग्रह, इन्द्रियानुग्रह, प्राणानुग्रह, कायार्पित, करणार्पित, भावार्पित, शिष्यस्थल, सुश्रूषास्थल ओ सेव्यस्थल । आब एहि सबहिक क्रमसँ लक्षण सुनू ॥ २-४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ कायानुग्रहस्थलम्

अथ– 'शुचिः समग्रीवशिरः शरीरः'[१] इति कैवल्यश्रुतेः स ज्ञानाचारवान् शिवयोगी स्वरूपशरीरं दर्शयन्ननुगृह्णातीति कायानुग्राहक इति सूत्रत्रयेण निरूपयति–

अनुगृह्णाति यल्लोकान् स्वकायं दर्शयन्नसौ ।
तस्मादेष समाख्यातः कायानुग्रहनामकः ॥ ५ ॥

असौ ज्ञानाचारसम्पन्नः शिवयोगी यद्यस्मात् कारणात् स्वकायं दर्शयन् सन् लोकान् प्राकृतान् (जनान्) अनुगृह्णात्यनुग्रहं करोति, तस्मादेष कायानुग्रहनामकः कायानुग्रह इत्यभिधानवानिति समाख्यात इत्यर्थः ॥ ५ ॥

कायानुग्रहस्थल– ई ज्ञानाचारयुक्त योगी अपन देहक दर्शन करबैत जेँ लोकपर अनुग्रह करैत छथि तेँ कायानुग्रह नामक होइत छथि ॥ ५ ॥

तत्कथमित्यत्र दृष्टान्तमाह–

यथा शिवोऽनुगृह्णाति मूर्तिमाविश्य देहिनः ।
तथा योगी शरीरस्थः सर्वानुग्राहको भवेत् ॥ ६ ॥

शिवो यथा चन्द्रशेखरादिमूर्तिमाविश्य देहिनः प्राणिनोऽनुग्रहं करोति, तथा योगी शरीरस्थः सन् शिवदीक्षासंस्कृतदिव्यशरीरस्थःसन् सर्वानुग्राहकः स्यादित्यर्थः ॥ ६ ॥

जेना शिव मूर्तिक देहमे आविष्ट भए लोकक ऊपर अनुग्रह करैत छथि तहिना योगी अपन दिव्य शरीरमे रहि सभक अनुग्राहक (कृपा कएनिहार) होइत छथि ॥ ६ ॥

अथ शिववदसङ्गश्चेत्याह–

शिवः शरीरयोगेऽपि यथा सङ्गविवर्जितः ।
तथा योगी शरीरस्थो निःसङ्गो वर्तते सदा ॥ ७ ॥

सुखदुःखादिसङ्गरहित इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ७ ॥

जेना शिव मूर्तिक विग्रहमे रहैतो संगविवर्जित रहैत छथि तहिना योगी शरीर धारण कएनहुँ अनासक्त रहैत छथि ॥ ७ ॥

एवं शिवयोगिनः शिवसमानत्वमुक्त्वा तस्य मायाप्रपञ्चदर्शनं नास्तीति

---

१. कै०उ० ५

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिव एवेति पञ्चभिः सूत्रैर्दृष्टान्तपूर्वकमुपपादयति–

शिवभावनया युक्तः स्थिरया निर्विकल्पया ।
शिवो भवति निर्धूत-मायावेशपरिप्लवः ॥ ८ ॥

अत्र शिवयोगीति शेषः । भेदरहितया दृढया शिवोऽहंभावनया युक्तो निवारितमायावेशोपप्लवः सन् शिव एव भवतीत्यर्थः ॥ ८ ॥

दृढ़ ओ विकल्परहित भावना सँ युक्त आ मायाक आवेशक उपद्रवसँ रहित शिवयोगी शिवे भए जाइत छथि ॥ ८ ॥

ननु कथं तस्य मायावेशोपप्लवो नास्तीत्यत्राह–

चित्तवृत्तिषु लीनासु शिवे चित्सुखसागरे ।
अविद्याकल्पितं वस्तु नान्यत् पश्यति संयमी ॥ ९ ॥

ज्ञानानन्दयोः समुद्रस्थानापन्ने परमशिवे चित्तवृत्तिषु मनोव्यापारेषु लयं गतेषु सत्सु शिवयोगी मायाकल्पितवस्त्वन्तरं न पश्यतीत्यर्थः ॥ ९ ॥

चित्सुखक सागर शिवमे चित्तवृत्तिक लीन भेला पर संयमी साधक अविद्यासँ कल्पित आन कोनो वस्तुकेँ नहि देखैत छथि ॥ ९ ॥

अत्र दृष्टान्तमाह–

नेदं रजतमित्युक्ते यथा शुक्तिः प्रकाशते ।
नेदं जगदिति ज्ञाते शिवतत्त्वं प्रकाशते ॥ १० ॥

उक्ते ज्ञात इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १० ॥

'ई चानी नहि' ई कहलापर जेना शुक्तिक (सितुआक) प्रतीति होइत छैक, तहिना 'ई संसार नहि अछि' एहन ज्ञान भेला पर शिवतत्त्व प्रकाशित होइत अछि ॥ १० ॥

अथ पुनर्दृष्टान्तमाह–

यथा स्वप्नकृतं वस्तु प्रबोधेनैव शाम्यति ।
तथा शिवस्य विज्ञाने संसारं नैव पश्यति ॥ ११ ॥

एष शिवयोगीत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ११ ॥

जेना स्वप्नमे प्राप्त वस्तु जगलेपर निवृत्त होइत छैक तहिना शिवक ज्ञान भेला पर साधक संसारकेँ नहि देखैछ ॥ ११ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ पुनर्दृष्टान्तमाह–

अज्ञानमेव सर्वेषां संसारभ्रमकारणम् ।
तन्निवृत्तौ कथं भूयः संसारभ्रमदर्शनम् ॥ १२ ॥

यथा शुक्त्यज्ञानं रजतभ्रान्तिकारणम्, तथा शिवविषयकमज्ञानं संसारभ्रान्तिकारणम् । तन्निवृत्तौ शक्त्यज्ञाननिवृत्तौ यथा रजतभ्रमो निवर्तते, तथा शिवविषयकाज्ञाननिवृत्तौ सांसारिकभेदभ्रान्तिदर्शनं नास्तीत्यर्थः । यथा शुक्तिरेव रजतम्, तथा शिव एव विश्वमिति भावः ॥ १२ ॥

सकल जीवकेँ जे संसारभ्रम होइत छैक तकर कारण अज्ञाने थिक । ताहि अज्ञानक निवृत्ति भए गेलापर पुनः संसारभ्रमक दर्शन कोना भए सकैछ ? ॥ १२ ॥

तस्मादयं शिवयोगी जीवन्मुक्त इति वदन् कायानुग्रहस्थलं समापयति–

गलिताहङ्कृतिग्रन्थिः क्रीडाकल्पितविग्रहः ।
जीवन्मुक्तश्चरेद् योगी देहिवन्निरुपाधिकः ॥ १३ ॥

निवृत्तपरिच्छिन्नशरीराद्यहङ्कारवान् क्रीडार्थं स्वेच्छापरिकल्पितकलेवरः, अत एव निरुपाधिकः, प्रतिबन्धरहित इत्यर्थः । जीवन्मुक्तः सन् देहवत् देहवानिव लोकानुग्रहार्थं सञ्चरेदित्यर्थः ॥ १३ ॥

जनिक अहङ्कार रूपी गीरह 'हम शरीरे छी' 'हमर नाम अमुक थिक' इत्यादि भावना नष्ट भए गेल छनि आ जे लोकव्यवहारक लेल शरीरधारण कएने छथि से उपाधिरहित योगी जीवन्मुक्त भए संसारमे व्यवहारपूर्वक विचरण करैत छथि ॥ १३ ॥

इति कायानुग्रहस्थलम्

अथेन्द्रियानुग्रहस्थलम्

अथ– 'त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य'[१] इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण तस्य कायानुग्रहसम्पन्नस्य शिवयोगिन इन्द्रिय- विवेचनमेव सर्वेषामिन्द्रियानुग्रहस्थलमिति निरूपयति–

दर्शनात् परकायस्य करणानां विवेकतः ।
इन्द्रियानुग्रहः प्रोक्तः सर्वेषां तत्त्ववेदिभिः ॥ १४ ॥

१. श्वे०उ० २।८

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परकायस्य सर्वोत्कृष्टकायानुग्रहसम्पन्नस्य शिवयोगिनो दर्शनात्, करणानामिन्द्रयाणां विवेकतः सर्वेषां प्राकृतानामन्द्रियानुग्रह इति तत्त्ववेदिभिस्तत्त्वज्ञानिभिः प्रोक्तः कथित इत्यर्थः ॥ १४ ॥

इन्द्रियानुग्रह स्थल– उत्कृष्टदेहधारी शिवयोगीक दर्शनसँ एवं इन्द्रिय सभक विवेक सँ एहि स्थलकेँ तत्त्वज्ञ लोकनि इन्द्रियानुग्रह कहलनि अछि ॥ १४ ॥

अथ तत्कथमित्यत्र तदिन्द्रियव्यापारं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

इन्द्रियाणां समस्तानां स्वार्थेषु सति सङ्गमे ।
रागो वा जायते द्वेषस्तौ योगी परिवर्जयेत् ॥ १५ ॥

लोके समस्तानां श्रोत्रादीन्द्रियाणां स्वस्वविषयेषु सम्बन्धे सति रागो वा द्वेषो वा जायते । योगी शिवयोगी तौ रागद्वेषौ परिवर्जयेत्, परित्यजेतेत्यर्थः ॥ १५ ॥

सभ इन्द्रियकेँ अपन-अपन विषयक (गन्ध रस रूप स्पर्श शब्द आदि) संग सम्पर्क भेला पर जे राग वा द्वेष उत्पन्न होइत अछि, तकरा योगी छोड़ि देथि ॥ १५ ॥

एवं च योगीन्द्रियव्यापारस्य लोकोत्तत्वादनुग्रहकरत्वमिति भावः –

इन्द्रियाणां बहिर्वृत्तिः प्रपञ्चस्य प्रकाशिनी ।
अन्तः शिवे समावेशो निष्प्रपञ्चस्य कारणम् ॥ १६ ॥

स्पष्टम् ॥ १६ ॥

इन्द्रियक बाहरी विषयमे प्रवृत्ति सांसारिक प्रपञ्चकेँ उत्पन्न करैछ, मुदा ओकरा अन्तःस्थित शिवमे लगा देल जाए त ओ निष्प्रपञ्चक (संसाररहितताक) कारण भए जाइछ ॥ १६ ॥

एवं स्थिते–

क्षणमन्तः शिवं पश्यन् केवलेनैव चेतसा ।
बाह्यार्थानामनुभवं क्षणं कुर्वन् दृगादिभिः ॥ १७ ॥
सर्वेन्द्रियनिरूढोऽपि सर्वेन्द्रियविहीनवान् ।
शिवाहितमना योगी शिवं पश्यति नापरम् ॥ १८ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्तः अन्तर्मुखः सन् केवलेन चेतसा बाह्येन्द्रियसङ्गरहितेन चित्तेन, क्षणं शिवं पश्यन्, दृगादिश्चिक्षुरादिबाह्येन्द्रियैः, बाह्यार्थानां शब्दादिबाह्य-विषयाणाम् अनुभवं क्षणं कुर्वन् शिवाहितमना योगी शिवे निवेशितचित्तः परयोगी, सर्वेन्द्रियनिरूढोऽपि सर्वेन्द्रियासक्तोऽपि, सर्वेन्द्रियविहीनवान् सन् शिवं पश्यति अन्तर्बहिश्च शिवमेव पश्यति, अपरं तदन्यं न पश्यतीति तदिन्द्रियविवेचनमनुग्रहकरमिति भावः ॥ १७-१८ ॥

केवल चित्तक द्वारा एक क्षणक लेल अपना अन्दरमे शिवक साक्षात्कार कएनिहार तथा बाहरी विषयक आँखि आदिसँ क्षणभरिक लेल अनुभवकरएवाला योगी सकल इन्द्रिय पर आश्रित भेलापर सब इन्द्रियसँ रहित भए शिवक प्रति समर्पित मनवाला भए सर्वत्र शिवकेँ देखैत छथि, आन वस्तुकेँ नहि ॥ १७-१८ ॥

नन्वेवमन्तर्बहिश्च शिवं पश्यतः शिवयोगिनोऽपि प्राकृतजनवज्जरा-मरणादिदर्शनात् कथं लोकानुग्राहकत्वमित्यत्राह–

न जरा मरणं नास्ति न पिपासा न च क्षुधा ।
शिवाहितेन्द्रियस्यास्य निर्मानस्य महात्मनः ॥ १९ ॥

शिवाहितेन्द्रियस्य शिवनिवेशितेन्द्रियव्यापारवतो निर्मानस्य देहाद्यभिमान-शून्यस्य महात्मनो महापुरुषस्य अस्य शिवयोगिनो जरामरणं नास्ति, तयोः शरीरधर्मत्वात्, क्षुत्पिपासे च न स्तः, तयोः प्राणधर्मत्वादिति ॥ १९ ॥

शिवक प्रति समर्पित इन्द्रियवाला आ तेँ दैहिक अभिमान सँ रहित एहि महात्माकेँ ने जरा, ने मृत्यु, ने पियास आ ने क्षुधाक कष्ट होइ छनि, कारण, जरा ओ मृत्यु शरीरक तथा भूख-पियास प्राणक धर्म थिक ॥ १९ ॥

'सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानं सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानम्', 'इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः' इति पुराणवचनानुसारेण सर्वेन्द्रियव्यापार-कारणीभूतमनोमारुतनिग्रहं सूत्रत्रयेण प्रकाशयति–

मनो यत्र प्रवर्तेत तत्र सर्वेन्द्रियस्थितिः ।
शिवे मनसि सँल्लीने क्व चेन्द्रियविचारणा ॥ २० ॥

यत्र मनस्थितिः (तत्र) सर्वेन्द्रियस्थितिः, मनसि शिवे सँल्लीने सति इन्द्रियविचारणा इन्द्रियव्यापारः क्व ? नास्तीत्यर्थः ॥ २० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जतए मन प्रवृत्त होएत ओतहि सकल इन्द्रियक प्रवृत्ति होइत अछि। जखन मन शिवमे लीन भए जाएत त तखन इन्द्रियक प्रवृत्ति कतए ? ॥ २० ॥

यद्यत् पश्यन् दृशा योगी मनसा चिन्तयत्यपि ।
तत्तत् सर्वं शिवाकारं संविद्रूपं प्रकाशते ॥ २१ ॥

योगी शिवयोगी दृशा यद्यत् पश्यति, मनसा चिन्तयति, तत्तत् सर्वं चिद्रूपं शिवाकारं सत् प्रकाशते, मनुत इत्यर्थः ॥ २१ ॥

शिवयोगी आँखिसँ जाहि-जाहि वस्तुकेँ देखैत मनसँ ओकर ध्यान करैत छथि से-से वस्तु हुनका शिवाकार संविद् रूपमे भासित होइत छनि ॥ २१ ॥

अनेनान्तर्बाह्येन्द्रियनिग्रहप्रकारो दर्शितः । अथ प्राणनिग्रहप्रकारं दर्शयति–

करणैः सहितं प्राणं मनस्याधाय संयमी ।
योजयेत् स शिवः साक्षाद् यत्र नास्ति जगद्भ्रमः ॥ २२ ॥

करणैर्नेत्रादिकरणैः सहितं प्राणं प्राणवायुं मनस्याधाय संस्थाप्य यः संयमी शिवयोगी यत्र ब्रह्मणि योजयेत्, नेत्रादिकरणानां मन एव प्राणरूपम्, मनो वायुरूपं वेगवत्त्वात् लोके क्वचिल्लक्ष्ये नेत्रचञ्चलं चेत्, प्राणवायुनिरोधद्वारा मनोलयस्यानुभूयमानत्वाच्च त्रयाणामैक्यात् सामरस्येन संयोजयेत्, स साक्षाच्छिव एव । तस्य जगद्भ्रमो विश्वभेदभ्रान्तिर्नास्ति, चित्तवृत्तिर्ब्रह्मणि लीना चेद् बाह्येन्द्रियव्यापारो निवर्तते, तदभावाद् विभेदभ्रान्तिर्नास्तीत्यर्थः ॥ २२ ॥

इन्द्रियक संग प्राणोकेँ मनमे समाहित कए शिवयोगी जाहिमे एहि सबहिक योजना करैत छथि से वस्तु साक्षात् शिवरूप भए जाइत अछि, ओहिमे संसारक भ्रम नहि रहैछ ॥ २२ ॥

अथेन्द्रियानुग्रहस्थलं समापयति–

सर्वेन्द्रियप्रवृत्त्या च बहिरन्तः शिवं यजन् ।
स्वच्छन्दचारी सर्वत्र सुखी भवति संयमी ॥ २३ ॥

संयमी शिवयोगी सर्वेन्द्रियप्रवृत्त्या च अन्तर्बाह्येन्द्रियप्रवर्तनेन शिवम् इष्टप्राणरूपशिवलिङ्गं यजन् पूजयन् सर्वत्र स्वेच्छाचारी भूत्वा सुखी भवति सुखमनुभवन्नास्त इत्यर्थः ॥ २३ ॥

संयमी सब इन्द्रियकेँ बाहर एवं भीतर प्रवृत्ति कराए शिवक पूजन करैत स्वच्छन्दचारी भए सर्वत्र सुखी रहैत छथि ॥ २३ ॥

इतीन्द्रियानुग्रहस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ प्राणानुग्रहस्थलम्

अथ– 'प्राणान् प्रपीड्येह स मुक्तचेष्टः क्षीणे प्रणे नासिकयोच्छ्वसीत'[१] इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेणेन्द्रियानुग्रहसम्पन्नस्य शिवयोगिनस्तात्पर्यावलोकनमेव सर्वेषां प्राणानुग्रहस्थलं निरूपयति–

शिवस्य परकायस्य यत् तात्पर्यावलोकनम् ।
तत्प्राणानुग्रहः प्रोक्तः सर्वेषां तत्त्वदर्शिभिः ॥ २४ ॥

परकायस्य इन्द्रियानुग्रहसम्पन्नस्य परब्रह्मकायस्य शिवस्य शियोगिनो यत्तात्पर्यावलोकनं प्राणवायुनिरोधेन यत्तात्पर्यावलोकनमस्ति, तत्सर्वेषां प्राणानुग्रह इति तत्त्वज्ञानिभिः प्रेक्त इत्यर्थः ॥ २४ ॥

प्राणानुग्रहस्थल– पर अर्थात् परमोत्कृष्ट इन्द्रियानुग्रहयुक्त शिवयोगीक जे प्राणवायुनिरोधपूर्वक तात्पर्यावलोकन अछि से तत्त्वदर्शी लोकनिक द्वारा सभक प्राणानुग्रह कहल गेल अछि ॥ २४ ॥

अथ तत्तात्पर्यावलोकनं कीदृशमित्याह–

प्राणो यस्य लयं याति शिवे परमकारणे ।
कुतस्तस्येन्द्रियस्फूर्तिः कुतः संसारदर्शनम् ॥ २५ ॥

, यस्य शिवयोगिनः प्राणः प्राणवायुः परमकारणे शिवे ब्रह्मादिकारणेशानामपि[२] कारणीभूते परशिवे लयं याति, तस्य शिवयोगिन इन्द्रियस्फूर्तिरिन्द्रियव्यापारः कुतः ? नास्तीत्यर्थः । एवं च निष्प्रपञ्चशिवलिङ्गदर्शनं तत्तात्पर्यावलोकनमिति भावः ॥ २५ ॥

जाहि योगीक प्राण परमकारण स्वरूप शिवमे लीन होइत अछि तनिका इन्द्रियक चञ्चलता ओ संसारदर्शन कतए सँ होएतनि, अर्थात् कतहुसँ नहि । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर ओ सदाशिव ई पाँचो कारणेश थिकाह, तनिकहु कारण होएबाक कारण परशिव परमकारण कहबैत छथि ॥ २५ ॥

अथ तत्कथमित्यत्राह–

करणेषु निवृत्तेषु स्वार्थसङ्गात् प्रयत्नतः ।
तैः समं प्राणमारोप्य स्वान्ते शान्तमतिः स्वयम् ॥ २६ ॥

---

१. श्वे०उ० २ । ९

२. ब्रह्मा विष्णू रुद्र ईश्वरः सदाशिवश्चेति पञ्चकारणेशाः ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

केवलकुम्भेन शिवे प्राणवायौ लयं गते सति करणेषु चक्षुरादिकरणेषु स्वार्थसङ्गात् शब्दादिस्वविषयसम्बन्धात् प्रयत्नतः स्वयमेव निवृत्तेषु सत्सु स्वान्ते मनसि तैरिन्द्रियैः समं प्राणमारोप्य संयोज्य शान्तमती रागद्वेषरहितः स्यात् ॥ २६ ॥

कुम्भक प्राणायाम आदि प्रयत्नसँ इन्द्रिय सभकेँ अपन-अपन विषयसँ निवृत्त कएला पर ओकरा सभक संग प्राणक एकरूपता कए योगी स्वयं शान्तमनवला भए जाइत छथि ।। २६ ।।

एवं स्थिते-

शान्तत्वात् प्राणवृत्तीनां मनः शाम्यति वृत्तिभिः ।
तच्छान्तौ योगिना किञ्चिच्छिवादन्यन्न दृश्यते ॥ २७ ॥

प्राणवृत्तीनां रेचकपूरकरूपप्राणवृत्तीनां शान्तत्वात् केवलकुम्भकेन निवृत्तत्वात्, मनोवृत्तिभिः सङ्कल्पविकल्परूपवृत्तिभिः समं शाम्यति, तच्छान्तौ सत्यां योगिनां शिवादन्यन्न किञ्चिदपि दृश्यत इत्यर्थः ॥ २७ ॥

प्राणक श्वास-प्रश्वासवृत्तिक शान्त भेला पर मनो ओहि वृत्तिक संग शान्त भए जाइछ । ओहि मनक शान्त भेला पर योगीकेँ शिवक अतिरिक्त आर किछु नहि देखाइत छनि ।। २७ ।।

अथात्र शङ्कां सूत्रद्वयेनोद्भाव्य तृतीयेन निराकरोति-

प्राण एव मनुष्याणां देहधारणकारणम् ।
तदाधारः शिवः प्रोक्तः सर्वकारणकारणम् ॥ २८ ॥

स्पष्टम् ॥ २८ ॥

मनुष्यक देहधारणक कारण प्राणे थिक । ओकरे आधार परशिव सकल कारणक कारण कहल गेल छथि ।। २८ ।।

अस्योत्तरम्-

निराधारः शिवः साक्षात् प्राणस्तेन प्रतिष्ठितः ।
तदाधारा तनुर्ज्ञेया जीवो येनैव चेष्टते ॥ २९ ॥

तदाधारा प्राणाधारेत्यर्थः ॥ २९ ॥

शिव स्वयं निराधार छथि, ओ साक्षात् प्राणकेँ प्रतिष्ठित कएने छथि ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओहि प्राण पर आधारित देह अछि जाहिसँ जीव चेष्टा करैत अछि ।। २९ ।।

येनैव प्राणेनैव जीवश्चेष्टत इति सर्वसम्मतत्वेन शिवे प्राणस्य लीनत्वाद् देहः कथं तिष्ठतीति शङ्का ? अस्योत्तरम्–

शिवे प्राणो विलीनोऽपि योगिनो योगमार्गतः ।
स्वशक्तिवासनायोगाद् धारयत्येव विग्रहम् ।। ३० ।।

योगिनः शिवयोगिनो योगमार्गतः केवलकुम्भकरूपयोगमार्गात् प्राणः शिवे विलीनोऽपि लयं गतोऽपि स्वशक्तिवासनायोगाद् निजशक्तिसंस्कारबलाद् विग्रहं शरीरं धारयत्येवेत्यर्थः ।। ३० ।।

योगीगण योगमार्गसँ प्राणकेँ शिवमे विलीन कए दैत छथि, तथापि अपन शक्तिक संस्कारक बलसँ ओ शरीर धारण करैत छथि ।। ३० ।।

तर्हि स कथं तिष्ठतीत्यत्र सूत्रद्वयेन कथयति–

स चाभ्यासवशाद् भूयः सर्वतत्त्वातिवर्तिनि ।
निष्कलङ्के निराकारे निरस्ताशेषविक्लवे ।। ३१ ।।

स च जीवात्माश्रीयभूतप्राणवायुर्भूयोऽभ्यासवशात् सर्वतत्त्वातिवर्तिनि भूम्यादिशिवान्ततत्त्वोपरिवर्तिनि निष्कलङ्के जरामरणादिदोषरहिते निराकारे, अत एव प्राकृतनीलपीताद्याकाररहिते निरस्ताशेषविक्लवे निवृत्तसमस्तबाधे ।। ३१ ।।

चिद्विलासपरिस्फूर्ति–परिपूर्णसुखाद्वये ।
शिवे विलीनः सर्वात्मा योगी चलति न क्वचित् ।। ३२ ।।

चिद्विलासबाहुल्येन परिपूर्णसुखाद्वये परिपूर्णानन्दस्वरूपेण द्वितीयशून्ये परशिवे विलीनसर्वात्मा लयीभूतसर्वव्यापारवान् योगी शिवयोगी क्वचित् कुत्रचित् कदापि न चलति, स्पन्दत इत्यर्थः ।। ३२ ।।

ओ योगी प्राणवायुक अभ्याससँ सब तत्त्वसँ उत्कृष्ट निष्कलङ्क निराकार सर्वबाधारहित चित्शक्तिक विकासक परिस्फुरणसँ परिपूर्ण आनन्दमूर्त्ति अद्वितीय शिवमे जखन विलीन भए जाइत छथि तखन एहन सर्वात्मा योगी कतहु नहि चलैत छथि ।। ३१–३२ ।।

अथ किमिव च चलतीत्यत्राह–

प्रध्वस्तवासनासङ्गात् प्राणवृत्तिपरिक्षयात् ।
शिवैकीभूतसर्वात्मा स्थाणुवद् भाति संयमी ।। ३३ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संयमी शिवयोगीश्वरः प्रध्वस्तवासनासङ्गाद् विनष्टविषयवासनासम्पर्कात् प्राणवृत्तिक्षयात् प्राकृतवैकृतरूपप्राणव्यापारनाशात् शिवैकीभूतसर्वात्मा शिवलिङ्गैकरसीभूतसर्वेन्द्रियव्यापारवान् सन् स्थाणुवत् काष्ठवद् निश्चलत्वेन भातीत्यर्थः ॥ ३३ ॥

वासनाक आसक्तिक नष्ट भए गेला पर तथा प्राणवृत्तिक परिक्षय (विराम) भए जएबाक कारण शिवमे एकाकार भेल सर्वात्मा योगी टुट्ठा गाछ जेकाँ स्थिर प्रतीत होइत छथि ।। ३३ ।।

इति प्रणानुग्रहस्थलम्

अथ कायार्पितस्थलम्

अथ–

यदा शिवाय स्वात्मानं दत्तवान् देशिकात्मने ।
तदा शैवो भेवद् देवि न ततोऽस्ति पुनर्भवः ॥

इतियोगजागमवचनानुसारेण प्राणानुग्रहसम्पन्नस्य योग्यं कायार्पितस्थलं निरूपयति–

शिवस्य पररूपस्य सर्वानुग्राहिणोऽर्चने ।
त्यागो देहाभिमानस्य कायार्पितमुदाहृतम् ॥ ३४ ॥

सर्वानुग्राहिणः सर्वानुग्राहकस्य पररूपस्य परब्रह्मकायस्य प्राणानुग्रह-सम्पन्नस्य परयोगिनः शिवस्यार्चने शिवलिङ्गपूजाविषये देहाभिमानस्य त्यागः कायार्पितमित्युदाहृतमित्यर्थः ॥ ३४ ॥

कायार्पित स्थल– सभ पर अनुग्रह कएनिहार शिवक पूजाक समय देहाभिमानक त्याग कायार्पित कहल गेल अछि ।। ३४ ।।

अथ किमनेन भवतीत्यत्राह–

यदा योगी निजं देहं शिवाय विनिवेदयेत् ।
तदा भवति तद्रूपं शिवरूपं न संशयः ॥ ३५ ॥

तद्रूपं योगिनः स्वरूपं शिवरूपं भवतीत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३५ ॥

योगी जखन अपन शरीरकेँ शिवक लेल समर्पित कए दैत छथि तखन हुनक रूप शिवरूप भए जाइछ, ताहिमे सन्देह नहि ।। ३५ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ननु देहमात्रं समर्पणीयं वा यद्यन्यत्किञ्चिदस्ति वेत्यत्राह–

इन्द्रियप्रीतिहेतूनि विषयासङ्गजानि च ।
सुखानि सुखचिद्रूपे शिवयोगी निवेदयेत् ॥ ३६ ॥

इन्द्रियप्रीतिकारणीभूतविषयसम्बन्धोत्पन्नसुखं चिदानन्दरूपे शिवे निवेदयेदित्यर्थः ॥ ३६ ॥

इन्द्रियक प्रीतिक कारण तथा विषयक संलिप्तासँ होबएवाला सुखकेँ शिवयोगी सुखात्मक चिद्रूप शिवक लेल समर्पित कए देथि ॥ ३६ ॥

अथ तत्कथमित्यत्राह–

दर्शनात् स्पर्शनाद् भुक्तेः श्रवणाद् घ्राणनादपि ।
विषयेभ्यो यदुत्पन्नं शिवे तत्सुखमर्पयेत् ॥ ३७ ॥

विषयेभ्य एतद्व्यतिरिक्तवस्त्राभरणादिविषयेभ्य इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३७ ॥

दर्शन, स्पर्शन, भोजन, श्रवण ओ घ्राणन (सूँघब) द्वारा विषयसँ उत्पन्न सुखकेँ शिवयोगी शिवक लेल समर्पित कए देथि ॥ ३७ ॥

अथ देहद्वारेण यद्यत्सुखं प्राप्तं तत्सर्वं शिवलिङ्गाय समर्पणीयमिति वदन् कायार्पितस्थलं समापयति–

देहद्वारेण यद्यत् स्यात् सुखं प्रासङ्गमात्मनः ।
तत्तन्निवेदयन् शम्भोर्योगी भवति निर्मलः ॥ ३८ ॥

देहद्वारेण देहसम्बद्धदशेन्द्रियद्वारेण यद्यत्सुखं स्वस्य प्रासङ्गं प्रसक्तं स्यात्, तत्तत्सुखं शम्भोः शिवलिङ्गस्य निवेदयन् समर्पयन् सन् योगी शिवयोगी निर्मलो निर्लेपः सन् चरति सञ्चरतीत्यर्थः । कायिकसुखसमर्पणमेव कायार्पणमिति भावः ॥ ३८ ॥

देहद्वारा जे-जे अपन सुख उपस्थित हो तकरा निर्मल योगी शिवकेँ निवेदित कए देथि ॥ ३८ ॥

इति कायार्पितस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ करणार्पितस्थलम्

अथ–

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः[१] ॥

इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेण कायार्पितसम्पन्नस्य करणार्पितस्थलं निरूपयति–

आसञ्जनं समस्तानां करणानां परात्परे ।
शिवे यत् तदिदं प्रोक्तं करणार्पितमागमे ॥ ३९ ॥

परात्परे विश्वस्मादुत्कृष्टपरशक्त्यपेक्षयोत्कृष्टे शिवे शिवलिङ्गे समस्तानाम् अन्तर्बाह्यवर्तिनां करणानां यदासञ्जनं संयोजकर्तृत्वमस्ति, तदिदं करणार्पितमित्यागमे वीरशैवसिद्धान्ते प्रोक्तं कथितमित्यर्थः ॥ ३९ ॥

करणार्पित स्थल– परसँ पर शिवलिङ्गमे सकल इन्द्रियक जे संयोजन, तकरा शैवागममे करणार्पित कहल गेल अछि ॥ ३९ ॥

अथ करणार्पकं कथयति–

यद्यत्करणमालम्ब्य भुङ्क्ते विषयजं सुखम् ।
तत्तच्छिवे समर्प्यैष करणार्पक उच्यते ॥ ४० ॥

यत्करणमालम्ब्य विषयजं सुखं यद् भुङ्क्ते तत्करणसम्बद्धं तद्विषयसुखं शिवलिङ्गे समर्प्य एष कायार्पितसम्पन्नः करणार्पक इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ४० ॥

शिवयोगी जाहि जाहि करण (इन्द्रिय)केँ आश्रित कए विषयसँ उत्पन्न सुखक अनुभव करैत छथि ताहि-ताहि इन्द्रियकेँ शिवक लेल समर्पित कएलाक कारण करणार्पक कहल जाइत छथि ॥ ४० ॥

अथ तत्प्रकारं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

अहङ्कारमदोद्रिक्तमन्तःकरणवारणम् ।
बध्नीयाद् यः शिवालाने स धीरः सर्वसिद्धिमान् ॥ ४१ ॥

अहङ्कार-ममकाररूपोर्ध्वाधोमदमत्तमनोबुद्धिचित्तलक्षणान्तःकरण-गजं यः शिवालाने शिवलिङ्गरूपबन्धनस्तम्भे बध्नीयात्, सः सर्वसिद्धिमान् धीरः ॥ ४१ ॥

---

१. कठोप०- १ । ३ । ६

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अहङ्काररूपी मदसँ उन्मत्त अन्तःकरण रूपी हाथीकेँ जे शिवरूपी सिक्कड़मे बन्हैत छथि से धीर पुरुष सकल सिद्धिकेँ प्राप्त करैत छथि ॥ ४१ ॥

नन्विन्द्रियाणां बाहुल्यान्मनोमात्रबन्धनेन कथं धीरत्वमित्यत्राह–

इन्द्रियाणां समस्तानां मनः प्रथममुच्यते ।
वशीकृते शिवे तस्मिन् किमन्यैस्तद्वशानुगैः ॥ ४२ ॥

प्रथमं कारणमित्यर्थः, 'इन्द्रियाणां मनो नाथः' इति श्रुतेः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ४२ ॥

सकल इन्द्रियमे पहिल मन थिक । ओकरा शिवक वशमे गेलापर ओकर अधीन आन इन्द्रियक कोन कथा ? ओ त स्वतः वशमे आबि जाएत ॥ ४२ ॥

नन्वेतावता किमित्यत्राह–

इन्द्रियाणां वशीकारो निवृत्तिरिति गीयते ।
लक्षीकृते शिवे तेषां कुतः संसारगाहनम् ॥ ४३ ॥

इन्द्रियवशीकरणमेव निवृत्तिरिति विद्वद्भिर्गीयते । तेषामिन्द्रियाणां शिवलिङ्गे लक्षीकृते सति संसारनिमज्जनं कुतः, नास्तीत्यर्थः ॥ ४३ ॥

इन्द्रियकेँ वशमे आनबकेँ निवृत्ति कहैत छैक । जखन ओ सब शिवक वशमे आबि गेल तखन संसारमे कोना डूबि सकैछ ? ४३ ॥

नन्विन्द्रियवशीकारमात्रेण कथं संसारनिवृत्तिरित्यत्राह–

संसारविषकान्तार-समुच्छेदकुठारिका ।
उपशान्तिर्भवेत् पुंसामिन्द्रियाणां वशीकृतौ ॥ ४४ ॥

उपशान्तिर्निरपेक्षेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ४४ ॥

मनुष्यकेँ इन्द्रियवशमे भेला पर संसाररूपी विषवृक्षक कटबा लए कुरहड़ि रूपी उपशान्ति प्राप्त होइत अछि ॥ ४४ ॥

ननु निरपेक्षामात्रेण कथं कर्मबधनिवृत्तिरित्यत्राह–

इन्द्रियैरेव जायन्ते पापानि सुकृतानि च ।
तेषां समर्पणादीशे कुतः कर्मनिबन्धनम् ॥ ४५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्टम् ॥ ४५ ॥

पाप वा पुण्य इन्द्रिये सँ होइत अछि । ओहि इन्द्रियकेँ शिवमे समर्पित भेलापर कर्मबन्धन कतएसँ होएत ? ४५ ॥

ननु शिवार्पितपदार्थैरभिवृद्धिश्रवणात् शिवे पुण्यपापसमर्पणेन तदभिवृद्धिः कस्मान्न भवतीत्यत्राह–

प्रकाशमाने चिद्वह्नौ बहिरन्तर्जगन्मये ।
समर्प्य विषयान् सर्वान् मुक्तवज्जायते जनः ॥ ४६ ॥

वह्निप्रक्षिप्तपदार्थानां नाशदर्शनाद् बहिरन्तर्भासमाने विश्वरूपे चिदग्निरूपशिवलिङ्गे समर्पितानां पदार्थानामपि नाशोऽवश्यमङ्गीकरणीय इत्यभिवृद्ध्यभावात् समस्तविषयान् तत्र समर्प्य जनो जननमरणपरिपीडितो देही मुक्तवज्जायत इत्यर्थः ॥ ४६ ॥

बाह्य ओ आभ्यन्तर जगत् स्वरूप प्रकाशमान चित्स्वरूप अग्निमे सब विषयक समर्पण कए मनुष्य जीवन्मुक्त जकाँ भए जाइछ ॥ ४६ ॥

ननु वह्निसमर्पणस्य होमरूपत्वात् किं तत्साधनमित्यत्राह–

चित्तद्रव्यं समादाय जगज्जातं महाहविः ।
चिद्वह्नौ जुह्वतामन्तः कुतः संसारविप्लवः ॥ ४७ ॥

जगतः पञ्चतन्मात्ररूपत्वेन शब्दादिविषयरूपं हविश्चित्तद्रव्यं सङ्गृह्य अन्तः हृदयकमलस्थचिद्वह्नौ जुह्वतां शिवयोगिनां संसारबाधः कुतः ? नास्तीत्यर्थः ॥ ४७ ॥

चित्तरूपी हवनीय द्रव्यक भीतर स्थित चैतन्यरूपी अग्निमे होम करएवालाकेँ संसारक उपद्रव कहाँ ॥ ४७ ॥

नन्वेवंरूपविश्वहवनेन मुक्तवज्जायमनो जनः कीदृग्रूप इत्यत्राह–

आत्मज्योतिषि चिद्रूपे प्राणवायुनिबोधिते ।
जुह्वन् समस्तविषयान् तन्मयो भवति ध्रुवम् ॥ ४८ ॥

प्राणवायुप्रकाशिते चिद्रूपे आत्मज्योतिषि शिवाग्नौ तत्तत्करणजन्य-सुखादिविषयान् जुह्वन् अर्पयन् शिवयोगी तन्मयश्चिन्मयशिवस्वरूप एव भवति जायते (इति) ध्रुवं निश्चयः ॥ ४८ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्राणवायुसँ निबोधित चिद्रूप आत्मज्योति स्वरूप शिवाग्निमे सकल विषयक होम करएवाला निश्चित रूपसँ तन्मय (चिन्मय शिवस्वरूप) भए जाइछ ।। ४८ ।।

ननु करणानां प्राकृतत्वेन कथं तज्जन्यसुखादि शिवसमर्पणयोग्यमित्यत्राह–

इन्द्रियाणि समस्तानि शरीरं भोगसाधनम् ।
शिवपूजाङ्गभावेन भावयन् मुक्तिमाप्नुयात् ।। ४९ ।।

शरीरादीनां शिवपूजाङ्गत्वात् तज्जन्यसुखाद्यपि शिवसमर्पणयोग्यमेवेत्यर्थः । इदं करणार्पणं कायार्पणस्थले प्रसङ्गादुक्तमिति न पौनरुक्त्यम् ।। ४९ ।।

सब इन्द्रिय ओ भोगसाधनशरीरकेँ शिवपूजाक अङ्गरूपमे भावना कएनिहार मोक्षकेँ प्राप्त करैत छथि ।। ४९ ।।

इति करणार्पितस्थलम्

अथ भावार्पितस्थलम्

अथ–

तस्मात् प्रपञ्चसम्बन्ध-भावं हित्वा शिवात्मकम् ।
भावमाश्रित्य यत्नेन कुर्याद् व्यापृतिमीश्वरे ।।

इति योगजागमवचनानुसारेण करणार्पितसम्पन्नस्य शिवयोगिनो विधीयमानं भावार्पणं निरूपयति–

शिवे निश्चलभावेन भावानां यत् समर्पणम् ।
भावार्पितमिदं प्रोक्तं शिवसद्भाववेदिभिः ।। ५० ।।

शिवे शिवलिङ्गविषये निश्चलभावेन स्थिरभावेन भावानां यत्समर्पणम्, तदिदं भावार्पितमिति शिवसद्भाववेदिभिः प्रोक्तमित्यर्थः ।। ५० ।।

भावार्पित स्थल– निश्चल भावसँ शिवकेँ भावक जे समर्पण तकरा शिवभाववेत्तालोकनि भावार्पित पद कहने छथि ।। ५० ।।

अथ को नाम भाव इत्यत्राह–

चित्तस्थल-सकलार्थानां मननं यत्तु मानसे ।
तदर्पणं शिवे साक्षान्मानसो भाव उच्यते ।। ५१ ।।

मानसो मनोविकारो भावो भाव इत्युच्यते, 'विकारो मनसो भावः'

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्यमरः । मानसे मनोविकारे भावे चित्तस्थसकलार्थानां चित्तनिष्ठसकलपदार्थानां यन्मननम् अनुभवरूपचिन्तनं यदस्ति, तत् साक्षात् प्रत्यक्षीभूते शिवे शिवलिङ्गे, अर्पणं अर्पितमित्युच्यते इत्यर्थः ॥ ५१ ॥

चित्तमे स्थित सकल विषयकेँ मनमे जे मनन कएल जाइत अछि, तकर शिवक लेल साक्षात् अर्पण मानस भाव कहबैत अछि ॥ ५१ ॥

अथ तद्भावस्वरूपं पञ्चभिः सूत्रैर्विशेषयति–

भाव एव हि जन्तूनां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
भावशुद्धौ भवेन्मुक्तिर्विपरीते तु संसृतिः ॥ ५२ ॥

स्पष्टम् ॥ ५२ ॥

भावे लोकक बन्ध–मोक्षक कारण थिक । भावक शुद्ध भेलापर मुक्ति होइत अछि आ एकर विपरीत अशुद्ध भेलापर संसाररूप बन्धन होइछ ॥ ५२ ॥

अथ का नाम भावशुद्धिरित्यत्राह–

भावस्य शुद्धिराख्याता शिवोऽहमिति योजना ।
विपरीतसमायोगे कुतो दुःखनिवर्तनम् ॥ ५३ ॥

शिवोऽहमिति स्वस्वरूपानुभवयोग एव भावस्य शुद्धिरिति विद्वद्भिराख्याता । विपरीतसमायोगे सति नाहं शिव इति विपरीतयोगे सति दुःखनिवर्तनं सांसारिकदुःखनिवृत्तिः कुतः ? नास्तीत्यर्थः ॥ ५३ ॥

'हम शिव छी'– एहन योजनाकेँ भावक शुद्धि कहल गेल अछि । एहिसँ विपरीत योजना 'हम शिवसँ भिन्न छी' एहन भेला पर दुःख कोना दूर भए सकैछ ? ॥ ५३ ॥

नन्विदमिति भासमानं विश्वं कथं भावनीयमित्यत्र– 'भोक्ता भोज्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म चैतत्'[1] इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण कथयति–

भोक्ता भोग्यं भोजयिता सर्वमेतच्चराचरम् ।
भावयन् शिवरूपेण शिवो भवति वस्तुतः ॥ ५४ ॥

भोक्ता जीवो, भोग्यं भोगयोग्यं वस्तु, अव्यक्तं भोजयिता, भोगदः

---

१. श्वे०उ० १ । १२

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवः । चराचरमेतत्सर्वं जगज्जालं स्वनिजस्वभावभूतचित्क्रियाशक्तिकार्यत्वात् शिवरूपेण भावयन् शिवयोगी वस्तुतः परमार्थतः शिवो भवति, शिव एव भवतीत्यर्थः । अत्र वस्तुतः इत्यनेनास्य मुख्यपक्षत्वं सूचितम् ॥ ५४ ॥

जे व्यक्ति भोक्ता (जीव), भोग्य वस्तु, भोजयिता ईश्वर ओ सकल चराचर संसारकेँ शिवरूपसँ भावना करैत छथि से यथार्थमे शिव भए जाइत छथि ॥ ५४ ॥

अथ पक्षान्तरेण भावनां कथयति—

मिथ्येति भावयन् विश्वं विश्वातीतं शिवं स्मरन् ।
सत्तानन्दचिदाकारं कथं बद्धुमिहार्हति ॥ ५५ ॥

विश्वं स्वातिरिक्ताध्यासलक्षणाविद्याकार्यत्वाद् मिथ्येति भावयन् विश्वातीतं विश्वोत्तीर्णं शिवं सत्तानन्दचिदाकारं नित्यपरिपूर्णसच्चिदानन्दस्वरूपं स्मरन् मलमायादिपाशैबद्धुं कथमिहार्हति ? न केनापि प्रकारेणार्हतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

जे संसारकेँ मिथ्या ओ शिवकेँ विश्वातीत सच्चिदानन्द रूपमे बुझैत छथि से एहि संसारमे कोना बान्हल जा सकैत छथि ॥ ५५ ॥

अथ भावनान्तरमाह—

सर्वं कर्मार्चनं शम्भोर्वचनं तस्य कीर्तनम् ।
इति भावयतो नित्यं कथं स्यात् कर्मबन्धनम् ॥ ५६ ॥

क्रियमाणं सर्वं कर्म शम्भोः शिवलिङ्गस्यार्चनम्, कथ्यमानं सर्वं वचनं तस्य शिवलिङ्गस्य कीर्तनं स्तुतिः, इति नित्यं भावयतः कर्मकृतबन्धनं कथं स्यात् ? न केनापि प्रकारेण भवेदित्यर्थः ॥ ५६ ॥

सकल कर्म शिवक पूजा थिक, समस्त वचन हुनक नामकीर्तन थिक— नित्य एहन भवना कएनिहारकेँ कर्म-बन्धन कोना भए सकैत छनि ॥ ५६ ॥

अथ जीवन्मुक्तिकरीं भावनां कथयन् भवार्पितस्थलं समापयति—

सर्वेन्द्रियगतं सौख्यं दुःखं वा कर्मसम्भवम् ।
शिवार्थं भावयन् योगी जीवन्मुक्तो भविष्यति ॥ ५७ ॥

श्रोत्रादिसर्वेन्द्रियगतं सौख्यं सुखं पापकर्मसम्भवं दुःखं वा शिवार्थं शिवलिङ्गार्पितपदार्थत्वेन भावयन् शिवयोगी जीवन्मुक्तः स्यादित्यर्थः ॥ ५७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सब इन्द्रियमे विद्यमान सुख वा दुःख कर्महिसँ होइत अछि । ताहि सकल सुख-दुःखकेँ शिवमे समर्पित कएनिहार योगी जीवन्मुक्त भए जाइत छथि ॥ ५७ ॥

इति भावार्पितस्थलम्

अथ शिष्यस्थलम्

यथा सिद्धरसस्पर्शात् ताम्रं भवति काञ्चनम् ।
गुरूपदिष्टश्रवणाच्छिष्यस्तत्त्वमयस्तथा ॥

इति योगजागमवचनानुसारेण तद्भावार्पितसम्पन्नेन परयोगिना शिक्षणीय-शिष्यस्थलं कथयति–

शासनीयो भवेद् यस्तु परकायेन सर्वदा ।
तत्प्रसादात्तु मोक्षार्थी स शिष्य इति कीर्तितः ॥ ५८ ॥

परकायेन परब्रह्मकायेन भावार्पितसम्पन्ननेन शिवयोगिना यः सर्वदा शासनीयः शिक्षणीयो भवेत्, तत्प्रसादात् तद्भावार्पितसम्पन्नस्य प्रसादात्, मोक्षार्थी परापरमोक्षापेक्षी सः शिष्य इति कीर्तितः कथित इत्यर्थः ॥ ५८ ॥

शिष्य स्थल– परकाय (परब्रह्म शरीर) वाला शिवयोगीक द्वारा सदा शासन करबाक योग्य तथा शिवयोगीक कृपासँ मोक्षक इच्छुक व्यक्ति शिष्य कहबैत छथि ॥ ५८ ॥

अथ प्रकारान्तरेण तल्लक्षणमाह–

भावो यस्य स्थिरो नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ।
गुरौ निजे गुणोदारे स शिष्य इति गीयते ॥ ५९ ॥

यस्य भावो गुणोदारे ज्ञानवैराग्यादिगुणोन्नते निजे गुरौ श्रीगुरौ मनोवाक्कायकर्मभिर्ध्यानस्तोत्रपूजारूपकर्मभिर्नित्यं स्थिरो दृढो भवेत्, स शिष्य इति गीयते कथ्यत इत्यर्थः ॥ ५९ ॥

मन, वचन ओ कर्मसँ जनिक भाव नित्य अपन गुणोदार गुरुक विषयमे स्थिर रहैत छनि से शिष्य कहबैत छथि ॥ ५९ ॥

अथ मुख्यशिष्यलक्षणमाह–

शान्तो दान्तस्तपश्शीलः सत्यवाक् समदर्शनः ।
गुरौ शिवे समानस्थः स शिष्याणामिहोत्तमः ॥ ६० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यः शान्तः अन्तरिन्द्रियनिग्रहवान्, दान्तो बाह्येन्द्रियनिग्रहवान्, तपश्शीलो यमनियमाद्यष्टा[1]ङ्गलक्षणतपोयागनिष्ठः सन्, सत्यवाग् यथार्थवादी सन्, समदर्शनो लोष्टसुवर्णादिषु समानबुद्धिमान् सन्, श्रीगुरौ शिवलिङ्गे च समदर्शनवान् सन् वर्तते, स इह लोके शिष्याणामुत्तमः श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥ ६० ॥

शान्त (मनक नियन्त्रक), दान्त (बाहरी इन्द्रियकेँ वशमे रखनिहार), तपस्वी, सदा सत्यभाषी, समदर्शी तथा गुरु ओ शिवमे समान भाव रखनिहार व्यक्ति एहि संसारमे उत्तम शिष्य थिकाह ॥ ६० ॥

अथ शिष्याचारं सूत्रद्वयेन कथयति–

गुरुमेव शिवं पश्येच्छिवमेव गुरुं तथा ।
नैतयोरन्तरं किञ्चिद् विजानीयाद् विचक्षणः ॥ ६१ ॥

विचक्षणः शिष्य इत्यर्थः ॥ ६१ ॥

विद्वान् शिष्य अपन गुरुकेँ शिव ओ शिवकेँ गुरुक रूपमे देखथि । एहि दुनूमे कोनो अन्तर नहि बूझथि ॥ ६१ ॥

शिवाचारे शिवध्याने शिवज्ञाने च निर्मले ।
गुरोरादेशमात्रेण परां निष्ठामवाप्नुयात् ॥ ६२ ॥

निष्ठां विश्वासं प्राप्नुयादित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६२ ॥

शिवाचार, शिवध्यान ओ निर्मल शिवज्ञानक विषयमे गुरुक आदेशमात्रसँ परम निष्ठाकेँ प्राप्त करथि ॥ ६२ ॥

अथ श्रीगुरुकृपाकटाक्षमहत्त्वं सूत्रद्वयेन कथयति–

ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भूतं मायासिन्धुं महत्तरम् ।
गुरोः कवलयत्याशु कटाक्षवडवानलः ॥ ६३ ॥

ब्रह्माण्डरूपबुद्बुदानाम् उद्भूतमुद्भवनं यस्मिन् स ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भूत इत्यर्थः । तादृशं महत्तरं मायासिन्धुं गुरोः कटाक्षवडवानलो झटिति कवलयति ग्रसतीत्यर्थः । नेत्रस्य तैजसत्वाद् वडवानलत्वेन वर्णनम् ॥ ६३ ॥

गुरुक कटाक्षरूपी बड़वानल (समुद्रक आगि) ब्रह्माण्डरूपी बुनबुना सँ उत्पन्न विशाल मायारूपी समुद्रकेँ जल्दीए गीरि लैत अछि ॥ ६३ ॥

---

१. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि (पा० यो० सू० २ । २९

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुरोः कटाक्षवेधेन शिवो भवति मानवः ।
रसवेधाद् यथा लोहो हेमतां प्रतिपद्यते ॥ ६४ ॥

मानवः शिष्यजन इत्यर्थः । सम्यगावेशो वेध इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६४ ॥

गुरुक कटाक्षवेधसँ मनुष्य शिव भए जाइछ जेना रस (पारा)क द्वारा बेधल गेला पर लोहा सोना बनि जाइत अछि ॥ ६४ ॥

अथैवं गुरुमहत्त्वज्ञानी गुरोराज्ञां न लङ्घयेदित्याह–

न लङ्घयेद् गुरोराज्ञां ज्ञानमेव प्रकाशयन् ।
शिवासक्तेन मनसा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ६५ ॥

शिवासक्तेन शिवध्याननिष्ठेन मनसा ज्ञानं शिवाद्वैतज्ञानमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६५ ॥

गुरुक आज्ञाक उल्लंघन नहि करबाक चाही । एहि प्रकार आज्ञापालक शिष्य शिवमे तल्लीन मनक द्वारा शिवाद्वैत ज्ञान प्राप्त करैत छथि एवं सब सिद्धिकेँ प्राप्त करैत छथि ॥ ६५ ॥

अथ गुरूपदेशरहस्यं सूचयति–

शिवादन्यज्जगन्मिथ्या शिवः संवित्स्वरूपकः ।
शिवस्त्वमिति निर्दिष्टो गुरुणा मुक्त एव सः ॥ ६६ ॥

जगत् शिवादन्यदिति मिथ्या, शिवस्वरूपमेवेत्यर्थः । तत्कथमित्यत्राह– शिवः संवित्स्वरूपक इति । विश्वस्य चिदन्तर्गतत्वात्तरङ्गादिवच्चिन्मयत्वम्, अन्यथा चिद्बाह्यत्वेनास्तीत्यत्र मानाभावादसदेव स्यादिति भावः । शिवस्त्वमिति चिद्रूपत्वादिति भवः, 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो'[१] इति छान्दोग्यश्रुतेः । इति यः शिष्यः गुरुणोपदिष्टः, स मुक्त एव जीवन्मुक्त एवेत्यर्थः ॥ ६६ ॥

शिवसँ आन जगत् झूठ थिक । शिव संवित् स्वरूप छथि । 'तोहूँ शिवे थिकह'– एहिरूपेँ गुरुक द्वारा निर्दिष्ट साधक मुक्ते भए जाइत छथि ॥ ६६ ॥

---

१. छा०उ० ६ । ९ । ४

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ शिष्यस्थलं समापयति–

गुरोर्लब्ध्वा महाज्ञानं संसारामयभेषजम् ।
मोदते यः सुखी शान्तः स जीवन्मुक्त एव हि ॥ ६७ ॥

यः शिष्यो गुरोः श्रीगुरोः संसारामयभेषजं भवरोगस्यौषधं महाज्ञानं लब्ध्वा सुखी शिवसुखी सन् मोदते सुखमनुभवन्नास्ते, स शान्तो रागद्वेषरहितो जीवन्मुक्त एवेति हि प्रसिद्ध इत्यर्थः ॥ ६७ ॥

जे गुरुसँ संसार रूपी रोगक औषधरूप महान् ज्ञानकेँ पाबि लैत छथि से सुखी, शान्त आ जीवन्मुक्त भए जाइत छथि ॥ ६७ ॥

इति शिष्यस्थलम्

अथ शुश्रूषुस्थलम्

अथ–

तस्मादुपश्रितात् सम्यक् सहजं प्राप्य सद्गुरोः ।
अनायासेन सततमात्माभ्यासरतो भवेत् ॥

इति योगजागमवचनानुसारेण स शिष्य एव गुरुसेवातत्परः सन् रहस्यार्थजिज्ञासुः शुश्रूषुरिति सूत्रत्रयेण कथयति–

बोध्यमानः स गुरुणा परकायेन सर्वदा ।
तच्छुश्रूषारतः शिष्यः शुश्रूषुरिति कीर्त्यते ॥ ६८ ॥

परब्रह्मकायेन श्रीगुरुणा सदा बोध्यमानः स शिष्यः, तच्छुश्रूषारतस्त-स्माच्छ्रोतुमिच्छायां लम्पटः सन् शुश्रूषुरिति कीर्त्यते कथ्यत इत्यर्थः ॥ ६८ ॥

शुश्रूषुस्थल– परकाय गुरुक द्वारा सदा उपदेश पाबएवाला तथा हुनक सेवामे निरत शिष्य शुश्रूषु कहबैत छथि ॥ ६८ ॥

अथ तत्प्रश्नप्रकारं प्रदर्शयति–

किं सत्यं किं न वा सत्यं क आत्मा कः परः शिवः ।
इति श्रवणसंसक्तो गुरोः शिष्यो विशिष्यते ॥ ६९ ॥

सत्यं नित्यं किम्, असत्यम् अनित्यं किम्, आत्मा जीवः कः, परः शिवः परमात्मा क इति गुरोः श्रीगुरोः सकाशात् श्रवणसंसक्त उत्तरवाक्य-श्रवणतत्परः शिष्यः शुश्रूषुः शिष्यो विशिष्यते, केवलसेवासक्तशिष्यापेक्षया विशिष्यत इत्यर्थः ॥ ६९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की सत्य थिक अथवा की सत्य नहि थिक, कोन आत्मा थिक आ के परशिव थिकाह– एहि तरहेँ गुरुसँ उपदेश ग्रहण करबामे लागल शिष्य, केवल सेवा कएनिहार शिष्यसँ विशिष्ट (अधिक कृपापात्र) होइत छथि ।। ६९ ।।

ननु कथं श्रेष्ठ इत्यत्राह–

श्रुत्वा श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं शिवसाक्षात्क्रियावहम् ।
उपाशाम्यति यः स्वान्ते स मुक्तिपदमाप्नुयात् ।। ७० ।।

यः शुश्रूषुः शिष्यः शिवप्रत्यक्षीकरणक्रियावहं श्रुतिसम्मतोपदेशवाक्यं श्रीगुरोः श्रुत्वा श्रुत्वा, असकृदित्यर्थः, स्वान्ते चित्ते उपशाम्यति शान्तो भवति, स मुक्तिपदमाप्नुयाद् लभेतेत्यर्थः ।। ७० ।।

गुरुक कहल शिवसाक्षात्कार कराबएवाला वाक्यकेँ सुनि-सुनि कए जे शिष्य अपन मनमे शान्ति प्राप्त करैत छथि से मुक्तिपदकेँ प्राप्त करैत छथि ।। ७० ।।

ननु सेवामात्रेण गुरोर्मुक्तः किं न स्याच्छिष्य इत्यत्राह–

न बुध्यति गुरोर्वाक्यं विना शिष्यस्य मानसम् ।
तेजो विना सहस्रांशोः कथं स्फुरति पङ्कजम् ।। ७१ ।।

गुरूपदेशवाक्यं विना शिष्यस्य मानसं हृत्कमलं न बुध्यति न विकसति । तत्र दृष्टान्तः–सहस्रांशोः सूर्यस्य तेजो विना पङ्कजं कथं स्फुरति विकसति, न कथञ्चिदपि विकसति, तथेत्यर्थः ।। ७१ ।।

गुरुक वाक्यक विना शिष्यक मन प्रबुद्ध नहि होइत छनि । सूर्यक तेजक बिना कमल कोना फुलाए सकैछ ? ।। ७१ ।।

पुनश्च दृष्टान्तान्तरमाह–

सूर्यस्योदयमात्रेण सूर्यकान्तः प्रकाशते ।
गुरोरालोकमात्रेण शिष्यो बोधेन भासते ।। ७२ ।।

गुरूपदेशवाक्यान्नालोकमात्रेणेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।। ७२ ।।

जेना सूर्यक केवल उदयसँ सूर्यककान्त मणि प्रकाश करए लगैछ तहिना गुरुक ज्ञानालोकसँ शिष्य ज्ञानवान् भए चमकए लगैत छथि ।। ७२ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ– 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'[1] इति मुण्डकश्रुतिवाक्यानुसारेण तच्छ्रवणार्थं गुरुसमर्पणप्रकारमाह–

अद्वैतपरमानन्द-प्रबोधैकप्रकाशकम् ।
उपायं शृणुयाच्छिष्यः सद्गुरुं प्राप्य साञ्जलिः ॥ ७३ ॥

उपायनपाणिः सद्गुरुमधिगम्य साञ्जलिः मुकुलितकरयुगलः सन् अप्रतियोगिपरमानन्दप्रबोधस्य मुख्यतया प्रकाशकम् उपायम् उपदेशरहस्यरूपोपायं शिष्यः शृणुयात् प्रश्नपूर्वकं शृणुयादित्यर्थः ॥ ७३ ॥

शिष्य उत्तम गुरुकेँ पाबि हुनका लग हाथ जोड़ि अद्वैत परमानन्द ज्ञानक एकमात्र प्रकाशक उपाय सुनथि ॥ ७३ ॥

अथ प्रश्नप्रकारमुपपादयति–

किं तत्त्वं परमं ज्ञेयं केन सर्वे प्रतिष्ठिताः ।
कस्य साक्षात्क्रिया मुक्तिः कथयेति समासतः ॥ ७४ ॥

भोः श्रीगुरो ! ज्ञेयं परमं तत्त्वं किम्, केन वस्तुना सर्वे चराचराः प्रतिष्ठिताः, कस्य साक्षात्कारेण मुक्तिर्मोक्षो भवेत्, एतत्सर्वं समासतः संग्रहेण कथय उपदिशेत्यर्थः ॥ ७४ ॥

शिष्य जिज्ञासा करथि– हे गुरुदेव ! कोन तत्त्व परम एवं ज्ञेय अछि ? ककरा कारणसँ समस्त चराचर स्थित अछि ? ककर साक्षात्कारकेँ मुक्ति कहल जाइछ ? से अपने संक्षेपमे कहल जाओ ॥ ७४ ॥

अथ–

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्
प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्[2] ॥

इति मुण्डकश्रुत्यनुसारेण तत्प्रश्नोत्तरं पञ्चभिः सूत्रैः कथयति–

इति प्रश्ने कृते पूर्वं शिष्येण नियतात्मना ।
ब्रूयात् तत्त्वं गुरुस्तस्मै येन स्यात् संसृतेर्लयः ॥ ७५ ॥

नियतात्मना एकाग्रचित्तेनेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ७५ ॥

१. मुं० उ० १ । १२   २. मुं० उ० १ । १३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकाग्रचित्त शिष्यक द्वारा एहि तरहेँ प्रश्न कएल गेला पर गुरु हुनका तत्त्वक उपदेश देथि जाहिसँ संसारक लय भए जाए ।। ७५ ।।

अथ कृतप्रश्नस्य क्रमेणोत्तरं वक्ति–

शिव एव परं तत्त्वं चिदानन्दसदाकृतिः ।
स यथार्थस्तदन्यस्य जगतो नास्ति नित्यता ।। ७६ ।।

सच्चिदानन्दस्वरूपः शिव एव परं तत्त्वं ज्ञातुं योग्यं परतत्त्वम् । स यथार्थः, नित्य इत्यर्थः । तदन्यस्य चिद्विजातीयत्वेन भासमानस्य जगतो विष्ण्वादिविश्वस्य नित्यत्वं शिववत् सनातनत्वं नास्तीत्यर्थः ।। ७६ ।।

गुरु उत्तर देथि– सत् चित् आनन्द स्वरूप शिवे परम तत्त्व थिकाह। उवेह यथार्थ छथि । हुनकासँ भिन्न संसार नित्य नहि अछि ।। ७६ ।।

अथ केन सर्वे प्रतिष्ठिता इत्यस्योत्तरमाह–

अयथार्थप्रपञ्चोऽयं प्रतितिष्ठति शङ्करे ।
सदात्मनि यथा शुक्तौ रजतत्वं व्यवस्थितम् ।। ७७ ।।

अयथार्थः, अनित्य इत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः–सदात्मनि ज्ञानकर्मलक्षणोभयेन्द्रियज्ञानगोचरीभूतत्वाद् व्यावहारिकसद्रूपे शुक्तौ शुक्तिकाशकले रजतत्वं ज्ञानेन्द्रियमात्रगोचरत्वेनोत्तरक्षणबाध्यमानप्रातीतिक-रजतत्वं व्यवस्थितं यथा तिष्ठति, तथा सनातने शङ्करेऽनित्यप्रपञ्चस्तिष्ठतीत्यर्थः ।। ७७ ।।

ई मिथ्या प्रपञ्च (संसार) सत्स्वरूप शिवमे ओहिना स्थित अछि जेना शुक्तिमे रजत स्थित रहैत अछि ।। ७७ ।।

अथ कस्य साक्षात्कारेण मुक्तिरित्यस्योत्तरमाह–

शिवोऽहमिति भावेन शिवे साक्षात्कृते स्थिरम् ।
मुक्तो भवति संसारान्मोहग्रन्थेर्विभेदतः ।। ७८ ।।

शिवोऽहमिति भावेन दृढभावेन शिवे प्रत्यक्षीकृते सति विभेदतो विशेषभेदतः संसारात् संसाररूपाद् मोहग्रन्थेरज्ञानग्रन्थेर्मुक्तो भवतीत्यर्थः ।। ७८ ।।

'हम शिव छी' –एहि भावसँ शिवक साक्षात्कार भेला पर संसाररूप मोहग्रन्थिक भेदन भेलासँ साधक निश्चित रूपेँ मुक्त भए जाइत छथि ।। ७८ ।।

अथैवमुक्तार्थे शिष्यं नियोजयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवं भावय चात्मानं शिवादन्यं न चिन्तय ।
एवं स्थिरे शिवाद्वैते जीवन्मुक्तो भविष्यसि ॥ ८९ ॥

भोः शिष्य, त्वम् आत्मानं त्वां शिवं सन्तं भावय, शिवशिवभक्तयोरात्मत्वाविशेषादिति भावः । इदमिति भासमानं विश्वमपि शिवादन्यं न चिन्तय, शिवस्वभावभूतिचित्क्रियान्तर्गतत्वाज्जलतरङ्गन्यायेन शिवस्वरूपमेवेति चिन्तयेत्यर्थः । एवं शिवाद्वैते स्थिरे सति जीवन्मुक्तो जीवन्नपि मुक्तो भविष्यसीत्यर्थः ॥ ७९ ॥

हे शिष्य ! अहाँ अपनाकेँ शिव बुझू, शिवसँ भिन्नकेँ अपन विचारक विषय नंहि बनाउ, एहि तरहेँ शिवाद्वैतमे स्थिरभावनासँ अहाँ जीवन्मुक्त भए जाएब ॥ ७९ ॥

अथ शुश्रूषुस्थलं समापयति–

एवं प्रचोदितः शिष्यो गुरुणा गुणशालिना ।
शिवमेव जगत् पश्यन् जीवन्मुक्तोऽभिजायते ॥ ८० ॥

एवमनेन प्रकारेण ज्ञानवैराग्यादिगुणसम्पन्नेन श्रीगुरुणा प्रकर्षेण बोधितः शिष्यो जगज्जालं शिवमेव पश्यन् शिवातिरिक्ताविद्यामयमित्यपश्यन् शिवस्वभावभूतचित्क्रियाशक्तिमयत्वाच्छिवात्मकमेव पश्यन् सन् जीवन्मुक्तोऽभिजायत इत्यर्थः ॥ ८० ॥

गुणवान् गुरुक द्वारा उपदेश पओनिहार शिष्य संसारकेँ शिवस्वरूप देखैत जीवन्मुक्त भए जाइत छथि ॥ ८० ॥

इति शुश्रूषुस्थलम्

अथ सेव्यस्थलम्

अथ–

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे[1] ॥

इति मुण्डकोपनिषद्वचनानुसारेण, 'दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यं वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नम् । चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बं स एव योगी स गुरुः स सेव्यः ॥' इति योगजागमवचनानुसारेण च गुरूपदेशसिद्धश्शुश्रूषुरेव सेव्य इति तदीयस्थलं निरूपयति–

---

१. मुं०उ० २।२।८

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुरुवाक्यामृतास्वादात् प्राप्तबोधमहाफलः ।
शुश्रूषुरेव सर्वेषां सेव्यत्वात् सेव्य उच्यते ॥ ८१ ॥

गुरूपदेशवाक्यरूपामृतरसास्वादनेन सम्प्राप्तशिवाद्वैतज्ञानमहाफलवान् शुश्रूषुरेव सर्वैः सेव्यत्वात् सेव्य इत्युच्यते इत्यर्थः ॥ ८१ ॥

सेव्यस्थल– गुरुक वाक्यरूपी अमृतकेँ ग्रहण कएलासँ जनिका शिवाद्वैत बोधरूपी महाफल भेटि गेल छनि एहन शुश्रूषुए सकल सामान्य लोकक सेव्य (सेवा करबा योग्य) होएबाक कारण सेव्य कहल जाइत छथि ।। ८१ ।।

अथ स सेव्य एव गुरुवत् पूजनीय इति सूत्रत्रयेणाह–

गुरूपदिष्टे विज्ञाने चेतसि स्थिरतां गते ।
साक्षात्कृतशिवः शिष्यो गुरुवत् पूज्यते सदा ॥ ८२ ॥

विज्ञाने शिवाद्वैतलक्षणविशेषज्ञान इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ८२ ॥

गुरुक उपादेश कएल शिवाद्वैत विज्ञान जखन चित्तमे स्थिर भए जाइछ तखन शिवक साक्षात्कार कएनिहार शिष्य सदा गुरुक समान पूजित होइत छथि ।। ८२ ।।

ननु स सेव्यः पूजनीयोऽस्तु, गुरुवत् कस्मात् पूजनीय इत्यत्राह–

ज्ञानादाधिक्यसम्पत्तिर्गुरोर्यस्मादुपस्थिता ।
तस्माज्ज्ञानागमाच्छिष्यो गुरुवत् पूज्यतां व्रजेत् ॥ ८३ ॥

श्रीगुरोर्यस्माद् ज्ञानाद् अधिकसम्पत्तिरुपस्थिता समागता, तस्माद् ज्ञानागमात् शिष्यः श्रीगुरुरिव पूज्यतां व्रजेद् गच्छेदित्यर्थः ॥ ८३ ॥

जाहि शिष्यकेँ जेँ गुरुसँ अधिक ज्ञानसम्पत्ति उपस्थित भए जाइत छनि तेँ ओहि ज्ञानागमसँ ओ शिष्य गुरुक समान पूजित भए जाइत छथि ।। ८३ ।।

अथ हेत्वन्तरमाह–

शिवोऽहमिति भावस्य नैरन्तर्याद् विशेषतः ।
शिवभावे समुत्पन्ने शिववत् पूज्य एव सः ॥ ८४ ॥

शिवोऽहमिति भावस्य नैरन्तर्याद् निरवकाशरूपाद् विशेषाद् अभ्यासविशेषात् शिवभावे शिवत्वे समुत्पन्ने स्फुटीभूते सति स शुश्रूषुः शिववत् पूज्य एवेत्यर्थः ॥ ८४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'हम शिव छी' एहि भावनाक निरन्तर होएबाक कारण जखन शिष्यकेँ शिवभाव विशेषरूपेँ उपस्थित होइत छनि तखन ओ शिवक समान पूज्य होइत छथि ॥ ८४ ॥

नन्वस्य ससङ्गत्वात् शिवस्यासङ्गत्वात् कथं शिववत् पूजनीयत्वमित्यत्राह–

विषयासक्तचित्तोऽपि विषयासङ्गवर्जितः ।
शिवभावयुतो योगी सेव्यः शिव इवापरः ॥ ८५ ॥

अत्र शिवभावयुत इति हेतुगर्भविशेषणम् । योगी शुश्रूषुः शिवयोगी विषयनिष्ठचित्तवानपि विषयसङ्गवर्जित एव शिवभावदार्ढ्याद् द्वितीयः शिव इव सेव्यः पूजनीय इत्यर्थः ॥ ८५ ॥

एहन शिष्य विषयासक्त भेलो पर विषयासक्तिसँ रहित होइत छथि, कारण शरीरधर्मक कारण ओ विषयक सेवन करैत छथि आ सर्वत्र शिवदृष्टिक कारण विषय भोगक पुण्य-पाप सँ लिप्त नहि होइत छथि । शिवभावसँ युक्त योगी दोसर शिवे जकाँ पूजित होइत छथि ॥ ८५ ॥

मुक्तः संशयपाशतः स्थिरमना बोधे च मुक्तिप्रदे
मोहं देशभृतां दृशा विघटयन् मूलं महासंसृतेः ।
सत्तानन्दचिदात्मके निरुपमे शैवे परस्मिन् पदे
लीनात्मा क्षयितप्रपञ्चविभवो योगी जनैः सेव्यते ॥ ८६ ॥

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते वीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ प्रसादिस्थलाश्रित-नवलिङ्गप्रसङ्गो नाम सप्तदशः परिच्छेदः ॥ १७ ॥



संशयपाशतः अहं शिवो वा न वेति सन्देहपाशतो मुक्तो विमुक्तो मुक्तिप्रदे परापरमुक्तिप्रदे बोधे च शिवाद्वैतज्ञाने स्थिरमनाः स्थिरचित्तो महासंसृतेः संसारस्य मूलं मूलकारणीभूतं देहभृतां मोहं देहिनामज्ञानं दृशा कृपादृष्ट्या विघटयन् निवारयन्, सच्चिदानन्दस्वरूपे उपमातीते शैवे परस्मिन् पदे लीनात्मा तदेकलोलीभूतनिजस्वरूपवान् योगी शिवयोगी क्षयितप्रपञ्चविभवः सन् स्वशक्ति-लीनीकृतविश्वप्रपञ्चवैभवः सन् जनैः सेव्यते पूज्यत इत्यर्थः । अस्य प्रसादिनोऽङ्गत्रयस्यैतल्लिङ्गत्रयं क्रमेण संयोजनीयमिति सम्प्रदायः ॥ ८६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां प्रसादिस्थला-श्रितनवलिङ्गप्रसङ्गनामा सप्तदशः परिच्छेदः ॥ १७ ॥



संशयरूपी पाशसँ मुक्त, मुक्तिप्रद ज्ञानक विषयमे स्थिर बुद्धिवाला, महासंसारक मूल कारण देहधारीक मोहकेँ अपन कृपाकटाक्षसँ नष्ट करएवाला तथा सत् चित् आनन्द रूप निरुपम (उपमाहीन) शिवपदमे लीन एवं प्रपञ्चक (संसारक) विस्तारकेँ नष्ट करएवाला योगी सर्वदा लोकक द्वारा सेवित होइत छथि ॥ ८६ ॥

एहि प्रकार श्री सिद्धान्तचिन्तामणिक विद्यावाचस्पति डॉ० शशिनाथझाकृत प्रबोधिनी मैथिलीव्याख्यामे प्रसादिस्थलाश्रित नवलिङ्गप्रसङ्गनामक सत्रहम परिच्छेद समाप्त ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अष्टादशः परिच्छेदः

(अथात्मस्थलम्)

अथ प्राणलिङ्गिस्थलभेदाः कथ्यन्ते । अथागस्त्यप्रश्नः –

प्रसादिस्थलसम्बद्धाः स्थलभेदाः प्रकीर्तिताः ।
प्राणलिङ्गिस्थलारूढान् स्थलभेदान् वदस्व मे ॥ १ ॥

स्थलभेदान् अवान्तरभेदानित्यर्थः । वदस्व उपदिशेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १ ॥

अगस्त्य बजलाह– हे आचार्य ! अपने प्रसादी स्थलसँ सम्बद्ध स्थल सभक भेदक वर्णन कएल । आब प्राणलिङ्गी स्थलक अन्तर्गत आबएवाला स्थल भेद हमरा बुझाउ ॥ १ ॥

अथ श्रीरेणुकस्तद्भेदं सूत्रत्रयेण निरूपयति–

स्थलानां नवकं प्रोक्तं प्राणलिङ्गिस्थलाश्रितम् ।
आदावात्मस्थलं प्रोक्तमन्तरात्मस्थलं ततः ॥ २ ॥
परमात्मस्थलं पश्चान्निर्देहागमसंज्ञकम् ।
निर्भावागमसंज्ञं च ततो नष्टागमस्थलम् ॥ ३ ॥
आदिप्रसादनामाथ ततोऽप्यन्त्यप्रसादकम् ।
सेव्यप्रसादकं चाथ शृणु तेषां च लक्षणम् ॥ ४ ॥

स्पष्टम् ॥ २-४ ॥

श्री रेणुकाचार्य बजलाह– प्राणलिङ्गी स्थलपर आश्रित ओकर नओ भेद कहल गेल अछि– आत्मस्थल, अन्तरात्मस्थल, परमात्मस्थल, निर्देहागमस्थल, निर्भावागम स्थल, नष्टागमस्थल, आदिप्रसादि स्थल, अन्त्यप्रसादि स्थल आ अन्तमे– सेव्यप्रसादिस्थल । आब एहि सबहिक लक्षण सुनू ॥ २-४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ– 'एष आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्प'[१] इति छान्दोग्यश्रुत्यनुसारेणायं सेव्य एवात्मेत्यात्मस्थलं निरूपयति–

जीवभावं परित्यज्य यदा तत्त्वं विभाव्यते ।
गुरोश्च बोधयोगेन तदात्मायं प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥

अयं सेव्य एव श्रीगुरोः शिवज्ञानसम्बन्धेन जीवभावं जीवत्वं परित्यज्य यदा परतत्त्वं विभाव्यते, तदा आत्मेति परिकीर्तित इत्यर्थः ॥ ५ ॥

आत्मस्थल– ई सेव्यस्थल जखन गुरुक द्वारा प्रवर्तित बोधक कारण जीवभावकेँ त्यागि तत्त्वक रूपमे जानल जाइछ तखन ओ आत्मा कहबैछ ॥ ५ ॥

अथ कोऽयं जीव इत्यत्र–

वालाग्रशतभागेन शतधा कल्पितेन तु ।
भाग आत्मा स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्प्यते ॥

इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण जीवस्वरूपं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

वालाग्रशतभागेन सदृशो हृदयस्थितः ।
अनश्नन् कर्मफलं सर्वमात्मा स्फुरति दीपवत् ॥ ६ ॥

वालाग्रेति केशाग्रशतभगेन सदृशः सन् स्वार्जितकर्मफलं भुञ्जन् सन् हृदये हृदयकमले स्थितः, तिष्ठतीत्यर्थः । नन्वेवं चेत्, शरीरैकदेशनिष्ठत्वेन पादे मे वेदना, शिरसि सुखमिति सर्वाङ्गीणचैतन्योपलब्धिः कथमित्याशङ्क्याह– दीपवदिति । दीपस्य गृहैकदेशनिष्ठत्वेऽपि स्वप्रभया सम्पूर्णगृहं व्याप्य तदन्तर्गतसकलवस्तुप्रकाशकत्वं यथा, तद्वद् जीवस्य शरीरैकदेशनिष्ठत्वेऽपि 'प्रज्ञया शरीरं समारुह्य' इति श्रुतेस्तद्बुद्धेर्व्यापकत्वेन सर्वं शरीरं व्याप्य सर्वाङ्गीणचैतन्यमनुभवन् आत्मा जीवात्मा स्फुरति प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ६ ॥

केशक अग्रभागक सएम अंशक बराबर हृदयमे स्थित आत्मा कर्मफलक भोग नहि करैत दीप जकाँ प्रकाशित छथि ॥ ६ ॥

नन्वेवंविधरूपं जीवस्य स्वाभाविकं किमित्यत्राह–

आत्मापि सर्वभूतानामन्तःकरणमाश्रितः ।
अणुभूतो मलासङ्गादादिकर्मनियन्त्रितः ॥ ७ ॥

---

१. छा०उ० ८।१।४

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वभूतानां पञ्चभूतानाम् आत्मापि परमार्थतो व्यापकत्वाश्रयोऽपि मलासङ्गाद् आणवादिमलव्यापनाद् अणुभूतः परमादतिसूक्ष्मः सन् आदिकर्मनियन्त्रितः प्राचीनकर्मपाशबद्धः सन् अन्तःकरणमाश्रितोऽहङ्कारमाश्रितवानित्यर्थः ॥ ७ ॥

सब प्राणीक अन्तःकरणमे स्थित आत्मा सेहो मलसँ सम्पर्कित भेलासँ आदि कर्मसँ नियन्त्रित भेल अणु बनि कए रहैत अछि ॥ ७ ॥

अथैवमहङ्कारसम्बन्धाद् देहसम्बन्धोऽपि प्राप्त इत्यत्राह–

जपायोगाद्यथा रागः स्फटिकस्य मणेर्भवेत् ।
तथाऽहङ्कारसम्बन्धादात्मनो देहमानिता ॥ ८ ॥

परिमिताहङ्कारसम्बन्धाद् देहसम्बन्धः प्राप्त इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ८ ॥

जेना लाल ओड़हूल फूलक सम्पर्कसँ स्फटिकमणिक रंग लाल भए जाइत छैक तहिना अहङ्कारक सम्बन्धसँ आत्मा देहाभिमानी भए जाइछ ॥ ८ ॥

ननु सर्वदोषरहितस्यात्मनः कथमुक्तप्रकारेण शरीरसम्बन्ध इत्यत्राह–

अशरीरोऽपि सर्वत्र व्यापकोऽपि निरञ्जनः ।
आत्मा मायाशरीरस्थः परिभ्रमति संसृतौ ॥ ९ ॥

परापरमोक्षकारणीभूतशुद्धविद्याशरीरवत्त्वेनाशरीरोऽपि, अपरिच्छिन्नत्वाद्, व्यापकोऽपि, दोषरहितत्वान्निरञ्जनोऽपि, कलादिक्षितिपर्यन्तत्रिंशत्तत्त्वकारणीभूतस्वकीयाधोमायाशक्तिपरिकल्पितचन्द्रकलाविशिष्टशरीरवान् सन् संसारे परिभ्रमतीत्यर्थः ॥ ९ ॥

विना शरीरोक आत्मा सबठाम विद्यमान रहैत अछि, व्यापक होइतो निरञ्जन (निर्मल) अछि । तथापि मायाक द्वारा कल्पित शरीरमे रहि संसारमे विचरण करैत अछि ॥ ९ ॥

अथैवंरूपजीवस्यात्मत्वप्राप्तिप्रकारमाह–

आत्मस्वरूपविज्ञानं देहेन्द्रयविभागतः ।
अखण्डब्रह्मरूपेण तदात्मप्राप्तिरुच्यते ॥ १० ॥

देहेन्द्रियविभागत उक्तलक्षणमायिकप्राकृतसत्त्वादिगुणकार्यरूपशरीरेन्द्रियादिव्यतिरिक्तत्वेन अखण्डब्रह्मरूपेण अपरिच्छिन्नब्रह्मरूपेण आत्मविज्ञानं स्वस्वरूपज्ञानं यदा भवति, तदात्मप्राप्तिरात्मत्वलाभ उच्यते, 'आत्मलाभान्न परं विद्यते । नेति सति न ह्यद्यः' इति श्रुतेरित्यर्थः ॥ १० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्राण देह ओ इन्द्रियसँ पृथक् रूपमे आत्माक स्वरूपक अखण्ड ब्रह्मक रूपमे विज्ञान भए जाइत छैक त तकरा आत्मप्राप्ति कहल जाइत अछि ॥ १० ॥

नन्वपरिच्छिन्नं ब्रह्म परिच्छिन्नशरीरविशिष्टं किमर्थं जातमित्यत्राह—

न चास्ति देहसम्बन्धो निर्देहस्य स्वभावतः ।
अज्ञानकर्मयोगेन देही भवति भुक्तये ॥ ११ ॥

अशरीरस्य परमात्मनः परमार्थतः शरीरसम्बन्धो नास्त्येयव, तथापि भुक्तये—

यथा नृपः सार्वभौमप्रभावामोदबृंहितः ।
क्रीडन् करोति पादातिधर्मं तद्धर्मधर्मितः ॥

इति शिवदृष्टिशास्त्रोक्तदृष्टान्तेन अखण्डरसास्वादपरिबृंहितोऽपि खण्डरसास्वादनार्थमिच्छायामज्ञानकर्मयोगेन स्वातन्त्र्यपरिकल्पिताणवादिमल-सम्बन्धेन देही भवति, घृतकाठिन्यन्यायेनांशतः शरीरी भवति । तस्मादंशीभूतस्य ज्ञानादिमलसम्बन्धान्नृप इवाहं शिव इति ज्ञानं नास्तीति बोध्यम् । अस्मिन्नर्थे— 'स वै नैव रेमे । तस्मादेकाकी न रमते । स द्वितीयमैच्छत् । स एतावानाश[१] ।[२] तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्'[३] इति श्रुतिः । 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्'[४] इति, 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'[५] इति भगवदुक्तिश्च । शिवस्य निरंशत्वेऽपि स्वतन्त्रत्वात् स्वातन्त्र्यापरिकल्पितांशभावः सम्भवति, वत्सापहरणदृष्टान्तात् । क्रिया हि कर्मण्येव विश्राम्येन्न तु कर्तरीति न्यायान्नात्मनो बन्धः । वस्तुतस्तु— 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्'[६] इति श्रुतेः, 'कला सप्तदशी देवी स्वान्तर्लीनचराचरा' इत्यागमोक्तेः—

इदं पूर्वं जगत्सर्वं प्रलये पारमेश्वरे ।
मायाभिन्ने स्वमायाख्य-कारणाभेदरूपतः ॥
वर्तते वासनारूपेणैव नाभवरूपतः ।

इति पाराशरोपपुराणवचनाच्च सर्वं विश्वमण्डरसन्यासेनात्मसमवेत-चित्क्रियासामरस्यक्षणचिदम्बरशक्तौ तादात्मयेनास्तीति परमात्मस्थले वक्ष्यमाणरीत्या वह्निर्विस्फुलिङ्गानिव स्वतादात्म्यापन्नान् चित्कणान् तत्तत्कर्मानुसारेण सृजत्यवति संहरति निरयतेऽनुगृह्णातीति न काचिदनुपपत्तिः ॥ ११ ॥

---

१. शि०दृ० १ । ३७-३८
२. बृ०उ० १ । ४ । ३
३. तै०उ० ६ । ४
४. भ०गी० १० । ४२ । ५
५. भ०गी० १५ । ७
६. ऐ०उ० १ । १

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एहि निर्देह आत्माकेँ देहक सम्बन्ध नहि छैक । तखन अज्ञान कर्मक सम्बन्धसँ ओ कर्मफल भोगक हेतु देहबला भए जाइत अछि ।। ११ ।।

तर्ह्यसौ जीवः किंनामक इत्यत्राह–

नासौ देवो न गन्धर्वो न यक्षो नैव राक्षसः ।
न मनुष्यो न तिर्यक्च न च स्थावरविग्रहः ।। १२ ।।

तत्तच्छरीरयोगेन तत्तन्नाम्ना विराजितः । स्पष्टम् ।। १२ ।।

ई आत्मा ने देव, ने गन्धर्व, ने यक्ष, ने राक्षस, ने मनुष्य, ने पक्षी, ने कीट आ ने स्थावर शरीरवाला वृक्षे थिक ।। १२ ।।

तर्ह्ययं कीदृश इत्यत्र– 'स्वस्वकृतदुष्कर्मणा परमेश्वरप्रेरणया बद्धाःसंसारिणो जीवाः' इति वृद्धजाबालश्रुत्यनुसारेण दृग्युगैक्यावलोकमिव द्वैताद्वैत-सामरस्यात्मनः शिवस्य स्वातन्त्र्यपरिकल्पितजीवोपाधिना नानारूपाः सन्तः शिवस्य क्रीडाभाजनरूपा इत्याह–

नानाकर्मविपाकाश्च नानायोनिसमाश्रिताः ।
नानाभोगसमापन्ना नानाबुद्धिविचेष्टिताः ।। १३ ।।
नानामार्गसमारूढा नानासङ्कल्पकारिणः ।
अस्वतन्त्राश्च किञ्चिज्ज्ञाः किञ्चित्कर्तृत्वहेतवः ।
लीलाभाजनतां प्राप्ताःशिवस्य परमात्मनः ।। १४ ।।

नानाविधप्राचीनकर्मविपाकवशाद् 'देवाः षोडशलक्षाणि' इत्युदाहृत-वचनानुसारेण देवतिर्यङ्मनुष्यादिनानायोनिसमापन्ना नानाविधस्वर्गभोगोपायचित्का नानाविधबुद्ध्याक्रान्ताः सन्तो नानाविधवैष्णवादिदर्शनमार्गप्रविष्टा नानासङ्कल्पकारिणः किञ्चिज्ज्ञाः किञ्चित्कर्तृत्वकारणीभूताः स्वातन्त्र्यशून्या जीवाः परमात्मनः शिवस्य लीलाभाजनतां गताः, क्रीडाभाण्डरूपा इत्यर्थः ।। १३-१४ ।।

ई जीव अनेक कर्मक विपाकवाला, नाना योनिमे उत्पन्न भेनिहार, अनेक भोग प्राप्त करएवाला, अनेक बुद्धिक चेष्टावाला, अनेक मार्गपर चलएवाला, अनेक संकल्प करएवाला, अस्वतन्त्र, अल्पज्ञ, अल्प कार्यक शक्तिवाला होइत परमात्मा शिवक खेलएबाक गोटी थिक ।। १३-१४ ।।

अथ ते किं यान्तीत्यत्राह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चोदिताः परमेशेन स्वस्वकर्मानुरूपतः ।
स्वर्गं वा नरकं वापि प्राणिनो यन्ति कर्मिणः ॥ १५ ॥

स्पष्टम् ॥ १५ ॥

ई कर्म कएनिहार प्राणी परमेश्वरक द्वारा अपन-अपन कर्मक द्वारा प्रेरित भए स्वर्ग अथवा नरक जाइत अछि ॥ १५ ॥

अथ स्वर्गनरकयोर्वा तेषां स्थैर्यमस्ति किमित्यत्राह–

पुनःकर्मावशेषेण जायन्ते गर्भकोटरात् ।
जाता मृताः पुनर्जाताः पुनर्मरणभाजिनः ।
भ्रमन्ति घोरसंसारे विश्रान्तिकथया विना ॥ १६ ॥

स्पष्टम् ॥ १६ ॥

पुनः भोगसँ अवशिष्ट कर्मक कारण ई जीव गर्भसँ उत्पन्न होइत अछि, कर्म भोग कए मरैत, जनमैत पुनः मरणकेँ प्रप्त करैत रहैत अछि ॥ १६ ॥

नन्वेवं चेत्, संसारचक्रपरिभ्रमणं शाश्वतं किमित्यत्राह–

जीवत्वं दुःखसर्वस्वं तदिदं मलकल्पितम् ।
निरस्यते गुरोर्बोधाज्ज्ञानशक्तिःप्रकाशते ॥ १७ ॥

जीवत्वमाणवादिमलकल्पितम्, अज्ञानादिमलकल्पितमित्यर्थः । तस्माद् दुःखसर्वस्वरूपम् । तदिदं दुःखसर्वस्वरूपं जीवत्वं गुरोर्बोधात् श्रीगुरूपदिष्ट-शिवाद्वैतबोधात्, निरस्यते निवार्यते, ज्ञानशक्तिः स्वस्वरूपज्ञानशक्तिसामर्थ्यं प्रकाश्यत इत्यर्थः ॥ १७ ॥

जीव भेनाइ दुःखक कारण थिक आ ई जीव मलसँ परिकल्पित (निर्मित) थिक । गुरुक द्वारा देल गेल बोधसँ ई मल दूर होइछ आ जीवकेँ ज्ञानक प्राप्ति होइछ ॥ १७ ॥

इत्यात्मस्थलम्

अथान्तरात्मस्थलम्

अथ–

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु-
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः[१] ॥

इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेण निराकृतजीवभावस्यात्मनोऽन्तरात्मत्वं भवतीति निरूपयति–

यदा निरस्तं जीवत्वं भवेद् गुर्वनुबोधतः ।
तदान्तरात्मभावोऽपि निरस्तस्य भवेद् ध्रुवम् ॥ १८ ॥

गुर्वनुबोधतो गुरूपदेशाज्जीवत्वं जीवभावो यदा निरस्तं भवेत्, तदा निरस्तस्य निरस्तजीवभाववत् आत्मनोऽन्तरात्मभावो भवेत् स्यात्, ध्रुवं निश्चय इत्यर्थः ॥ १८ ॥

अन्तरात्मस्थल– गुरुक उपदेशसँ जखन साधकक जीवभाव निरस्त भए जाइत अछि त ओहि साधकके आत्मभाव भए जाइत छनि ॥ १८ ॥

अथान्तरात्मस्वरूपं सूत्रत्रयेण कथयति–

देहस्थितोऽप्ययं जीवो देहसङ्गविवर्जितः ।
बोधात् परात्मभावित्वादन्तरात्मेति कीर्तितः ॥ १९ ॥

अयं जीवो देहस्थितोऽपि देहसङ्गरहितः सन् बोधात् स्वस्वरूपज्ञानात् परात्मभावित्वात् परमात्मनो भाववत्त्वाद् अन्तरात्मेति कथ्यत इत्यर्थः ॥ १९ ॥

देहमे स्थित रहलहुँ पर जीव जखन देहक प्रति आसक्ति-रहित भए जाइत छथि तखन बोध भेलाक कारणेँ परात्मभावसँ युक्त भेल ओ अन्तरात्मा कहल गेल छथि ॥ १९ ॥

अथ प्रकारान्तरेणोपपादयति–

आत्मान्तरालवर्तित्वाज्जीवात्मपरमात्मनोः ।
योगादुभयधर्माणामन्तरात्मेति कीर्तितः ॥ २० ॥

आत्मा निरस्तजीवभाववान् सेव्यः, शिष्योपदेशसमये जीवात्मपरमात्मनोरन्तरालवर्तित्वात्, मध्यवर्तित्वादित्यर्थः । तदा शिष्यबुद्धिशिक्षकत्वेन तदन्तर्यामितया शिवधर्मयोगात् आहारव्याहारादेर्विद्यमात्वेन जीवधर्मयोगात् । एवमुभयधर्माणां योगाद् अन्तरात्मेति कीर्तित इति ॥ २० ॥

---

१. कठोप० २।५।११

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीवात्मा ओ परमात्माक बीच रहबाक कारण आत्मा ओहि दुनूक धर्मसँ युक्त भेलासँ अन्तरात्मा कहल गेल अछि ॥ २० ॥

अथ प्रकारान्तरेणाह–

अहङ्कारस्य सम्बन्धान्मनुष्यत्वादिविभ्रमः ।
न स्वभाव इति ज्ञानादन्तरात्मेति कथ्यते ॥ २१ ॥

परिच्छिन्नस्वरूपाहंभाववशाद् मनुष्यत्वादिविभ्रमः स्यात्, न स्वभावत इति ज्ञानात् परिच्छिन्नस्वरूपत्वं न स्वाभाविकमिति ज्ञानाद् अन्तरात्मेति कथ्यत इत्यर्थः ॥ २१ ॥

अहङ्कारक सम्बन्धसँ जीवकेँ अपनामे मनुष्य होएबाक भ्रम होइत छैक । ई मनुष्यत्व आत्माक स्वभाव नहि थिक– एहन ज्ञान भेलासँ साधक अन्तरात्मा कहल जाइत छथि ॥ २१ ॥

अथास्य शरीरसम्बन्धोऽस्ति न वेत्यत्र दृष्टान्तपूर्वकं सूत्रत्रयेणाह–

यथा पद्मपलाशस्य न सङ्गो वारिणा भवेत् ।
तथा देहजुषोऽप्यस्य न शरीरेण सङ्गतिः ॥ २२ ॥
नीडस्थितो यथा पक्षी नीडाद्भिन्नः प्रदृश्यते ।
देहस्थितस्तथात्मायं देहादन्यः प्रकाश्यते ॥ २३ ॥

स्पष्टम् ॥ २२-२३ ॥

जेना कमलक पातकेँ जलक संग सम्बन्ध नहि होइत छैक तहिना देहधारी भेलो एहि आत्माकेँ देहक संगति नहि छन्हि । खोंतामे स्थित पक्षी जेना खोंतासँ भिन्न देखि पड़ैत अछि तहिना ई आत्मा देहमे रहैतो देहसँ आन रूपमे प्रकाशित होइत अछि ॥ २२-२३ ॥

अथ पुनर्दृष्टान्तमाह–

आच्छाद्यते यथा चन्द्रो मेघैरासङ्गवर्जितैः ।
तथात्मा देहसङ्घातैरसङ्गः परिवेष्टितः ॥ २४ ॥

चन्द्र आसङ्गवर्जितैः स्वस्य सर्वत्र सङ्गरहितैर्मेघैर्यथा आच्छाद्यते, तथा आत्मा निवृत्तजीवभावः सेव्यो देहसङ्घातैः स्थूलादिदेहसमूहैः, असङ्गः सन् परिवेष्टित इत्यर्थः ॥ २४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जेना चन्द्रमा सम्बन्धरहित मेघसँ आच्छादित भए जाइत छथि तहिना आत्मा सम्बन्धरहित देहसँ आवृत होइत अछि ।। २४ ।।

तर्ह्ययं कं पश्यन्नास्त इत्यत्राह–

निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तोपाधिविक्लवः ।
देहस्थोऽपि सदा ह्यात्मा शिवं पश्यति योगतः ॥ २५ ॥

विक्लवो बाधः । योगो योगसामर्थ्यम् । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २५ ॥

ममत्व ओ अहङ्कारसँ रहित एवं शरीरादि उपाधिसँ रहित आत्मा देहमे स्थित होइतो योगक सामर्थ्यसँ शिवकेँ देखैत अछि ।। २५ ।।

तर्हि शिवं पश्यन्नयं तथा भासत इत्यत्राह–

भोक्तृभोज्यपरित्यागात् प्रेरकस्य प्रसादतः ।
भोक्तृताभावगलितः स्फुरत्यात्मा स्वभावतः ॥ २६ ॥

भोक्तृभोज्यपरित्यागाद् भेक्तृजीवेन भोज्यविषयपरित्यागात् प्रेरकस्येश्वरस्य प्रसन्नतावशाद् भोक्तृताभावगलितः सन् भोक्तृलाभजीवभाववियुक्तः सन् स्वभावतो जीवेश्वरसाधारणीभूतात्मत्वस्वरूपतः स्फुरति, प्रकाशत इत्यर्थः ॥ २६ ॥

भोक्ता ओ भोज्यक परित्यागसँ, प्रेरक जे ईश्वर तनिक कृपासँ भोक्तृत्वभावसँ रहित भए आत्मा अपन स्वभावक अनुसार प्रकाशित होइत अछि ।। २६ ।।

अथान्तरात्मस्थलं समापयति–

सर्वेषां प्रेरकत्वेन शम्भुरन्तःस्थितः सदा ।
तत्परिज्ञानयोगेन योगी नन्दति मुक्तवत् ॥ २७ ॥

स्पष्टम् ॥ २७ ॥

भगवान् शिव सभक अन्दर प्रेरक रूपमे रहैत छथि– एहि तरहक परिपूर्ण ज्ञानक कारण योगी मुक्त जकाँ आनन्दित रहैत छथि ।। २७ ।।

इत्यन्तरात्मस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ परमात्मस्थलम्

अथ–

एवंविदित्वा परमात्मरूपं
गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ।
समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं
प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम्[1] ॥

इति कैवल्यश्रुत्यनुसारेण अयमन्तरात्मैव निर्मलत्वेन परमात्मेति निरूपयति–

निर्धूते तत्प्रबोधेन मले संसारकारणे ।
सामरस्यात् परात्मस्थात् परमात्मायमुच्यते ॥ ॥ २८ ॥

अयमन्तरात्मा संसारकारणे मलेऽज्ञाने तत्प्रबोधेन तच्छिवाद्वैतज्ञानेन निर्धूते सति निवारिते सति परात्मस्थात् परमात्मस्थात् सामरस्यात् समरसभावात् परमात्मेत्युच्यत इत्यर्थः ॥ २८ ॥

परात्मस्थल– शिवाद्वैत ज्ञानक द्वारा संसारक कारणस्वरूप मलक नष्ट भेला पर परमात्मामे स्थित सामरस्यक कारण ई जीव परमात्मा कहबैत अछि ॥ २८ ॥

अथ कोऽयं परमात्मेत्यत्राह–

सर्वेषामात्मभेदानामुत्कृष्टत्वात् स्वतेजसा ।
परमात्मा शिवः प्रोक्तः सर्वगोऽपि प्रकाशवान् ॥ २९ ॥

स्वतेजसा निजतेजसा सर्वगोऽपि सर्वव्यापकोऽपि प्रकाशवान् शिवः सर्वेषामरत्मभेदानाम् उत्कृष्टत्वात् परमात्मेति प्रोक्त उच्यते इत्यर्थः ॥ २९ ॥

अपन तेजक कारण सर्वव्यापी प्रकाशमान शिव अपन सकल आत्मभेदमे उत्कृष्ट भेलाक कारण परमात्मा कहल गेल छथि ॥ २९ ॥

अथ प्रकारान्तरेण तल्लक्षणमाह–

ब्रह्माण्डबुद्बुदस्तोमा यस्य मायामहोदधौ ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति परमात्मा स उच्यते ॥ ३० ॥

स्पष्टम् ॥ ३० ॥

---

१. कै०उ० २ । २२-२३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जनिक मायारूपी समुद्रमे ब्रह्माण्डरूपी बुनबुन्नाक समूह उगैत-डुमैत रहैत अछि, तनिका परमात्मा कहल जाइत अछि ।। ३० ।।

अथ तत्स्वरूपमेव दृष्टान्तपूर्वकं सूत्रत्रयेण कथयति–

यस्मिन् ज्योतिर्गणाःसर्वे स्फुलिङ्गा इव पावकात् ।
उत्पत्य विलयं यान्ति तद्रूपं परमात्मनः ।। ३१ ।।

यस्मिन् वस्तुनि सर्वे ज्योतिर्गणाःसमस्तजीवतेजःसमूहा वह्नेर्जाता विस्फुलिङ्गा इव उत्पत्य विलयं यान्ति, तत्परमात्मनो रूपं स्वरूपमित्यर्थः ।। ३१ ।।

जेना आगिसँ फुनगारी सब बहराइत अछि तहिना जनिकासँ सकल ज्योतिगण (सूर्य, चन्द्र, अग्नि, तारा, विद्युत्) उत्पन्न भए विलीन होइत अछि, सएह परमात्मा थिकाह ।। ३१ ।।

अथ प्रकारान्तरेणाह–

यस्मिन् समस्तवस्तूनि कल्लोला इव वारिधौ ।
सम्भूय लयमायान्ति तद्रूपं परमात्मनः ।। ३२ ।।

यस्मिन् वस्तुनि भूम्यादिसमस्ततत्त्वानि समुद्रे बृहत्तरङ्गा इव सम्भूय लयमायान्ति, तत् परमात्मनो रूपम् ।। ३२ ।।

जेना समुद्रमे महातरङ्ग उत्पन्न भए ओहीमे विलीन होइत अछि तहिना सब वस्तु जनिकामे उत्पन्न एवं लीन होइत अछि, सएह परमात्माक रूप थिक ।। ३२ ।।

पुनः प्रकारान्तरेणाह–

निरस्तमलसम्बन्धं निःशेषजगदात्मकम् ।
सर्वतत्त्वोपरि प्रोक्तं स्वरूपं परमात्मनः ।। ३३ ।।

निवारिताणवादिमलसम्बन्धं नामरूपात्मकसकलजगज्जीवनभूतं परमात्मनः स्वरूपं भूम्यादिशिवान्तसकलतत्त्वोपरि प्रोक्तम् ।। ३३ ।।

परमात्माक स्वरूप सब तरहक मलसँ असम्बद्ध एवं समस्त संसारस्वरूप होइतो समस्त तत्त्वसँ ऊपर कहल गेल अछि । ३३ ।।

अथ परमात्मा कथं प्रकाशत इत्यत्राह–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथा व्याप्य जगत्सर्वं स्वभासा भाति भास्करः ।
तथा स्वशक्तिभिर्व्याप्य परमात्मा प्रकाशते ॥ ३४ ॥

भास्करः स्वकान्त्या जगत्सर्वं व्याप्य यथा वर्तते, तथा परमात्मा धूमावत्यादिस्वकीयपञ्चशक्तिभिर्विश्वं व्याप्य प्रकाशत इत्यर्थः । तथाहि– सृज्यस्य पाञ्चभौतिकत्वाद् भूम्या धूमावत्यपरपर्याया तिरोधानशक्तिः, जले पुष्टिलक्षणा पालनशक्ति, तेजसि विश्वप्रकाशकतालक्षणा सृष्टिशक्तिः,वायौ शोषकतालक्षणा संहारशक्तिः, नभसि व्यापकशिवैकीकरणप्रवीणानुग्रहात्मिका विभुताशक्तिः । एवं पञ्चभिर्विश्वं व्याप्य वर्तत इत्यर्थः । उक्तोऽयमर्थः पञ्चाशिकाशास्त्रे–

धूमावती पृथिव्यां, ह्लादाप्सु शुचौ तु भास्वती प्रथते ।
वायौ स्पन्दा विभ्वी, नभसि व्याप्तं जगत् ताभिः ॥
धूमावती तिरोधौ, भास्वत्यवभासनेऽध्वनां शक्तिः ।
क्षोभे स्पन्दा व्याप्तौ, विभ्वी ह्लादा च पुष्टौ स्यात् ॥

इति । एवं स्वशक्तिभिर्विश्वं व्याप्य वर्तत इत्यर्थः । अत्र स्वकान्त्या विश्वं व्याप्य भासमानस्य सूर्यस्य यथाऽभेदः, तथा शिवाद्विश्वस्याभेदो नाशङ्कनीयः, भूम्यादेः शक्तिरूपत्वात्, शक्तीनां शिवस्वभावत्वात् । नैवं विश्वं सारतेजोरूपम्, किन्तु सम्बन्धमात्रम्, सर्वांशे दृष्टान्ताभावाद् व्याप्तावेव दृष्टान्त इति ॥ ३४ ॥

जेना सूर्य अपन तेजसँ सम्पूर्ण संसारकेँ व्याप्त कए प्रकाशित करैत छथि तहिना परमात्मा अपन शक्तिसँ सम्पूर्ण जगत्केँ प्रकाशित कएने छथि ॥ ३४॥

नन्वेवं विश्वव्यापकत्वेन भासमानत्वादीश्वरस्य विश्वविकारत्वं कस्मान्न सम्भवति इत्याक्षेपस्योत्तरं वदन् परमात्मस्थलं समापयति–

विश्वतो भासमानोऽपि विश्वामायाविलक्षणः ।
परमात्मा स्वयंज्योतीरूपो जीवात्मनां भवेत् ॥ ३५ ॥

परमात्मा विश्वस्मिन् सर्वत्र भासमानोऽपि विश्वमायाविलक्षणो विश्वोपादानकारणीभूतो व्योमवद् विश्वगतषड्भावविकार[1]दोषरहितः सन् सच्चिदान्दस्वरूपेण जीवात्मनां संसारहेयबुद्धिसम्पन्नानां ज्योतीरूपो बुद्धिप्रकशको भवतीति ॥ ३५ ॥

परमात्मा सम्पूर्ण संसारमे भासमान होइतो विश्वमायासँ विलक्षण

१. जातयेऽस्ति वर्द्धते विपरिणमतेऽपक्षीयते नश्यति इति षड् भावविकारा निरुक्त उक्ताः ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

छथि। ओ जीवात्माक लेल प्रकशस्वरूप छथि ॥ ३५ ॥

इति परमात्मस्थलम्

अथ निर्देहागमस्थलम्

अथ–

आश्रयो द्वन्द्वमित्युक्तं द्वन्द्वत्यागात् परो दमः ।
जीवन्मुक्तः सदा योगी देहत्यागाद्विमुच्यते ॥

इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेण देहधर्मं निराकृत्य परमात्मस्वरूप-भावनावतः शिवयोगिनो निर्देहागमस्थलं निरूपयति–

देहिनोऽपि परात्मत्व-भाविनो निरहङ्कृतेः ।
निरस्तदेहधर्मस्य निर्देहागम उच्यते ॥ ३६ ॥

परमात्मत्वभाविनोऽहङ्कारममकारशून्यस्य निरस्तदेहधर्मस्य निरस्त-स्थूलत्वादिदेहधर्मवतो देहिनो देहवतः शिवयोगिनो निर्देहागमो निर्देहप्राप्तिरुच्यते, कथ्यत इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

निर्देहागम स्थल– देहवान् होइतो परात्मभावयुक्त अहङ्काररहित शिवयोगी देहधर्मसँ रहित होएबाक कारण निर्देहागम कहबैत छथि ॥ ३६ ॥

अथ परमात्मभाववतः शिवयोगिनो देहसम्बन्धो नास्तीति षड्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

गलिते ममताहन्ते संसारभ्रमकारणे ।
पराहन्तां प्रविष्टस्य कुतो देहः कुतो रतिः ॥ ३७ ॥

शरीरः प्रीतिश्च कुत इत्यर्थः ॥ ३७ ॥

संसारक भ्रमक कारण ममता ओ अहङ्कारक नष्ट भेलापर पराहन्तामे प्रविष्ट व्यक्तिकेँ देह कतए ओ ताहिमे प्रीति कतए ? अर्थात् कोनो स्थितिमे नहि ॥ ३७ ॥

केवले निष्प्रपञ्चौघे गम्भीरे चिन्महोदधौ ।
निमग्नमानसो योगी कथं देहं विचिन्तयेत् ॥ ३८ ॥

निवृत्तचराचरप्रपञ्चसमूहवति अगाधे चित्समुद्रे निमग्नचित्तः शिवयोगी देहं केन प्रकारेण चिन्तयेत् ? न केनापीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अद्वितीय, प्रपञ्चसँ रहित, गम्भीर जे चैतन्यरूपी महासमुद्र ताहिमे डूमलमनवला योगी देहक चिन्ता कोना कए सकैछ ? ३८ ॥

अपरिच्छेद्यमात्मानं चिदम्बरमिति स्मरन् ।
देहयोगेऽपि देहस्थैर्विकारैर्न विलिप्यते ॥ ३९ ॥

स्वात्मानं परिच्छेदरहितचिदाकाशं स्मरन् शिवयोगी देहे सत्यपि देहस्थेन्द्रियविकारैर्न लिप्यत इत्यर्थः ॥ ३९ ॥

अपनाकेँ असीम चिदाकाश बुझनिहार योगी शरीरसँ सम्बद्ध रहलोपर देहमे स्थित कामादि विकारसँ लिप्त नहि होइत छथि ॥ ३९ ॥

अखण्डसंविदाकारमद्वितीयं सुखात्मकम् ।
परमाकाशमात्मानं मन्वानः कुत्र मुह्यति ॥ ४० ॥

स्वात्मानमखण्डाद्वितीयचिदानन्दाकारं परमाकाशं सन्तं मन्वानः 'आकाशशीरं ब्रह्म सत्यात्म प्राणारामं मन आनदं शान्तिसमृद्धम्' इति छान्दोग्य-(तैत्तिरीय)[१]श्रुत्यनुसारेण जानन् शिवयोगी कुत्र कस्मिन्नधिकरणे शरीर्यहमिति मुह्यति ? न कुत्रापि, ब्रह्मातिरिक्तदेशाभावादित्यर्थः ॥ ४० ॥

अपनाकेँ अखण्ड, चिदाकार, अद्वितीय, सुखस्वरूप ओ परमाकाश बुझनिहार योगी कतहु मोहग्रस्त नहि होइत छथि ॥ ४० ॥

नन्वाकाशस्यापि घटाद्युपाधिना परिमितिर्दृश्यत इत्यत्राह—

उपाधिविहिता भेदा दृश्यन्ते चैकवस्तुनि ।
इति यस्य मतिः सोऽयं कथं देहमितो भवेत् ॥ ४१ ॥

स्पष्टम् ॥ ४१ ॥

एके वस्तुमे जे भेद देखल जाइत अछि से उपाधि (बाह्य कारण)सँ रचित होइत अछि— एहन जनिक बुद्धि भए गेल छनि से देहमे सीमित कोना रहि सकैत छथि ? ॥ ४१ ॥

अथ तत्कुत इत्यत्राह—

भेदबुद्धिःसमस्तानां परिच्छेदस्य कारणम् ।
अभेदबुद्धौ जातायां परिच्छेदस्य का कथा ॥ ४२ ॥

---

१. तै०उ० १ । ६ । २

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घटाकाशदृष्टान्तेन भेदस्तावदौपाधिक इति ज्ञाते, अभेदबुद्धौ दृढ़ायां वस्तुपरिच्छेदकारणीभूतभेदबुद्धेः शिथिलत्वात् परिच्छेदवार्ता न कापीत्यर्थः ॥ ४२ ॥

सकल परिच्छेदक (विभागक) कारण भेदबुद्धि थिक । अभेदबुद्धि (शिवाद्वैत) भेला पर परिच्छेदक कथा कोन ? अर्थात् असम्भव आछि ॥ ४२ ॥

अथ तदद्वैतं प्रकटीकृत्य निर्देहागमस्थलं समापयति ।

शिवोऽहमिति यस्यास्ति भवना सर्वगामिनी ।
तस्य देहेन सम्बन्धः कथं स्यादमितात्मनः ॥ ४३ ॥

शिवोऽहमिति सर्वव्यापकीभूता शिवाद्वैतभावना यस्य शिवयोगिनोऽस्ति, तस्य अपरिमितात्मनः परिच्छिन्नशरीरेण सम्बन्धः कथं स्यात् ? न कथञ्चिदपीत्यर्थः ॥ ४३ ॥

'हम शिव छी'– एहन जनिक सर्वव्यापिनी भावना छनि ओहि अमितात्मा योगीकेँ देहसँ सम्बन्ध कोना भए सकैछ ? ४३ ॥

इति निर्देहागमस्थलम्

अथ निर्भावागमस्थलम्

अथ–

नैवोर्ध्वं धारयेच्चित्तं न मध्यं नाप्यधः क्वचित् ।
अन्तर्भावविनिर्मुक्तं सदा कुर्यान्निराश्रयम् ॥

इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेण निर्देहागमसम्पन्नस्य शिवयोगिनो निर्भावागमस्थलं निरूयति–

व्यतिरेकात् स्वरूपस्य भावान्तरनिराकृतेः ।
भावो विकारनिर्मुक्तो निर्भावागम उच्यते ॥ ४४ ॥

स्वरूपस्य निर्देहस्वरूपस्य व्यतिरेकाद् व्यतिरिक्तत्वाद् भवान्तरनिराकृतेरन्यभावनिराकरणाद् विकारनिर्मुक्त इन्द्रियविकारविनिर्मुक्तो भावो मनोभावो निर्भावागम इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

निर्भावागम स्थल– अपन निर्देह स्वरूपसँ परे तथा अन्य भावक निराकरणसँ विकाररहित भाव निर्भावागम कहबैछ ॥ ४४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ तन्निर्भावलक्षणं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

अहं ब्रह्मेति भावस्य वस्तुद्वयसमाश्रयः ।
एकीभूतस्य चिद्व्योम्नि तदभावो विनिश्चितः ॥ ४५ ॥

अहं ब्रह्मेति भावस्याहमिति ब्रह्मेति वस्तुद्वयाक्षेपो भवेत् चिद्व्योम्नि एकीभूतस्य समरसीभूतस्य भावस्य तदभावो वस्तुद्वयाक्षेपाभावो विनिश्चितो विशेषेण निश्चित इत्यर्थः ॥ ४५ ॥

'हम ब्रह्म छी'– ई भाव दू वस्तु– हम आ ब्रह्म पर आधारित अछि। चिदाकाशमे समरस भेल ओहि दुनूक अभाव निश्चित अछि ॥ ४५ ॥

अथाहं ब्रास्मीति भावस्य कोटिद्वयावगाहित्वेन विकल्पघटितत्वाद् अहमित्येकभावस्य विकल्पशून्यत्वाद् एकभावेन स्थितस्य मायिकजातिभेदा-दिवासना नास्तीत्याह–

एकभावनिरूढस्य निष्कलङ्के चिदम्बरे ।
क्व जातिवासनायोगः क्व देहित्व-परिभ्रमः ॥ ४६ ॥

निरञ्जने चिदाकाशे तादात्म्येनारूढस्य शिवयोगिनो जातिवर्णाश्रम-वासनासम्बन्धः क्व ? देहित्वं शरीरवत्त्वं क्व ? संसारचक्रपरिभ्रमणं च क्वेत्यर्थः ॥ ४६ ॥

निष्कलङ्क चिदाकाशमे एकभाव राखएवालाकेँ कतएसँ जातिवासनाक योग, कतएसँ देहक भावना ओ कतएसँ संसारक जन्म-मृत्युक भ्रम भए सकैछ ? ४६ ॥

नन्वेवं चेद् ध्यानादीनां का गतिरित्यत्राह–

शून्ये चिदम्बरे स्थाने दूरे वाङ्मनसाध्वनः ।
विलीनात्मा महायोगी केन किं वाऽपि भावयेत् ॥ ४७ ॥

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'[१] इति श्रुतेर्वाङ्मनोमार्गागोचरे नीलपीताद्याकारशून्ये चिदाकाशस्थाने तादात्म्यापन्नः शिवयोगी केन प्रकारेण किं वा वस्तु भावयेत् ? केनापि प्रकारेण किमपि वस्तु भावनायोग्यं न सम्भवतीत्यर्थः ॥ ४७ ॥

---

१. तै०उ० २।४।१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाणी ओ मनक बाटसँ दूर, शून्य चिदाकाशमे विलीन आत्मावाला महायोगी किनका द्वारा ओ किनकर भावना करताह ? अर्थात् किनको नहि ।। ४७ ।।

ननु विधिनिषेधवासनाशून्यत्वे निन्दाप्राप्तिर्भवेदित्यत्राह–

अविशुद्धे विशुद्धे वा स्थले दीप्तिर्यथा रवेः ।
पतत्येवं सदाद्वैती सर्वत्र समवृत्तिमान् ।। ४८ ।।

रवेः सूर्यस्य दीप्तिः प्रकाशो विशुद्धस्थलेऽविशुद्धस्थले च यथा पतति, एवं शिवाद्वैती सदा सर्वत्र समवृत्तिमान् समानबुद्धिवृत्तिमान् सन् सञ्चरतीत्यर्थः ।। ४८ ।।

जेना सूर्यक किरण शुद्ध आ अशुद्ध सब वस्तु पर पड़ैत अछि तहिना अद्वैतमार्गपर चलनिहार शिवादैती सबठाम समदृष्टिवाला होइत छथि ।। ४८ ।।

कथं सञ्चरतीत्यत्राह–

न बिभेति जरामृत्योर्न क्षुधाया वशं व्रजेत् ।
परिपूर्णनिजानन्दं समास्वादन् महासुखी ।। ४९ ।।

महासुखी भूत्वा सञ्चरतीत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।। ४९ ।।

एहन योगी जरा एवं मृत्युसँ नहि डराइत छथि ओ भूख-पियासक वशमे नहि होइत छथि । परिपूर्ण निजानन्दकेँ सुआदैत ओ महासुखी भए जाइत छथि ।। ४९ ।।

इति निर्भावागमस्थलम्

अथ नष्टागमस्थलम्

अथैवं निर्भावागमसम्पन्नस्य भेदज्ञानाभावेन तन्नष्टागमस्थलं प्रकाशयति–

भेदशून्ये महाबोधे ज्ञात्रादित्रयहीनकः ।
ज्ञानस्य नष्टभावेन नष्टागम इहोच्यते ।। ५० ।।

द्वैतशून्ये महाशिवज्ञाने ज्ञातृज्ञानज्ञेयात्मकत्रिपुटीमयप्रपञ्चशून्यत्वाद् इह निर्भावागमसम्पन्नशिवयोगिविषये ज्ञानस्य भेदज्ञानस्य नष्टभावेन नष्टत्वेन नष्टागम इत्युच्यत इत्यर्थः ।। ५० ।।

नष्टगम स्थल– भेदशून्य महाबोध भेलापर ज्ञाता, ज्ञान ओ ज्ञेय–एहि

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तीनूसँ रहित योगीकेँ ज्ञानक स्वयं नष्ट भेलाक कारण नष्टागम कहल जाइत अछि ॥ ५० ॥

ननु शिवयोगिनः कथं त्रिपुटीमयप्रपञ्चशून्यत्वमित्यत्राह–

अद्वैतवासनाविष्टचेतसां परयोगिनाम् ।
पश्यतामन्तरात्मानं ज्ञातृत्वं कथमन्यथा ॥ ५१ ॥

अन्यथा ज्ञातृत्वं स्वातिरिक्तपदार्थान्तरज्ञातृत्वमित्यर्थः । अन्तः स्वहृदय इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ५१ ॥

अद्वैत वासन सँ परिपूर्ण चित्तवाला तथा अन्तरात्माक निरन्तर साक्षात्कार करएवाला योगीकेँ आन प्रकारक ज्ञान होएब कहाँ सम्भव अछि ? ५१ ॥

ननु तस्यान्यथा ज्ञातृत्वाभावे किं प्रकाशत इत्यत्राह–

अकर्ताऽहमवेत्ताऽहमदेहोऽहं निरञ्जनः ।
इति चिन्तयतः साक्षात् संविदेव प्रकाशते ॥ ५२ ॥

एवं चिन्तयतः शिवयोगिनः 'ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीनोऽपि सदाज्ञानम्' इति श्रुतेस्त्रिपुटीमयप्रपञ्चनाशं कृत्वा विशिष्टशिवाद्वैतज्ञानमेव प्रकाशते । अयमेव नष्टागमप्रकाश इति भावः ॥ ५२ ॥

'हम कर्ता नहि छी', 'हम ज्ञाता नहि छी', 'हम देही नहि छी', 'हम निरञ्जन छी'– एहन चिन्तन करएवाला योगीकेँ साक्षात् संवित् केर प्रकाश होइत छनि ॥ ५२ ॥

अथ तस्य ज्ञेयान्तरं च नास्त्येवेत्याह–

निरस्तभेदजल्पस्य निरीहस्य प्रशाम्यतः ।
स्वे महिम्नि विलीनस्य किमन्यज्ज्ञेयमुच्यते ॥ ५३ ॥

निरस्तभेदजल्पस्य 'द्वितीयाद् भयमेव पश्यन्ति' इति बृहदारण्यक-श्रुतेर्युक्त्या च निराकृतद्वैतवाक्यस्य प्रशाम्यतो रागद्वेषरहितस्य स्वे महिम्नि स्वविमर्शे विलीनस्य तदेकनिष्ठस्य निरीहस्य विरक्तस्य शिवयोगिनो ज्ञेयं ज्ञातुं योग्यम् अन्यत् किम् ? न किमपीत्यर्थः । नन्वत्र युक्तिर्नाम किमिति चेत्, उच्यते– भेदो नाम किमन्योन्याभावो वा वैधर्म्यं वा वस्तुस्वरूपं वेति त्रेधा विकल्पः । आद्ये तत्रान्यत्वं भावस्वभावो वा भेदनिबन्धनः कश्चिदुपाधिर्वेति द्विधा विकल्पः । तत्र नाद्यः, भावस्याभावत्वप्रसङ्गात्, अन्यत्वस्य भावस्वभावत्वात्,

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भावादन्योऽभाव इति प्रसिद्धत्वात्। ननु भावानां बाहुल्याद् भावस्य भावान्तरान्यत्वं स्वभाव इति चेत्, अस्तु, तस्य विशेषघटितत्वात्। इह तु भेदसामान्यलक्षणप्रविष्टान्यत्वस्य प्रश्नविषयत्वेन न तदुत्तरं भवितुमर्हति, तस्य भेदसिद्ध्यनन्तरभावित्वात्। किञ्च, भावस्य भावान्तरान्यत्वं स्वभाव इति नियमस्तत्तद्भावकृतो वा तद्व्यतिरिक्तमहापुरुषकृतो वा ? नाद्यः, घटादिभावस्य जडत्वेन कर्तृत्वाभावात्। न द्वितीयः, कल्पनायाः प्रागनन्यत्वेनान्तरालिकतयान्यत्वस्य तत्स्वभावत्वासम्भवात्। ननु न केनापि कृतः, किन्तु स्वतःसिद्ध इति चेत्, तर्हि स्वप्रकाशोऽपि भवेत्, ब्रह्मवत् स्वतःसिद्धत्वात्। ननु ब्रह्मापि मानान्तरसिद्धमिति न स्वतः सिद्धमिति वाच्यम्, नित्यत्वेन कारकव्यापारासम्भवात्, स्वप्रकाशत्वेन ज्ञापकव्यापारासम्भवात्, अन्यथा जडत्वप्रसङ्गात्। नाप्यन्यत्वं भेदनिबधनः कश्चिदुपाधिः, आत्माश्रयादिदोषप्रसङ्गात्। नापि द्वितीयः, घटे पटत्वं नास्ति पटे घटत्वं नास्ति वैधर्म्यम्, एवंविधनिश्चयस्य घटपटभेदसिद्ध्यनन्तरभावित्वात्।

न च घटपटयोस्तन्तुमयत्वमृन्मयत्वाभ्यां भेदः सिद्ध एवेति वाच्यम्, घट एव मृन्मयत्वं पटे (च) तन्तुमयत्वमित्यसाधारणप्रतीतेर्घटपटभेदसिद्ध्यधीनत्वात्, तस्या अद्यापि साध्यकोटिप्रविष्टत्वात्। किञ्च, तन्तुमयत्वमृन्यमयत्वयोर्भेदस्तत्र तदवयवभेदादिति परमाणुपर्यालोचनायां निरवयवत्वेन भेदाग्रहाद् मूलक्षयकारिण्यनवस्था स्यादिति। नापि तृतीयः, वस्तुस्वरूपं हि वस्त्वन्तरस्वरूपाननुगामीत्यङ्गीकरणीयम्, अन्यथा स्वरूपासाङ्कर्यापत्तेः, एवं चेदं रजतमित्यत्र शुक्तिरेव रजताकारेण निश्चीयत इति भ्रान्तिज्ञानोच्छेदप्रसङ्गात्। दूरत्वादिदोषवशात् तथा निश्चीयत इति चेत् तर्हि इङ्गलादिकमपि रजतत्वेन कुतो न निश्चीयते ? न च विशेषदर्शनसामग्री प्रतिबन्धिकेति वाच्यम्, शुक्तिकायामपि विशेषादर्शनसामग्रीसत्त्वेनानारोपप्रसङ्गात्। अविशेषदर्शनसामग्रीप्राबल्यादारोपः सम्भवतीति चेन्न, वस्त्वन्तरे वस्त्वन्तरस्वरूपमनुप्रविष्टमित्यङ्गीकरणीयत्वेनाननु-प्रविष्टमिति वक्तुमशक्यत्वेन स्वरूपसाङ्कर्यापत्तेरनिवार्यत्वेन भेदवादोच्छेदप्रसङ्गात्, पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गाच्च। किञ्च, वस्तुनि भासमानो भेदस्तद् वस्तुस्वरूपाभिन्नो वा भिन्नो वा स्यात् ? नाद्यः, अत्यन्तविरोधाद् भेदस्याभेदतासम्भवात्। न द्वितीयः, सोऽपि भेदः कीदृश इत्युपर्युपरिविचार्यमाणोऽनवस्थामेवोपस्थापयतीति विश्रान्त्यभावात्। नाप्यभेदात्यन्ताभावो भेदः, आत्माश्रयप्रसङ्गात्। नास्त्यैक्यप्रतियोगी, एकत्वस्य प्रतियोग्यभावात्, द्वित्वादीनां तन्मूलकत्वात्। नापि विभागः, तस्य संयोगपूर्ववत्त्वेन पूर्वापरदिशोः पूर्वपश्चिमाचलयोश्च कदापि संयोगाभावेन भेदाभावप्रसङ्गात् गत्यन्तराभावेन भेदव्यवहारसिद्ध्यर्थं सकलसामरस्यात्मनो महेश्वरस्येच्छावशात् सागरतरङ्गन्यायेनाभेदपर्यवसायित्वेन

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कल्पितविभागो भेद इत्यङ्गीकरणीयत्वेनाप्यभेद एव सिद्ध्यतीति शिवाद्वैतसिद्धान्तवादिनां युक्तिरीदृशीति विचक्षणैर्विमर्शनीयेति ॥ ५३ ॥

भेदभावकेँ दूर कएनिहार, इच्छारहित, शमदम आदिसँ युक्त एवं अपन महिमामे विलीन योगीक लेल दोसर कोन ज्ञेय (जनबायोग्य) कहल जाय ? ॥ ५३ ॥

अथोक्तसूत्रत्रयार्थमेव विशेषयति–

एकीभूते निजाकारे संविदा निष्प्रपञ्चया ।
केन किं वेदनीयं तद्वेत्ता कः परिभाष्यते ॥ ५४ ॥

निजाकारे स्वस्वरूपे निष्प्रपञ्चया संविदा शिवाद्वैतज्ञानेन एकीभूते सति समारस्ये सति केन किं वस्तु वेदनीयं ज्ञेयं स्यात्, तद्वेत्ता ज्ञानेन ज्ञेयवेत्ता च क इति परिभाष्यते, 'नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्' इति श्रुतेः, 'वेदितव्यं न किञ्चन' इत्यागमोक्तेश्चान्योन्याभावनिबन्धभेदघटितमायिकत्रिपुटीमयप्रपञ्चदर्शनं शिवयोगिनां नास्तीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

अपन स्वरूपकेँ निष्प्रपञ्च संविदाकारक संग एकाकार भए गेला पर ककरा द्वारा की जानल जाएत आओर जननिहार के होएत ? अर्थात् केओ नहि ॥ ५४ ॥

तर्हि कीदृशं प्रपञ्चदर्शनं स्यादित्यत्र वदन् नष्टागमस्थलं समापयति–

महासत्ता महासंविद् विश्वरूपा प्रकाशते ।
तद्विना नास्ति वस्त्वेकं भेदबुद्धिं विमुञ्चतः ॥ ५५ ॥

महासत्ता गगनकुसुममित्यादौ अर्थवत्पदयोरेव सम्मेलनरूपसंयोगात् तदुपरि विभक्तियोगाच्चार्थवत्त्वाद् गगनकुसुममङ्गीकरणीयमिति सदसत्सकल-वस्तुव्यापकत्वान्महासत्तेत्युच्यते, हृदयोल्लेखं विना गगनकुसुममिति व्यवहारा-सम्भवान्महासंविदित्युच्यते । एवं स्वशिरच्छायानुल्लङ्घनमिव सदसद्विश्वव्यापकीभूतं ब्रह्मचैतन्यमेव जगद्रूपेण भासते, न तद्व्यतिरिक्तं किञ्चिदिति भेदबुद्धिं विमुञ्चतः शिवयोगिनो महासत्तास्फुरत्ताकचैतन्यं विना एकं वस्तु अन्यद्वस्तु नास्ति, सागरतरङ्गन्यायेन तद्बुद्धेरभेदविश्रान्तत्वादिति ॥ ५५ ॥

महासत्ता महासंवित् विश्वक रूपमे प्रकाशित भए रहए अछि । भेदबुद्धिसँ रहित योगीक लेल ओकरा छोड़ि आन कोनो वस्तु नहि अछि ॥ ५५ ॥

इति नष्टागमस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथादिप्रसादिस्थलम्

अथ–

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं महादेवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥[1]

इति श्वेताश्वतरमन्त्रानुसारेण नष्टागमसम्पन्नशिवयोग्येव सर्वादिभूत-शिवप्रसादवानित्यादिप्रसादीत्युच्यत इति तदीयस्थलं प्रतिपादयति–

सर्वाधिष्ठातृकः शम्भुरादिस्तस्य प्रसादतः ।
आदिप्रसादीत्युक्तोऽयं निर्विकारपदे स्थितः ॥ ५६ ॥

विश्वाधारभूमित्वात्तन्नियामकत्वाच्छम्भुरादिः सृष्ट्यादिपञ्चकृत्यमूलकारणम् । तस्य सर्वादिभूतस्य शम्भोः प्रसादतो निर्विकारपदे विकाररहितनष्टागमस्थले स्थितोऽयं शिवयोगी आदिप्रसादी आदिप्रसादवानित्यर्थः ॥ ५६ ॥

आदिप्रसादी स्थल– सभक अधिष्ठाता शिव संसारक आदि तत्त्व थिकाह । हुनके प्रसादसँ निर्विकार पदमे प्रतिष्ठित योगी आदिप्रसादी कहल जाइत छथि ॥ ५६ ॥

अथ तस्य महत्त्वं चतुर्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

अनेकजन्मशुद्धस्य निरहङ्कारभाविनः ।
अप्रपञ्चस्यादिदेवः प्रसीदति विमुक्तये ॥ ५७ ॥

अनेकजन्मभिः शुद्धात्मनः परिच्छिन्नदेहाद्यभिमानशून्यस्य अप्रपञ्चस्य प्रापञ्चिकभेदरहितस्य शिवयोगिन आदिदेवः सर्वादिदेवः शिवो विमुक्तये परमोक्षाय प्रसीदति प्रसन्नो भवतीत्यर्थः ॥ ५७ ॥

जे अनेक जन्मसँ शुद्ध छथि, अहङ्कारभावनासँ रहित छथि आ प्रपञ्चसँ हीन छथि तनिका पर मुक्तिदानहेतु भगवान् शिव प्रसन्न भए जाइत छथि ॥ ५७ ॥

शिवप्रसादसम्पत्त्या शिवभावमुपेयुषि ।
शिवादन्यज्जगज्जालं दृश्यते न च दृश्यते ॥ ५८ ॥

---

१. श्वे०उ० ६ । १८

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवप्रसादप्राप्त्या शिवत्वमुपेयुषि विषये जगज्जालं जगत्समूहं शिवादन्यदिति दृश्यते, इदन्त्वेन दृश्यं सन्न च दृश्यते। भेदस्य निराकृतत्वात् सागरतरङ्गन्यायेनाभेदेन दृश्यत इत्यर्थः ॥ ५८ ॥

शिवक प्रसन्नताक प्राप्तिसँ शिवभावकेँ प्राप्त कएनिहार योगीक लेल ई संसार शिवसँ भिन्नो आ अभिन्नो देखाइत अछि ॥ ५८ ॥

शम्भोः शिवप्रसादेन संसारच्छेदकारिणा।
मोहग्रन्थिं विनिर्भिद्य मुक्तिं यान्ति विवेकिनः ॥ ५९ ॥

नित्यानित्यविवेकिनः संसारच्छेदकारिणा शिवप्रसादेनैव अज्ञानग्रन्थिं विदार्य परमोक्षं यान्तीत्यर्थः ॥ ५९ ॥

संसारक उच्छेद कएनिहार जे शिवप्रसाद, ताहिसँ मोहरूपी गीरहकेँ काटि विवेकशाली (नित्यानित्यभेदज्ञ) मुक्तिकेँ प्राप्त करैत छथि ॥ ५९ ॥

ननु शिवप्रसादेन विना मुक्तिर्नास्ति वेत्यत्राह—

विना प्रसादमीशस्य संसारो न निवर्तते।
विना सूर्योदयं लोके कुतः स्यात् तमसो लयः ॥ ६० ॥

स्पष्टम् ॥ ६० ॥

ईश्वरक कृपाक विना संसारक निवृत्ति नहि होइछ। सूर्योदयक विना संसारमे अन्धकार कोना विलाएत ॥ ६० ॥

अथ शिवस्य सर्वात्मस्वपक्षपातेन कृपाप्रसादं संसूच्यादिप्रसादिस्थलं समापयति—

सर्वानुग्राहकः शम्भुः केवलं कृपया प्रभुः।
मोचयेत् सकलान् जन्तून् न किञ्चिदिह कारणम् ॥ ६१ ॥

प्रभुः स्वतन्त्रः सर्वानुग्राहकः सर्वहितोऽपि शम्भुः शिवः केवलं कृपयैव सकलान् जन्तून् प्राणिनो मोचयेत् पाशमुक्तान् कुर्यात्, इह पाशमोचनविषये शम्भोः किञ्चित्कारणं च नास्ति, सर्वानुग्रहकृत्यस्य तत्स्वभावत्वादिति ॥ ६१ ॥

सब पर कृपा कएनिहार प्रभु शम्भु केवल अपन कृपासँ सकल जन्तुक उद्धार कए सकैत छथि, उद्धारक आन कोनो कारण नहि अछि ॥ ६१ ॥

इत्यादिप्रसादिस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथान्त्यप्रसादिस्थलम्

अथ–

अणोरणीयान् महतो महीया-
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको
धातुःप्रसादान्महिमानमीशम् ॥[1]

इति कठवल्लीश्रुत्युक्तप्रकारेण तदादिप्रसाद्येव सर्वाश्रयः सन् अन्त्यस्य शिवस्यानुभवप्रसादवानित्यन्त्यप्रसादिस्थलं निरूपयति–

लयः सर्वपदार्थानामन्त्य इत्युच्यते बुधैः ।
प्रसादोऽनुभवस्तस्य तद्वानन्त्यप्रसादवान् ॥ ६२ ॥

सर्वपदार्थानां भूम्यादिशिवान्तपदार्थानां लयो लयाश्रयः परशिव एवान्त्यः सर्वान्त्य इति बुधैरुच्यते । तस्य सर्वान्त्यस्य शिवस्य अनुभवः साक्षात्कार एव प्रसादः, तद्वान् तदनुभवन्, आदिप्रसाद्येवान्त्यप्रसादवानित्युच्यत इत्यर्थः ॥ ६२ ॥

अन्त्यप्रसादी स्थल– विद्वान् लोकनि सब पदार्थक लय (विलीन होएब)केँ अन्त्य कहैत छथि । ओहि लयक अनुभव प्रसाद थिक, से प्रसाद जनिका छनि से अन्त्यप्रसादी कहबैत छथि ॥ ६२ ॥

अथ सर्वपदार्थलयप्रकारं सूत्रद्वयेन कथयति–

देवतिर्यङ्मनुष्यादि-व्यवहारविकल्पना ।
मायाकृता परे तत्त्वे तल्लये तत्क्षयो भवेत् ॥ ६३ ॥

तल्लये मायालय इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६३ ॥

देवता, पशु, पक्षी, कीट, मनुष्य आदिक व्यवहारक कल्पना मायाक रचित थिक । परतत्त्वमे ओकर (मायाक) लय भेला पर ओकरो सत्ताक क्षय भए जाइछ ॥ ६३ ॥

अयं कथं मायाक्षय इत्यत्राह–

साक्षात्कृते परे तत्त्वे सच्चिदानन्दलक्षणे ।
क्व पदार्थपरिज्ञानं कुतो ज्ञातृत्वसम्भवः ॥ ६४ ॥

---

१. कठोप० १।२।२०

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सच्चिदानन्दस्वरूपे परब्रह्मणि प्रत्यक्षीकृते सति मयाया निवृत्तत्वात् तत्कलितपदार्थपरिज्ञानं क्व ? ज्ञातृत्वसम्भवो ज्ञेयज्ञानातिरिक्तज्ञातृत्वस्य आविर्भावश्च क्व ? ज्ञेयाद्यपेक्षया ज्ञातृत्वस्य कल्पितत्वादिति भावः ॥ ६४ ॥

सच्चिदानन्दस्वरूप परतत्त्वक साक्षात्कार भेला पर पदार्थक ज्ञान कतए ? ज्ञाताक सम्भवना कतए ? ॥ ६४ ॥

अत्र दृष्टन्तमाह–

सुषुप्तस्य यथा वस्तु न किञ्चिदपि भासते ।
तथा मुक्तस्य जीवस्य न किञ्चिद्वस्तु दृश्यते ॥ ६५ ॥

मुक्तस्य जीवस्य जीवन्मुक्तस्येत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६५ ॥

जेना गाढ़ निद्रामे सुतल व्यक्तिकेँ किछुओ भान नहि होइत छैक तहिना मुक्तजीवकेँ कोनो वस्तु भासित नहि होइत छनि ॥ ६५ ॥

अत्र जीवन्मुक्तस्य पदार्थदर्शनमस्तीति नाशङ्कनीयम्, शिवाभेदेनैव दर्शनात् प्राकृतत्वेन किमपि न दृश्यत इति । अथ जीवन्मुक्तस्वरूपं कीदृशमित्यत्र सूत्रद्वयेन कथयति–

यथाकाशमविच्छिन्नं निर्विकारं स्वरूपतः ।
तथा मुक्तस्य जीवस्य स्वरूपमवशिष्यते ॥ ६६ ॥

अवशिष्यते प्रकाशत इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६६ ॥

जेना आकाश अपन रूपसँ निर्विकार अविच्छिन (एकाकार अखण्डित) अछि तहिना मुक्त जीवकेँ केवल स्वरूपे अवशिष्ट रहैत छैक ॥ ६६ ॥

अथ स जीवन्मुक्तः किं जानन् किं कुर्वन् कथं तिष्ठतीत्यत्राह–

न किञ्चिदपि मुक्तस्य दृश्यं कर्तव्यमेव वा ।
सुखस्फूर्तिस्वरूपेण निश्चला स्थितिरुच्यते ॥ ६७ ॥

स्पष्टम् ॥ ६७ ॥

मुक्त जीवक लेल ने किछु दृश्य आ ने कोनो कर्तव्ये रहैत अछि । केवल आनन्दक स्फुरण रूपसँ ओकर निश्छल स्थिति रहैत अछि ॥ ६७ ॥

अथ जीवन्मुक्तस्य दृश्यं कर्तव्यं कुतो नास्तीत्यत्र वदन्नन्त्यप्रसादिस्थलं समापयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवाद्वैतपरिज्ञान-शिथिलाशेषवस्तुनः ।
केवलं संविदुल्लास-दर्शिनः केन को भवेत् ॥ ६८ ॥

शिवाद्वतपरिज्ञानेन निवृत्तसकलभेदवस्तुनः अतएव केवलं चिद्विलासं पश्यतः शिवयोगिनो ज्ञानेन्द्रियव्यापारेण कर्मेन्द्रियव्यापारेण वा केनापि किं भवेत्, किं प्रयोजनं स्यात्, न किञ्चिदित्यनयोराद्यन्तप्रसादयोरुपक्रमोपसंहारन्यायेनैक्यं विमर्शनीयम् ॥ ६८ ॥

शिवाद्वैतक परिज्ञानसँ सकल वस्तुमे भेदभाव नहि रखनिहार तथा केवल संवित् शक्तिक उल्लास देखनिहार शिवयोगीकेँ कथीसँ (इन्द्रिय, काज वा वस्तुसँ) की भए सकैछ ? ६८ ॥

इत्यन्त्यप्रसादिस्थलम्

अथ सेव्यप्रसादिस्थलम्

अथ–

अन्तःशरीर एवायं बाह्यं एव न संस्थितः ।
महानन्दप्रसादोऽयं सर्वत्रैवावभासते ॥

इति सर्वज्ञानोत्तरवचनानुसारेण सेव्यशिवगुरुप्रसादसम्पन्नोऽन्त्यप्रसाद्येव सेव्यप्रसादीति सूत्रत्रयेण कथयति–

सेव्यो गुरुः समस्तानां शिव एव न संशयः ।
प्रसादोऽस्य परानन्द-प्रकाशः परिकीर्त्यते ॥ ६९ ॥

समस्तानां सेव्यः श्रीगुरुः शिव एवात्र सन्देहो नास्ति । अस्य प्रसादः श्रीगुरुरूपशिवप्रसाद एव परानन्दप्रकाश इति कीर्त्यते ॥ ६९ ॥

सेव्यप्रसादी स्थल– सभ व्यक्तिक सेवनीय गुरु शिवे छथि, ताहिमे कोनो सन्देह नहि । तनिके प्रसाद (कृपा)केँ परानन्द प्रकाश कहल जाइछ ।। ६९ ।।

सेव्यो गुरुः स्मृतो ह्यस्य प्रसादोऽनुभवो मतः ।
तदेकावेशरूपेण तद्वान् सेव्यप्रसादवान् ॥ ७० ॥

गुरुः शिवरूपश्रीगुरुरेव सेव्य इति स्मृतः । अस्य शिवरूपस्य श्रीगुरोरनुभव उपदेशानुभव एव प्रसाद इति सम्मतः । तदेकावेशरूपेण तयोर्गुरुप्रसादयोरेकीभावेन तद्वान् तत्प्रसादवानन्त्यप्रसाद्येव सेव्यप्रसादवान् सेव्यप्रसादीति हि प्रसिद्ध इत्यर्थः ॥ ७० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवयोगी सेव्य गुरु कहल गेल छथि आ तनिक अनुभव प्रसाद मानल गेल अछि। एहि दुनूकेँ एक मानएवाला सेव्यप्रसादी कहल जाइत छथि ॥ ७० ॥

गुरुदेवः परं तत्त्वं परतत्त्वं गुरुः स्मृतः ।
तदेकत्वानुभावेन न किञ्चिदवशिष्यते ॥ ७१ ॥

गुरुशिवयोः शक्तिशक्तिमद्भावेन तयोरैक्यानुसन्धानेन ज्ञातव्यं न किञ्चिदवशिष्यते, सर्वस्यापि विश्वस्य शिवशक्तिमयत्वादिति ॥ ७१ ॥

गुरुदेव परतत्त्व छथि आ परतत्त्वे गुरु छथि। एहि दुनूकेँ एक बुझलाक बाद शेष किछु नहि बचैत अछि ॥ ७१ ॥

अथ परमानन्दवतः सवेव्यप्रसादिनः क्वापि प्रीतिर्नास्तीति सूत्रत्रयेण कथयति–

अपरिच्छेद्यमात्मस्थमवाङ्मनसगोचरम् ।
आनन्दं पश्यतां पुंसां रतिरन्यत्र का भवेत् ॥ ७२ ॥

परिच्छेदरहितं वाङ्मनसयोरगोचरं स्वस्वरूपं परमानन्दम् अपरोक्षेण पश्यतां शिवयोगिनामन्यत्र विषयेषु रतिरभिलाषो न क्वापि स्यादित्यर्थः ॥ ७२ ॥

असीम आत्माक अन्दर रहएवाला, वाणी ओ मनक पहुँचसँ ऊपर आनन्दक साक्षात् अनुभव कएनिहार लोकक आन विषयमे की प्रीति होएत ? ॥ ७२ ॥

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य किमन्यैर्भोज्यवस्तुभिः ।
ज्ञानादेव परानन्दं प्रकाशयति सच्छिवः ॥ ७३ ॥

ज्ञानामृतेन सन्तुष्टस्य शिवयोगिनोऽन्यैश्चित्पीयूषव्यतिरिक्तैर्भोज्यपदार्थैः किम् ? न किञ्चित् इत्यर्थः । सच्छिवोऽग्नेरुष्णत्वप्रकाशकत्वादय इव शिवस्य सच्चिदानन्दाः स्वभावास्तादृशः शिवो ज्ञानादेव निजज्ञानादेव परानन्दं स्वस्वभावभूतनित्यानन्दं प्रकाशयतीति ॥ ७३ ॥

ज्ञानामृतसँ तृप्त लोकक लेल आन भोज्यपदार्थसँ की प्रयोजन ? सदाशिव ज्ञानहिसँ परमानन्दकेँ प्रकाशित करैत छथि ॥ ७३ ॥

अथ तदेव विशदयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुक्तिरेव परा तृप्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा ।
नित्यतृप्तस्य मुक्तस्य किमन्यैर्भोगसाधनैः ॥ ७४ ॥

नित्यतृप्तस्य सर्वज्ञताद्युपलक्षितनित्यतृप्तिमतो मुक्तस्य परममुक्तिमतः शिवयोगिन इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ७४ ॥

सच्चिदानन्द स्वरूप मुक्तिए परम तृप्ति थिक । नित्य-तृप्त मुक्तव्यक्तिकेँ आन भोगसाधनसँ की भए सकैछ ? ७४ ॥

अथ तस्य परमुक्तस्यान्तर्बहिः किमपि कर्म नास्तीति निरूपयति–

न बाह्यं कर्म तस्यास्ति न चान्तर्नैव कुत्रचित् ।
शिवैक्यज्ञानरूढस्य देहभ्रान्तिं विमुञ्चतः ॥ ७५ ॥

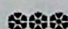
स्वरूपहानिवृद्धिव्यतिरेकेण सजातीयसमानसमरसभावेन शिवैक्यज्ञानमारुह्य देहभ्रान्तिं विमुञ्चतस्तस्य सेव्यप्रसादिनो बहिरङ्गविधीयमानपूजाकर्म नास्ति, अन्तश्चान्तरङ्गे विधीयमानध्यानादिकर्म नास्ति, कुत्रचित् क्वापि बिन्दुतिरोभावमलमायाद्युपलक्षितकर्मपाशोऽपि नास्तीत्यर्थः ॥ ७५ ॥

देहक भ्रमकेँ छोड़निहार शिवैक्यज्ञानसम्पन्न मुक्त पुरुषकेँ कतहु ने बाह्य कर्म आ ने आन्तरिके कर्म करणीय होइत छनि ॥ ७५ ॥

अथ प्रसादिस्थलं समापयति–

न कर्मबन्धे न तपोविशेषे
न मन्त्रयोगाभ्यसने तथैव ।
ध्याने न बोधे च तथात्मतत्त्वे
मनःप्रवृत्तिः परयोगभाजाम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते वीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ प्राणलिङ्गिस्थलविषयकनवविधलिङ्गप्रसङ्गो नामाष्टादशः परिच्छेदः ॥ १८ ॥



परयोगभाजां सर्वोत्कृष्टपरशिवयोगभाजां सेव्यप्रसादिनां मनःप्रवृत्तिश्चित्तवृत्तिर्मन्त्रयोगाभ्यसनेऽजपागायत्रीरूपसोऽहंमन्त्रयोगाभ्यासे न नास्तीत्यर्थः । तथैव कर्मबन्धे षट्कर्मबन्धत्रयरूपहठयोगेऽपि न, तपोविशेषे योगानां विशिष्टराजयोगेऽपि न, ध्यानेऽनाहतब्रह्मध्यानरूपलययोगेऽपि न, किन्तु तथात्मतत्त्वे

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तद्योगचतुष्टयचैतन्यस्वरूपे बोधे स्वस्वरूपज्ञाने मनःप्रवृत्तिः स्यादित्यर्थः । अयं भावः—देशिकोपदेशेनापरदेहपाणिपादगुह्यानि प्रथमं संशोध्य बन्धयित्वा तदनन्तरं परापश्यन्तीमध्यमावैखरीस्वरूपरुद्रविष्णुब्रह्मेन्द्रादिदैवतलयराजहठमन्त्रयोगात् क्रमेण पूर्वकायस्य कर्णाक्षिनासारसनासु संयोज्यानन्तरं पूर्वापरकायकीलकभूतबिन्दुमाया-कमार्यरूपवाक्त्वचौ निश्चलीकृत्य सर्वयोगज्ञानजननक्षेत्रभूताविमुक्तक्षेत्रे परब्रह्मपरशिवपरलिङ्गापरपर्यायनामभिः संसेव्य स्वस्वरूपसेवितसेव्यप्रसादीत्यर्थः । एतल्लिङ्गत्रयं प्रणलिङ्गिनोऽङ्गत्रयस्य क्रमेण सम्बन्धयेदिति सेव्यप्रसादि-स्थलम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां प्राणलिङ्गिस्थल-विषयकनवविधलिङ्गप्रसङ्गो नामाष्टादशः परिच्छेदः ॥ १८ ॥



जे परयोगकेँ प्राप्त कएने छथि हुनक मनक प्रवृत्ति कर्मबन्धन, विशेष तपस्या, मन्त्रयोगक अभ्यास, ध्यान ओ बोधमे नहि होइत छनि, किन्तु आत्मतत्त्वमे अवश्य होइत छनि ॥ ७६ ॥

एहि तरहेँ श्री सिद्धान्तशिखामणिक विद्यावाचस्पति डॉ० शशिनाथ झाक कंएल प्रबोधिनी व्याख्यामे प्राणलिङ्गस्थलविषयक-नवविधलिङ्गप्रसङ्ग-नामक अठारहम परिच्छेद समाप्त ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकोनविंशः परिच्छेदः

अथ शरणस्थलम्

(अथ दीक्षापादोदकस्थलम्)

अथगस्त्य प्रश्नः, अगस्त्य उवाचेति–

स्थलभेदाः समाख्याताः प्राणलिङ्गिस्थलाश्रयाः ।
कथय स्थलभेदं मे शरणस्थलसंश्रितम् ॥ १ ॥

स्पष्टम् ॥ १ ॥

शरणस्थल– अगस्त्य बजलाह– हे आचार्य ! अपने प्राणलिङ्गी स्थलक मुख्य स्थलभेद त कहल । आब शरणस्थलक भेद सभ कहल जाए ॥ १ ॥

अथ श्रीरेणुकस्य उत्तरं वक्ति रेणुक उवाचेति–

शणस्थलमाश्रित्य स्थलद्वादशकं मया ।
उच्यते नाम सर्वेषां स्थलानां शृणु तापस ॥ २ ॥

स्थलानामवान्तरस्थलनामित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २ ॥

श्री रेणुकाचार्य बजलाह– हे तपस्वी ! शरणस्थलक बारह स्थल अछि । हम ओहि सबहक नाम कहि रहल छी, सुनू ॥ २ ॥

अथ तानि स्थलानि सूत्रत्रयेणोद्दिशति–

दीक्षापादोदकं पूर्वं शिक्षापादोदकं ततः ।
ज्ञानपादोदकं चाथ क्रियानिष्पत्तिकं ततः ॥ ३ ॥
भावनिष्पत्तिकं चाथ ज्ञाननिष्पत्तिकं ततः ।
पिण्डाकाशस्थलं चाथ बिन्द्वाकाशस्थलं ततः ॥ ४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाकाशस्थलं चाथ क्रियायाश्च प्रकाशनम् ।
भावप्रकाशनं पश्चात् ततो ज्ञानप्रकाशनम् ।
स्वरूपं पृथगेतेषां कथयामि यथक्रमम् ॥ ५ ॥

स्पष्टम् ॥ ३-५ ॥

ताहिमे दीक्षापादोद्क, शिक्षापादोदक, ज्ञानपादोक, क्रियानिष्पत्ति, भावनिष्पत्ति, ज्ञाननिष्पत्ति, पिण्डाकाश, बिन्दुआकाश, महाकाश, क्रियाप्रकाश, भावप्रकाश तथा ज्ञानप्रकाश स्थल अछि । आब एहि सबहिक फूट-फूट स्वरूपकेँ क्रमसँ कहि रहल छी ॥ ३-५ ॥

अथ– 'आचार्यः पूर्वरूपम् अन्तेवास्युत्तररूपं विद्यासन्धिः' इति श्रुत्युक्तप्रकारेण,

अस्मात् प्रविततताद् बन्धात् परसंस्थनिरोधकात् ।
दीक्षैनं मोचयेत् पूर्वं शैवं धाम नयत्यपि ॥

इति स्वायम्भुववचनानुसारेण चास्य सेव्यप्रसादिनः सुलभदीक्षापादोदकस्थलं निरूपयति–

दीक्षायाऽपगतद्वैतं यज्ज्ञानं गुरुशिष्ययोः ।
आनन्दस्यैक्यमेतेन दीक्षापादोदकं स्मृतम् ॥ ६ ॥

गुरुशिष्ययोः सेव्यगुरुशिष्ययोरानन्दस्यैक्यं निजानन्दैकीभूतं दीक्षयाऽपगतद्वैतं ज्ञानादानमलक्षयरूपचित्क्रियादीक्षानिवारितद्वैतं यज्ज्ञानमस्ति, एतेनानेन ज्ञानेन दीक्षापादोदकं सेव्यप्रसादिनः सुलभभूतदीक्षापादोदकमिति स्मृतम् । शिवदीक्षागतद्वैतज्ञानवद्गुरुशिष्यनिजानन्दैक्यमेव दीक्षापादोदकमित्यर्थः ॥ ६ ॥

दीक्षापदोदक स्थल– दीक्षासँ द्वैतरहित ज्ञान एवं ताहिसँ गुरु-शिष्यक आनन्दक जे ऐक्य तकरा दीक्षापादोदक कहल गेल अछि ॥ ६ ॥

अथ दीक्षासञ्जातगुरुशिष्यैक्यमेव दीक्षापादोदकमिति पक्षान्तरेणाह–

अथवा पादशब्देन गुरुरेव निगद्यते ।
शिष्यश्चोदकशब्देन तयोरैक्यं तु दीक्षया ॥ ७ ॥

अथवा तन्न चेत्, पादशब्देन श्रीगुरुरेव कथ्यते, उदकशब्देन शिष्यो निगद्यते, दीक्षया निजकरसञ्जातशिष्यमूर्ध्नि घ्राणस्वरूपदीक्षाविशेषेण तयोरैक्यं तु पादोदकशब्दवाच्यगुरुशिष्यैक्यं दीक्षापादोदकमिति स्मृतमित्यर्थः ॥ ७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथवा 'पाद' (चरण) शब्दसँ गुरु कहल जाइत छथि आ 'उदक' (जल) शब्दसँ शिष्य बुझल जाइत छथि । एहि दुनूक ऐक्य दीक्षासँ होइत अछि ॥ ७ ॥

अथ दीक्षाप्रकाशितसत्यज्ञानानन्दैक्यमेव दीक्षापादोदकमिति पक्षान्तरेण कथयति–

परमानन्द एवोक्तः पादशब्देन निर्मलः ।
ज्ञानं चोदकशब्देन तयोरैक्यं तु दीक्षया ॥ ८ ॥

पादशब्देन मलरहितपरब्रह्मानन्द उच्यते, उदकशब्देन ब्रह्मस्वरूपज्ञानमुच्यते, दीक्षया हृत्कमलमध्यस्थचिद्दीक्षया तयोरैक्यं तु, 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'[1] इति श्रुतेः । धर्मधर्मिस्वरूपानन्दज्ञानैक्यं दीक्षापादोदकमिति स्मृतमित्यर्थः ॥ २ ॥

'पाद' शब्दसँ निर्मल परमानन्द कहल गेल अछि एवं 'उदक' शब्दसँ ज्ञानक निर्वचन होइत अछि । एहि दुनूक ऐक्य दीक्षासँ होइत अछि ॥ ८ ॥

अथ–

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ॥[2]

इति ब्रह्मोपनिषद्वाक्यानुसारेण तज्ज्ञानानन्दमेव विशेषयति–

परसंवित्प्रकाशात्मा परमानन्दभावनाम् ।
अधिगम्य महायोगी न भेदं क्वापि पश्यति ॥ ९ ॥

महायोगी तत्पादोदकदीक्षासम्पन्नः शिवयोगी परसंवित्प्रकाशात्मा परब्रह्मस्वरूपज्ञानप्रकाशस्वरूपवान् सन् परमानन्दभावनाम् अधिगम्य भेदं नित्यपरिपूर्णज्ञानानन्दभेदं क्वापि न पश्यति, तद्बाह्यदेशाभावादिति ॥ ९ ॥

महायोगी परसंवित् प्रकाश भए परमानन्दक भावनाकेँ पाबि कतहु भेद नहि देखैत छथि ॥ ९ ॥

अत एव नान्यत् काङ्क्षतीत्याह–

देशकालाद्यवच्छेद-विहीनं नित्यनिर्मलम् ।
आनन्दं प्राप्य बोधेन नान्यत् काङ्क्षति संयमी ॥ १० ॥

---

१. बृ०उ० ३।९।२८ २. तै०उ० २।४।९

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संयमी शिवयोगी देशकालद्यवच्छेदविहीनं देशकालाकारेषु विच्छेद-राहित्येन विद्यमानं नित्यनिर्मलमानन्दं ब्रह्मानन्दं बोधेन ब्रह्मज्ञानस्वरूपेणैव प्राप्य अन्यन्न काङ्क्षति, तद्व्यतिरिक्तवस्त्वन्तराभावादिति ॥ १० ॥

संयम (ध्यान, धारणा, समाधि) कएनिहार शिवयोगी देश-काल आदिक सीमासँ परे निर्मल आनन्दकेँ बोधसँ प्राप्त कए कोनो आन वस्तुक इच्छा नहि करैत छथि ॥ १० ॥

अथ दीक्षापादोदकस्थलं समापयति–

ज्ञानामृतमपि स्वच्छं गुरुकायैकसम्भवम्[1] ।
आस्वाद्य रमते योगी संसारामयवर्जितः ॥ ११ ॥

गुरुकृपोद्भूतं निर्मलं ब्रह्मज्ञानामृतमास्वाद्य दीक्षापदोदकसम्पन्नः शिवयोगी भवरोगमुक्तः सन् स्वस्वरूपे क्रीडत इत्यर्थः ॥ ११ ॥

गुरुक कृपामात्रसँ प्राप्त अतिनिर्मल ज्ञानामृतक स्वाद लए योगी संसाररूपी रोगसँ रहित भए आत्मस्वरूप अपनामे रमण करैत छथि ॥ ११ ॥

इति दीक्षापादोदकस्थलम्

अथ शिक्षापादोदकस्थलम्

अथ–

मायामयमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ।
विकल्पो विनिवर्तेत कल्पितो यदि केनचित् ॥
उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते[1] ॥

इति मुण्डकश्रुत्यनुसारेण तद्दीक्षापादोदकसम्पन्नस्य शिवयोगिनः शिक्षापादोदकं सूत्रद्वयेन कथयति–

गुरुशिष्यमयं ज्ञानं शिक्षा योगिनमीर्यते ।
तयोः समरसत्वं हि शिक्षापादोदकं स्मृतम् ॥ १२ ॥

या शिक्षा गुरुशिष्यमयं ज्ञानं पूर्ववत्पादोदकशब्दवाच्यगुरुशिष्य-योस्तन्मयीभूतज्ञानं योगिनं तद्दीक्षापादोदकसम्पन्नशिवयोगिनम् ईर्यते प्रेरयति, तयोस्तच्छिक्षाज्ञानयोः समरसत्वं हि सामरस्यं हि शिक्षापादोदकमिति स्मृतमित्यर्थः ॥ १२ ॥

---

१. मां०का० ३।१७

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिक्षापादोदक स्थल– गुरुशिष्यक एकरूपता ओ ज्ञानक मानवस्वरूप शिक्षा शिवयोगीकेँ प्रेरणा दैत छनि । एहि ज्ञान ओ शिक्षाक समरसताकेँ शिक्षापादोदक कहल गेल अछि ।। १२ ।।

अथैवंरूपज्ञानामृतं कैः केन कस्माल्लभ्यत इत्यत्राह–

मथिताच्छास्त्रजलधेर्युक्तिमन्थनवैभवात्[1] ।
गुरुणा लभ्यते बोधसुधा सुमनसां गणैः ।। १३ ।।

युक्तिमन्थानवैभवाद् युक्तिरूपमन्थनदण्डसामर्थ्याद् मथितात् शास्त्रजलधेर्निगमागमात्मकवीरशैवशास्त्रसमुद्राद् गुरुणा शिक्षाचार्येण बोधसुधा शिवाद्वैतज्ञानामृतं सुमनसां गणैर्दीक्षापादोदकस्वीकारेण शुद्धचित्तानां शिवयोगिनां समूहैर्लभ्यते, यथा सुरगुरोः समुद्रमथनविचारेण सुराणां सुधा प्राप्ता, तथेत्यर्थः ।। १३ ।।

तर्करूपी मन्थनदण्डसँ गुरुद्वारा मथित निगम एवं आगम रूपी समुद्रसँ बहराएल शिवाद्वैतक बोधरूपी अमृतकेँ विद्वानलोकनि प्राप्त करैत छथि ।। १३ ।।

अथ तस्य शिवयोगिनो धर्मधर्मिस्वरूपचिदानन्दयोस्तत्त्वं सूत्रत्रयेण विशेषयति–

ज्ञानचन्द्रसमुद्भूतां परमानन्दचन्द्रिकाम् ।
पश्यन्ति परमाकाशे मुक्तिरात्रौ महाधियः ।। १४ ।।

महधियः सूक्ष्मदृशः शिवयोगिनो मुक्तिरात्रौ परमुक्तिलक्षणगाढान्धकारवति परमाकाशे परब्रह्मणः सद्रूपहृदयाकाशे ज्ञानचन्द्रसमुद्भूतां चिच्चन्द्रभित्तौ आविर्भूतां परमानन्दमयीं चन्द्रिकां ज्योत्स्नां पश्यन्ति, स्वस्वरूपत्वेन परामृशन्तीत्यर्थः ।। १४ ।।

महाबुद्धिमान् शिवयोगी ज्ञानरूपी चन्द्रसँ बहराइत परमानन्दरूपी चन्द्रिकाकेँ मुक्तिरूपी रातिक परमाकाशमे देखैत छथि ।। १४ ।।

अथैवमपारपरमानन्दचन्द्रिकायां दृष्टायामन्यद् द्रष्टव्यं श्रोतव्यं च नास्तीत्याह–

---

१. तुलनीय– घृतमिव पयसि निगूढं भूते च वसति विज्ञानम् ।
सततं मन्थयितव्यं मनसा मन्थानभूतेन ।
(ब्र०बि०उ० २०)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दृष्टे तस्मिन् परानन्दे देशकालादिवर्जिते ।
द्रष्टव्यं विद्यते नान्यच्छ्रोतव्यं ज्ञेयमेव वा ॥ १५ ॥

देशकालाद्यखण्डिते तस्मिन् परानन्दे दृष्टे सति, अन्यद् द्रष्टव्यं चक्षुषा द्रष्टव्यं, श्रोतव्यं श्रवणेन श्रोतव्यं, ज्ञेयमेव वा ज्ञातुं योग्यं वा न किमपि विद्यते, सर्वस्यापि पदार्थस्य तत्कार्यत्वेन तदभिन्नत्वादित्यर्थः ॥ १५ ॥

देश कालादिक सीमासँ परे, ओहि परमानन्दकेँ देखला पर ने कोनो वस्तु देखबाक, ने सुनबाक आ ने जनबेक रहि जाइत छैक ॥ १५ ॥

अथ नान्यच्च काङ्क्षतीत्याह–

आत्मानन्देन तृप्तस्य का स्पृहा विषये सुखे ।
गङ्गाजलेन तृप्तस्य कूपतोये कुतो रतिः ॥ १६ ॥

आत्मानन्देन निजानन्देनेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १६ ॥

आत्मानन्दसँ तृप्त व्यक्तिकेँ विषय वा सुखमे कोन इच्छा रहि सकैछ ? गंगाजलसँ तृप्त व्यक्तिकेँ कूपक जलमे स्पृहा कोना रहतैक ? ॥ १६ ॥

ननु निजानन्देन तृप्तस्य परयोगिनः परिमितिरस्ति न वेत्यत्राह–

यस्मिन्नप्राप्तकल्लोले सुखसिन्धौ निमज्जति ।
सामरस्यान्महायोगी तस्य सीमा कुतो भवेत् ॥ १७ ॥

स्पष्टम् ॥ १७ ॥

राग द्वेषादिरूप कल्लोल (लहरि)सँ रहित जाहि सुखरूपी समुद्रमे महायोगी समरसतासँ डुमैत छथि ताहि सुखक सीमा कतए भए सकैछ ? १७ ॥

नन्वस्य योगिनः कदाचित् कुत्रचिद्वा भेदभ्रान्तिः सम्भवति किमित्यत्र वदन् शिक्षापादोदकस्थलं समापयति–

गुरुप्रसादचन्द्रेण निष्कलङ्केन चारुणा ।
यन्मनःकुमुदं नित्यबोधितं तस्य को भ्रमः ॥ १८ ॥

नित्यबोधितं निरन्तरविकसितमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १८ ॥

निष्कलङ्क सुन्दर गुरुप्रसादरूपी चन्द्रसँ जे शिष्यक मनरूपी कुमुदक फूल नित्य प्रकाशित रहैत अछि ताहि मनमे कोन प्रकारक भ्रम भए सकैछ ? ॥ १८ ॥

इति शिक्षापादोदकस्थलम्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ ज्ञानपादोदकस्थलम्

अथ–

नाध्यक्षं नापि तल्लैङ्गं न शब्दमपि शाङ्करम् ।
ज्ञानमाभाति विमलं सर्वथा सर्ववस्तुषु ॥

इति मृगेन्द्रवचनानुसारेण तच्छिक्षापादोदकसम्पन्नस्य सुलभं ज्ञानपादोदकं प्रकाशयति–

तदैक्यसम्पदानन्द-ज्ञानं ज्ञानगुरुर्मतः ।
तत्सामरस्यं शिष्यस्य ज्ञानपादोदकं विदुः ॥ १९ ॥

आनन्दज्ञानम् 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'[1] इति श्रुतिप्रसिद्धपादोदकशब्दवाच्यानन्दज्ञानमेव ज्ञानगुरुरिति मतः सम्मतः, तदैक्यसम्पदा तदानन्दज्ञानयोरैक्यसम्पत्त्या तत्सामरस्यं तयोः समरसभावः शिष्यस्य शिक्षापादोदकसम्पन्नस्य शिवयोगिनो ज्ञानपादोदकं सद् विदुर्जानन्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥

ज्ञानपादोदक स्थल– आनन्द ओ ज्ञानक ऐक्यसँ आनन्दरूप ज्ञानकेँ ज्ञानरूप मानल गेल अछि । ओहि ज्ञानगुरुसँ शिष्यक सामरस्यकेँ ज्ञानपादोक कहल गेल अछि ॥ १९ ॥

अथ तज्ज्ञानचन्द्रप्रकाशं सूत्रत्रयेणोपदिशति–

अविद्याराहुनिर्मुक्तो ज्ञानचन्द्रः सुनिर्मलः ।
प्रकाशते पराकाशे परानन्दमहाद्युतिः ॥ २० ॥

अज्ञानलक्षणराहुस्पर्शरहितोऽत्यन्तनिर्मलो मलवासनालेशतोऽप्यसंस्पृष्ट इति यावत्, ज्ञानचन्द्रः शिवाद्वैतज्ञानचन्द्रः परानन्दमहाद्युतिः परमानन्दरूप- महाकला-प्रकाशवान् सन् पराकाशे सर्वोत्कृष्टहृदयाकाशे प्रकाशते राजत इत्यर्थः ॥ २० ॥

अविद्यारूपी राहुसँ छूटल सुनिर्मल परानन्द अतिशय चमचमाइत ज्ञानचन्द्र पराकाशमे प्रकाशित अछि ॥ २० ॥

तर्ह्ययं ज्ञानचन्द्रः किं वर्धयतीत्यत्राह–

अज्ञानमेघनिर्मुक्तः पूर्णज्ञानसुधाकरः ।
आनन्दजलधेर्वृद्धिमनुपश्यन् विभासते ॥ २१ ॥

---

१. बृ०उ० ३।९।२८

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाहं शिव इत्यज्ञानावरणनिर्मुक्तोऽण्डरसन्यायेनाहमिति विश्वतः परिपूर्णज्ञानचन्द्रः स्वतन्त्रतालक्षणनिजानन्दसमृद्धस्य वृद्धिमनुपश्यन् विभातीत्यर्थः ॥ २१ ॥

अज्ञानरूपी मेघसँ निर्मुक्त पूर्णज्ञानरूपी चन्द्रमा आनन्दरूपी समुद्रक वृद्धिकेँ देखैत अतिशय चमकैत अछि ॥ २१ ॥

अथैवंविधज्ञानचन्द्रोदये के किं पश्यन्तीत्यत्राह–

ज्ञानचन्द्रोदये जाते ध्वस्तमोहतमोभराः ।
पश्यन्ति परमां काष्ठां योगिनः सुखरूपिणीम् ॥ २२ ॥

शिवज्ञानचन्द्रोदये जाते सति विनष्टाज्ञानान्धकारभराः शिवयोगिनः परमानन्दस्वरूपिणीं परमां काष्ठां स्वस्वरूपस्थितिं पश्यन्तीत्यर्थः ॥ २२ ॥

ज्ञानरूपी चन्द्रमाक उदय भेला पर मोहरूपी अन्हारकेँ नाश कएनिहार योगी सुखरूपी पराकाष्ठा (आनन्दक अन्तिम सीमा)केँ देखैत छथि ॥ २२ ॥

एवं चन्द्रत्वेन वर्णितं शिवज्ञानं सूर्यत्वेन वर्णयन् विचित्रं दर्शयति–

मायारजन्या विरमे बोधसूर्ये प्रकाशिते ।
निरस्तसर्वव्यापारश्चित्रं स्वपिति संयमी ॥ २३ ॥

लोके तावन्निशावसाने सूर्योदये जाते सति सर्वोऽपि लोको विनिद्रःसन् सव्यापारो भवति, मायारूपनिशावसाने चिदादित्ये प्रकाशिते सति संयमी योगिजनो निरस्तव्यापारः सन् स्वपितीति चित्रम् । उक्तोऽयमर्थः श्रीमदभगवद्गीतायाम्–

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥[१]

इति ॥ २३ ॥

मायारूपी रातिक विराम लेला पर ओ बोधरूपी सूर्यक प्रकाशित भेला पर संयमशील योगी अपन सब क्रियाकेँ त्यागि सूति रहैत अछि, निश्चिन्त भए परमानन्दलाभ करैत अछि, ई आश्चर्य थिक ॥ २३ ॥

अथ तस्य परानन्दाविर्भावस्तदेत्यत्राह–

अनाद्यविद्याविच्छित्ति-वेलायां परयोगिनः ।
प्रकाशते परानन्दः प्रपञ्चेन विना कृतः ॥ २४ ॥

---

१. भ०गी० २।६९

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनाद्यविद्याविच्छित्तिवेलायां मायारजन्या विरम एव प्रपञ्चेन विना कृतो निरुपाधिकपरमानन्दाविर्भाव इत्यर्थः ॥ २४ ॥

अनादि विद्याक निवृत्तिक समयमे योगीकेँ प्रपञ्चरहित परानन्दक भान होइत छनि ॥ २४ ॥

ननु शिवयोगिनः प्रपञ्च एव सन्तीति कथं निरुपाधिकानन्दाविर्भाव इत्यत्राह–

नित्यानन्दे निजाकारे विमले परतेजसि ।
विलीनचेतसां पुंसां कुतो विश्वविकल्पना ॥ २५ ॥

नित्यानन्दस्वरूपे विमले निर्मले निजाकारे निजस्वरूपवति परतेजसि चिरादित्ये विलीनचित्तानां पुंसां सत्पुरुषाणां शिवयोगिनां विश्वकल्पना कुतः ॥ २५ ॥

नित्यानन्द निजाकार निर्मल परमतेजमे जे व्यक्ति अपन चित्तकेँ विलीन कए देने छथि तनिका संसारक कल्पना कतएसँ होएतनि ? अर्थात् नहि होएतनि ॥ २५ ॥

अथ ज्ञानपादोदकसम्पन्नस्य शिवयोगिनः पूर्णानन्दस्य ब्रह्मादीनामप्यानन्दो न सम इति सूत्रद्वयेन कथयति–

कुतो ब्रह्मा कुतो विष्णुः कुतो रुद्रः कुतो रविः ।
साक्षात्कृतपरानन्द-ज्योतिषः साम्यकल्पना ॥ २६ ॥

ब्रह्मादीनामानन्दस्य साक्षात्कृतपरानन्दज्योतिषः शिवयोगिन आनन्दांश-लेशत्वादिति भावः, 'अस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुतेः, योगिशिवयोरभेदादिति ॥ २६ ॥

कतए ब्रह्मा, कतए विष्णु, कतए रुद्र ओ कतए सूर्य ? जे व्यक्ति परानन्दतेजक साक्षात्कार कएने छथि तनिक समानताक कल्पना नहि भए सकैछ ॥ २६ ॥

इममर्थमेव स्फुटयति–

अपरोक्षपरानन्द-विलासस्य महात्मनः ।
ब्रह्मविष्णवादयो देवा विशेषाः सुखबिन्दवः ॥ २७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महात्मनो ज्ञानपादोदकसम्पन्नस्य शिवयोगिन इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २७ ॥

अपरोक्ष परानन्दक विलाससँ युक्त महात्माकेँ जे सुख होइत छनि तकर बिन्दुक समान ब्रह्मा, विष्णु आदि बड़का-बड़का देवता छथि ॥ २७ ॥

अथ तज्ज्ञानानन्दमेव विशिष्य ज्ञानपादोदकस्थलं समापयति–

यन्मात्रासहितं लोके वाञ्छन्ति विषयं नराः ।
तदप्रमेयमानन्दं परमं को न वाञ्छति ॥ २८ ॥

नरा जना लोके इह लोके यन्मात्रासहितं यस्य चिदानन्दस्यांशेन सहितं विषयसुखं वाञ्छन्ति, तदप्रमेयं तस्य विषयज्ञानसुखस्य अप्रमेयमपरिमितं परानन्दं ब्रह्मानन्दं को न वाञ्छति, सर्वेऽपि वाञ्छन्तीत्यर्थः ॥ २८ ॥

एहि संसारमे लोक जनिक एक अंश आनन्दकेँ चाहैत अछि ओहि परम अतुलनीय आनन्दकेँ के नहि चाहत ? २८ ॥

इति ज्ञानपादोदकस्थलम्

अथ क्रियानिष्पत्तिस्थलम्

अथ–

अद्वैतभक्तियुक्तस्य योगिनः सकला क्रिया ।
आस्ते दग्धपटन्यायात् क्रियामात्रं हि न क्रिया ॥

इति वीरतन्त्रवचनानुसारेण एष ज्ञानपादोदकसम्पन्न एव रज्जुसर्पन्यायेन कल्पितक्रियानिष्पत्तिमानिति क्रियानिष्पत्तिस्थलं विशदयति–

परकाये क्रियापत्तिः कल्पितैव प्रकाशते ।
रज्जौ भुजङ्गवद् यस्मात् क्रियानिष्पत्तिमानयम् ॥ २९ ॥

परब्रह्मकाये ज्ञानपादोदकसम्पन्ने शिवयोगिनि क्रियानिष्पत्ती रज्जौ सर्पत्ववद् यस्मात् कारणात् कल्पितैव प्रकाशते, तस्मादयं ज्ञानपादोदकसम्पन्नः शिवयोगी क्रियानिष्पत्तिमानित्यर्थः ॥ २९ ॥

क्रियानिष्पत्ति स्थल– परकाय (परब्रह्म) स्वरूप शरीरवाला शिवयोगीमे क्रिया कल्पिते भेल प्रकाशित होइत अछि । तेँ डोरी मे सापक बुद्धिक समान ई योगी क्रिया कएनिहार होइत छथि । वस्तुतः ई निष्क्रिये छथि ॥ २९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत एव ज्ञानिनः कर्मफलं नास्तीति षड्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

ज्ञानिनां यानि कर्माणि तानि नो जन्महेतवः ।
अग्निर्दग्धानि बीजानि यथा नाङ्कुरकारणम् ॥ ३० ॥

ज्ञानिनां कर्मबीजानि ज्ञानाग्निदग्धानीति वह्निदग्धबीजवन्नाङ्कुरकारणमित्यर्थः ॥ ३० ॥

ज्ञानीक जे कर्म होइत छनि से जन्म लेबाक कारण नहि बनैत छनि । जेना आगिमे जरल बीज अंकुरक कारण नहि भए सकैछ ।। ३० ।।

अस्मिन्नर्थे– 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मासात्कुरुतेऽर्जुन"[1] इति भगवदुक्तिः । तस्माद् ज्ञानिनः कृतेनापि कर्मणा प्रयोजनं नास्तीत्याह–

कर्मणा किं कृतेनापि ज्ञानिनो निरहङ्कृतेः ।
विक्रिया प्रतिबिम्बस्था किं करोति हिमद्युतेः ॥ ३१ ॥

अहं करोमीति मूलाहङ्कारशून्यस्य शिवज्ञानिनः कृतेनापि कर्मणा प्रयोजनं नास्ति, यथा प्रतिबिम्बस्थविकारो बिम्बरूपस्य चन्द्रस्य नास्ति, ज्ञानिनोऽप्रतिबिम्बचैतन्यरूपत्वादिति भावः ॥ ३१ ॥

अहङ्कारशून्य ज्ञानीकेँ कएलो कर्मसँ की ? चन्द्रमाक प्रतिबिम्बमे होबएवाला विकार की कए सकैछ, किछु नहि ।। ३१ ।।

अथ ज्ञानिनि प्रतीयमाना क्रिया कल्पितेत्यत्र दृष्टान्तमाह–

चन्द्रस्य मेघसम्बन्धाद् यथा गमनकल्पना ।
तथा देहस्य सम्बन्धादारोप्या स्यात् क्रियात्मनः ॥ ३२ ॥

स्पष्टम् ॥ ३२ ॥

जेना मेघक सम्बन्धसँ चन्द्रमाक गति बुझाइत अछि तहिना देहक संग सम्बन्धसँ आत्मा क्रियाशील बूझि पड़ैत अछि । वस्तुतः आत्मा निष्क्रिय ओ निश्चल अछि ।। ३२ ।।

अथ कर्म कुर्वतोऽपि ज्ञानिनः कर्मलेपो नास्तीत्यत्र दृष्टान्तमाह–

ज्ञानी कर्मनिरूढोऽपि लिप्यते न क्रियाफलैः ।
घृतादिना यथा जिह्वा भोक्त्री चापि न लिप्यते ॥ ३३ ॥

---

१. भ०गी० ४।३।७

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निरूढस्तत्पर इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३३ ॥

कर्ममे लगलो ज्ञानी क्रियाक फलसँ प्रभावित नहि होइत छथि जेना घी पूआ आदिक भोग करएवाली जीह भोगक फल नहि पबैत अछि ।। ३३ ।।

ननु जिह्वाया जलतत्त्वमयत्वेनाङ्गुल्यादिवद् घृतादिलेपो नास्ति, ज्ञानिनः कस्मात् कर्मफललेपो नास्तीत्यत्र चाह–

निरस्तोपाधिसम्बन्धे जीवे या या क्रियास्थितिः ।
सा सा प्रतीतिमात्रेण निष्फला चात्र लीयते ॥ ३४ ॥

निवृत्तमूलाहङ्कारसम्बन्धे चिद्रूपे जीवन्मुक्ते या या क्रियास्थितिरस्ति, सा सा दग्धरज्जुन्यायेन प्रतीतिमात्रेण स्थित्वा निष्फला सती स्वात्मन्येव लीयत इत्यर्थः । कर्मलेपस्याहङ्कारो मूलमिति शिवज्ञानिनस्तदभवात् कर्मलेपो नास्तीति भावः ॥ ३४ ॥

अहङ्कार आदि उपाधिसँ रहित जीवमे जे जे क्रिया होइत अछि से से प्रतीतिमात्र कराए निष्फल भए आत्मामे विलीन भए जाइछ ।। ३४ ।।

ननु ज्ञानिनः कर्मलेपो यथा नास्तीत्युच्यते, तथा तस्य कर्मैव नास्तीति कुतो नोच्यत इत्यत्राह–

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि न निष्कर्मास्ति कश्चन ।
स्वभावो देहिनां कर्म ज्ञानिनां तत्तु निष्फलम् ॥ ३५ ॥

अनेन रज्जुभुजङ्गन्यायेन शिवयोगिनि क्रियानिष्पत्तिरारोपितेत्येतत्परास्तम्, कर्म देहिनां स्वभाव इत्युक्तत्वादिति ॥ ३५ ॥

चलैत, ठाढ़ होइत ओ सुतैत केओ व्यक्ति विना क्रियाक नहि अछि, कियेक त शरीरधारीक स्वभाव थिक कर्म करब । किन्तु ज्ञानीक कर्म निष्फल होइत छनि ।। ३५ ।।

अथ क्रियानिष्पत्तेः सर्वदेहस्वभावत्वेऽपि ज्ञानिनः कर्मलेपो नास्तीति वदन् क्रियानिष्पत्तिस्थलं समापयति–

परिपूर्णमहानन्द–भाविनः शुद्धचेतसः ।
न भवेत् कर्मकार्पण्यं नानाभोगफलप्रदम् ॥ ३६ ॥

निर्मलान्तःकरणस्य नित्यपरिपूर्णपरानन्दानुभाविनः शिवयोगिनो नानाविधभोगफलप्रदं पुण्यपापलक्षणकर्मपीडनं न भवेन्न स्यादित्यर्थः ॥ ३६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जे शुद्धचित्तवाला एवं परिपूर्ण महानन्दक भावनासँ ओतप्रोत छथि तनिका अनेक भोगात्मक फलदायक कर्म दुःखदायक नहि होइत छनि ।। ३६ ।।

इति क्रियानिष्पत्तिस्थलम्

अथ भावनिष्पत्तिस्थलम्

अथ–

चिरेण साध्यमानस्य भावुकैर्विगतक्रमैः ।
स्थिरभावो हि भावस्य भावनिष्पत्तिरुच्यते ॥

इति किरणतन्त्रवचनानुसारेण तत्क्रियानिष्पत्तिमान् शिवयोगी शुक्तिरजतन्यायेन भावनिष्पत्तिमानिति प्रतिपादयति–

भावः प्रतीयमानोऽपि परकाये तु कल्पितः ।
शुक्तौ रजतवद् यस्माद् भावनिष्पत्तिमानयम् ॥ ३७ ॥

परकाये क्रियानिष्पत्तिमति चित्काये प्रतीयमानो भावो यस्मात् शुक्तिरजतवत् कल्पितः, तस्मादयं क्रियानिष्पत्तिमान् शिवयोगी भावनिष्पत्तिमानित्यर्थः ॥ ३७ ॥

भवानिष्पत्ति स्थल– परकाय (चित्स्वरूप शरीरधारी) योगीक भीतर प्रतीत होअएवाला भाव कल्पिते थिक । ई शुक्तिमे रजतक भाँति भ्रमात्मक थिक । तेँ योगी भावनिष्पत्तिवाला होइत छथि ।। ३७ ।।

अथ ज्ञानयोगिनो भावसम्बन्धाभावेऽपि सच्चिदानन्दाकारे परशिवे भावः स्थापनीय इति पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

भावेन नास्ति सम्बन्धः केवलज्ञानयोगिनः ।
तथापि भावं कुर्वीत शिवे संसारमोचके ॥ ३८ ॥

स्पष्टम् ॥ ३८ ॥

यद्यपि केवल ज्ञानयोगीकेँ भावक संग कोनो सम्बन्ध नहि होइत छनि तथापि ओ संसारबन्धनमोचक शिवक भावना करैत रहथि ।। ३८ ।।

ननु परिपूर्णज्ञानिनः किं भावेनेत्यत्राह–

परिपूर्णप्रबोधेऽपि भावं शम्भौ न वर्जयेत् ।
भावो हि निहितस्तस्मिन् भवसागरतारकः ॥ ३९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परिपूर्णसदानन्दबोधस्वरूपे शम्भौ भावं न वर्जयेत् । कुतः ? इत्यत्राह–तस्मिन् शम्भौ स्थापितो भावः संसारसागरतारक इति हि प्रसिद्ध इत्यर्थः ॥ ३९ ॥

पूर्ण प्रबोध भए गेलो पर शिवयोगी शम्भुमे भाव करब कें नहि छोड़थि । हुनकामे विहित भाव संसारसागरसँ पार करएवाला थिक ॥ ३९ ॥

अनेनास्य भावस्यार्थक्रियाकारित्वेन शुक्तिरजतवैलक्षण्यं सूचितम् । तस्माच्छम्भौ भावः स्थिरीकरणीय इति भावः । तर्हि स भावो नित्यः किमित्यत्राह–

निवर्त्य जन्मजं दुःखं भावः शैवो निवर्तते ।
यथा काष्ठादिकं दग्ध्वा स्वयं शाम्यति पावकः ॥ ४० ॥

जन्मजं दुःखं भवरोगमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् । अनेन नित्यमुक्तो भवति ॥ ४० ॥

जन्महेतुक दुःखक निवारण कएलाक बाद शैवभाव तहिना शान्त भए जाइछ जेना काठ आदिकें जराए अग्नि स्वतः शान्त भए जाइत छथि ॥ ४० ॥

अथ भवरोगनिवृत्त्यनन्तरं भावस्य प्रयोजनं नास्ति वेत्यत्राह–

प्रकाशिते शिवानन्दे तद्भावैः किं प्रयोजनम् ।
सिद्धे साध्ये चिरेणापि साधनैः किं प्रयोजनम् ॥ ४१ ॥

भवरोगनिवृत्त्यनन्तरं नित्यानन्दे प्रकाशिते सति शिवभावैः प्रयोजनं नास्ति । तत्र दृष्टान्तः –बहुकाले साध्ये सिद्धे सति साधनैर्यथा प्रयोजनं नास्ति, तथेत्यर्थः ॥ ४१ ॥

शिवानन्दक प्रकाशित भेला पर हुनक भाव (आराध्य-आराधकभाव)सँ की प्रयोजन ? बहुत काल बितलो पर साध्यक सिद्ध भेला पर साधनक की प्रयोजन ? ॥ ४१ ॥

तर्हि भावलयानन्तरं योगी कथं भासत इत्यत्राह–

एकीकृते शिवे भावे ज्ञानने सह संयमी ।
विस्मितात्मसमावेशः शिवभावे विभासते ॥ ४२ ॥

कार्यनाशः कारणात्मनाशस्थितिरेवेति भावे वृत्तिज्ञानेन सह शिवैकलोलीभूते सति भावनिष्पत्तिमान् शिवयोगी आश्चर्यसङ्कल्पितस्वस्वरूपसमावेशवान् सन् शिवोऽहमिति भावे प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ४२ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संयमी योगी ज्ञानक संग शिवभावनाक एक भेला पर अपन शिवसमावेशसँ आश्चर्यचकित भए शिवक रूपमे विशेषरूपेँ प्रकाशित होइत छथि ॥ ४२ ॥

अथ भावज्ञानयोरभेदमुपपाद्य भावनिष्पत्तिस्थलं समापयति–

न भावेन विना ज्ञानं न भावो ज्ञानमन्तरा ।
मोक्षाय कारणं प्रोक्तं तस्मादुभयमाश्रयेत् ॥ ४३ ॥

भावेन विना वृत्तिज्ञानं नास्ति, तेन वृत्तिज्ञानेन विना भावो नास्तीति भावज्ञानयोरन्योन्यकारणत्वं प्रोक्तम् । तस्मान्मोक्षाय तदुभयमाश्रयेदिति ॥ ४३ ॥

भावक बिना ज्ञान नहि ओ ज्ञानक विना भाव नहि होइत अछि । तेँ मोक्षक साधनस्वरूप एहि दुनूक आश्रयण करबाक चाही ॥ ४३ ॥

इति भावनिष्पत्तिस्थलम्

अथ ज्ञाननिष्पत्तिस्थलम्

अथ–

यथा मनः परे तत्त्वे लब्धलक्ष्यं विलीयते ।
तथा ह्यशेषविज्ञानं विनाशमुपगच्छति ॥

इति निश्वासकारिकानुसारेण सोऽयं भावनिष्पन्न एव स्वप्नवद् ज्ञाननिष्पत्तिमानिति कथयति–

ज्ञानस्य व्यवहारेऽपि ज्ञेयाभावात् स्वभावतः ।
स्वप्नवज्ज्ञाननिष्पत्त्या ज्ञाननिष्पन्न इत्यसौ ॥ ४४ ॥

व्यवहारे विश्वव्यावहारिकज्ञानस्य स्वभावतः स्थिरत्वेन ज्ञेयाभावाद् विषयाभावाद् असौ भावनिष्पत्तिमान् शिवयोगी अस्थिरस्वप्नसदृशज्ञाननिष्पत्त्या ज्ञाननिष्पत्तिमानिति प्रोच्यत इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

ज्ञाननिष्पत्ति स्थल– शिवयोगीकेँ व्यवहार दशोमे स्वभावसँ ज्ञेयक (जनबायोग्य विषयक) अभावक कारण ज्ञानक निष्पत्ति (उपयोग) स्वप्नक समान होइते छनि, तेँ ओ ज्ञाननिष्पन्न कहबैत छथि ॥ ४४ ॥

अथ तदेवोपपादयति–

स्वप्नजातं यथा ज्ञानं सह स्वार्थैर्निवर्तते ।
तथात्मनि प्रकाशे तु ज्ञानं ज्ञेयं निवर्तते ॥ ४५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वप्नोत्पन्नं ज्ञानं यथा स्वविषयैः सह निवर्तते, तथा स्वस्वरूपे प्रकाशिते सति जाग्रद्दशाज्ञानेन सह ज्ञेयं विश्वं निवर्तत इत्यर्थः ॥ ४५ ॥

जेना स्वप्नमे भेल ज्ञान अपन स्वार्थ (घट पट आदि)क संग निवृत्त भए जाइछ तहिना आत्मस्वरूपक प्रकाश भेला पर ज्ञान ओ ज्ञेय दुनू निवृत्त भए जाइत अछि ॥ ४५ ॥

ननु स्वरूपे प्रकाशिते ज्ञेयं कस्मान्निवर्तत इत्यत्राह–

परिपूर्णे महानन्दे परमाकाशलक्षणे ।
शिवे विलीनचित्तस्य कुतो ज्ञेयान्तरे कथा ॥ ४६ ॥

स्पष्टम् ॥ ४६ ॥

परिपूर्ण महान् आनन्दस्वरूप परमाकाश लक्षणवाला शिवमे विलीन चित्तवाला शिवयोगीक लेल दोसर ज्ञेयक की चर्चा ? ॥ ४६ ॥

ननु ज्ञाननिष्पत्तिसम्पन्नस्य शिवयोगिनो ज्ञानं कीदृशमित्यत्राह–

अखण्डानन्दसंवित्ति–स्वरूपं ब्रह्म केवलम् ।
मिथ्या तदन्यदित्येषा स्थितिर्ज्ञानमिहोच्यते ॥ ४७ ॥

ब्रह्म परशिवाख्यं ब्रह्म केवलाखण्डानन्दसंवित्स्वरूपम् । तदन्यद् तद्व्यतिरिक्तं मिथ्यैवेदमिति भासमानं जगज्जालं मृषेत्येषा स्थितिर्ज्ञानमिहोच्यते ज्ञाननिष्पत्तिस्थलं कथ्यत इत्यर्थः ॥ ४७ ॥

अखण्ड आनन्द ओ ज्ञानस्वरूप केवल ब्रह्मे सत्य छथि । हुनकासँ भिन्न सब असत्य थिक– एहन स्थितिकेँ एतए ज्ञान कहल जाइछ ॥ ४७ ॥

अथ विशेषलक्षणं दर्शयति–

सत्तात्मनाऽनुवृत्तं यद् घटादिषु परं हि तत् ।
व्यावर्तमाना मिथ्येति स्थितिर्ज्ञानमिहोच्यते ॥ ४८ ॥

'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्'[१] इति श्रुतेः सत्तात्मना सद्रूपब्रह्मणा परम्, अव्ययत्वात् परेषु घटादिषु अनुवृत्तमनुगतं यन्नामरूपमस्ति, तद् मिथ्येति व्यावर्तमाना निर्वायमाणा स्थितिरिह ज्ञानमित्युच्यत इत्यर्थः ॥ ४८ ॥

जे घट पट आदिमे सत्ता स्वरूपसँ अनुवृत्त अछि, घट अछि, पट

---

१. छा०उ० ६।२।१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अछि आदि सबठाम विद्यमान अछि, से पर तत्त्व थिक (शिव थिकाह) आ जे दोसर पदार्थक व्यावृत्ति (निवृत्ति) करैत अछि (घटोऽस्ति सँ घटे, पट नहि) से मिथ्यास्थिति ज्ञान कहबैत अछि ॥ ४८ ॥

नन्वेवं चेदाविद्यकब्रह्माद्वैतापेक्षयास्य स्वतन्त्रशिवाद्वैतस्य को विशेष इत्यत्राह–

अकारणमकार्यं यदशेषोपाधिवर्जितम् ।
तद् ब्रह्म तदहं चेति निष्ठा ज्ञानमुदीर्यते ॥ ४९ ॥

यद्वस्तु 'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते'[१] इति श्वेताश्वतरश्रुतेः कार्यकारणशून्यं सदशेषोपाधिवर्जितम्, तद्ब्रह्म तत् तद्ब्रह्मैव, अहं च चिरादिदमिति भासमानं पाञ्चभौतिकम्, एवं चराचरमयं विश्वमिति निष्ठादार्ढ्यं ज्ञानमित्युत्कृष्टत्वेनोच्यत इत्यर्थः ॥ ४९ ॥

जे ने त कारण थिकाह ने कार्य,समस्त उपाधिसँ रहित छथि से ब्रह्म थिकाह आ हमहूँ सएह छी– एहन दृढ़ धारणा ज्ञान कहबैत अछि ॥ ४९ ॥

अथैवं चिद्रूपब्रह्मणि सामरस्यज्ञाननिष्पत्तिमतः शिवयोगिनः स्वातिरेकेण त्रिपुटीमयप्रपञ्चव्यवहारो नास्तीति वदन् ज्ञाननिष्पत्तिस्थलं समापयति–

ज्ञाताप्यहं ज्ञेयमिदमिति व्यवहृतिः कुतः ।
अभेदब्रह्मस्वारस्ये निरस्ताखिलवस्तुनि ॥ ५० ॥

'नेह नानास्ति किञ्चन'[२] इति श्रुतेर्निरस्तसमस्तप्रापञ्चिकभेदवदद्वितीय-ब्रह्मसामरस्ये सत्यहं ज्ञाता ज्ञेयमिदमिति व्यवहृतिः कुतः ? व्यवहारः कस्मात् ? न कस्मादपीत्यर्थः ॥ ५० ॥

सकल वस्तुकेँ निरस्त कएनिहार (एकमात्र) अभेद ब्रह्मक समरसतामे 'हम ज्ञाता छी', 'ई ज्ञेय थिक' – एहन व्यवहार कहाँसँ सम्भव भए सकैछ ? ॥ ५० ॥

इति ज्ञाननिष्पत्तिस्थलम्

---

१. श्वे०उ० ६।८

२. बृ०उ० ४।४।१९

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ पिण्डाकाशस्थलम्

अथ–

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥[1]

इत्यमृतबिन्दूपनिषद्वचनानुसारेण ज्ञाननिष्पत्तिसम्पन्नस्य सुलभीभूतपिण्डाकाशस्वरूपं सूत्रत्रयेण निरूपयति–

यथा पिण्डस्थ आकाशस्तथात्मा पूर्ण उच्यते ।
एतदर्थविवेको यः पिण्डाकाशस्थलं विदुः ॥ ५१ ॥

पूर्ण आकाशो यथा पिण्डे तिष्ठति, तथा पिण्डस्थ आत्मा पूर्ण उच्यते, अस्येति शेषः । अस्य ज्ञाननिष्पत्तिसम्पन्नस्य शिवयोगिन एतदर्थविवेकोऽस्ति, तत्पिण्डाकाशस्थलं सद् जानन्तीत्यर्थः ॥ ५१ ॥

पिण्डाकाश स्थल– जेना पिण्डस्वरूप शरीरमे स्थित आकाश पूर्ण अछि तहिना शरीरस्थ आत्मा सेहो पूर्ण अछि– एहि अर्थक जे विवेक (ज्ञान) से पिण्डाकाशस्थल कहबैत अछि ॥ ५१ ॥

अथ व्यतिरेकमुखेनाह–

घटोपाधिर्यथाकाशः परिपूर्णः स्वरूपतः ।
तथा पिण्डस्थितो ह्यात्मा परिपूर्णः प्रकाशते ॥ ५२ ॥

घटोपाधिविशिष्ट आकाशो यथा स्वस्वरूपतः पूर्णः, तथा शरीरस्थ आत्मा स्वसच्चिदानन्दस्वरूपतः परिपूर्णः सन् प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ५२ ॥

जेना घटरूप उपाधि (बाह्यस्वभाव)सँ युक्त आकाश (घटक सीमामे स्थित सीमित भेलो पर) स्वरूपतः परिपूर्ण अछि, तहिना पिण्डस्थित (शरीरस्थ) आत्मा परिपूर्ण रूपमे प्रकाशित होइछ ॥ ५२ ॥

अथ पिण्डाकाशविवेकवन्तं कथयति–

अन्तःस्थितं पराकाशं शिवमद्वैतलक्षणम् ।
भावयेद् यः सुमनसा पिण्डाकाशः स उच्यते ॥ ५३ ॥

हृदयाकाशस्थितं महाचिदाकाशस्वरूपम्, 'एक एव रुद्रो न द्वितीयाय

---

१. ब्र०बि०उ० १२

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्थे (तस्थुः)"[1] इति श्रुतेरद्वितीयम्, 'शिव एको ध्येयः' इत्यथर्वशिखाश्रुति-प्रसिद्धपरशिवं निरालम्बेन मनसा यो ध्यायेत्, स पिण्डाकाशस्वरूप इत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ५३ ॥

हृदयरूपी आकाशमे स्थित पराकाश स्वरूप अद्वैत-लक्षण शिवक भावना जे व्यक्ति मनसँ करथि से पिण्डाकाश कहबैत छथि ॥ ५३ ॥

अथ–

देहः शिवालयः साक्षात्तत्रास्ते परमः शिवः ।
इति निश्चयसद्भावः पिण्डज्ञं लिङ्गमुच्यते ॥

इतिवातुलोत्तरवचनानुसारेणैवं ध्यायतः शरीरमेव शिवागारम्, तस्य शिवो भासत इति सूत्रद्वयेन कथयति–

शिवागारमिदं प्रोक्तं शरीरं बोधदीपितम् ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वघटितं सुमनःपद्मपीठकम् ॥ ५४ ॥

शिवादिभूम्यन्तषट्त्रिंशत्तत्त्वमयस्तम्भकुड्यादिनिर्मितं हृत्कमललक्षणपद्म-पीठेन युक्तं ज्ञानदीपेन प्रकाशमानमिदं शरीरमेव शिवागारमिति प्रोक्तमि-त्यर्थः ॥ ५४ ॥

ज्ञानसँ प्रकाशित ई शरीर शिवक घर कहल गेल अछि, जे छत्तीस तत्त्वसँ युक्त एवं शुद्धमन रूपी कमलक आसन स्वरूप थिक ॥ ५४ ॥

पराकाशस्वरूपेण प्रकाशः परमेश्वरः ।
हृदाकाशगुहालीनो दृश्यतेऽन्तः शरीरिणाम् ॥ ५५ ॥

चिदाकाशस्वरूपेण प्रकाशमानः परमेश्वरः प्राणिनां हृद्गुहाविलीनः सन् उपदेशसिद्धैर्दृश्यत इत्यर्थः ॥ ५५ ॥

पराकाशस्वरूपसँ प्रकाशमान परमेश्वर हृदयाकाशक गुफामे पड़ल छथि आ देहधारीक भीतर देखि पड़ैत छथि ॥ ५५ ॥

कथं दृश्यत इत्यत्र पक्षान्तरेण कथयति–

एतच्छिवपुरं प्रोक्तं सप्तधातुसमावृतम् ।
अत्र हृत्पङ्कजं वेश्म सूक्ष्माम्बरमनोहरम् ॥ ५६ ॥

---

१. श्वे०उ० ३ । २

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तत्र सन्निहितं साक्षात् सच्चिदानन्दलक्षणम् ।
नित्यसिद्धः प्रकाशात्मा जलस्थाकाशवच्छिवः ॥ ५७ ॥

सप्तधातुभिः पूर्यत इत्येतच्छरीरमेव शिवपुरं पत्तनमित्यर्थः । अत्र पिण्डलक्षणशिवराजधान्यां सूक्ष्मभूतान्तराकाशरम्यं हृत्कमलमेवान्तःपुरम् । तत्र नित्यपरिपूर्णत्वेन सिद्धः सन् सच्चिदानन्दस्वरूपपरशिवो हृदयस्य स्वच्छत्वेन जलान्तर्गताकाशवत् साक्षात्प्रकाशरूपः सन् तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ५६-५७ ॥

अन्न, रस, शोणित, मांस, वसा (शरीरस्थ तेल) हाड़, मज्जा (हाड़क बीचक तेल) ओ वीर्य– एहि सात धातुसँ समन्वित ई शरीर शिवक पुर कहल गेल अछि । एहिमे सूक्ष्म आकाशसँ युक्त मनोहर हृदयकमल शिवक अन्तःपुर (निवासस्थल) थिक । ताहिमे साक्षात् सच्चिदानन्द स्वरूप नित्यसिद्ध प्रकाशमान शिव विराजमान छथि जेना जलमे आकाश रहैत अछि ॥ ५६-५७ ॥

नन्वपरिच्छिन्नः परमेश्वरः कथं परिच्छन्नहृत्कमले तिष्ठतीत्यत्र वदन् पिण्डाकाशस्थलं समापयति–

अन्तराकाशबिम्बस्थमशेषोपाधिवर्जितम् ।
घटाकाश इव च्छिन्नं भावयेच्चिन्मयं शिवम् ॥ ५८ ॥

हृदयाकाशस्थानस्थं समस्तोपाधिरहितं चिन्मयं शिवं घटाकाश इव विच्छिन्नं विभावयेदित्यर्थः ॥ ५८ ॥

हृदयक आकाशक गोल परिधिमे स्थित, सभ उपाधिसँ रहित चिन्मय शिवक भावना घटाकाशक समान परिच्छिन्न रूपमे करबाक चाही । अर्थात् जेना घटाकाशमे सीमितो आकाश महाकाशे थिक तहिता शरीरमे स्थितो शिव व्यापके छथि ॥ ५८ ॥

इति पिण्डाकाशस्थलम्

अथ बिन्द्वाकाशस्थलम्

अथ–

सदाशिवादितत्त्वानां कारणं व्यापकः परः ।
बिन्दुरूपः शिवो ध्येयो बिन्द्वाकाश इतीर्यते ॥

इति किरणागमवचनानुसारेण तत्पिण्डाकाशस्थलसम्पन्नस्य सुलभीभूत-बिन्द्वाकाशस्थलं निरूपयति–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथाकाशो विभुर्ज्ञेयः सर्वप्राण्युपरि स्थितः ।
तथात्मेत्युपमानार्थं बिन्द्वाकाशस्थलं विदुः ॥ ५९ ॥

सर्वप्राण्युपरिवर्त्याकाशो यथा विभुः सन् ज्ञातुं योग्यः, यथास्य पिण्डाकाशस्थलसम्पन्नस्य शिवयोगिनः आत्मा सर्वप्राण्युपरिवर्त्याकाशवद् व्यापकीभूतः सन् विज्ञातुं योग्य इत्युपमानार्थमेव बिन्द्वाकाशस्थलं विदुर्जानन्तीत्यर्थः ॥ ५९ ॥

बिन्दुस्वरूप आकाशस्थल– जेना सब प्राणीक ऊपर स्थित आकाश व्यापक अछि तहिना आत्मा सेहो । एहि उपमाक अर्थकेँ विज्ञजन बिन्द्वाकाशस्थल कहने छथि ॥ ५९ ॥

अथ–

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहु(हि)श्च ॥

इति कठवल्लीश्रुत्युक्तदृष्टान्तपूर्वकं चतुर्भिः सूत्रैस्तदेव प्रतिपादयति–

यथैको वायुराख्यातः सर्वप्राणिगतो विभुः ।
तथात्मा व्यापकः साक्षात् सर्वप्राणिगतः स्वयम् ॥ ६० ॥

समस्तप्राणिनां प्राणरूपं गतो वायुरेक एव व्यापकः सन्नाख्यातः, तथाहमिति स्वयं साक्षात् सर्वप्राणिगत आत्मा व्यापक इत्यर्थः ॥ ६० ॥

जेना सब प्राणीमे प्रविष्ट वायु एके कहल गेल अछि तहिना सब प्राणीक शरीरस्थल आत्मा साक्षात् स्वयं व्यापक अछि ॥ ६० ॥

यथा वह्निरमेयात्मा सर्वत्रैकोऽपि भासते ।
तथा शम्भुः समस्तात्मा परिच्छेदविवर्जितः ॥ ६१ ॥

अपरिमितस्वरूपवानेकोऽग्निर्यथासारवैद्युतपार्थिववाडवकालाग्निरूपेण विश्वव्यापकः सन् भासते, तथा सर्वचैतन्यात्मकश्चिद्वह्निरूपपरमेश्वर एक एव देवदानवमानव-तिर्यक्स्थावररूपचराचरप्राणिष्वहमिति व्यक्ताव्यक्तरूपेण व्यापकः सन् विराजत इत्यर्थः ॥ ६१ ॥

जेना अपरिमेयस्वरूप अग्नि एक होइतो सबठाम पृथक् पृथक् देखि पड़ैत अछि तहिना सबहक आत्मस्वरूप शम्भु अपरिमित (सीमासँ बान्हल नहि) छथि ॥ ६१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वेषां देहिनामन्तश्चित् ततोऽयं प्रकाशते ।
तस्मिन् प्रतिफलत्यात्मा शिवो दर्पणवद् विभुः ॥ ६२ ॥

समस्तदेहिनामन्तः 'चित्तं तु चेतो हृदयं कमलं सलिलं जलम्' इत्यभिधानकोशप्रसिद्धहृदयकमलं दर्पणवत् प्रकाशते । तस्मिन् चित्तदर्पणे व्यापकीभूतः शिव आत्मा सन् प्रतिफलतीत्यर्थः ॥ ६२ ॥

सब प्राणीक हृदयकमल दर्पणक समान प्रकाशित अछि, ताहिमे व्यापक शिव आत्मारूपमे प्रतिबिम्बित होइत छथि ॥ ६२ ॥

एकोऽवशीकृतः संवित् प्रकाशात्मा परात्परः ।
सर्वप्राणिगतो भाति तथापि विभुरुच्यते ॥ ६३ ॥

विश्वोत्कृष्टपराशक्त्यपेक्षया श्रेष्ठश्चित्प्रकाशात्मा शिव एक एव सर्वप्राणिहृदयकमलं गत्वा तत्परिमितः सन् भाति, तथा सर्वानुस्यूतत्वाद्विभुरित्युच्यत इत्यर्थः ॥ ६३ ॥

परहुसँ पर अवशीकृत (स्वतन्त्र) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर सभ प्राणीमे स्थित रहैत छथि तथपि व्यापक कहबैत छथि ॥ ६३ ॥

अथ बिन्द्वाकाशस्थलं समापयति–

एक एव यथा सूर्यस्तेजसा भाति सर्वगः ।
तथात्मा शक्तिभेदेन शिवः सर्वगतो भवेत् ॥ ६४ ॥

सूर्य एक एव स्वकीयवृष्टिहिमोष्णकिरणतेजसा व्यापकः सन् यथा भाति, तथा शिवस्वरूप आत्मा स्वकीयेच्छाज्ञानादिशक्तिभिर्विश्वव्यापकः सन्नास्त इत्यर्थः ॥ ६४ ॥

एके सूर्य जेना अपन तेजसँ सर्वत्र गमनशील छथि तहिना आत्मस्वरूप शिव शक्तिक भेदसँ सर्वत्र जाइत छथि ॥ ६४ ॥

इति बिन्द्वाकाशस्थलम्

अथ महाकाशस्थलम्

अथ–

व्योमाकारं महासूक्ष्मं व्यापकं यो न भावयेत् ।
संसारी स भवेल्लोके बीजकोशक्रिमिर्यथा ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेणोक्तलक्षणबिन्द्वाकाशस्थलसम्पन्नस्य सुलभं महाकाशस्थलं सूत्रद्वयेन कथयति–

पिण्डाण्डस्थं यथाकाशं न भिन्नं तद्वदात्मनः ।
अभिन्नः परमात्मेति महाकाशस्थलं विदुः ॥ ६५ ॥

ब्रह्माण्डपिण्डाण्डगतमाकाशं यथा न भिन्नम्, तथास्य बिन्द्वाकाशसम्पन्नस्य शिवयोगिन आत्मनश्चैतन्यात् परमात्मा भिन्नो नेत्यभिन्नमेव महाकाशस्थलं सद् जानन्तीत्यर्थः ॥ ६५ ॥

महाकाश स्थल– जेना पिण्ड (शरीर) ओ ब्रह्माण्डमे स्थित आकाश परस्पर भिन्न नहि थिक तहिना जीवात्मासँ परमात्मा भिन्न नहि छथि– एहि विषयकेँ जानबकेँ महाकाशस्थल कहल गेल अछि ॥ ६५ ॥

यथा न भिन्नमाकाशं घटेषु च मठेषु च ।
तथाण्डेषु च पिण्डेषु स्थितो ह्यात्मा न भिद्यते ॥ ६६ ॥

स्पष्टम् ॥ ६६ ॥

जेना घटस्थित ओ मठस्थित आकाश भिन्न नहि थिक तहिना ब्रह्माण्ड ओ शरीरमे स्थित आत्मा भिन्न नहि थिक ॥ ६६ ॥

अथ महालिङ्गमेव महाकाशमिति सूत्रत्रयेण कथयति–

अनिर्देश्यमनौपम्यमवाङ्मनसगोचरम् ।
सर्वतोमुखसम्पन्नं सत्तानन्दं चिदात्मकम् ॥ ६७ ॥
कालातीतं कलातीतं क्रमयोगादिवर्जितम् ।
स्वानुभूतिप्रमाणस्थं ज्योतिषामुदयस्थलम् ॥ ६८ ॥
शिवाख्यं परमं ब्रह्म परमाकाशलक्षणम् ।
लिङ्गमित्युच्यते सद्भिर्यद्विना न जगत्स्थितिः ॥ ६९ ॥

कलातीतमष्टत्रिंशत्कलातीतं क्रमयोगविवर्जितम् उत्पत्त्यादिक्रमयोगरहितं ज्योतिषामुदयस्थलम् अर्कादिज्योतिषामुत्पत्तिस्थानम् अहमिति स्वानुभूतिप्रमाणगम्यमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ६७-६९ ॥

अनिर्देश्य (जकरा देखाओल नहि जाए), अतुलनीय, वाणी ओ मनक पहुँच सँ परे, सच्चिदानन्दस्वरूप कालसँ परे, अठतीसकलासँ रहित,

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्पत्तिस्थिति-प्रलयसँ रहित, स्वानुभूति प्रमाण, ग्रहनक्षत्रक उत्पत्तिक कारण, परमाकाशस्वरूप शिव नामक परब्रह्मकेँ सत्पुरुषलोकनि लिङ्ग कहैत छथि । तनिका विना संसारक स्थिति सम्भव नहि अछि ।। ६७-६९ ।।

अथोक्तमर्थमेव सूत्रद्वयेन विशेषयति–

परमाकाशमव्यक्तं प्रबोधानन्दलक्षणम् ।
लिङ्गं ज्योतिर्मयं प्राहुर्लीयन्ते यत्र योगिनः ॥ ७० ॥

यत्र महाकाशे शिवयोगिनो लीयन्त इति तं महाकाशमव्यक्तं मन्दभाग्यैर्गन्तुमशक्यं सच्चिदानन्दलक्षणं ज्योतिर्मयं लिङ्गमिति सन्तः प्राहुरित्यर्थः ॥ ७० ॥

जाहिमे योगीलोकनि लीन रहैत छथि ओहि परमाकाश, अव्यक्त, चिदानन्दस्वरूप ज्योतिर्मय तत्त्वकेँ सुधीजनक लिङ्ग कहैत छथि ।। ७० ।।

संविदेव परा काष्ठा परमानन्दरूपिणी ।
तामाहुः परमाकाशं मुनयो मुक्तसंशयाः ॥ ७१ ॥

विगतसंशया वसिष्ठादिमुनयो यं महाकाशमाहुः । किमित्याहुरित्यत्र तन्महाकाशं परमानन्दरूपिणी सर्वोत्कृष्टा चितिरेवेत्याहुरित्यर्थः ॥ ७१ ॥

परमानन्दस्वरूप संवित् पराकाष्ठा थिक । सन्देहरहित मुनिगण एकरा परमाकाश कहैत छथि ।। ७१ ।।

अथ तस्मिन् महाकाशे जगज्जालस्याभेदं दृष्टान्तपूर्वकं दर्शयति–

तरङ्गादि यथा सिन्धोः स्वरूपान्नातिरिच्यते ।
तथा शिवाच्चिदाकाशाद् विश्वमेतन्न भिद्यते ॥ ७२ ॥

स्पष्टम् ॥ ७२ ॥

जेना समुद्रक तरंग बुनबुना आदि समुद्रक स्वरूपसँ भिन्न नहि थिक तहिना चिदाकाश शिवसँ ई संसार भिन्न नहि थिक ।। ७२ ।।

अथ पुनर्दृष्टान्तान्तरमाह–

यथा पुष्पपलाशादि वृक्षरूपान्न भिद्यते ।
तथा शिवात् पराकाशाज्जगतो नास्ति भिन्नता ॥ ७३ ॥

स्पष्टम् ॥ ७३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जेना फूल पात आदि गाछक स्वरूपसँ भिन्न नहि थिक तहिना परमाकाश शिवसँ संसारक भिन्नता नहि अछि ।। ७३ ।।

ननु चिदाकाशस्य निरवयवत्वात् कथं तत्र विश्वं स्थितं सत् प्रकशत इत्यत्राह–

यथा ज्योतींषि भासन्ते भूताकाशे पृथक् पृथक् ।
तथा भान्ति पराकाशे ब्रह्माण्डानि विशेषतः ।। ७४ ।।

ज्योतींषि नक्षत्राणीत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।। ७४ ।।

जेना भूताकाश (गहन अन्धकारमय बाह्य आकाश) मे ग्रह-नक्षत्र पृथक्-पृथक् देखाइत अछि तहिना पराकाशमे अनेक ब्रह्माण्ड रहैत अछि ।। ७४ ।।

अथ तमेवार्थबन्धं विशेष्य महाकाशस्थलं समापयति–

निरस्तोपाधि[1]सम्बन्धं निर्मलं संविदात्मकम् ।
पराकाशं जगच्चित्र-विलासालम्बभित्तिकम् ।। ७५ ।।

उक्तविशेषणविशिष्टपराकाशं जगज्जालरूपचित्रविलासस्याधारभूतमित्यर्थः । एतत्पिण्डाकाशादिलिङ्गत्रयं शरणस्याङ्गत्रयस्य संयोजनीयम् ।। ७५ ।।

समस्त उपाधिकेँ दूर कएने निर्मल संवित्स्वरूप आकाश संसारक विचित्र विलासक आधारस्वरूप भीत थिक ।। ७५ ।।

इति महाकाशस्थलम्

अथ क्रियाप्रकाशस्थलम्

अथ– 'क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः' इति मुण्डकश्रुत्यनुसारेण,[1] 'मोक्षप्रदं चैहिकसौख्यदं च सर्वोत्तरं शाङ्करकर्म सत्यम्' इति योगजागम-वचनानुसारेण च महाकाशस्वरूपशिवयोग्येव तत्स्वरूपानुसन्धानरूपक्रिया-प्रकाशवानिति कथयति–

शिवस्य परिपूर्णस्य चिदाकाशस्वरूपिणः ।
आत्मत्वेनानुसन्धानात् क्रियाद्योतनवान् यमी ।। ७६ ।।

महाकाशस्वरूपः शिवयोगी परिपूर्णचिदाकारमहाकाशस्वरूपिणः शिवस्य

---

१. कादाचित्कत्वे सतीतरव्यावर्त्तकत्वमुपाधित्वम् ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वात्मत्वेनानुसन्धानरूपक्रियावानिति क्रियाप्रकाशनवानित्युच्यत इत्यर्थः ॥ ७६ ॥

क्रियाप्रकाशस्थल– चिदाकाशस्वरूप परिपूर्ण शिवक आत्मा स्वरूपमे अनुसन्धान कएलासँ संयमशील शिवयोगी क्रियाप्रकशवान् होइत छथि ॥ ७६ ॥

अथ– 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'[२] इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण–

ज्ञानक्रियात्मिका सापि सत्या नित्योदितप्रभा ।
अनन्या स्याच्छिवात् सैव वस्तुतो मूर्तिरैश्वरी ॥

इति पौष्करवचनानुसारेण च तदनुसन्धानक्रियामेव सूत्रत्रयेणोपपादयति–

निष्कलङ्कचिदानन्द–गगनोपमरूपिणः ।
शिवस्य परिपूर्णस्य वृत्तिश्चैतन्यरूपिणी ॥ ७७ ॥

एवमुक्तरूपस्य शिवस्य वृत्तिः, अस्मीति क्रियारूपा स्थितिः, चैतन्यरूपिणी शिववच्चित्स्वरूपिणीत्यर्थः ॥ ७७ ॥

निष्कलङ्क चिदानन्द आकाशस्वरूप परिपूर्ण शिवक वृत्ति ('शिवोऽहम्' केर भावना) चित्स्वरूप थिक ॥ ७७ ॥

अथ शिवयोगिनः स्वरूपामर्शनक्रियापि तादृशीत्याह–

निष्कलङ्के निराकारे नित्यं परमतेजसि ।
विलीनचित्तवृत्तस्य तथा शक्तिःक्रियोच्यते ॥ ७८ ॥

उक्तरूपे परशिवतेजसि विलीनचित्तव्यापारस्य शिवयोगिनोऽनुसन्धान-रूपा या क्रियाशक्तिः, सा तथा परशिवतेजोरूपिणीत्युच्यत इत्यर्थः ॥ ७८ ॥

निष्कलङ्क, निराकार, नित्य एवं परमतेजःस्वरूप शिवमे लीन चित्तवृत्तिवला शिवयोगीक ताही प्रकारक शक्तिकेँ क्रिया कहल जाइछ ॥ ७८ ॥

ननु किं तदनुसन्धानेनेत्यत्राह–

सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वगः परमेश्वरः ।
तदैक्यचिन्तया योगी तादृशात्मा प्रकाशते ॥ ७९ ॥

'सर्वज्ञः पञ्चकृत्यसम्पन्नः सर्वेश्वर ईश्वरः' इति वृद्धजाबालश्रुतेः परमेश्वरः

---

१. मु०उ० ३ । २ । १०
२. श्वे०उ० ६ । ८

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वज्ञः सर्वकर्ता सर्वव्यापक इति बुद्ध्वा योगी शिवयोगी समानसमरसैक्यध्यानेन तादृगात्मा तत्प्रकारस्वरूपवान् प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ७९ ॥

परमेश्वर सर्व, सर्वकर्ता एवं सर्वव्यापी छथि । हुनकामे अपनासँ एक भावनाक द्वारा योगी हुनके सन प्रकाशित होइत छथि ॥ ७९ ॥

ननु शिवयोगिन इन्द्रियव्यापारस्य विद्यमानत्वात् कथं शिवं पश्यतीत्याह–

सर्वेन्द्रियाणां व्यापारे विद्यमानेऽपि संयमी ।
प्रत्युन्मुखेन मनसा शिवं पश्यन् प्रमोदते ॥ ८० ॥

प्रत्यन्मुखेन पश्चिमचक्राभिमुखेन मनसेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ८० ॥

संयमी शिवयोगी अपन सकल इन्द्रियक व्यापारक विद्यमान रहलहु पर ओहि व्यापारसँ विपरीत स्थितिमे मनकेँ लगाए शिवक साक्षात्कार करैत आनन्दित रहैत छथि ॥ ८० ॥

अथ कीदृशं शिवं कथं पश्यन् मोदत इत्यत्राह–

कूटस्थमचलं प्राज्ञं गुणातीतं गुणोत्तरम् ।
शिवतत्त्वं स्वरूपेण पश्यन् योगी प्रमोदते ॥ ८१ ॥

गुणोत्तरं ज्ञानवैराग्यादिगुणैः श्रेष्ठं प्राज्ञं कुशलिनं कूटस्थं तुर्यसाक्षिक-प्रत्यगात्मादिसंज्ञितं गुणातीतं मायिकसत्त्वादिगुणातीतम् अचलं शिवतत्त्वं स्वरूपेण स्वस्वरूपेण पश्यन् शिवयोगी प्रमोदत इत्यर्थः ॥ ८१ ॥

कूटस्थ (प्रत्यगात्मा), अचल, प्राज्ञ, गुणातीत, उत्कृष्ट गुणवाला शिवतत्त्वकेँ अपना रूपमे देखैत योगी आनन्दित रहैत छथि ॥ ८१ ॥

अथ चित्क्रियारूपस्वरूपसम्पन्नस्य शिवयोगिनो गगनतलभासमानगन्धर्व-नगरीव सर्वा क्रिया तावदस्थिरेति वदन् प्रकाशत इति प्रोक्तं क्रियाप्रकाशस्थलं समापयति–

परात्मनि क्रिया सर्वा गन्धर्वनगरीमुखा ।
प्रकाशत इति प्रोक्तं क्रियायास्तु प्रकाशनम् ॥ ८२ ॥

परात्मनि परशिवस्वरूपशिवयोगिविषये सर्वा क्रिया व्योम्नि गन्धर्व-नगरीव प्रकाशत इति क्रियायाः प्रकाशनं तु क्रियाप्रकाशनस्थलमिति प्रोक्तमि-त्यर्थः ॥ ८२ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परात्मामे होअएवाली सकल क्रिया गन्धर्वनगर (आकाशस्थ कल्पित नगर) जकाँ जे प्रकाशित होइत अछि तकरा क्रियाप्रकाशन कहल गेल अछि ॥ ८२ ॥

इति क्रियाप्रकाशनस्थलम्

अथ भावप्रकाशस्थलम्

अथ–

स्वदयापूर्णभावस्य स्वेनैवापचितस्य च ।
तस्यैव भासते भावे सोऽयमादिमहेश्वरः ॥

इति योगजागमवचनानुसारेण तत्क्रियाप्रकाशनसम्पन्नस्य शिवयोगिनः सुलभं भावप्रकाशस्थलं निरूपयति–

तरङ्गाद्या यथा सिन्धौ न भिद्यन्ते तथात्मनि ।
भावा बुद्ध्यादयः सर्वे यत्तद् भावप्रकाशनम् ॥ ८३ ॥

तरङ्गफेनादयो भावा यथा समुद्रे न भिद्यन्ते, तथा सर्वे बुद्ध्यादयो भावा आत्मानं क्रियाप्रकाशसम्पन्ने शिवयोगिचैतन्ये न भिद्यन्त इति यत्, तद्भावप्रकाशनं स्यादित्यर्थः ॥ ८३ ॥

भावप्रकाशन स्थल– जेना समुद्रमे होबएवाला तरङ्ग आदि समुद्रसँ भिन्न नहि थिक, तहिना आत्मामे उठएवाला बुद्धि आदि सब भाव आत्मासँ भिन्न नहि भेनिहार भावप्रकाशन कहबैत अछि ॥ ८३ ॥

अथ तद्भावनां पञ्चभिः सूत्रैर्विशेषयति–

शिव एव जगत्सर्वं शिव एवाहमित्यपि ।
भावयन् परमो योगी भवदोषैर्न बाध्यते ॥ ८४ ॥

सर्वं जगच्छिव एव, तस्मादहमपि शिव एवेति भावयन् महाशिवयोगी सांसारिकदोषैर्न बाध्यत इत्यर्थः ॥ ८४ ॥

'सम्पूर्ण संसार शिवे थिक आ हमहूँ शिवे छी' –एहन भावना करैत परमयोगी भावदोषसँ बाधित नहि होइत छथि ॥ ८४ ॥

शिवभावे स्थिरे जाते निर्लेपस्य महात्मनः ।
ये ये भावाः समुत्पन्नास्ते ते शिवमयाः स्मृताः ॥ ८५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्लेपस्य विषयेषु लेपरहितस्येत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ८५ ॥

संसारक विषयवासनासँ निर्लिप्त महात्मा शिवयोगीक हृदयमे जे जे भाव उत्पन्न होइत छनि से सब शिवमय कहल गेल अछि ॥ ८५ ॥

अथ ते के भावा इत्यत्राह–

अद्वितीयशिवाकार-भावनाध्वस्तकर्मणा ।
न किञ्चिद् भाव्यते साक्षात्, शिवादन्यन्महात्मना ॥ ८६ ॥

एवंरूपेण शिवयोगिना यद्यद् भाव्यते, तत्सर्वं शिवमयमिति भावः ॥ ८६ ॥

अद्वितीय शिवाकारक भावनासँ सकलकर्मक नाश कएनिहार महात्मा शिवयोगीकेँ साक्षात् शिवसँ अतिरिक्त ने किछु देखाइत छनि आ ने अनुभूते होइत छनि ॥ ८६ ॥

अथ तत्कथमित्यत्राह–

गलिताज्ञानबन्धस्य केवलात्मानुभाविनः ।
यत्र यत्रेन्द्रियासक्तिस्तत्र तत्र शिवात्मता ॥ ८७ ॥

उक्तरूपस्य योगिनो यत्र यत्र भावरूपेन्द्रियासक्तिस्तत्र तत्र भावमय-शिवात्मतेत्यर्थः ॥ ८७ ॥

जनिक अज्ञानक बन्धन टूटि गेल छनि एहन केवलात्माक अनुभव कएनिहार शिवयोगीकेँ जतए-जतए आसक्ति होइत छनि ततए-ततए शिवतत्त्वेक अनुभव होइत छनि ॥ ८७ ॥

ननु रागद्वेषादिभावानां बन्धहेतुत्वात् कथं शिवमयत्वमित्यत्राह–

रागद्वेषादयो भावाः संसारक्लेशकारणम् ।
तेषामुपरमो यत्र तत्र भावः शिवात्मकः ॥ ८८ ॥

यत्र शिवयोगिनि बन्धकारणीभूतरागद्वेषादिभावानामुपरमोऽस्ति, तत्र तस्मिन् शिवयोगिनि भावः शिवात्मक इत्यर्थः ॥ ८८ ॥

राग-द्वेष आदि भाव संसाररूपी क्लेशक कारण थिक । जाहि व्यक्तिमे ई नष्ट भए गेल छनि तनिका शिवात्मक भाव आबि जाइत छनि ॥ ८८ ॥

तस्मादीदृशं शिवयोगिनं तामसी शक्तिर्नाक्रामतीति वदन् भावप्रकाशनस्थलं

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समापयति–

यथा सूर्यसमाक्रान्तौ न शक्नोति तमः सदा ।
तथा प्रकाशमात्मानं नाविद्याक्रामति स्वयम् ॥ ८९ ॥

अन्धकारो यथा सूर्यमावरितुं न समर्थः, तथा प्रकाशमात्मानं स्वच्छ-प्रकाशरूपं शिवयोगिनमज्ञानलक्षणं तम आवरितुं न समर्थमित्यर्थः ॥ ८९ ॥

जेना सूर्यक बहार भेला पर अन्हार नहि रहि सकैछ तहिना प्रकाशमान आत्माक समक्ष अविद्या स्वयं आक्रमण नहि कए सकैछ ॥ ८९ ॥

इति भावप्रकाशनस्थलम्

अथ ज्ञानप्रकाशनस्थलम्

अथ–

गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता ।
क्षीरवत् पश्यते ज्ञानं लिङ्गिनस्तु गवां यथा ॥[1]

इत्यमृतबिन्दूपनिषद्वचनानुसारेण–

शिवादिस्मरणं ज्ञानं ज्ञानात् सत्ता प्रकाशते ।
सत्तयानन्दसम्प्राप्तिरानन्दाच्चैव सिद्धिदः ॥

इतियोगजागमवचनानुसारेण च तद्भावप्रकाशनसम्पन्नस्य शिवयोगिनः सुलभं ज्ञानप्रकाशं निरूपयति–

मुख्यार्थेऽसम्भवे जाते लक्षणायोगसंश्रयात् ।
तज्ज्ञानयोजनं यत्तदुक्तं ज्ञानप्रकाशनम् ॥ ९० ॥

मुख्यार्थेऽङ्गलिङ्गयोर्मुख्यार्थे, असम्भवे जाते सति, अघटिते जाते सति, लक्षणायोगसंश्रयात् कार्यकारणोपाधिविशिष्टजीवेश्वरसंज्ञकाङ्गलिङ्गयोर्लक्षणा-योगसमाश्रयणेन तज्ज्ञानयोजनं यत् तदङ्गलिङ्गनिष्ठज्ञानद्वयस्य समानसमरसभावेन संयोजनं यदस्ति, तत् तस्य भावप्रभावप्रकाशनसम्पन्नस्य शिवयोगिनो ज्ञानप्रकाशनमित्युक्तं भवति । अयं भावः–घटावच्छिन्नाकाश-महाकाशवत् कूटस्थपरचैतन्यस्य नित्यसम्बन्ध एव लक्षणार्थः । घटजलावच्छिन्नाकाश-मेघ-जलावच्छिन्नाकाशयोरिवाङ्गलिङ्गयोरुपाधिरेव मुख्यार्थः तच्चैतन्यसामरस्यज्ञानमेव ज्ञानप्रकाश इति ॥ ९० ॥

---

१. ब्र०बि०उ० १९

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानप्रकाशन स्थल– मुख्य अर्थक असम्भव भेला पर लक्षणाक आश्रयसँ जाहि ज्ञानक योजन कएल जाइत अछि से ज्ञानप्रकाशन थिक । (घटाकाश ओ महाकाशमे भेदक उपाधिए मुख्यार्थ = वाच्यार्थ थिक । परन्तु दुनू त आकाशे थिक, अतःभेद बाधित अछि । तेँ लक्षणाक द्वारा उपाधिक निरस्त भेला पर अखण्डाकाशरूप ज्ञानक प्रकाशन होइछ । दोसर उदाहरण– 'तत् त्वमसि' ई महावाक्य थिक । एतए मुख्यार्थ तत्पदक सर्वज्ञ ब्रह्म ओ त्वंपदक अल्पज्ञजीव थिक । दुनू प्रथमान्त पद अभेद बुझबैछ, परन्तु से बाधित अछि– अल्पज्ञ ओ सर्वज्ञ भिन्न थिकाह । तेँ एतए भागत्याग लक्षणाक द्वारा दुनू पदार्थक अंश सर्व ओ अल्पक त्यागसँ केवल 'ज्ञ' बचैछ आ तेँ दुनू एके भए जाइत छथि ।) ॥ ९० ॥

अथ तदेव सूत्रत्रयेण विशेषयति–

मुक्तस्य ज्ञानसम्बन्धो ज्ञेयाभावः स्वभावतः ।
उपाधिसहितं ज्ञानं न भेदमतिवर्तते ॥ ९१ ॥

मुक्तस्य परमुक्तस्य लक्षणार्थकज्ञानसम्बन्धः स्वभवतो ज्ञेयाभाव आत्माश्रयादिदोषराहित्येन ज्ञेयशून्यो वेद्यशून्य इत्यर्थः । उपाधिसहितं ज्ञानं तस्य परमुक्तस्य मुख्यार्थभूतलिङ्गाङ्गोपाधिविशिष्टज्ञानं भेदं नातिवर्तते भेदमनतिक्रम्य वर्तते, उपाधिनाश एव ज्ञानसामरस्यमित्यर्थः ॥ ९१ ॥

मुक्त व्यक्तिकेँ लक्ष्यार्थ उपाधिरहित ज्ञानसँ सम्बन्ध स्वाभाविक थिक आ तेँ हुनका ज्ञेय विषयक अभाव सेहो स्वाभाविके थिक । उपाधिसहित ज्ञान (मुख्यार्थ) भेदसँ अतिरिक्त किछु नहि थिक ॥ ९१ ॥

ज्ञानमित्युच्यते सद्भिः परिच्छेदोऽपि वस्तुनः ।
परात्मन्यपरिच्छेदे कुतो ज्ञानस्य सम्भवः ॥ ९२ ॥

वस्तुनो लिङ्गाङ्गरूपवस्तुनः परिच्छेदः खण्डित्वं ज्ञानमिति द्वैतज्ञानमिति सद्भिः सत्पुरुषैरुच्यते । अपरिच्छेदेऽखण्डिते परात्मनि निरुपाधिकमहाचैतन्ये हि द्वैतप्रसिद्धस्य ज्ञानस्य सम्भवः उद्भवः कुतः ? नास्तीत्यर्थः ॥ ९२ ॥

विद्वान लोकनि वस्तुक परिच्छेद (खण्ड)केँ सेहो ज्ञान (द्वैतज्ञान) कहैत छथि । जे परात्मा अत्यन्त अपरिच्छेद छथि तनिकामे ज्ञानक (उपाधिसहित द्वैत ज्ञानक) सम्भव कोना भए सकैछ ? ॥ ९२ ॥

ज्ञानस्याविषये तत्त्वे शिवाख्ये चित्सुखात्मनि ।
आत्मैकत्वानुसन्धानं ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥ ९३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानस्य स्वप्रकाशत्वात् स्वातिरिक्तसंविदन्तरस्याऽविषयेऽगोचरे चित्सुखात्मनि चिदानन्दस्वरूपे शिवाख्ये परशिवाख्ये तत्त्वे वस्तुनि, आत्मैकत्वानुसन्धानं स्वात्मन एकत्वानुसन्धानं ज्ञानमिति बुधैर्विद्वद्भिरुच्यत इत्यर्थः ॥ ९३ ॥

ज्ञानक अविषयस्वरूप चिदानन्द शिव नामक तत्त्वमे आत्माक एकत्वक अनुसन्धानकेँ विद्वान् लोकनि ज्ञान (निरुपाधिक ज्ञान, अपरिच्छिन्न ज्ञान) कहैत छथि ॥ ९३ ॥

तच्छिवज्ञानमेव ब्रह्मज्ञानमिति सूत्रत्रयेण कथयति–

अपरिच्छिन्नमानन्दं सत्ताकारं जगन्मयम् ।
ब्रह्मेति लक्षणं ज्ञानं ब्रह्मज्ञानमिहोच्यते ॥ ९४ ॥

सत्तामनतिक्रान्तत्वाद्विश्वस्य तन्मयत्वमित्यर्थः । स्वरूपतो ह्यसतः सत्तासम्बन्धासम्भवात् स्वरूपतः सतः सत्तान्तरानपेक्षणात् सद्रूपत्वमेवेति निष्कर्षः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ९४ ॥

अपरिच्छिन (अखण्ड), आनन्द, सत्स्वरूप, विश्वरूप जे ब्रह्म ताहि लक्षणवाला ज्ञानकेँ ब्रह्मज्ञान कहल जाइछ ॥ ९४ ॥

ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने विश्वोपाधिविवर्जिते ।
सर्वं संविन्मयं भाति तदन्यन्नैव दृश्यते ॥ ९५ ॥

विश्वोपाधिविवर्जिते विश्वभेदरहिते ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने आविर्भूते सति सर्वं विश्वं संविन्मयं भाति चिच्छक्तिमयमिति भाति । तदन्यत् शिवशक्त्योरभेदात् तदन्यद् ब्रह्मातिरिक्तं न दृश्यत इत्यर्थः ॥ ९५ ॥

संसारक उपाधि (बाह्यधर्म)सँ रहित ब्रह्मज्ञानक उत्पन्न भेलापर सब किछु चिन्मय (ज्ञानस्वरूप) बूझि पड़ैत अछि, ओहिसँ भिन्न किछु देखल नहि जाइछ ॥ ९५ ॥

तस्मादद्वैतविज्ञानमपवर्गस्य कारणम् ।
भावयन् सततं योगी संसारेण न लिप्यते ॥ ९६ ॥

तस्मादपवर्गस्य परापरमोक्षस्य कारणं शिवाद्वैतज्ञानं सततं भावयन् शिवयोगी संसारेण न लिप्यत इत्यर्थः ॥ ९६ ॥

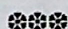
तेँ 'अद्वैत विज्ञान अपवर्गक (मोक्षक) कारण थिक'– एहन निरन्तर भवनावाला योगी संसारसँ लिप्त नहि होइत छथि ॥ ९६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ ज्ञानप्रकाशस्थलं समापयति–

नित्ये निर्मलसत्त्वयोगिषु परे निर्वासने निष्कले
सर्वातीतपदे चराचरमये सत्तात्मनि ज्योतिषि ।
संविद्व्योम्नि शवे विलीनहृदयस्तद्भेदवैमुख्यतः
साक्षात् सर्वगतो विभाति विगलद्विश्वः स्वयं संयमी ॥ ९७ ॥

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते वीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ शरणस्थलविषयद्वादशविधलिङ्गप्रसङ्गो नामैकोनविंशः परिच्छेदः ॥ १९ ॥



नित्ये निरन्तरे निर्मलसत्त्वयोगिषु परे शुद्धसत्त्वगुणवत्सु प्राधान्येन वर्तमाने निर्वासने वेद्यवासनारहिते निष्कले निरवयवे सर्वातीतपदे सर्वोत्तीर्णस्थानभूते चराचरमये चराचरप्रपञ्चोपादानकारणीभूतचित्क्रियालक्षणचिदम्बरशक्तिस्वरूपे सत्तात्मनि पारमार्थिकसत्तारूपिणि ज्योतिषि भासमाने संविद्व्योम्नि शिवे चिदाकाशरूपपरशिवे विलीनहृदयः, तद्भेदवैमुख्यतः शिवादन्यत्वे विमुखीभूतत्वात् सर्वगतो विश्वव्यापकः संयमी शिवयोगी विगलद्विश्वः सन् विगलितविश्वभेदविभवः सन् स्वयं साक्षाद्विशेषेण भाति प्रकाशत इत्यर्थः । शिवशरणयोः सतीपतित्वादेस्तल्लिङ्गत्रयं शरणस्याङ्गत्रयस्य योज्यम् ॥ ९७ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां शरणस्थलविषय-द्वादशविधलिङ्गप्रसङ्गो नामैकोनविंशः परिच्छेदः ॥ १९ ॥



नित्य निर्मल सत्त्वयोगी लोकनिमे प्रधान, वासनारहित, निष्कल, सर्वातीत, चराचरमय, सत्स्वरूप, तेजोमयं, चिदाकाशमय शिवमे विलीन, भेदरहित, संसारकेँ तिरस्कृत कएनिहार संयमी शिवयोगी स्वयं सर्वव्यापीक रूपमे प्रकाशित होइत छथि ॥ ९७ ॥

एहि तरहेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणिक विद्यावाचस्पति डॉ० शशिनाथ झाक कएल प्रबोधिनी मैथिली व्याख्यामे शरणस्थलविषयक द्वादशविध-लिङ्गप्रसंग-नामक उनैसम परिच्छेद समाप्त ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विंशः परिच्छेदः

(अथैक्यस्थलम्)

अथागस्त्यप्रश्नः –

स्थलभेदास्त्वया प्रोक्ताः शरणस्थलसंश्रिताः ।
ऐक्यस्थलगतान् ब्रूहि स्थलभेदान् गणेन्द्र मे ! ॥ १ ॥

स्थलभेदा अवान्तरस्थलभेदा इत्यर्थः । अग्रेऽपि तथा । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १ ॥

ऐक्यस्थल– अगस्त्य बजलाह– हे गणेश्वर ! अपने शरणस्थलक अन्तर्गत स्थलभेद बुझाओल । अब कृपा कए हमरा ऐक्यस्थलक भेद कहू ॥ १ ॥

अथास्य प्रश्नस्योत्तरं वक्ति–

स्थलानां नवकं चैक्यस्थलेऽस्मिन् परिकीर्त्यते ॥ २ ॥

स्पष्टम् ॥ २ ॥

अथ तदवान्तरस्थलभेदं सूत्रत्रयेणोद्दिशति–

तत्स्वीकृतप्रसादैक्य-स्थलमादौ प्रकीर्तितम् ।
शिष्टोदनस्थलं चाथ चराचरलयस्थलम् ॥ ३ ॥
भाण्डस्थलं ततः प्रोक्तं भाजनस्थलमुत्तमम् ।
अङ्गालेपस्थलं पश्चात् स्वपराज्ञास्थलं ततः ॥ ४ ॥
भावाभावविनाशं च ज्ञानशून्यस्थलं ततः ।
तदेषां क्रमशो वक्ष्ये शृणु तापस ! लक्षणम् ॥ ५ ॥

स्पष्टम् ॥ ३-५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीरेणुकाचार्य बजलाह– एहि ऐक्यस्थलमे नओ स्थल कहल जा रहल अछि । एहिंमे स्वीकृतप्रसादैक्यस्थल, शिष्टौदनस्थल, चराचरलयस्थल, भाण्डस्थल, भाजनस्थल, अङ्गालेपनस्थल, स्वपराज्ञास्थल, भावाभावविनाश स्थल ओ ज्ञानशून्य स्थल कहल गेल अछि । हे तपस्वी ! आब एहि सबहिक क्रमसँ लक्षण कहि रहल छी, सुनू ।। २-५ ।।

अथ ऐक्यस्थलगतस्वीकृतप्रसादैक्यस्थलम्

अथ– 'ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः'[१] इति मुण्डकश्रुत्युनसारेण–

ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तिं तु क्रिया चर्या प्रकीर्तिका ।
योगं सालम्बनं त्यक्त्वा निष्प्रपञ्चं विचिन्तयेत् ।।[२]

इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेण च तज्ज्ञानप्रकाशसम्पन्नः शिवयोग्येव ज्ञानप्रसादस्वीकारात् स्वीकृतप्रसादीति निरूपयति–

मुख्यार्थो लक्षणार्थश्च यत्र नास्ति चिदात्मनि ।
विशृङ्खलतया तस्य प्रसादः स्वीकृतो भवेत् ।। ६ ।।

चिदात्मनि यत्र ज्ञानप्रकाशसम्पन्ने शिवयोगिनि मुख्यार्थो जीवेश्वरवियोग-रूपमुख्यार्थो नास्ति, लक्षणार्थश्च निरुपाधिकशिवात्मनोर्नित्यावियोग-रूपलक्षणार्थश्च नास्ति, तस्य शिवयोगिनो विशृङ्खलतया निरङ्कुशत्वेन प्रसादः पूर्णज्ञानप्रसादः स्वीकृतोऽङ्गीकृतो भवेदित्यर्थः ।। ६ ।।

स्वीकृतप्रसादैक्य स्थल– ज्ञानप्रकाशसम्पन्न चिदात्मामे मुख्य ओ लक्ष्य (लक्षणासँ प्राप्त) अर्थ पृथक्-पृथक् नहि छनि, अर्थात् एक भए गेल छनि । तनिक प्रसाद (प्रसन्नता, कृपा) जे स्वींकृत होइछ तकरा स्वीकृत प्रसादैक्य स्थल कहैत छैक ।। ६ ।।

अथैतदर्थमेव सूत्रद्वयेन विशदयति–

मातृमेयप्रमाणादि-व्यवहारे विहारिणीम् ।
संवित्साक्षात्कृतिं लब्ध्वा योगी स्वात्मनि तिष्ठति ।। ७ ।।

मातृमानप्रमेयादित्रिपुटीमयप्रपञ्चप्रथमव्यवहारे रममाणां पूर्णचित्साक्षात्कृतिं लब्ध्वा योगी ज्ञानप्रकाशसम्पन्नः शिवयोगी स्वात्मनि स्वीकृतप्रसादवति स्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थः ।। ७ ।।

१. मु०उ० ३ । १ । ८ २. दे०का० २५

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रमाता (प्रमाणकर्ता), प्रमेय वस्तु ओ प्रमाण आदिक व्यवहारमे विहार करएवाली संवितक साक्षात्कार कए ज्ञानप्रकाशकेँ प्राप्त कएनिहार शिवयोगी अपना रूपमे स्थित रहैत छथि ॥ ७ ॥

अथैवंरूपस्य शिवयोगिनः पाशबन्धनं नास्तीत्यत्राह–

अद्वैतबोधनिर्धूत-भेदावेशस्य योगिनः ।
साक्षात्कृतमहासंवित्-प्रकाशस्य क्व बन्धनम् ॥ ८ ॥

शिवाद्वैतबोधनिवारिताङ्गलिङ्गलक्षणजीवेश्वरभेदावेशवतः, अपरोक्षीकृत-निर्मलचित्प्रकाशस्य शिवयोगिनः पाशपञ्चकाद् भूतबन्धनं कुतः ? नास्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥

अद्वैतबोधद्वारा भेद (द्वैत) भावकेँ हटओनिहार एवं महासंवित्प्रकाशक साक्षात्कार कएनिहार योगीकेँ कतए बन्धनक सम्भावना ? ॥ ८ ॥

अथ तस्य पूर्णज्ञानिनः प्रपञ्चदर्शनं नास्तीति सूत्रत्रयेण सदृष्टान्तं कथयति–

चिदात्मनि शिवे न्यस्तं जगदेतच्चराचरम् ।
ज्ञायते तन्मयं सर्वमग्नौ काष्ठादिकं यथा ॥ ९ ॥

अग्नौ न्यस्तं काष्ठादिकं यथाग्निमयं सद् दृश्यते, तथा शिवे स्थापितं विश्वं चिन्मयमेव दृश्यते, शिवस्य चिदग्निरूपत्वादिति भावः ॥ ९ ॥

ई सम्पूर्ण चराचर जगत् चिदात्मस्वरूप शिवमे समर्पित भेल शिवमयरूपमे जानल जाइछ, जेना आगिमे देल काठ आदि सब अग्निमय भए जाइछ ॥ ९ ॥

ननु वह्नौ काष्ठमिव शिवे विश्वं न केनापि न्यस्तम्, शिवेनैव कल्पितम्, तत्कथं तन्मयं सद्भातीत्यत्राह–

न भाति पृथ्वी न जलं, न तेजो नैव मारुतः ।
नाकाशो न परं तत्त्वं, शिवे दृष्टे चिदात्मनि ॥ १० ॥

मृत्तिकायां ज्ञातायां घटशरावादिकं सर्वं यथा मृन्मयमेव[१], न तद्व्यतिरिक्तमिति ज्ञायते, तथा चिदात्मनि शिवे दृष्टे सति तत्कार्यत्वाद् भूम्यादिकं तद्भिन्नत्वेन न भाति, तदात्मकत्वेनैव भातीत्यर्थः ॥ १० ॥

---

१. तुलनीय– यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद् वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् । (छा०उ० १।१।४)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चिदात्मस्वरूप शिवक दर्शन भेला पर ने पृथ्वी, ने जल, ने तेज, ने वायु ने आकाश आ ने परतत्त्वे (आन पदार्थ) भासित होइत अछि। अर्थात् सब शिवमय भए जाइछ ॥ १० ॥

एवं शिवात्मकं विश्वं तत्रैव लीनं चिन्तयन् योगी न लिप्यत इत्यत्राह–

ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे, ज्वलत्यन्तर्निरन्तरम्।
विलीनं निखिलं तत्त्वं, पश्यन् योगी न लिप्यते ॥ ११ ॥

अन्तः हृद्रूपाष्टदलकमलमध्ये निरन्तरं चिद्रूपे ज्योतिर्लिङ्गे महालिङ्गे ज्वलति सति प्रकाशिते सति तस्मिन् महालिङ्गे शिवयोगी निखिलं तत्त्वं शिवादिभूम्यन्तं विलीनं लयीभूतं पश्यन् सन् न लिप्यते तनुकरणभुवनभोगात्मक-षट्त्रिंशत्तत्त्वैर्न लिप्यत इत्यर्थः ॥ ११ ॥

अपना अन्दर चित्स्वरूप ज्योतिर्लिङ्गक निरन्तर प्रकाशित भेला पर सभ तत्त्वकेँ ओहिमे विलीन देखनिहार शिवयोगी सांसारिक विषयमे लिप्त नहि होइत छथि ॥ ११ ॥

अथैतदर्थमेव होमरूपेण विशेषयति–

अन्तर्मुखेन मनसा, स्वात्मज्योतिषि चिन्मये।
सर्वानप्यर्थविषयान्, जुह्वन् योगी प्रमोदते ॥ १२ ॥

अन्तर्मुखेन मनसा प्रत्युन्मुखेन मनसा चिन्मये स्वस्वरूपवह्निप्रकाशे समस्तपदार्थान् जुह्वन् तादात्म्येन समर्पयन् शिवयोगी प्रमोदत इत्यर्थः ॥ १२ ॥

अन्तर्मुखी मनसँ चिन्मय आत्मरूपी तेजमे सकल विषयक हवन कएनिहार शिवयोगी आनन्दित रहैत छथि ॥ १२ ॥

अथ स्वीकृतप्रसादिस्थलं समापयति–

सच्चिदानन्दजलधौ, शिवे स्वात्मनि निर्मलः।
समर्प्य सकलान् भुङ्क्ते, विषयान् तत्प्रसादतः ॥ १३ ॥

निर्मलः शिवयोगी सच्चिदानन्दानां समुद्रभूते स्वात्मनि स्वप्रकाशात्मनि शिवे सकलान् शब्दादिपदार्थान् समर्प्य तत्प्रसादतस्तत्प्रसादरूपेण भुङ्क्त इति ॥ १३ ॥

निर्मल शिवयोगी सत् चित् आनन्द स्वरूप स्वात्मा शिव समुद्रमे सकल

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषयकेँ समर्पित कए हुनके प्रसादसँ ओकर भोग करैत छथि ॥ १३ ॥

इति स्वीकृतप्रसादिस्थलम्

अथ शिष्टोदनस्थलम्

अथ- 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्'[1] इति श्रुत्यनुसारेण-

ग्रन्थिजन्यं कलाकाल-विद्यारागनृमातरः ।
गुणधीगर्वचित्ताक्ष-मात्राभूतान्यनुक्रमात् ॥[2]

इति मृगेन्द्रवचनानुसारेण च तच्चित्प्रसादस्वीकारवतः शिवयोगिनो मायातत्त्वमेव शिष्टोदनमिति सूत्रचतुष्टेन कथयति-

प्रकाशते या सर्वेषां माया सैवोदनाकृतिः ।
लीयते तत्र चिल्लिङ्गे शिष्टं तत् परिकीर्तितम् ॥ १४ ॥

या माया मिश्रा शुद्धाध्वनिवासिनां तनुकरणभुवनभोगरूपिणी अधोमायाऽस्ति, सैव सर्वेषां प्रकाशते लीयते च । तत् कलादिभूम्यन्त-त्रिंशत्तत्त्वात्मकमायातत्त्वमेव चिल्लिङ्गे ज्ञानचिह्ने तत्र विषये तत्स्वीकृतप्रसादिविषये शिष्टोदनाकृतिरवशिष्टोदनाकारवदिति प्रकीर्तितमित्यर्थः ॥ १४ ॥

शिष्टोदनस्थल- जे माया सभक लेल प्रकाशित हेइत अछि से ओदन (भात) सदृश अछि । ओकर जे ओहि चित्स्वरूप शिवलिङ्गमे लय होएब तकरा शिष्ट कहल गेल अछि ॥ १४ ॥

जगदङ्गे परिग्रस्ते मायापाशविजृम्भिते ।
स्वात्मज्योतिषि बोधेन तदेकमवशिष्यते ॥ १५ ॥

मायापाशविजृम्भिते कलादिक्षित्यन्तत्रिंशत्तत्त्वात्मकमायापाशनिबद्धे जगदङ्गे विश्वशरीरवति स्वात्मज्योतिषि स्वस्वरूपज्ञाने बोधेन स्वात्मज्ञानेन परिग्रस्ते सति आक्रान्ते सति तदेकं तन्मायातत्त्वमेकमेवावशिष्यत इत्यर्थः ॥ १५ ॥

मायाक पाश (फानी)मे बान्हल संसार रूपी शरीरक आत्मज्योतिमे विलीन भेला पर एकमात्र माया तत्त्व बाँचल रहैछ । मायाक पाश थिक- कला, विद्या, राग, काल, नियतिरूप पाँच कंचुक तथा ताहिसँ उत्पन्न प्रकृतिसँ लए भूमि पर्यन्त तीस तत्त्व ॥ १५ ॥

ननु शारीरिकस्वरूपस्य बोधाक्रान्तत्वात् कथं मायातत्त्वमवशिष्यत

---

१. श्वे०उ० ४ । १० २. मृ०तं०वि०पा० १०.१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इत्यत्राह–

अखण्डसच्चिदानन्द-परब्रह्मस्वरूपिणः ।
जीवन्मुक्तस्य धीरस्य माया कैङ्कर्यवादिनी ॥ १६ ॥

अखण्डसच्चिदानन्दलक्षणपरब्रह्मैव यस्य स्वरूपं तादृशस्य जीवन्मुक्तस्य धीरस्य जितेन्द्रियस्य शिवयोगिनो माया कैङ्कर्यवादिनी दासभावं वदन्ती सत्यास्त इत्यर्थः ॥ १६ ॥

ई माया जीवन्मुक्त शियोगीक दासी बनि रहैत अछि जे (शिवयोगी) अखण्ड सच्चिदानन्दरूप परब्रह्म बनल धीर थिकाह ॥ १६ ॥

एवंरूपायां स्थितौ–

विश्वसम्मोहिनी माया बहुशक्तिनिरङ्कुशा ।
शिवैकत्वमुपेतस्य न पुरः स्थातुमीहते ॥ १७ ॥

जगन्मोहिनी माया बहुविधशक्तिभिरनर्गलापि शिवे समानसमरसभावमुपेतस्य शिवयोगिनः पुरतो मोहकत्वेन स्थातुं नेहते नेच्छतीत्यर्थः ॥ १७ ॥

संसारकेँ मोहमे राखएवाली तथा अनन्तशक्तिसँ सम्पन्न निरंकुश माया शिवैकत्वकेँ प्राप्त योगीक सोझाँ टिकि नहि सकैछ ॥ १७ ॥

अथ तस्य शिवैक्यस्य विषयनाशं सूत्रत्रयेण कथयति–

ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे निमग्नेन महात्मना ।
भुज्यमाना यथायोगं नश्यन्ति विषयाः स्वतः ॥ १८ ॥

स्पष्टम् ॥ १८ ॥

चिद्रूप ज्योतिर्लिङ्गमे निमग्न महात्मा शिवयोगीक द्वारा यथोचित भोग्य विषय नष्ट भए जाइत अछि ॥ १८ ॥

अथ कथं लयं गच्छन्तीत्यत्राह–

शब्दादयोऽपि विषया भुज्यमानास्तदिन्द्रियैः ।
आत्मन्येव विलीयन्ते सरितः सागरे यथा ॥ १९ ॥

कारणान्तरव्यतिरेकेण नदीसागरन्यायेन स्वत एव लयं गच्छन्तीत्यर्थः । स्वीकृतप्रसादस्तैलवत् सारभूतचिदानन्दः, शिष्टोदनस्तु पिण्याकवन्निःसारा मायेति तद्भोगो निःसारः सन् नश्यतीति भावः ॥ १९ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्द आदि विषय योगीक इन्द्रियद्वारा भोगल जाइत आत्मामे तहिना विलीन भए जाइछ जेना नदी समुद्रमे मिलि विलीन भए जाइछ ॥ १९ ॥

अथैवं विनष्टविषयसमूहवान् शिवयोगी कथमास्त इत्यत्र वदन् शिष्टोदनस्थलं समापयति–

अर्थजातमशेषं तु ग्रसन् योगी प्रशाम्यति ।
स्वात्मनैवास्थितो भानुस्तेजोजालमशेषतः ॥ २० ॥

शिवयोगी अशेषं पदार्थसमूहं स्वस्वरूपेण ग्रसन् तेजोजालं स्वकिरणसमूहम् अशेषतो निश्शेषं यथा भवति तथा ग्रसन्नुपसंहरन् आस्थितो भानुरिव अस्तं गच्छन् भानुरिव शाम्यति स्वस्थो भवतीत्यर्थः ॥ २० ॥

योगी सकल विषयक उपभोग कए अपनामे स्थिर भए जाइत छथि, जेना सूर्य सबकेँ प्रकाशित कए स्वयं शान्त भए जाइत छथि ॥ २० ॥

इति शिष्टोदनस्थलम्

अथ चराचरलयस्थलम्

अथ– 'सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य'[1] इति मुण्डकश्रुत्यनुसारेण–

विषसम्बन्धिनी शक्तिर्यथा मन्त्रैर्निरुध्यते ।
यथा न तदिति क्षीणमेवंपुसो मलक्षयः ॥

इति किरणागमवचनानुसारेण च केवलचित्प्रसादस्वीकारेणावशिष्टमायोदनः शिवयोगी चराचरे प्रत्येकं परिपक्वानुसारेण व्याप्तमलशक्तिं परिपक्वानुसारेण विनाशकरणेन चराचरविनाशक इति कथयति–

लिङ्गैक्ये तु समापन्ने चरणाचरणे गते ।
निर्देही स भवेद्योगी चराचरविनाशकः ॥ २१ ॥

चरणाचरणे गते चराचरप्रपञ्चगते लिङ्गैक्ये महालिङ्गतादात्म्ये समापन्ने प्राप्ते सति स योगी शिष्टोदनसम्पन्नः शिवयोगी निर्देही भूत्वा चराचरविनाशको जङ्गमस्थावरगतमलशक्तिविनाशको भवेदित्यर्थः ॥ २१ ॥

चराचरलय स्थल– जखन चर ओ अचर जगत् लिङ्गमे एकाकार भए जाइछ तखन शिवयोगी देहरहित भए चराचरक विनाशक भए जाइत छथि ॥ २१ ॥

---

१. मु०उ० २।१।१०

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ स शिवयोगी चराचरव्याप्तमलशक्तिनिवारणेन मायाप्रपञ्चं न पश्यतीति षड्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

अनाद्यविद्यामूला हि प्रतीतिर्जगतामियम् ।
स्वात्मैकबोधात् तन्नाशे कुतो विश्वप्रकाशनम् ॥ २२ ॥

इदमेतादृगिति प्रतिनियतविश्वभुवनप्रतीतिर्लीलाशक्त्यनादिकल्पितमायैव मूलकारणवती स्वात्मैकबोधात् स्वात्मैवेति बोधात् स्वात्मप्रधानीभूतज्ञानात् तन्नाशे मलशक्तिनाशे विश्वप्रकाशनं तन्मूलकजगद्दर्शनं कुतो नास्तीत्यर्थः ॥ २२ ॥

संसारक प्रतीति अनादि–अविद्यामूलक थिक । संसारक शिवमे एकताक ज्ञान भेला पर ओहि अविद्याक नाश भए जाइछ आ तखन विश्वक आभासक कोन सम्भावना ? ॥ २२ ॥

नन्विदं विश्वं कुत्र लयं गच्छतीत्यत्राह–

यथा मेघाः समुद्भूता विलीयन्ते नभस्तले ।
तथात्मनि विलीयन्ते विषयाः स्वानुभाविनः ॥ २३ ॥

नभःस्थले मेघाः सम्भूय विलीयन्ते, तथा स्वस्वरूपानुभाविनः शिवयोगिन आत्मनि चैतन्ये विषयाः शब्दादिविषयाः समुद्भूता उत्पन्नाः सन्तो विलीयन्त इत्यर्थः ॥ २३ ॥

जेना आकाशमे मेघ उत्पन्न भए ओहीमे विलीन भए जाइछ तहिना स्वस्वरूपक अनुभव कएनिहार शिवयोगीक आत्मामे उत्पन्न सभ विषय आत्महिमे विलीन भए जाइत छनि ॥ २३ ॥

अथेदं विश्वं स्वात्मैकबोधात् कथं नश्यतीत्यत्राह–

स्वप्ने दृष्टं यथा वस्तु प्रबोधे लयमश्नुते ।
तथा सांसारिकं सर्वमात्मज्ञाने विनश्यति ॥ २४ ॥

आत्मज्ञाने सतीत्यर्थः । नन्वेवं चेद्विश्वस्य स्वप्नसादृश्याङ्गीकारान्मिथ्यात्व-प्रसङ्ग इति नाशङ्कनीयम्, स्वप्नेनापि फलाफलदर्शनात्, रेतःपातादिदर्शनाच्च सत्यत्वमेवेति । शिष्टं स्पष्टम् ॥ २४ ॥

जेना स्वप्नमे देखल वस्तु जगला पर विलीन भए जाइछ तहिना संसारक सभ वस्तु आत्मज्ञान भेलापर विलीन भए जाइछ ॥ २४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुनश्च कारणान्तरमाह–

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभ्यः परावस्थामुपेयुषः ।
किं वा प्रमाणं कि ज्ञेयं किं वा ज्ञानस्य साधनम् ॥ २५ ॥

परावस्थां तनुत्रयाश्रितजाग्रदाद्यवस्थातीतबोधखेचरीमुद्रासुलभसर्वोत्कृष्ट-तुरीयावस्थाम् उपेयुषो गतस्य शिवयोगिनः किं वा प्रमाणं किं ज्ञेयं किं वा ज्ञानस्य साधनम् ? त्रिपुटीमयप्रपञ्चोत्तीर्णत्वात् तद्दर्शनं नास्तीति भावः ॥ २५ ॥

जागल, स्वप्न एवं सूतल अवस्थासँ अतिरिक्त तुरीय (चारिम बोधखेचरीमुद्रा) केँ प्राप्त शिवयोगीक लेल की प्रमाण, की ज्ञेय आ की ज्ञानक साधन ? अर्थात् एहि त्रिपुटीक नष्ट भेलासँ हुनका एकर कोनो प्रयोजन नहि ॥ २५ ॥

अथ तत्तुर्यातीतपदं विशदयति–

तुर्यातीतपदं यत्तद् दूरं वाङ्मनसाध्वनः ।
अनुप्रविश्य तद्योगी न भूयो विश्वमीक्षते ॥ २६ ॥

यत्तुर्यातीतपदं मौनान्तमुद्रासुलभतुर्यातीतस्थानमस्ति, वाङ्मनसाध्वनो दूरं स्तुतिध्यानयोरविषयं तत्तुर्यातीतस्थानम् अनुप्रविश्य तद्योगी तुर्यस्थानयोगवान् शिवयोगी भूयो विश्वं नेक्षते न पश्यतीत्यर्थः ॥ २६ ॥

जे पूर्वोक्त तुरीयावस्थासँ आगूक अवस्था मौनान्त मुद्रा सुलभ तुरीयातीत अछि ओ वाणी आ मनक पहुँच सँ परे अछि । ताहिमे प्रवेश कए शिवयोगी पुनः विश्व दिस नहि तकैत छथि ॥ २६ ॥

कुत इत्यत्राह–

नान्यत् पयति योगीन्द्रो नान्यज्जानाति किञ्चन ।
नान्यच्छृणोति सन्दृष्टे चिदानन्दमये शिवे ॥ २७ ॥

चिदानन्दस्वरूपे शिवे संदृष्टे सतीति शेषः । अपरोक्षीकृते सति योगीन्द्रो निजस्वरूपस्थः शिवयोगीश्वरः, अन्यत् स्वातिरिक्तं रूपं न पश्यति, तादृशं शब्दजालं न शृणोति, किमपि तदन्यं न जानातीत्यर्थः । मलशक्तिक्षयाद् मायकिरूपादिदर्शनं नास्तीति भावः ॥ २७ ॥

शिवयोगीकेँ जखन चिदानन्दमय शिवक दर्शन भए जाइत छनि त

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओ आन कोनो वस्तुकेँ ने देखैत छथि, ने जनैत छथि आ ने सुनिते छथि ।। २७ ।।

अथोक्तार्थं स्फुटयन् चराचरमलनाशस्थलं समापयति–

असदेव जगत् सर्वं सदिव प्रतिभासते ।
ज्ञाते शिवे तदज्ञानं स्वरूपमुपपद्यते ।। २८ ।।

सर्वं जगद् असदेव शिवातिरेकेण नास्त्येव, सदिव प्रतिभासते मलशक्तिवशात् तद्व्यतिरेकेण सदिव भासते, शिवे सच्चिदानन्दलक्षणे परशिवे ज्ञाते साक्षात्कृते सति तदज्ञानं भेदप्रतीतिकारणं तन्मूलाज्ञानं नष्टं सत् स्वरूपं कारणीभूतचिच्छक्त्याकारम्, उपपद्यते गच्छतीत्यर्थः । तस्मात् शिवातिरेकेण स्वविमर्शनं शिवयोगिनो नास्तीत्यर्थः ।। २८ ।।

पहिने सम्पूर्ण जगत् असतस्वरूप होइतो सत् जेकाँ लगैत छैक मुदा शिवक ज्ञान भए गेला पर ओ अज्ञान (असत्केँ सत् मानब) हटि जाइछ ओ यथार्थ स्वरूप प्रकट भए जाइछ ।। २८ ।।

इति चराचरमललयस्थलम्

अथ भाण्डस्थलम्

अथ–

"उर्ध्वमूलोऽवाक्शाख, एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्लं तद् ब्रह्म, तदेवामृतमुच्यते ।।
तस्मिन् लोकाः श्रिताः सर्वे, तदु नात्येति कश्चन" ।।[१]

इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेण–

यथा कुण्डलिनीशक्तिर्मायाकर्मानुसारिणी ।
नादबिन्द्वादिकं कार्यं तस्या इति जगत्स्थितिः ।।

इत विश्वसारोत्तरवचनानुसारेण च चराचरमलशक्तिविनाशकस्य शिवयोगिनो विचाररूपः परबिन्दुरेव भाण्डस्थलमिति निरूपयति–

ब्रह्माण्डशतकोटीनां सर्गस्थितिलयान् प्रति ।
स्थानभूतो विमर्शो यस्तद्भाण्डस्थलमुच्यते ।। २९ ।।

अनेककोटिब्रह्माण्डसृष्टिस्थितिलयान् प्रत्याधारभूतो यो विमर्शः, अस्य

१. क०उ० ६ । १

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चराचरमलविनाशकस्य शिवयोगिनः शब्दब्रह्मरूपविचारोऽस्ति, तद् भाण्डस्थलमित्युच्यत इत्यर्थः ॥ २९ ॥

भाण्डस्थल– सए कोटि ब्रह्माण्डक सृष्टि स्थिति प्रलयक प्रति जे आधारस्वरूप स्थलक विमर्श थिक से भाण्डस्थल कहबैत अछि ॥ २९ ॥

अथ तद्विमर्शस्वरूपं विशदयति–

विमर्शाख्या पराशक्तिर्विश्वोद्भासनकारिणी ।
साक्षिणी सर्वभूतानां समिन्धे सर्वतोमुखी ॥ ३० ॥

षडध्वस्फारलक्षणशब्दार्थविचारपरत्वेन विमर्शाख्या पराशक्तिः शुद्धमाया विश्वोद्भासनकारिणी स्वकार्यरूपज्ञानादिभिर्विश्वप्रकाशिनी सर्वतत्त्वानां साक्षिणी सर्वतोमुखी सती समिन्धे शुद्धाध्ववासिनां परशक्तिसदाशिवेश्वर-विद्यांतत्त्वलक्षणतनुकरणभुवनभोगरूपेण प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ३० ॥

ईश्वरक विमर्श नामक परा शक्ति विश्वक रचनाक कारण थिक । ओ सकल भूतक साक्षी होइत सर्वतोमुख प्रकाशित अछि ॥ ३० ॥

अथ तामेव विमर्शकलां विशेषयति–

विश्वं यत्र लयं याति विभात्यात्मा चिदाकृतिः ।
सदानन्दमयः साक्षात् सा विमर्शमयी कला ॥ ३१ ॥

स्पष्टम् ॥ ३१ ॥

जतए सम्पूर्ण विश्व विलीन भए जाइछ, जकर कारणेँ आत्मा चित् आनन्दमय रूपमे भासित अछि से साक्षात् विमर्शमयी कला थिक ॥ ३१ ॥

अथ भाण्डस्थलार्थं सूचयन् तत्त्वप्रसिद्धलिङ्गाङ्गरूपशिवजीवयोः स विमर्श एवाश्रय इति सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति–

पराहन्तासमावेश–परिपूर्णविमर्शवान् ।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी सर्वकर्ता महेश्वरः ॥ ३२ ॥

महेश्वरः परमेश्वरः पराहन्तासमावेशपरिपूर्णविमर्शवान् शिवजीव-साधारणीभूतात्मतत्त्वाक्रमणेन परिपूर्णविमर्शवान् सन् सर्वज्ञः सर्वकर्ता सर्वगः सर्वव्यापकः कर्मसाक्षी भवेत्, अन्यथा स्फटिकादिप्रकाशवज्जडो[1] भवेदिति भावः ॥ ३२ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri.

महेश्वर पराहन्ताक समावेश सँ परिपूर्ण विमर्शवाला, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, साक्षी ओ सभक कर्ता भए जाइत छथि । ३२ ॥

अथ किं तस्य स्वरूपमित्यत्राह–

विश्वाधारमहासंवित्प्रकाशपरिपूरितम् ।
पराहन्तामयं प्रहुर्विमर्शं परमात्मनः ॥ ३३ ॥

परमात्मनः 'अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाभिः'[२] इति श्रुतेः, 'अहमादिर्हि देवानाम्'[३], 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते'[४] इति भगवदुक्तेश्च परसंविद्रूपस्याहमात्मनः शिवस्य महासंवित्प्रकाशपरिपूरितं महाचित्प्रकाशपरिपूर्णं विश्वाधारं विश्वरूपाविद्यालक्षणाधोमायाधारं पराहन्तामयम्, यथा घटस्य कम्बुग्रीवादिमत्त्वं तदनतिरिक्तम्, तथा अहमो भावोऽहन्तेति 'पॄ पालनपूरणयोः' इति धातुगत्याण्डरसन्यायेनाशुद्धमिश्र-शुद्धाध्वलक्षणसकलविश्वतः पूर्णजीवनभूतपराहन्तामयोर्ध्वमायारूपं विमर्शं सन्तं प्राहुः, शिवाद्वैतशास्त्रप्रवीणाः प्रकर्षेणाहुरित्यर्थः । अयं भावः –'पादोऽस्य विश्वा भूतानि'[५] इति श्रुतेश्चराचरप्रपञ्चस्य माहेश्वरीयचित्क्रियालक्षणचरविस्तार-रूपत्वात् तत्प्रतिस्फुरणायमानोर्ध्वमायारूपा विमर्शशक्तिरेव घृतकीटन्यायेनैकदेशविकारीभूता-

वागीश्वरी परा विद्या कुटिला कुण्डली परा ।
शुद्धमायापरो बिन्दुः शब्दब्रह्मेति कथ्यते ॥

इति पौष्करवचनप्रसिद्धपर्यायनामवती षडध्वजननीति देशिकोपदेशेन विज्ञेया । अस्याश्चिद्रूपत्वेन निरंशत्वेऽप्यघटनघटनापटीयस्त्वेन स्वातन्त्र्य-कल्पितांशभेदसम्भवान्न काचिदनुपपत्तिरिति ॥ ३३ ॥

विश्वक आधारभूत महासंवितक प्रकाशसँ परिपूर्ण पराहन्ता केँ विद्वान् लोकनि परमात्माक विमर्श कहैत छथि जे माहेश्वरीय चित्क्रियाक विस्ताररूप थिक ॥ ३३ ॥

---

१. तुलनीय– प्रागिवार्थोऽप्रकाशः स्यात् प्रकाशात्मतया विना ।
न च प्रकाशो भिन्नः स्यादात्मार्थस्य प्रकाशता ॥ (ई०प्र० १।५।२)

तथा

स्वभावमवभासस्य विमर्शं विदुरन्यथा ।
प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपि स्फटिकादिजडोपमः ॥ (ई०प्र० १।५।११)

२. तै०उ० ३।१०।६
३. भ०गी० १०।२।४
४. भ०गी० १०।८
५. ऋ०सं० ८।४।१७

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विमर्शभाण्डविन्यस्त-विश्वतत्त्वविजृम्भणः ।
अनन्यमुखसम्प्रेक्षी मुक्तः स्वात्मनि तिष्ठति ॥ ३४ ॥

मुक्तो मायापाशपटलनिर्मुक्तः शिवयोगी विमर्शभाण्डस्थापित-शक्त्यादिपृथिव्यन्तसमस्ततत्त्वबुद्बुदः सन् स्वात्मन्येवोन्मुखः सन् स्वस्वरूपेण तिष्ठतीत्यर्थः ॥ ३४ ॥

विश्वतत्त्वक विस्तारकेँ विमर्शरूपी वर्तनमे रखनिहार, आनक अपेक्षा नहि रखनिहार शिवयोगी मुक्त भए अपन रूपमे स्थित रहैत छथि ॥ ३४ ॥

इति भाण्डस्थलम्

अथ भाजनस्थलम्

अथ–

परास्य शक्तिर्विपुला विकर्त्री
स्वाभाविकी रुद्रसमानधर्मिणी ।
ज्ञानक्रियेच्छादिसहस्ररूपा
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥[1]

इति शिवसङ्कल्पश्रुत्यनुसारेण–

या सा माहेश्वरी शक्तिः सर्वानुग्राहिका शिवा ।
धर्मानुवर्तनादेव पाश इत्युपचर्यते ॥[2]

इति मृगेन्द्रवचनानुसारेण च तद्भाण्डस्थलसम्पन्नस्य शिवयोगिनो विमर्शस्याश्रयीभूता तिरोभावशक्तिरेव भाजनमिति सूत्रद्वयेन निरूपयति–

समस्तजगदण्डानां सर्गस्थित्यन्तकारणम् ।
विमर्शो भासते यत्र तद् भाजनमिहोच्यते ॥ ३५ ॥

समस्तभुवनाण्डसृष्ट्यादिकारणीभूतविमर्शपरबिन्दुर्यत्र तिरोधानरूपशिव-समवेतशक्तौ भासते, तत्तच्छक्तिस्वरूपम्, इह भाण्डस्थलमसम्पन्नशिवयोगिविषये भाजनमित्युच्यते । अयं भावः–पञ्चकञ्चुकयुक्तचैतन्यस्य पुरुष इत्यभिधानवतः पाशत्रयानुसारिण्याः शिवशक्तेस्तिरोभाव इत्युपचारः ॥ ३५ ॥

भाजनस्थल– समस्त ब्रह्माण्डक सृष्टि–स्थिति–संहारक कारणस्वरूप विमर्श जाहिमे भासित होइत अछि तकरा एहि संसारमे भाजन कहल जाइछ ॥ ३५ ॥

१. वाजसवेयसंहितायामिदं सूक्तं नोपलभ्यते । २. मृ०तं० वि०पा० ७ । ११

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विमर्शाख्या परा शक्तिर्विश्ववैचित्र्यकारिणी ।
यस्मिन् प्रतिष्ठिता, ब्रह्म तदिदं विश्वभाजनम् ॥ ३६ ॥

विश्ववैचित्र्यकारिणी विमर्शाख्या परकुण्डलिनी शक्तिर्यस्मिन् तिरोभावशक्तेर्दृक्क्रियास्वरूपे प्रतिष्ठिता, ब्रह्म ब्रह्मस्वरूपं तदिदं वह्न्युष्णत्वशुक्लपटन्यायेन[1] स्वसमवेततिरोभावशक्तिदृक्क्रियास्वरूपं विश्वभाजनमित्यर्थः ॥ ३६ ॥

विश्वक विचित्र निर्माण करएवाली विमर्श नामक परा शक्ति जाहिमे स्थित अछि से ब्रह्म विश्वभाजन कहबैत छथि ॥ ३६ ॥

अथ तिरोभावविमर्शयोः किञ्चिन्मिश्रीभावं सूत्रद्वयेन प्रकाशयति–

अन्तःकरणरूपेण जगदङ्कुररूपतः ।
यस्मिन् विभाति चिच्छक्तिर्ब्रह्मभूतः स उच्यते ॥ ३७ ॥

चिच्छक्तिः स्थूलवेद्यतिरोभावलक्षणा समवेतशक्तिर्जगदङ्कुररूपतो जगदङ्कुरकारणीभूतेन अन्तःकरणरूपेण मूलाहङ्काररूपेण यस्मिन् परबिन्दौ भाति, स विमर्शाख्यपरबिन्दुरेव ब्रह्मभूतः परब्रह्माख्यपरशिव इत्युच्यते । तच्चिद्व्यक्तिमत्परबिन्दुरेव महालिङ्गमित्यर्थः ॥ ३७ ॥

जाहि परमशिवमे चित्शक्ति संसारक अंकुररूपसँ अहङ्कारक रूपमे भासित होइत अछि से परमशिव ब्रह्मभूत कहल जाइत छथि ॥ ३७ ॥

नन्वहङ्कारमिश्रवान्मिथ्याभूतः किमित्यत्राह–

यथ चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी ।
तथा शक्तिर्विमर्शात्मा प्रकारे ब्रह्मणि स्थिता ॥ ३८ ॥

चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना चन्द्रिका विश्ववस्तु सर्वविश्वं प्रकारे एकदेशे यथा प्रकाशिनी प्रकाशयति, तथा ब्रह्मणि दृक्क्रियात्मकपरशिवे स्थिरा स्थिरेण स्थिता विमर्शशक्तिः परामर्शमयी पराशक्तिः, विश्ववस्तु सर्वं जगत् प्रकारे स्वस्वातन्त्र्यकल्पितांशे प्रकाशिनी प्रकाशयतीत्यर्थः । मनोवाचामगोचरत्वेन पशुजनानां तिरोहितत्वात् तिरोधानशक्तिरिति प्रसिद्धा या अस्ति, तथ्यकर्मकस्फूर्तिरूपाया-श्चित्क्रियाशक्तेः परब्रह्मपरशिवपरलिङ्गादिनामानि मुख्यानि, महाबिन्द्वादीनां

---

१. यथा वह्नेरुष्णत्वं वह्नेः पृथङ्न भवति अथवा शुक्लपटस्य शौक्ल्यं पटादन्यत्र भवति तथा शक्तिः शक्तिमतो भिन्ना न भवति ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गौणानीति विवेकः ॥ ३८ ॥

जेना चन्द्रमामे समस्त संसारक एकप्रकारमे = एक अंशमे प्रकाशिनी कौमुदी (किरण) स्थिर रहैत छनि, तहिना ब्रह्ममे स्थित विमर्श शक्ति संसारक एकदेशकेँ प्रकाशित करैत अछि ॥ ३८ ॥

ननु मुख्यप्रकाशात्मकं ब्रह्म शक्त्येकरूपं सत् कथमास्त इत्यत्राह–

अकारः शिव आख्यातो हकारः शक्तिरुच्यते ।
शिवशक्तिमयं ब्रह्म स्थितमेकमहम्पदे ॥ २ ॥

'अक्षराणामकारोऽस्मि'[1] इति भगवदुक्तेः, 'अकारो वै सर्वा वाक्'[2] इति श्रुतेश्च अकारः सप्तदशीयः शिव इत्याख्यातः, हकारः शक्तिः, 'हकारोऽन्त्यः कलारूपः' इत्यागमोक्तेश्चैतन्यरूपिणी दृक्क्रियाशक्तिरित्युच्यते । शिवशक्तिमयम् एवं शिवशक्तिरूपं ब्रह्म परब्रह्म एकं सद् अहंपदे अहमिति स्थाने स्वरूपे स्थितं कालत्रयेऽपि वर्तत इत्यर्थः । अनेनाहंरूपं ब्रह्मेति वदन्तो वैयासिकाः प्रत्युक्ताः, नित्यापरोक्षं ब्रह्मेत्यङ्गीकृतत्वे तद्व्यतिरिक्तस्य कथञ्चिदप्यदृश्यत्वादिति ॥ ३९ ॥

'अहं' पदमे अकार शिव कहल गेल छथि आ हकार शक्तिक बोधक थिक । एहि तरहेँ अहं (हम) पदमे शिवशक्तिमय एक ब्रह्म स्थित छथि ॥ ३९ ॥

अथैवंरूपाहन्तां प्राप्य शिवयोगी विश्वरूपः सन् प्रतिभातीत्याह–

अहन्तां परमां प्राप्य शिवशक्तिमयीं स्थिराम् ।
ब्रह्मभूयङ्गतो योगी विश्वात्मा प्रतिभासते ॥ ४० ॥

परमां देशकालाकारोत्तीर्णां शिवशक्तिमयीं शिवाभिन्नशक्तिमयीम् अहन्तां सप्तदशीयचित्कलां प्राप्य स्वात्माभेदेन स्थिरां स्थिरीभूतां ज्ञात्वा विमृश्य ब्रह्मभूयङ्गतो ब्रह्मस्वरूपं गतः शिवयोगी विश्वात्मा जगद्रूपः सन् प्रतिभासते, प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ४० ॥

शिवशक्तिमयी स्थिति परम अहन्ता (अहं केर भाव)केँ प्राप्त कए शिवयोगी ब्रह्मस्वरूप भए विश्वक रूपमे प्रकाशित होइत छथि ॥ ४० ॥

अथ कथं विश्वरूपः सन् शिवयोगी भासत इत्यत्र–

यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥

---

१. भ०गी० १० । ३३ २. ऐ०आ० २ । ३ । ६

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति श्रीपरात्रिंशिकाशास्त्रोक्तप्रकारेण वदन् भाजनस्थलं समापयति–

वृक्षस्थं पत्रपुष्पादि वटबीजस्थितं यथा ।
तथा हृदयबीजस्थं विश्वमेतत् परात्मनः[1] ॥ ४१ ॥

वृक्षस्थं वटवृक्षस्थं पत्रपुष्पादि समस्तं यथा वटबीजे स्थितं तिष्ठतीत्यर्थः, तथा एतद् विश्वं समस्तं परात्मनः परब्रह्मरूपस्य भाजनस्थलसम्पन्नस्य शिवयोगिनो हृदयबीजस्थम्, 'कला सप्तदशी ज्ञेया स्वान्तर्लीनचराचरा' इत्यागमोक्तेः,

अथाद्यास्तिथयः सर्वाः स्वरा बिन्द्ववसानकाः ।
तदन्तःकालयोगेन सोमसूर्यौ प्रकीर्तितौ ॥
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि पुरुषान्तानि पञ्चसु ।
क्रमात् कादिषु वर्गेषु मकारान्तेषु सुव्रते ॥
वाय्वग्निसलिलेन्द्राणां धारणानां चतुष्टयम् ।
तदूर्ध्वे शादि विख्यातं पुरस्ताद् ब्रह्मपञ्चकम् ॥
अमूलात्तत्क्रमाज्ज्ञेया क्षान्ता सृष्टिरुदाहृता ।[2]

इति श्रीपरात्रिंशिकाशास्त्रोक्तप्रकारेण आदिक्षान्तपञ्चाशद्वर्णानां देशकालाकाररूपत्वात्,

प्रत्यवमर्शात्मासौ, चितिः स्वरसवाहिनी परा वाग् या ।
आद्यन्तप्रत्याहृत-वर्णगणा सत्यहन्ता सा ॥[3]

इति पञ्चाशिकाशास्त्रस्थितया क्षकारस्य कषयोगरूपत्वेन हकारस्यैवान्त्यत्वाद् देशकालाकारवाचकसकलमातृकार्णक्रोडीकारलक्षण-प्रत्याहृताकारहकाररूपशिवशक्तिसम्मेलनस्फुरिततदन्तर्गतवेद्यसंस्कारलक्षण-बिन्दुस्पन्दमयनरशक्तिशिवात्मकाऽहंपरामर्शरूपचित्क्रियासामरस्यलक्षणहृदयबीजे तादात्म्येन तिष्ठतीत्यर्थः । अत्र अकारादिहकारान्तसूक्ष्मादिवाक्शक्तिरूपो विमर्शस्तदात्मकाहंपदे पशुजनागोचरत्वेन भासमानानाहतनादलक्षण-परावाक्शक्तिमयी चिच्छक्तिस्तिरोधानशक्तिरिति रहस्यम्

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन गम्यते ॥[4]

इति वैयाकरणवचनानुसारादिति ॥ ४१ ॥

---

१. तुलनीय– यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतत् चराचरम् ॥ (परात्रीशिका २५)

२. प० त्री० ५ ३. वि०प० ९ ४. वा०प० १ । ११५

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जेना बड़क गाछमे स्थित पात फूल आदि ओकर बीयामे रहैत छैक तहिना परब्रह्मस्वरूप शिवयोगीक हृदयबीजमे ई विश्व रहैत अछि ।। ४१ ।।

इति भाजनस्थलम्

अथ अङ्गालेपस्थलम्

अथ– 'यथा पुष्करपलाशा आपो न श्लिष्यन्ते, एवमेव पापकर्म न श्लिष्यते'[1] इति छान्दोग्यश्रुत्यनुसारेण–

एवंभूतस्य कर्माणि क्रियमाणानि योगिनः ।
प्रयान्ति नैव लिप्यन्ते पुण्यापुण्यानि संक्षयम् ।।

इति योगजागमवचनानुसारेण च तिरोभावलक्षणदृक्क्रियाभाजनवतः शिवयोगिनः कर्माङ्गं लेपकं न भवतीत्यङ्गालेप इति सूत्रत्रयेण कथयति–

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं चिदानन्दमयं महत् ।
यस्य रूपमिदं ख्यातं सोऽङ्गालेप इहोच्यते ।। ४२ ।।

दिग्देशकालत्रयेऽपि परिच्छेदरहितं चिदानन्दस्वरूपं बृहद् इदं प्रादुर्भूतदृक्क्रियारूपं यस्य तिरोभावभाजनसम्पन्नस्य शिवयोगिनो रूपं स्वरूपमिति ख्यातम्, स तद्भाजनस्थलसम्पन्नः शिवयोगी अङ्गकर्मलेपरहित इति इहोच्यत इत्यर्थः ।। ४२ ।।

अङ्गालेप स्थल– जनिक दिशा-काल-देश आदिसँ अपरिच्छिन्न (बान्हल नहि) चिदानन्दमय महान् रूप प्रसिद्ध छनि से अङ्गालेप कहबैत छथि ।। ४२ ।।

अत्र दृष्टान्तमाह–

समस्तजगदात्माऽपि संविद्रूपो महामतिः ।
लिप्यते नैव संसारैर्यथा धूमादिभिर्नभः ।। ४३ ।।

सकलजगच्चैतन्यात्मकः सन् चिद्रूपो महाधीमान् शिवयोगी धूममेघादिभिर्नभो यथा न लिप्यते, तथ संसारपापकर्मभिर्न लिप्यत इत्यर्थः ।। ४३ ।।

समस्त संसार स्वरूप होइतो संविद्रूप महाबुद्धिमान् शिवयोगी सांसारिकतासँ लिप्त नहि होइत छथि जेना धूमादिसँ आकाश लिप्त नहि होइत अछि ।। ४३ ।।

---

१. छा०उ० ४।१।४३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुत इत्यत्राह–

न विधिर्न निषेधश्च न विकल्पो न वासना ।
केवलं चित्स्वरूपस्य गलितप्राकृतात्मनः ॥ ४४ ॥[1]

गलितेति निवृत्तप्राकृतकर्मप्रयत्नवतः केवलं चिद्रूपस्य शिवयोगिनो न विधिः विध्युक्तकर्म नास्ति, न निषेधश्च निषिध्यमानकर्मापि नास्ति, न विकल्पः अस्ति, नास्तीति विकल्पो नास्ति, न वासना तद्वासनापि नास्तीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

प्रकृतिक सकलकर्मक प्रयत्नसँ निवृत्त केवल चित्स्वरूप योगीकेँ ने विधि (विहित कर्म) छनि, ने तकर निषेध, ने विकल्प आ ने वासना रहैत छनि ॥ ४४ ॥

अथ वासनारहितस्य शिवयोगिनोऽभेदज्ञानं सदृष्टान्तं सूत्रद्वयेन विशेषयति–

घटादिषु पृथग्भूतं यथाकाशं न भिद्यते ।
तथोपाधिगतं ब्रह्म नानारूपं न भिद्यते ॥ ४५ ॥

घटमठादिषु पृथग्भूतं व्योम यथा न भिन्नम् तथा देवदानवाद्युपाधिगतं ब्रह्म नानारूपमपि न भिद्यत इत्यर्थः ॥ ४५ ॥

जेना घट आदिमे पृथक् भेल आकाश महाकाशसँ भिन्न नहि थिक तहिना अनन्त शरीररूप उपाधिसँ नानारूपकेँ प्राप्त ब्रह्म परस्पर ओहि रूपसबसँ भिन्न नहि थिकाह ॥ ४५ ॥

अनश्वरमनिर्देश्यं यथा व्योम प्रकाशते ।
तथा ब्रह्मापि चैतन्यमत्र वैशेषिकी कला ॥ ४६ ॥

व्योम नाशरहितमनुपमं सद् यथा प्रकाशते, तथा ब्रह्मापि प्रकाशते । अत्र ब्रह्मणि चैतन्यं दृक्क्रियारूपं वैशेषिकी कला जडभूतभूताकाशापेक्षया विशेषीभूतकलेति चिदाकाशरूपं ब्रह्मेत्यर्थः । अत्रानश्वरत्वं निरवयवत्वं न नित्यमिति बोध्यम्, जडत्वादिति ॥ ४६ ॥

जेना आकाश अनश्वर आ अनिर्देश्य (एतबा टा अछि से नहि बुझएबा यांग्य) होइत प्रकाशित होइत अछि तहिना ब्रह्म सेहो छथि, जनिकामे चैतन्य विशेष कला छनि ॥ ४६ ॥

---

१. तुलनीय– न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च बाधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ (पं०द० ६ । ३५)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ चिदाकाशरूपः शिवयोगी पूर्ण इत्युक्त्वा अङ्गालेपस्थलं समापयति–

न देवत्वं न मानुष्यं, न तिर्यक्त्वं न चान्यथा ।
सर्वाकारत्वमाख्यातं, जीवन्मुक्तस्य योगिनः ॥ ४७ ॥

जीवन्मुक्तस्य योगिनः कर्मपाशरहितत्वात् पुण्यकर्मसिद्धदेवत्वं नास्ति, पुण्यपापमिश्रतोद्भूतमानुष्यमपि नास्ति, पापजन्यतिर्यक्प्राणित्वं च नास्ति, तद्व्यतिरेकेण मायागर्भे मलमूर्च्छितत्वेन विद्यमानतापि नास्ति, किन्तु सर्वत्र परिपूर्णचिदाकाशरूपत्वमाख्यातम् । नित्यपरिपूर्णचित्प्रसादवतः शिवयोगिनः सिद्धान्तप्रसिद्धमायामलबिन्दुतिरोभावकर्मरूपपञ्चपाशबन्धो नास्तीति भावः ॥ ४७ ॥

जीवन्मुक्त योगी ने देव, ने मनुष्य, ने पशु-पक्षी आ ने आने तरहक थिकाह । ओ त सर्वाकार कहल गेल छथि ॥ ४७ ॥

इत्यङ्गालेपस्थलम्

अथ स्वपराज्ञस्थलम्

अथ– 'यथा प्रियया (स्त्रिया) संपरिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्, एवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्'[1] इति बृहदारण्यकश्रुतेः–

स्वयं स्वस्य परो नैव न परः स्वस्य विद्यते ।
इति धार्येऽपि संलीने तस्मिन् ज्ञेयं न तस्य हि ॥

इति सर्वज्ञानोत्तरवचनाच्च अङ्गालेपः शिवयोगी प्राथमिकपञ्चस्थल-प्रतिपादितपाशपञ्चकराहित्येन स्वं परं न जानातीति प्रतिपादयति–

अप्रमेये चिदाकारे ब्रह्मण्यद्वैतवैभवे ।
विलीनः किं नु जानाति स्वात्मानं परमेव वा ॥ ४८ ॥

अपरिमितेऽस्फुरणरूपे 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'[2] इति श्रुतेः स्वगत-सजातीयविजातीयभेदशून्ये[3] परब्रह्मणि सामरस्यं गतोऽङ्गालेपः स्वात्मानं वा परं वा जानाति किम् ? न जानातीत्यर्थः ॥ ४८ ॥

---

१. बृ०उ० ४ । ३ । ३१ २. छा०उ० ६ । २ । १

३. एकस्मिन्नेव शरीरे इमौ हस्ताविमौ पादाविति स्वगतभेदः । एको गौरन्यस्माद् गोः भिन्न इति सजातीयो भेदः । गौरश्वाद् भिन्न इति विजातीयो भेदः ।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वपराज्ञ स्थल– अप्रमेय चित्स्वरूप अद्वितीय ब्रह्ममे लीन शिवयोगी ने स्वकेँ (अपनाकेँ) जनैत अछि आ ने परकेँ (अनका) ॥ ४८ ॥

अथ अमुमेवार्थं पञ्चभिः सूत्रैर्विशेषयति–

यत्र नास्ति भिदायोगादहं त्वमिति विभ्रमः ।
न संयोगो वियोगश्च न ज्ञेयज्ञातृकल्पना ॥ ४९ ॥
न बन्धो न च मुक्तिश्च न देवाद्यभिमानिता ।
न सुखं नैव दुःखं च नाज्ञानं ज्ञानमेव वा ॥ ५० ॥
नोत्कृष्टत्वं न हीनत्वं नोपरिष्टान्न चाप्यधः ।
न पश्चान्नैव पुरतो न दूरे किञ्चिदन्तरे ॥ ५१ ॥
सर्वाकारे चिदानन्दे सत्यरूपिणि शाश्वते ।
पराकाशमये तस्मिन् परे ब्रह्मणि निर्मले ॥ ५२ ॥
एकीभावमुपेतानां योगिनां परमात्मनाम् ।
परापरपरिज्ञान-परिहासकथा कुतः ॥ ५३ ॥

यत्र अद्वैतवैभववति ब्रह्मणि योगाद् दृग्द्वयवत् समानसमरसयोगाद् अहं त्वमिति भेदविभ्रमो नास्ति, उभयोरप्यहंप्रत्ययैकत्वविश्रान्तत्वात् । संयोग-वियोगौ च न स्तः, ज्ञेयज्ञातृकल्पना च यत्र नास्ति, बन्धो मुक्तिश्च यत्र नास्ति, देवत्वाद्यभिमानोऽपि यत्र नास्ति, न सुखं वैषयिकसुखं यत्र नास्ति, नैव तादृग् दुःखं नेन्द्रियजं ज्ञानं नाज्ञानं न श्रेष्ठत्वं न निकृष्टत्वं, नोपरिभागो न चाधोभागो न पश्चाद्भागो न पूर्वभागश्च । तस्मिन्नदूरे किञ्चिद्दूरे सर्वस्वरूपे चिदानन्दसत्यरूपिणि शाश्वते निर्मले पराकाशमये ब्रह्मणि एकीभावं गतानाम् अत एव परब्रह्मस्वरूपाणां शिवयोगिनां परं स्वं च जानामीति परिहासप्रसङ्गः कुतः ? व्यापकत्वादेकत्वान्नास्तीत्यर्थः ॥ ४९-५३ ॥

जाहि ठाम भेदक योग भेलासँ (जीव ओ ब्रह्मकेँ भिन्न बुझलासँ) अहं ओ त्वंकेर भेद नहि अछि, अर्थात् दुनूमे भेदक योगे नहि अछि, ने संयोग, ने वियोग, ने ज्ञेय, ने ज्ञाता, ने बन्ध, ने मुक्ति, ने देत्वाभिमान, ने सुख, ने दुःख, ने अज्ञान, ने ज्ञान, ने उत्कृष्ट, ने नीच, ने ऊपर, ने नीचाँ, ने पाछू, ने आगू, ने दूर आ ने लगे अछि, ताहि सर्वाकार चिदानन्द सत्यरूपी सनातन पराकाशमय निर्मल परब्रह्ममे एकाकार भेल परमात्मा योगीक परापर-परिज्ञान रूप परिहासक कोन कथा ? अर्थात् कोनो नहि ॥ ४९-५३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथेममर्थमेव विशेषयन् स्वपराज्ञस्थलं समापयति–

देशकालानवच्छिन्न-तेजोरूपसमाश्रयात् ।
स्वपरज्ञानविरहात् स्वपराज्ञस्थलं विदुः ॥ ५४ ॥

तेजोरूपं चित्प्रकाशरूपमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ५४ ॥

देश-कालक परिच्छेदसँ रहित तेजस्वरूप परब्रह्मक आश्रयसँ शिवयोगीक स्व-परज्ञानक अभाव अवस्थाकेँ विद्वान् लोकनि स्वपराज्ञ स्थल कहने छथि ॥ ५४ ॥

इति स्वपराज्ञस्थलम्

अथ भावाभावलयस्थलम्

अथ–

निद्रान्तं जागरितान्तं, चोभौ यो वा न पश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं, मत्वा धीरो न शोचति ॥[1]

इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेण,

भावाभावद्वयातीतं स्वप्नजागरणातिगम् ।
मृत्युजीवननिर्मुक्तं तत्त्वं तत्त्वविदो विदुः ॥

इति योगजागमवचनानुसारेण च तत्स्वपरज्ञानशून्यस्य शिवयोगिनो भावाभावौ न स्त इति निरूपयति–

त्वन्ताहन्ताविनिर्मुक्ते शून्यकल्पे चिदम्बरे ।
एकीभूतस्य सिद्धस्य भवाभावकथा कुतः ॥ ५५ ॥

परिच्छिन्नशरीरविशिष्टत्वमहंभावरहिते शून्यसदृशे चिदाकाशे एकरसीभूतस्य स्वपरज्ञानशून्यस्य सिद्धस्य शिवयोगिनो भावाभावप्रसङ्गः कुतः ? नास्तीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

भावाभावलय स्थल– 'तोँ' आ 'हम' एहि भावसँ रहित शून्यात्मक चिदाकाशमे एकाकार भेल शिवयोगीकेँ भाव आ अभावक कथा कहाँसँ होएत ? ॥ ५५ ॥

अथ तद्भावाभावलयस्वरूपं सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति–

१. क०उ० २ । २१

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अहंभावस्य शून्यत्वादभावस्य तथात्मनः ।
भावाभावविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तः प्रकाशते ॥ ५६ ॥

अहंभावराहित्याद् आत्मनः 'अयमात्मा ब्रह्म'[1] इति प्रसिद्ध-परमात्मनोऽभावस्य तथा शून्यत्वाज्जीवन्मुक्तः स्वपरज्ञानशून्यः सन् अमनस्कतन्द्रिमुद्रास्थितः शिवयोगी भावाभावविनिर्मुक्तः, अहमिति परिच्छिन्न-देहाहंभावः, आत्मा नास्तीत्यभावः, एवंरूपभावाभावशून्यः सन् स्वस्वरूपेण प्रकाशते । सकलदुःखभोक्ता सन् सुप्तिलयगामि-मूलाहङ्कारोऽस्तीति भावेन सर्वसाक्षिकत्वेनावस्थात्रयेऽप्यवच्छेदेन भसामानचैतन्यं नास्तीत्यभावेन च विविक्त एव भावाभावरहित इत्यर्थः ॥ ५६ ॥

'अहम्' केर भावक ओ आत्माक अभावक शून्य भेलाक कारण भाव ओ अभावसँ विनिर्मुक्त जीव मुक्त भेल प्रकाशित होइत अछि ॥ ५६ ॥

सुखदुःखादिभावेषु नाभावो भाव एव वा ।
विद्यते चित्स्वरूपस्य निर्लेपस्य महात्मनः ॥ ५७ ॥

उक्तलक्षणमूलाहङ्काररलेपरहितस्य चित्स्वरूपस्य महापुरुषस्य सुख-दुःखादिसम्बन्धेष्वभावो भाव एव वा न विद्यते, निर्लेपत्वेन व्यापकत्वा-दित्यर्थः ॥ ५७ ॥

चित्स्वरूप पाप-पुण्यसँ निर्लिप्त महात्मा शिवयोगीकेँ सुख-दुःख आदि भावक ने अभाव आ ने भाव रहैत छनि ॥ ५७ ॥

एवं भावाभावशून्यस्य किमपि न दृश्यत इत्यत्राह–

यस्मिन् ज्योतिषि चिद्रूपे दृश्यते नैव किञ्चन ।
सद्रूपं वाप्यसद्रूपं भवाभावं विमुञ्चतः ॥ ५८ ॥

स्पष्टम् ॥ ५८ ॥

भाव ओ अभावक त्याग कएनिहार चित्स्वरूप तेजोमय शिवयोगीकेँ सत् वा असत् रूप किछु नहि देखाइत छनि ॥ ५८ ॥

अथ भावाभावलयस्थलं समापयति–

प्रतीयमानौ विद्येते भावाभावौ न कुत्रचित् ।
लिङ्गैक्ये सति यत्तस्माद् भवाभावलयस्थलम् ॥ ५९ ॥

---

१. ऐ०उ० ५ । ३

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशमानौ भवाभावौ शिवलिङ्गैकरसीभूतमहापुरुषविषये क्वचिदपि यस्मात् कारणान्न विद्येते न स्तः, तस्माद् भवाभावलयस्थलमित्युक्त-मित्यर्थः ॥ ५९ ॥

जेँ शिवलिङ्गक संग एकत्वकेँ प्राप्त शिवयोगीकेँ प्रतीत होइत भाव ओ अभाव कतहु नहि रहैत छनि तेँ एहि दशाकेँ भावाभावलयस्थल कहल जाइछ ॥ ५९ ॥

इतिभावाभावलयस्थलम्

अथ ज्ञानशून्यस्थलम्

अथ– 'अप अप्स्वग्निमग्नौ वायुं वायौ व्योम्नि व्योम लक्षयेत् । एवमन्तर्गतं चित्तं पुरुषो प्रतिमुच्यते' इति मैत्रेयश्रुत्यनुसारेण–

सर्वशून्यं निराभासं सामरस्यं तथा भवेत् ।
घृते घृतं यथा न्यस्तं क्षीरे क्षीरं यथैव च ॥

इति सर्वज्ञानोत्तरवचनानुसारेण च स्वपरज्ञानशून्यत्वेन भावाभावलय-सम्पन्नस्य शिवयोगिनोऽभेदसुलभज्ञानशून्यस्थलं सूत्रत्रयेण निरूपयति–

परापरसमापेक्ष-भावाभावविवेचनम् ।
ज्ञानं ब्रह्मणि तन्नास्ति ज्ञानशून्यस्थलं विदुः ॥ ६० ॥

परापरज्ञानाभिलाषयुक्तभावाभावविवेकवज्ज्ञानं ब्रह्मणि परब्रह्मस्वरूपे भावाभावलयसम्पन्ने शिवयोगिनि नास्ति, तद् ज्ञानशून्यस्थलमिति विदुः, जानन्तीत्यर्थः ॥ ६० ॥

ज्ञानशून्यस्थल– पर ओ अपरक अपेक्षा राखएवाला भाव आ अभावक विवेचन रूप ज्ञान ब्रह्ममे नहि रहैत अछि । तेँ एकरा ज्ञानशून्य स्थल कहल गेल अछि ॥ ६० ॥

तर्हि स कथं तिष्ठतीत्यत्राह–

जले जलमिव न्यस्तं वह्नौ वह्निरिवार्पितम् ।
परे ब्रह्मणि लीनात्मा विभागेन न दृश्यते ॥ ६१ ॥

जलमिश्रजलमिव वह्निस्थापितवह्निरिव परब्रह्मस्वरूपमहालिङ्गे लयीभूत-भावाभावप्रयत्नवान् शिवयोगी भिन्नभावेन न दृश्यते, न तिष्ठतीत्यर्थः, ज्ञानशून्यत्वादिति । अत्र द्वैतज्ञानशून्यशिवाद्वैते जलवह्निदृष्टान्त आप्यतैजस-

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थलरूपदृग्युगैक्यवत् समानसमरसरूपः न तु स्वरूपहानिवृद्धिकरः, समुद्रजलवदिति ॥ ६१ ॥

जेना जलमे देल जल ओ आगिमे देल आगि पृथक् नहि देखि पड़ैछ, तहिना परब्रह्ममे लीन आत्मा फूट नहि देखाइछ ॥ ६१ ॥

सर्वात्मनि परे तत्त्वे भेदशङ्काविवर्जिते ।
ज्ञात्रादिव्यवहारोत्थं कुतो ज्ञानं विभाव्यते ॥ ६२ ॥

स्पष्टम् ॥ ६२ ॥

भेदक शंकासँ रहित सर्वात्मस्वरूप परमतत्त्वमे ज्ञाता, ओ ज्ञेयक व्यवहारसँ उत्पन्न ज्ञानक अनुभव कहासँ होएत ? ॥ ६२ ॥

अथ तदेव सूत्रत्रयेण विशेषयति–

निर्विकारं निराकारं नित्यं सीमाविवर्जितम् ।
व्योमवत् परमं ब्रह्म निर्विकल्पतया स्थितम् ॥ ६३ ॥
न पृथ्व्यादीनि भूतानि न ग्रहा नैव तारकाः ।
न देवा न मनुष्याश्च न तिर्यञ्चो न चापरे ॥ ६४ ॥
तस्मिन् केवलचिन्मात्र-सत्तानन्दैकलक्षणे ।
त्वन्ताहन्तादिसंरूढं विज्ञानं केन भाव्यते ॥ ६५

मृदादिवद्विकाररहितं नीलपीताद्याकाररहितम् अवधिरहितं परं ब्रह्म । व्योमवन्निर्विकल्पतया भेदराहित्येन स्थितं तिष्ठति । अत एव भिन्नतया प्रतीयमानभूम्यादिभूतानि न, आदित्यादिनवग्रहाश्च न, अश्विन्यादितारकाश्च न, विष्णवादिदेवाश्च न, मनुष्याश्च न, तिर्यक्प्राणिनश्च न, परे च न (भवन्ति)। तस्मात् केवलसच्चिदानन्दस्वरूपं ब्रह्मणि त्वमहमादिकव्यवहारोत्थ-विशेषज्ञानं केन भाव्यते ? न केनापि भाव्यत इत्यर्थः ॥ ६३-६५ ॥

निर्विकार, निराकार, नित्य, असीम परब्रह्म आकाश जकाँ निर्विकल्परूपेँ स्थित छथि । तेँ हुनकासँ भिन्नरूपमे ने पृथ्वी, ने प्राणी, ने ग्रह, ने तारा, ने देव, ने मनुष्य, ने पक्षी आ ने कोनो आने प्रतीत होइत अछि । केवल सत् चित् आनन्दस्वरूप ओहि परब्रह्म शिवयोगीमे त्वं-अहं केर भावनासँ दृढ़ ज्ञानक अनुभव ककरा भए सकैत छैक ? अर्थात् ककरो नहि ॥ ६३-६५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ– 'एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं च किञ्चित्'[1] इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण, 'केवलं ज्ञेयमित्युक्तं वेदितव्यं च किञ्चन' इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेण च स्वस्वरूपज्ञानिनस्त्रिपुटीमयप्रपञ्चज्ञानं नास्तीति पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

ज्ञेयाभावाद्विशेषेण शून्यकल्पं विभाव्यते ।
ज्ञातृज्ञेयादिभिः शून्यं शून्यं ज्ञानादिभिर्गुणैः ॥ ६६ ॥
आदावन्ते च मध्ये च शून्यं सर्वत्र सर्वदा ।
द्वितीयेन पदार्थेन शून्यं शून्यं विभाव्यते ॥ ६७ ॥

ज्ञेयाभावात् सकलवस्तुविषयकज्ञानाभावेन ज्ञेयपदार्थशून्यत्वात्, 'संविदेव भगवती विषयसत्त्वोपगमे शरणम्' इति प्राभाकरैरप्यङ्गीकृतत्वात्, शून्यकल्पं ज्ञानमिति शेषः, विभाव्यते । तस्माद् ज्ञातृज्ञेयादित्रिपुटीमयप्रपञ्चशून्यं ज्ञानादिभिर्ज्ञानेच्छादिगुणैश्च शून्यम् आद्यन्तमध्येषु सर्वत्र सर्वदा शून्यम् । केनेत्यत्र द्वितीयेन पदार्थेन शून्यमिति । तस्मात् शून्यं शून्यज्ञानं विभाव्यते ॥ ६६–६७ ॥

विशेषरूपसँ ज्ञेय अभाव भेलाक कारण शून्य जकाँ बुझाइत छैक । ई अनुभव ज्ञाता ज्ञेय ओ ज्ञानसँ शून्य तथा ज्ञान इच्छा आदि गुणसँ सेहो शून्य अछि । ई आदि, मध्य ओ अन्तमे सदा सब ठाम शून्ये रहैत अछि । ई शून्य ब्रह्मसँ अतिरिक्त दोसर सकल पदार्थसँ शून्य अनुभूत होइत अछि ॥ ६६–६७ ॥

अथ तत्किमित्यत्राह–

केवलं सच्चिदानन्द-प्रकाशाद्वयलक्षणम् ।
शून्यकल्पं पराकाशं परब्रह्म प्रकाशते ॥ ६८ ॥

केवलसच्चिदानन्दप्रकाशाद्वितीयशून्यचिह्नम्, अतएव शून्यसदृशं परब्रह्म महाकाशरूपं सत् प्रकाशत इत्यर्थः ॥ ६८ ॥

केवल, सत् चित् आनन्दक प्रकाशसँ अद्वैतस्वरूप, शून्य-सदृश, पराकाश परब्रह्म प्रकाशित होइत छथि ॥ ६८ ॥

अथैवंरूपे ब्रह्मणि तादात्म्यापन्नस्य विकल्पज्ञानोत्पत्तिर्न सम्भवतीत्यत्राह–

---

१. श्वे०उ० १ । १२

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शून्यज्ञानादिसङ्कल्पे शून्यसर्वार्थसाधने ।
ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे स्वप्रकाशे निरुत्तरे ।
एकीभावमुपेतस्य कथं ज्ञानस्य सम्भवः ॥ ६९ ॥

शून्यज्ञानेच्छादिसङ्कल्पवति शून्यसर्वार्थसाधने स्वस्मादुत्तररहिते परमशिवलिङ्गज्योतीरूपचिदाकारस्वप्रकाशे एकीभावं गतस्य शिवयोगिनो ज्ञानस्य सम्भवो वृत्तिज्ञानाविर्भावः कथं स्यात् ? न कथञ्चिदपीत्यर्थः ॥ ६९ ॥

जे ज्ञानादि संकल्पसँ शून्य, सकल पुरुषार्थसाधनसँ शून्य, निरुत्तर (सर्वोपरि, जनिकासँ उत्तर = आगू नहि), चित्स्वरूप, स्वप्रकाश ज्योतिर्लिङ्गमे एकाकार भए गेल छथि हुनका ज्ञानक सम्भव कहाँ ? ओ त स्वयं ज्ञानस्वरूपे छथि ॥ ६९ ॥

अथ– 'नेति नेत्यस्थूलमनणवह्रस्वमदीर्घमप्लुतम्'[१] इति बृहदारण्यश्रुत्यनुसारेण,

अनाख्ये तु निरालम्बे ह्यग्राह्ये भाववर्जिते ।
निस्तत्त्वे योजितो मुक्त इति शास्त्रस्य निश्चयः ॥

इति निश्वासकारिकातन्त्रानुसारेण,

पशुपशुपतियोगो दृग्युगैक्यप्रयोगो
गगनगगनदेशः सिन्धुसिन्धुप्रदेशः ।
समसमरसरूपो भिन्नभिन्नस्वरूपो
निशि समरसकान्तावल्लभाश्लेषकान्तः ॥

इति त्रयीतन्त्रयुक्तियुक्ताभियुक्तोक्त्यनुसारेण च परमुक्तलक्षणमुक्त्वा ज्ञानशून्यस्थलं समापयति–

यस्य कार्यदशा नास्ति कारणत्वमथापि वा ।
शेषत्वं नैव शेषित्वं स मुक्तः पर उच्यते ॥ ७० ॥

यस्य सर्वं नेति नेति निवार्य तत्त्वातीतस्य स्वस्वरूपसम्पन्नस्य कार्यावस्था नास्ति, अथापि वा तन्न चेत्कारणत्वं च नास्ति, यस्य परब्रह्मपरशिवलिङ्गादिपर्यायनामोच्चारवतः स्वस्वरूपसम्पन्नस्य शेषत्वम् अवशेषत्वं शेषित्वं शेषवत्त्वं च नास्ति, स नित्यपरिपूर्णः सच्चिदानन्दस्वरूपपरमुक्त एवेत्युच्यत इत्यर्थः । अयं भावः –'अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाद् ज्ञात्वा देवं मुच्यते

१. बृ०उ० ३।९।२६

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सर्वपाशैः'[१] इति श्वेताश्वतरश्रुत्या, 'पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः परः शिवः' इति वीरागमवचनेन, देशिकोपदेशेन , स्वानुभवेन[२] च मायामलबिन्दु-तिरोभावकर्मपाशविमुक्तपरशिवशब्दवाच्यस्वरूपाभिव्यक्तिरेव परमुक्तिरिति । एतल्लिङ्गत्रयं शिवलिङ्गैक्यस्याङ्गत्रयस्य क्रमेण संयोजनीयम् ॥ ७० ॥

जनिक ने तँ कार्यावस्था छनि आ ने कारणावस्थे, जे ने शेष (अङ्ग) छथि आ ने शेषी, ओ तँ सर्वश्रेष्ठ मुक्त छथि' ॥ ७० ॥

इति ज्ञानशून्यस्थलम्

अथोपदेशोपसंहारवर्णनम्

अथैतच्छास्त्रसङ्ग्रहकृच्छिवाचार्यः स्वशिष्यप्रशिष्यान् प्रत्येतच्छास्त्रोपरमं सूचयन् रेणुकगणेश्वरो निरुत्तरः सन् तूष्णीं स्थित इति सूत्रद्वयेन कथयति–

एतावदुक्त्वा परमप्रबोधमद्वैतमानन्दशिवप्रकाशम् ।
देव्यै पुरा भाषितमीश्वरेण तूष्णीमभूद् ध्यानपरो गणेन्द्रः ॥ ७१ ॥

गणेन्द्रो रेणुकगणेश्वरः परमेश्वरेण देव्यै पार्वत्यै पुरा रहस्यं सद्भाषितं शिवानन्दप्रकाशकं शिवाद्वैतरूपं परमप्रबोधम् उपक्रमोपसंहारमध्यपरामर्शेष्वपि स्वस्वरूपप्रकाशकपिण्डादिवृत्तिज्ञानशून्यान्तवीरशैवशास्त्रमेतावदनेन प्रकारेणोक्त्वा कुम्भसम्भवायोपदिश्य स्वस्वरूपध्यानासक्तः सन् तूष्णीमभूद् मौनमुद्रावलम्बी बभूवेत्यर्थः ॥ ७१ ॥

उपदेशक उपसंहार– गणेश्वर श्रीरेणुकाचार्य अद्वैतानन्द परम प्रकाश परमप्रबोध स्वरूप विषयकेँ जे परमेश्वर शिव देवी पार्वतीकेँ कहने छलथिन्ह, से एतबा कहि ध्यानमग्न भए चुप भए गेलाह ॥ ७१ ॥

एवमुक्त्वा समासीनं शिवयोगपरायणम् ।
रेणुकं तं समालोक्य बभाषे प्राञ्जलिर्मुनिः ॥ ७२ ॥

बभाषे स्तुतिमारब्धवानित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ७२ ॥

एहि प्रकारेँ कहि कए बैसल ओहि शिवयोगपरायण श्रीरेणुकाचार्यकेँ देखि अगस्त्य मुनि कल जोड़ि कहए लगलथिन ॥ ७२ ॥

अथ सप्तभिः सूत्रैः श्रीरेणुकस्तुतिं करोत्यगस्त्य उवाचेति–

१. श्वे० उ० १।८
२. तुलनीय– शास्त्रतः गुरुतः स्वतः (तं०आ०)

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवयोगविशेषज्ञ शिवज्ञानमहोदधे ।
समस्तवेदशास्त्रादि-व्यवहारधुरन्धर ॥ ७३ ॥
आलोकमात्रनिर्धूत-सर्वसंसारबन्धन ।
स्वच्छन्दचरितोल्लास स्वप्रकाशात्मवच्छिव ॥ ७४ ॥
अवतीर्णमिदं शास्त्रमनवद्यं त्वदाननात् ।
श्रुत्वा मे मोदते चित्तं ज्योतिः पश्ये शिवाभिधम् ॥ ७५ ॥

शिवध्यानयोगविशेषज्ञ, शिवज्ञानस्य समुद्र, समस्तवेदागमपुराणादि-शास्त्रव्यवहारभारवाहक, दर्शनमात्रनिवारितसमस्तजनसंसारबन्ध, स्वेच्छा-चाराविर्भाव, स्वप्रकाशेनैव चैतन्यवच्छिवस्वरूप, भो गणेन्द्र, त्वन्मुखादाविर्भूतं दोषरहितमिदं वीरशैवशास्त्रं श्रुत्वा मे मनो नन्दति, शिवप्रकाशं च पश्ये ॥ ७३-७५ ॥

हे शिवयोगक विशेषज्ञ ! शिवज्ञानक महासागर ! सम्पूर्ण वेदशास्त्रादिक व्यवहारमे अग्रगण्य ! अपन प्रकाशमात्रसँ संसारक सकल बन्धनकेँ दूर कएनिहार ! स्वच्छन्दचरितसँ प्रसन्न ! स्वप्रकाश शिव ! अपनेक मुखसँ ई सुन्दर शास्त्र अवतीर्ण भेल अछि । एकरा सुनि कए हमर चित्त आनन्दित भेल अछि । एहिसँ हम शिवनामक ज्योतिक साक्षात्कार कए रहल छी ॥ ७३-७५ ॥

अद्य मे सफलं जन्म गतो मे चित्तविभ्रमः ।
सञ्जाता पाशविच्छित्तिस्तपांसि फलितानि मे ॥ ७६ ॥

'अद्य मे' इति सर्वत्र सम्बन्धः ॥ ७६ ॥

आइ हमर जन्म सफल भेल । हमर मनक सन्देह दूर भेल । अज्ञान पाश कटि गेल आ हमर तपस्या फलित भेल ॥ ७६ ॥

इदानीमेव मे जातं मुनिराजोत्तमोत्तमम् ।
इतः परं मया नास्ति सदृशो भुवनत्रये ॥ ७७ ॥

मुनीश्वराणाम् ऋषिश्रेष्ठानाम् उत्तमोत्तमत्वमित्यर्थः, धर्मधर्मिणोरभेदात् । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ७७ ॥

एखनहिँ हमरा मुनिश्रेष्ठता प्राप्त भए गेल । एकर बाद तीनू लोकमे हमरा सन केओ नहि अछि ॥ ७७ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शास्त्रं तव मुखोद्गीर्णं शिवाद्वैतपरम्परम् ।
मां विना कस्य लोकेषु श्रोतुमस्ति तपः शुभम् ॥ ७८ ॥
तपसां परिपाकेन शङ्करस्य प्रसादतः ।
आगतस्त्वं महाभाग मां कृतार्थयितुं गिरा ॥ ७९ ॥

उद्गीर्णं बहिर्निर्गतमित्यर्थः । शास्त्रं वीरशैवशास्त्रम् । महाभाग श्रेष्ठेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ७८-७९ ॥

अहाँक मुखसँ बहराएल शिवाद्वैतपरक एहि परम शास्त्रकेँ सुनबाक लेल हमरा सँ अतिरिक्त किनक शुभ तपस्या भए सकैत छनि ? अर्थात् किनको नहि । हे महाभाग ! हमर तपस्याक परिपाकसँ शङ्करक कृपासँ अहाँ अपन वाणीसँ हमरा कृतकृत्य करबाक लेल आएल छी ॥ ७८-७९ ॥

अथ सङ्ग्रहकृच्छिवाचार्यः 'कुम्भसम्भवं श्रीरेणुकः स्तुतिं कृतवानि'त्याह—

इति स्तुवन्तं विनयादगस्त्यं मुनिपुङ्गवम् ।
आलोक्य करुणादृष्ट्या बभाषे स गणेश्वरः ॥ ८० ॥

विनयाद् भक्त्येत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ८० ॥

एहि तरहेँ विनयपूर्वक स्तुति करैत मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यकेँ कृपापूर्ण दृष्टिसँ देखि गणेश्वर श्रीरेणुकाचार्य कहलथिन ॥ ८० ॥

अगस्त्य मुनिशार्दूल तपःसिद्धमनोरथ ।
त्वां विना शिवशास्त्रस्य कः श्रोतुमधिकारवान् ॥ ८१ ॥

एकोत्तरशतं प्रोक्ता दीक्षाभेदा मया पुरा ।
दीक्षितस्तासु गुरुणा भक्तोऽस्मिन्नधिकारवान् ॥

इति योगजागमवचनाद् अस्मिन् शास्त्रे त्वां विना अधिकारी नास्तीत्यर्थः ॥ ८१ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य ! अपने तपस्यासँ मनोरथकेँ सिद्ध कएने छी । अपनेक विना शिवशास्त्रकेँ सुनबाक अधिकार ककरो नहि छैक ॥ ८१ ॥

पात्रं शिवप्रसादस्य भवानेको न चापरः ।
इति निश्चित्य कथितं मया ते तन्त्रमीदृशम् ॥ ८२ ॥

ईदृशं वीरशैवतन्त्रमित्यर्थः ॥ ८२ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवप्रसादक पात्र एकमात्र अपनेहिं छी, आन नहि । एहन निश्चय कए हम एहि तन्त्रक उपदेश अपनेकाँ देलहुँ ॥ ८२ ॥

स्थाप्यतां सर्वलोकेषु तन्त्रमेतत् त्वया मुने ।
ईदृशं शिवबोधस्य साधनं नास्ति कुत्रचित् ॥ ८३ ॥

स्पष्टम् ॥ ८३ ॥

हे मुनिवर ! अपने एहि तन्त्रकेँ सब लोकमे प्रचार करू । शिवबोधक एहि तरहक साधन कतहु नहि अछि ॥ ८३ ॥

रहस्यमेतत् सर्वज्ञः सर्वानुग्राहकः शिवः ।
अवादीत् सर्वलोकानां सिद्धये पार्वतीपतिः ॥ ८४ ॥

सिद्धये भोगमोक्षसिद्धय इत्यर्थः । एतद्रहस्यं वीरशैवरहस्यमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ८४ ॥

सर्वज्ञ सर्वानुग्रहकारी पार्वतीपति शिव सब लोकक सिद्धिक लेल एहि रहस्यक प्रवचन कएलनि ॥ ८४ ॥

तदिदं शिवसिद्धान्तसाराणामुत्तमोत्तमम् ।
वेदवेदान्तसर्वस्वं विद्याचारप्रवर्तकम् ॥ ८५ ॥
वीरमाहेश्वरग्राह्यं शिवाद्वैत प्रकाशकम् ।
परीक्षितेभ्यो दातव्यं शिष्येभ्यो नान्यथा क्वचित् ॥ ८६ ॥

तदिदं वीरशैवषट्स्थलशिवयोगमार्गप्रतिपादकं शास्त्रं कामिकादि-वातुलान्ताष्टाविंशतिदिव्यागमसाराणामुत्तमोत्तमं चतुर्वेदद्वात्रिंशदुपनिषत्सर्वस्वं ज्ञानक्रियाप्रकाशकं वीरमाहेश्वरैरङ्गीकरणीयं परशिवाद्वैतप्रतिपादकमिदं शास्त्रम् 'तावत्यः संहिता अन्तेवासिने ब्रूयान्नासंवत्सरवासिने न प्रवक्तयिताचार्यः' इत्यैतरेयश्रुतेः–

भक्तस्यैवात्मशिष्यस्य विरक्तस्य महामतेः ।
गुरुणा ज्ञानिना देयमानन्दरसनिर्भरम् ॥

इति योगजागमवचनाच्च परीक्षितेभ्यः शिष्येभ्यो देयम्, अनधिकारिणे न ब्रूयादिति भावः ॥ ८५-८६ ॥

एहि तरहेँ ई शिवसिद्धान्तसार सब मे उत्तमसँ उत्तम थिक । ई वेद एवं वेदान्तक सर्वस्व, विद्याचारक प्रवर्तक, वीरशैवक द्वारा स्वीकारल,

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवाद्वैतक प्रकाशक थिक । ई शास्त्र परीक्षित शिष्य केँ देबाक चाही, अनका नहि ॥ ८५-८६ ॥

एतच्छ्रवणमात्रेण सर्वेषां पापसंक्षयः ।
अवतीर्णं मया भूमौ शास्त्रस्यास्य प्रवृत्तये ।
प्रवर्तय शिवाद्वैतं त्वमपि ज्ञानमीदृशम् ॥ ८७ ॥

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते वीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ शिवैक्यस्थलविषय-नवविधलिङ्गप्रसङ्गो नाम विंशः परिच्छेदः ॥ २० ॥

स्पष्टम् ॥ ८७ ॥



इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां शिवैक्यस्थल-विषयनवविधलिङ्गप्रसङ्गो नाम विंशः परिच्छेदः ॥ २० ॥

एहि शास्त्रक श्रवणमात्रसँ सकल पापक क्षय होइत छैक । एही शास्त्रक प्रवर्तन हेतु हम एहि पृथ्वी पर अवतार लेलहुँ । अहूँ एहि तरहक शिवाद्वैत ज्ञानक प्रचार करू ॥ ८७ ॥



एहि प्रकार श्रीसिद्धान्तशिखामणिक विद्यावाचस्पति डॉ० शशिनाथ झाकृत प्रबोधिनी मैथिलीव्याख्यामे शिवैक्यस्थलविषय-नवविधलिङ्गप्रसंग नामक बीसम परिच्छेद समाप्त ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एकविंशः परिच्छेदः

विभीषणायाभीष्टदानम्

अथ रेवणसिद्धेश्वरेण कुम्भसम्भवाय पिण्डादिवृत्तिज्ञानशून्यान्तोपदिष्टं वीरशैवसङ्ग्रहं शिवयोगिसंज्ञकाचार्यः स्वशिष्यप्रशिष्येषु प्रख्यातं कृत्वा अनन्तरं रेणुकविभीषणसंवादं रेवणसिद्धेश्वरैक्यं च पञ्चपञ्चाशत्सूत्रैः सङ्गृह्याह–

इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य पुरस्तादेव रेणुकः ।
अन्तर्दधे महादेवं चिन्तयन्नन्तरात्मना ॥ १ ॥

स्पष्टम् ॥ १ ॥

विभीषणकेँ अभीष्टदान– ई कहि श्रीरेणुकाचार्य अपन अन्तरात्मामे महादेवक चिन्तन करैत ओहि महामुनि अगस्त्यक सामनहिमे विलाए गेलाह ॥ १ ॥

य इदं शिवसिद्धान्तं वीरशैवमतं परम् ।
शृणोति शुद्धमनसा स याति परमां गतिम् ॥ २ ॥

यः पुरुषो वीरशैवमतमङ्गलिङ्गषट्स्थलरूपं सद् वीरशैवधर्मनिर्णयसम्मतं परं सर्वोत्कृष्टम् इदं शिवसिद्धान्तं श्रुतिसम्मतमेतच्छिवसिद्धान्तं शुद्धमनसा निर्मलचित्तेन शृणोति, स परमां गतिं परमुक्तिं यातीत्यर्थः ॥ २ ॥

जे एहि वीरशैवसम्मत परम शिवसिद्धान्तकेँ शुद्ध मनसँ सुनैत छथि से परम गतिकेँ प्राप्त करैत छथि ॥ २ ॥

अथान्तर्हितो रेणुको लङ्कां प्रतिष्टवानित्याह–

स्वच्छन्दाचाररसिकः स्वेच्छानिर्मितविग्रहः ।
आससाद पुरीं लङ्कां रेणुको गणनायकः ॥ ३ ॥

निर्मलस्वेच्छाचाररसिक इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तखन स्वच्छन्द आचारक प्रेमी एवं अपन इच्छासँ शरीर धारण करएवाला गणेश्वर श्रीरेणुकाचार्य लङ्कापुरी पहुँचि गेलाह ।। ३ ।।

तमागतं महाभागं सर्वागमविशारदम् ।
विभीषणः समालोक्य गेहं प्रावेशयन्निजम् ।। ४ ।।

महाभागः श्रेष्ठः सर्वागमविशारदः कामिकादिवातुलान्तदिव्यागमकुशल इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।। ४ ।।

सकल आगमक मर्मज्ञ ओहि महाभाग श्रीरेणुकाचार्यकेँ आएल देखिकए लङ्कापति विभीषण हुनका अपन घर लए गेलाह ।। ४ ।।

भद्रासने निजे रम्ये निवेश्य गणनायकम् ।
अर्घ्यपाद्यादिभिः सर्वैरुपचारैरपूजयत् ।। ५ ।।

निजे भद्रासने स्वकीयसिंहासन इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।। ५ ।।

अपन सुन्दर भद्रासन पर गणेश्वर श्रीरेणुकाचार्यकेँ बैसाए विभीषण हुनका अर्घ्य-पाद्य आदि सकल पूजोपचारसँ पूजित कएलनि ।। ५ ।।

पूजितेन प्रसन्नेन रेणुकेन निरूपितः ।
निषसाद तदभ्याशे स निजासनमाश्रितः ।। ६ ।।

स विभीषणः पूजाप्रसन्नेन श्रीरेणुकेनाज्ञापितः सन् तत्समीपे स्वकीयासनान्तरमाश्रितवान् सन् निषसाद उपविष्टवानित्यर्थः ।। ६ ।।

पूजित भए प्रसन्न श्रीरेणुकाचार्यद्वारा आदेश पाबि विभीषण हुनका लग अपन आसन पर बैसि गेलाह ।। ६ ।।

अथ विभीषणः –

आबभाषे गणेन्द्रं तं कृताञ्जलि विभीषणः ।
मानुषाकारसम्पन्नं साक्षाच्छिवमिवापरम् ।। ७ ।।

विभीषणो मानुषाकृतिं साक्षादपरं शिवमिव स्थितमिति शेषः । तं गणेन्द्रं रेणुकं कृताञ्जलि कृतमञ्जलिपुटं यस्मिन् कर्मणि यथा भवति तथा आबभाषे विज्ञापनवचनं प्रयुक्तवानित्यर्थः ।। ७ ।।

तखन मनुष्यक रूप धारण कएने साक्षात् द्वितीय शिवक समान ओहि गणेश्वरकेँ विभीषण कलजोड़ि कहए लगलथिन ।। ७ ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रेणुक त्वं गणाधीश शिवज्ञानपरायण ।
अवतीर्णं महीमेनामिति सम्यक् श्रुतं मया ॥ ८ ॥

भो शिवज्ञानपरायण गणाधीश श्रीरेणुक, त्वामेनां महीं भूलोकं प्रत्यवतीर्णं सन्तं मया सम्यग् इति लोकवार्तया श्रुतमित्यर्थः ॥ ८ ॥

हे शिवज्ञानपरायण गणेश्वर श्रीरेणुकाचार्य ! अपने एहि पृथ्वी पर अवतार लेल अछि से हम नीकजकाँ सुनने छलहुँ ॥ ८ ॥

मद्भाग्यगौरवादद्य समायास्त्वं पुरीमिमाम् ।
कथं भाग्यविहीनानां सुलभाः स्युर्भवादृशाः ॥ ९ ॥

स्पष्टम् ॥ ९ ॥

आइ हमर महान् भाग्यसँ अपने एहि लङ्कानगरीमे पहुँचलहुँ अछि । भाग्यहीनकेँ अपने सन व्यक्ति कोना सुलभ भए सकैत छथि ॥ ९ ॥

मत्समो नास्ति लोकेषु भाग्यातिशयवत्तया ।
यस्य गेहं स्वयं प्रप्तो भवान् साक्षान्महेश्वरः ॥ १० ॥

भो रेणुक, भूलोकगतप्रत्यक्षमहेश्वरो भवान् स्वयमेव यस्य मे राजालयं प्राप्तोऽसि, ततो भाग्यातिशयवत्त्वेन लोकेषु मत्समः कोऽपि नास्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

तीनू लोकमे हमरासँ अधिक भाग्यवान् केओ नहि अछि जनिक घरमे साक्षात् महेश्वरस्वरूप स्वयं अपने उपस्थित छी ॥ १० ॥

अथ न तावन्मात्रमित्यत्राह–

कृतार्था मे पुरी ह्येषा कृतार्थो राक्षसान्वयः ।
जीवितं च कृतार्थं मे यस्य त्वं दृष्टिगोचरः ॥ ११ ॥

भो रेणुक, त्वं यस्य मे दृष्टिगोचरः, तस्मात् मे ममैषा लङ्कापुरी कृतार्थेत्यादि ॥ ११ ॥

आइ हमर ई लङ्कापुरी धन्य भए गेल, राक्षसकुल धन्य भेल आ हमर जीवन धन्य भेल जनिक दृष्टिक सोझाँ अपने विराजमान छी ॥

इति ब्रुवाणं कल्याणं राक्षसेन्द्रं गणेश्वरः ।
बभाषे सस्मितो वाणीं विश्वोल्लासकरीं शुभाम् ॥ १२ ॥

सस्मितः, मन्दस्मितेन युक्तः सन्नित्यर्थः । विश्वोल्लासकरीं सर्वेषामानन्द–

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करीमित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ १२ ॥

एहि तरहेँ कहैत कल्याणयुक्त राक्षसराज विभीषणकेँ गणेश्वर मुसुकाइत संसारक उल्लासकारिणी शुभवाणी कहए लगलथिन ॥ १२ ॥

अथ तत्प्रकारं चतुर्भिः श्लोकैर्वर्णयति—

विभीषण महाभाग जाने त्वां धर्मकोविदम् ।
त्वां विना कस्य लोकेषु जायते भक्तिरीदृशी ॥ १३ ॥

स्पष्टम् ॥ १३ ॥

हे महाभाग विभीषण ! अपनेकेँ हम धर्मज्ञक रूपमे जनैत छी । एहि लोकमे अपनेक अतिरिक्त दोसर ककरामे एहि तरहक भक्ति भए सकैत अछि ? । । १३ ॥

समस्तशास्त्रसारज्ञं सर्वधर्मपरायणम् ।
अध्यात्मविद्यानिरतमाहुस्त्वां राक्षसेश्वर ॥ १४ ॥

भो विभीषण, त्वां समस्तनिगमादिशास्त्रसारज्ञं सकलशिवधर्मेषु परायणं तत्परमित्यर्थः । शिवाद्वैतज्ञानयोगरूपाध्यात्मविद्यानिरतं सन्तम् आहुरित्यर्थः ॥ १४ ॥

हे राक्षसराज ! विद्वद्गण अपनेकेँ सकल शास्त्रक ज्ञाता, सकल धर्मक आचरणकर्ता ओ अध्यात्मविद्यामे निरत कहैत छथि ॥ १४ ॥

अतः कारणात्—

त्वदीयधर्मसम्पत्तिं श्रुत्वाहं विस्मिताशयः ।
व्रजन् कैलसमचलं त्वदन्तिकमुपागतः ॥ १५ ॥

कैलासमचलं व्रजन्नहं त्वदीयशिवधर्मसम्पत्तिं श्रुत्वाऽऽश्चर्ययुक्तचित्तः सन् त्वत्समीपमागतोऽस्मीत्यर्थः ॥ १५ ॥

अपनेक धर्मपरायणताकेँ सुनि आश्चर्यित भए हम कैलास पर्वत पर जाइत अपनेक लग चल अएलहुँ ॥ १५ ॥

प्रीतोऽस्मि तव चारित्रैः शोभनैर्लोकविश्रुतैः ।
दास्यामि ते वरं साक्षात् प्रार्थयस्व यथेप्सितम् ॥ १६ ॥

स्पष्टम् ॥ १६ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हम अपनेक लोकप्रसिद्ध शोभन चरित्रसँ प्रसन्न छी । हम अपनेकाँ साक्षात् वरदान देब । यथारुचि वरदान माङू ।। १६ ।।

इति प्रसादसुमुखे भाषमाणे गणेश्वरे ।
प्रणम्य परया प्रीत्या व्याजहार विभीषणः ।। १७ ।।

व्याजहार विज्ञापनवाक्यं प्रयुक्तवानित्यर्थः ।। १७ ।।

प्रसन्नवदन गणेश्वरक ई कहला पर विभीषण परम प्रसन्नतासँ प्रणाम कए बजलाह ।। १७ ।।

अथ तत्प्रकारं षड्भिः सूत्रैः प्रदर्श्य स्वस्य रावणोक्ताभिप्रायमष्टभिः सूत्रैः सूचयति–

आगमानुग्रहादेव भवतः शिवयोगिनः ।
दुर्लभा सर्वलोकानां समपद्यन्त सम्पदः ।। १८ ।।

भो गणेश्वर, शिवयोगिनो भवत आगमनरूपानुग्रहादेव सर्वजनदुर्लभाः सम्पदः समपद्यन्त प्राप्ता इत्यर्थः ।। १८ ।।

अपनेक सन शिवयोगीक कृपापूर्ण आगमनेसँ सभ लोकके ँ दुर्लभसम्पत्ति भेटैत छनि ।। १८ ।।

तथापि प्रार्थनीयं मे किञ्चिदस्ति गणेश्वर ।
सुकृते परिपक्वे हि स्वयं सिद्ध्यति वाञ्छितम् ।। १९ ।।

मे ममेत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ।। १९ ।।

तथापि हे गणेश्वर ! हमर किछु निवेदन अछि । पुण्यक नीक जकाँ परिपक्व भेला पर अभीष्टक सिद्धि स्वयं भए जात छैक ।। १९ ।।

रावणो हि मम भ्राता माहेश्वरशिखामणिः ।
अदृष्टशत्रुसम्बाधं शशास हि जगत्त्रयम् ।। २० ।।

अदृष्टशत्रुसम्बाधं यथा भवति तथा जगत्त्रयं हि प्रसिद्धं सत् शशास पालयामासेत्यर्थः ।। २० ।।

हमर भाइ रावण महेश्वरक भक्तमे श्रेष्ठ छलाह, हुनका शत्रुक बाधा नहि छलनि । ओ तीनू लोकपर शासन कएलनि ।। २० ।।

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यस्य प्रतापमतुलं सोढुमक्षमशक्तयः ।
इन्द्रादयः सुराः सर्वे राज्यलक्ष्म्या वियोजिताः ॥ २१ ॥

स्पष्टम् ॥ २१ ॥

जनिकर अतुलनीय प्रतापकेँ इन्द्र आदि सकल देवता सहबामे अक्षम भए राज्यलक्ष्मीसँ वियुक्त भए गेलाह ॥ २१ ॥

स तु कालवशेनेव स्वचारित्रविपर्ययात् ।
रणे विष्णववतारेण रामेण निहतोऽभवत् ॥ २२ ॥

स्पष्टम् ॥ २२ ॥

ओहो कालक प्रभावसँ अपन विपरीत चरित्रक कारण विष्णुक अवतार रामसँ युद्धमे मारल गेलाह ॥ २२ ॥

स तु रामशराविद्धः कण्ठस्खलितजीवितः ।
अवशिष्टं समालोक्य मामवादीत् सुदुःखितः ॥ २३ ॥

स रावणो रामबाणेन क्षतं लब्धवान् सन् कण्ठगतप्राणः सन् अवशिष्टं राक्षसेषु हतशिष्टं मां दृष्ट्वात्यन्तदुःखितः सन् प्रत्यवददित्यर्थः ॥ २३ ॥

ओ जखन रामक शरसँ बेधल रहथि आ कण्ठसँ हुनक प्राण ससरैत रहनि तखन हमरा बाँचल देखि कष्टसँ कहलनि ॥ २३ ॥

अथ रवणोक्तप्रकारमुपपादयति–

विभीषण विशेषज्ञ महाबुद्धे सुधार्मिक ।
अवशिष्टोऽसि वंशस्य रक्षसां भाग्यगौरवात् ॥ २४ ॥

स्पष्टम् ॥ २४ ॥

हे विशेषज्ञ महाबुद्धि सुधार्मिक विभीषण ! राक्षस वंशक महाभाग्यसँ एकमात्र अहाँ राक्षसक कुलमे अवशिष्ट छी ॥ २४ ॥

वयमज्ञानसम्पन्ना महत्सु द्रोहकारिणः ।
ईदृशीं तु गतिं प्राप्ता दुस्तरा हि विधिस्थितिः ॥ २५ ॥

वयमज्ञानसम्पन्नाः सन्तो महत्सु महतां विषये द्रोहकारिण इति ईदृशीं गतिं प्राप्ताः । तथाहि विधिस्थितिः देवाधीनवृत्तिः, दुस्तरा हि लङ्घितुमशक्या खल्वित्यर्थः ॥ २५ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमरा सब त अज्ञानसँ भरल छी जे महान् व्यक्ति सभपर द्रोह कएल आ एहि तरह दुर्गतिकेँ प्राप्त कएल । भाग्यक स्थितिकेँ बदलल नहि जा सकैत अछि ।। २५ ।।

नवकं लिङ्गकोटीनां प्रतिष्ठाप्यमिह स्थले ।
इति सङ्कल्पितं पूर्वं मया तदवशिष्यते ॥ २६ ॥

इह स्थले अस्मिन् लङ्कापत्तनस्थले नवकोटिलिङ्गं प्रतिष्ठाप्यमिति मया पूर्वं सङ्कल्पितम्, तत्र किञ्चिदवशिष्टमस्तीत्यर्थः ॥ २६ ॥

पूर्वकालमे हम संकल्प कएने छलहुँ जे एहिठाम नओ कड़ोर लिङ्गक प्रतिष्ठा करब, से किछु बाँकी रहि गेल ।। २६ ।।

कियदवशिष्टमित्यत्राह–

कोटिषट्कं तु लिङ्गानां मया साधु प्रतिष्ठितम् ।
कोटित्रयं तु लिङ्गानां स्थापनीयमतस्त्वया ॥ २७ ॥

अतस्तत्सङ्कल्पपूरणार्थमित्यर्थः ॥ २७ ॥

हम त छओ कड़ोर लिङ्गक प्रतिष्ठा कए देल । आब ओहि संकल्पितमे तीन कड़ोरक स्थापना अहाँ करब ।। २७ ।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा दीनबुद्धेर्मरिष्यतः ।
तथा साधु करोमीति प्रतिज्ञातं मया तथा ॥ २८ ॥

स्पष्टम् ॥ २८ ॥

दीनबुद्धि मरैत हुनक वचन सुनि हम 'ओहि तरहेँ उत्तम स्थापना करब' ई प्रतिज्ञा कएल ।। २८ ।।

युगपच्छिवलिङ्गानां कोटित्रयमनुत्तमम् ।
प्रतिष्ठाप्यं यथाशास्त्रमिति मे निश्चयोऽभवत् ॥ २९ ॥

स्पष्टम् ॥ २९ ॥

तखन हम निश्चय कएल कि एक संग हम तीन करोड़ उत्तम शिवलिङ्गक शास्त्रविधिसँ स्थापना करब ।। २९ ।।

लिङ्गकोटित्रयस्येह युगपत् स्थापनाविधौ ।
अविदन्नेकमाचार्यमहमेवमवस्थितः ॥ ३० ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इह लङ्कायामित्यर्थः । युगपल्लिङ्गत्रिकोटिस्थापनविषये मुख्यमाचार्यमलब्धवान् सन्नेवं स्थितोऽस्मीत्यर्थः ॥ ३० ॥

एहि ठाम एक संग तीन करोड़ शिवलिङ्गक स्थापनाविधिमे एक सुयोग्य आचार्यकेँ नहि जनैत हम विना स्थापनाक ओहिना पड़ल छी ॥ ३० ॥

शिवशास्त्रविशेषज्ञ शिवज्ञाननिधिर्भवान् ।
आचार्यभावमासाद्य मम पूरय वाञ्छितम् ॥ ३१ ॥

शिवशास्त्रविशेषज्ञ भो रेवणसिद्ध, भवान् शिवज्ञानस्य निधिर्निक्षेपस्थानभूतः, अत आचार्यभावमासाद्य युगपत्कोटित्रयाचार्यभावं प्राप्य ममाभीष्टं पूरयेत्यर्थः ॥ ३१ ॥

हे शिवशास्त्रक विशेषज्ञ ! अपने शिवज्ञानक निधि छी । अपने आचार्य बनि कए हमर मनोरथ पूरा करी ॥ ३१ ॥

अथ श्रीरेणुकस्तस्याभीष्टं पूरयित्वाऽन्तर्हित इति श्लोकपञ्चकेन प्रतिपादयति–

तस्येति वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य धीमतः ।
तथेति प्रतिशुश्राव सर्वज्ञो गणनायकः ॥ ३२ ॥

प्रतिशुश्राव अङ्गीकृतवानित्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३२ ॥

बुद्धिमान् राक्षसेन्द्र विभीषणक एहि वचनकेँ सुनि सर्वज्ञ गणेश्वर 'एहिना करब' ई प्रतिज्ञा कएलनि ॥ ३२ ॥

तत्र सन्तुष्टचित्तस्य पौलस्त्यस्येष्टसिद्धये ।
कोटित्रयं तु लिङ्गानां यथाशास्त्रं यथाविधि ।
त्रिकोट्याचार्यरूपेण स्थापितं तेन तत्क्षणे ॥ ३३ ॥

तत्र लङ्कायां पौलस्त्यस्य विभीषणस्येत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ३३ ॥

सन्तुष्टचित्त विभीषणक (पुलस्त्यमुनिक पौत्रक) इष्टसिद्धिक लेल ओहिठाम यथोचित शास्त्रविधिक अनुसार तीन करोड़ शिवलिङ्गक स्थापना त्रिकोट्याचार्यरूपमे श्रीरेणुकाचार्य तत्क्षण कएलनि ॥ ३३ ॥

तादृशं तस्य माहात्म्यं समालोक्य विभीषणः ।
प्रणनाम मुहुर्भक्त्या पादयोस्तस्य विस्मितः ॥ ३४ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्टम् ॥ ३४ ॥

विभीषण ओहि श्रीरेणुकाचार्यक ओहन महिमा देखिकए आश्चर्यित भए गेलाह आ वारम्बार हुनक चरणमे प्रणाम कएलनि ॥ ३४ ॥

प्रणतं विनयोपेतं प्रहृष्टं राक्षसेश्वरम् ।
अनुगृह्य स्वमाहात्म्याद् रेणुकोऽन्तर्हितोऽभवत् ॥ ३५ ॥

स्पष्टम् ॥ ३५ ॥

प्रणत, विनीत, प्रसन्न राक्षसराज विभीषण पर कृपा कएलाक बाद श्री रेणुकाचार्य अपन महिमासँ विलाए गेलाह ॥ ३५ ॥

विभीषणोऽपि हृष्टात्मा रेणुकस्य प्रसादतः ।
शिवभक्तिरसासक्तः स्थिरराज्यमपालयत् ॥ ३६ ॥

स्पष्टम् ॥ ३६ ॥

श्रीरेणुकाचार्यक कृपासँ विभीषणो प्रसन्न भए शिवभक्तिरससँ बोड़ल भए अपन स्थिरराज्यक पालन करए लगलाह ॥ ३६ ॥

अथाष्टदिक्षु प्रसिद्धस्य रेवणसिद्धेश्वरस्य महत्त्वं सङ्कोचेनाष्टभिः सूत्रैः प्रकाशयति–

रेणुकोऽपि महातेजाः सञ्चरन् क्षितिमण्डले ।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च परमाद्वैतभावितः ॥ ३७ ॥
कांश्चिद् दृष्टिनिपातेन करुणारसवर्षिणा ।
अपरानुपदेशेन शिवाद्वैताभिमर्शिना ॥ ३८ ॥
अन्यांश्च सहवासेन समस्तमलहारिणा ।
कृतार्थयन् जनान् सर्वान् कृतिनः पक्वकर्मिणः ॥ ३९ ॥
दर्शयित्वा निजाधिक्यं शिवदर्शनलालसः ।
खण्डयित्वा दुराचारान् पाषण्डान् भिन्नदर्शनान् ॥ ४० ॥
यन्त्रमन्त्रकलासिद्धान् विमतान् सिद्धमण्डलान् ।
विजित्य स्वप्रभावेण स्थापयित्वा शिवागमान् ।
आजगाम निजावासं कोल्लिपाक्यभिधं पुरम् ॥ ४१ ॥

प्रच्छन्नश्च सप्तशतवर्षपर्यन्तमिति शेषः । तथा प्रकटितः सन्

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कांश्चिज्जनान् करुणारसपूरितकटाक्षेण कृतार्थयन्, अपरान् शिवाद्वैतप्रकाशकोपदेशेन कृतार्थयन्, अन्यान् निर्मलसहवासेन कृतार्थयन्, अवशिष्टसर्वजनान् कृतिनः सकलकलाकुशलान् पक्वकर्मिणः परिपक्वमलमायापाशवतः सतश्च कृतार्थयन् सन्, शिवदर्शनलालसः शिवसमयलम्पटः भिन्नदर्शनान् वैष्णवाद्यन्यसमयनिष्ठान् पाषण्डान् शङ्खचक्राद्यन्यलाञ्छनयुक्तान् दुराचारान् खण्डयित्वा यन्त्रमन्त्रादिचतुःषष्टिकलासिद्धियुक्तान् कापालिकादिपरमतसिद्धमण्डलान् गोरक्षादिनवकोटिसिद्धान् स्वसामर्थ्येन विजित्य कामिकादिशिवसिद्धान्तान् स्थापयित्वा निजावासं कोल्लिपाक्यभिधं पुरमाजगाम आससादेत्यर्थः ॥ ३७-४१ ॥

महान् तेजस्वी श्रीरेणुकाचार्यो भूमण्डल पर विचरण करैत कखनो अढ़ भए, कखनहुँ सोझाँ भए, परमाद्वैत भावसँ भावित भए, किनको अपन करुणारसक वर्षा कए, कृपाकृष्टिसँ, अनका शिवाद्वैतविचारक उपदेशसँ, आनकेँ सकल दोषनाशक सहवाससँ, परिपक्व कर्मवाला सकल पुण्यात्मा जनकेँ धन्य बनबैत, शिवदर्शनक अभिलाषासँ अपन अधिक प्रभव देखाए, भिन्नदर्शनवाला पाखण्डी दुराचारीसभक खण्डन भए, यन्त्र-मन्त्र कलामे सिद्ध विरोधी सिद्धमण्डलकेँ जीति, अपन प्रभावसँ शिवागमक स्थापना कए अपन आवास कोल्लिपाकी नगर पहुँचि गेलाह ॥ ३७-४१ ॥

तत्र सम्भावितः सर्वैर्जनैः शिवपरायणैः ।
सोमनाथाभिधानस्य शिवस्य प्राप मन्दिरम् ॥ ४२ ॥

सम्भावितः सत्कृत इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ४२ ॥

ओतए शिवपरायण भक्त सबसँ सम्मानित भए श्रीरेणुकाचार्य सोमनाथ शिवमन्दिर गेलाह ॥ ४२ ॥

पश्यतां तत्र सर्वेषां भक्तानां शिवयोगिनाम् ।
तन्वानो विस्मयं भावैस्तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ ४३ ॥

भावैर्निर्मलगुणैरित्यर्थः । विस्मयमाश्चर्यं तन्वानो विस्तारयन्नित्यर्थः ॥ ४३ ॥

ओतए सकल भक्त शिवयोगीक समक्ष शिवभावसँ सबकेँ आश्चर्यित करैत परमेश्वरक स्तुति कएलनि ॥ ४३ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथ सप्तभिः सूत्रैः सोमेश्वरस्य स्तुतिं करोति–

देवदेव जगन्नाथ जगत्कारणकारण ।
ब्रह्मविष्णुसुराधीश-वन्द्यमानपदाम्बुज ॥ ४४ ॥

अत्र जगच्छब्देन भुवनान्युच्यन्ते । तत्कारणीभूतबिन्दुमायादीनामपि कारणीभूत ! इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

हे देवदेव ! जगन्नाथ ! संसारक कारणक कारण ! ब्रह्मा विष्णु इन्द्र आदि अहाँक चरणकमलक वन्दना करैत छथि ॥ ४४ ॥

संसारनाटकभ्रान्ति-कलानिर्वहणप्रद ।
समस्तवेदवेदान्त-परिबोधितवैभव ॥ ४५ ॥

संसारनाटकभ्रान्तिकलाजयप्रद इत्यर्थः ॥ ४५॥

अहाँ संसाररूपी नाटकक भ्रमक कलाक निर्वाह करएवाला एवं समस्त वेद वेदान्त द्वारा पूर्णरूपेण बोधित वैभववाला छी ॥ ४५ ॥

संसारवैद्य सर्वज्ञ सर्वशक्तिनिरङ्कुश ।
सच्चिदानन्द सर्वस्व परमाकाशविग्रह ॥ ४६ ॥

'आकाशशरीरं ब्रह्म'[1] इति श्रुतेश्चिदाकाशस्वरूप इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम् ॥ ४६ ॥

अहाँ संसाररूपी रोगक वैद्य, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निरंकुश, सच्चिदानन्द, सर्वस्व एवं पराकाशरूपी शरीरवान् छी ॥ ४६ ॥

समस्तजगदाधार-ज्योतिर्लिङ्गविजृम्भण ।
सदाशिवमुखानेक-दिव्यमूर्तिकलाधर ॥ ४७ ॥

'ज्वाललिङ्गाय नमः'[2] इति श्रुतेर्ज्योर्तिलिङ्गस्वरूपेण जृम्भमाण इत्यर्थः । 'स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रः'[3] इति श्रुतेः सकलनिष्कलसदाशिवप्रभृतिदिव्य-मूर्तिकलाधर इत्यर्थः । अत्र– 'स एको रुद्रः स ईशानः स भगवान् स महेश्वरः स महादेवः'[4] इति श्रुतिः ॥ ४७ ॥

अहाँ समस्त संसारक आधार ज्योतिर्लिङ्गक प्रकाशक एवं सदाशिव प्रमुख अनेक दिव्यमूर्त्तिक कलाक धारण कएनिहार छी ॥ ४७ ॥

१. तै०उ० १ । ६ । २ २. म०ना०उ० १४ । ९
३. ऋग्०सं० २ । ३३ । ९ ४. अ०शि०उ० ?

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुणत्रयपदातीत मलत्रयविनाशन ।
जगत्त्रयविलासात्मन् श्रुतित्रयविलोचन ॥ ४८ ॥

सत्त्वरजस्तमोगुणस्थानातीत आणवकार्मणमायिकाख्यमलत्रयोन्मूलनकर स्वर्ग-मर्त्य-पातालक्षणजगत्त्रयसृष्ट्यादिपञ्चकृत्यक्रीडाविलासोन्मुख ऋग्यजुः-सामाख्यश्रुतित्रयविलोचन इत्यर्थः ॥ ४८ ॥

अहाँ सत्त्व रजस् ओ तमस् एहि तीनू गुणसँ ऊपर, आणव कार्मण ओ मायिक एहि त्रिविध मलक नाशक, तीनू लोकक सृष्टि आदि कार्यरूप विलासवाला एवं ऋग्यजुः सामवेदस्वरूप तीन आँखिसँ युक्त छी ॥ ४८ ॥

पाहि मां परमेशान पाहि मां पार्वतीपते ।
त्वदाज्ञया मयैतावत्कालमात्रं महीतले ।
अचारि भवदुक्तानामागमानां प्रसिद्धये ॥ ४९ ॥

स्पष्टम् ॥ ४९ ॥

हे परमेश्वर ! पार्वतीपति ! हमर रक्षा करू, रक्षा करू । अहाँक आज्ञासँ हम एतेक समय धारि पृथ्वी पर अहाँक कहल आगमक प्रचारक लेल विचरण कएल ॥ ४९ ॥

अतः परं स्वरूपं ते प्राप्तुकामोऽस्मि शङ्कर ।
अन्तरं देहि मे किञ्चिदनुकम्पाविशेषतः ॥ ५० ॥

भो शङ्कर सुखकर, तेन प्रसिद्ध सोमेश्वर, अतः परम् इतः परमित्यर्थः । अहं ते स्वरूपं लब्धुकमोऽस्मि, मे मम अन्तरमवकाशं देहि । अनुकम्पां कृपां विशेषतो देहि कुर्वित्यर्थः ॥ ५० ॥

हे शङ्कर ! एकर बाद हम अहाँक स्वरूपकेँ प्राप्त करए चाहैत छी । विशेषरूपक कृपा कए हमरा कनेक अवकाश देल जाओ ॥ ५० ॥

अथ वृत्तत्रयेण शिवप्रसन्नतां रेवणसिद्धेश्वरस्य लिङ्गैक्यं च प्रतिपादयति–

इत्युक्ते गणनायकेन सहसा, लिङ्गात् ततः शाङ्कराद्
वत्सागच्छ महानुभाव ! भवतो, भक्त्या प्रसन्नोऽस्म्यहम् ।
इत्युच्चैरगदद् वचस्तनुभृतामाश्चर्यमासीत् तदा
दिव्यो दुन्दुभिराननाद गगने पुष्पं ववर्षुर्गणाः ॥ ५१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गणनायकेन रेवणसिद्धेश्वरेण इत्युक्ते एवं विज्ञापिते सति सहसा तत्क्षणेन शाङ्करात् ततो लिङ्गात् सोमेश्वरलिङ्गाद् 'भो महानुभाव ! निगमागमेषु महानिश्चयबुद्धिमन् वत्स रेवणसिद्धाख्यकुमार ! भवतस्तव भक्त्या नवविधभक्त्या अहं प्रसन्नोऽस्मि, आगच्छ आयाहीति' वचः शिव उच्चैरगदद् आवादीत् । तदा तस्मिन् समये तनुभृतां शरीरिणामाश्चर्यं कौतुकमासीत्, गगने दिव्यो दुन्दभिः देवदुन्दुभिः, आननाद सर्वत्र ध्वनितवान्, गणाः प्रमथगणा देवगणाश्च, पुष्पं कुसुमवृष्टिं ववर्षुरित्यर्थः ॥ ५१ ॥

गणेश्वरक एहन कहला पर एकाएक शिवलिङ्गसँ ऊँच स्वरमे– 'हे वत्स ! आउ । हे महानुभाव ! हम अहाँक भक्तिसँ प्रसन्न छी' –एहन वाणी बहार भेल । ओहि समय सब लोककेँ आश्चर्य लगलनि । आकाशमे देववाद्य बाजए लागल आ महादेवक गण फूल बरसाबए लगलाह ॥ ५१ ॥

श्रुत्वा लिङ्गाद् वचनमुदितं, शाङ्करं सानुकम्पं
संहृष्टात्मा गणपतिरथो, ज्योतिषा दीप्यमानः ।
जातोत्कण्ठैः परमनुचरैर्योगिभिः स्तूयमानो
ज्योतिर्लिङ्गं परममविशत्, स्वप्रकाशं तदानीम् ॥ ५२ ॥

अथो पुष्पवृष्ट्यनन्तरं संहृष्टात्मा सन्तुष्टचित्तो गणपतिः शिवगणपतिः श्रीरेवणसिद्धो ज्योतिषा शिवप्रकाशेन दीप्यमानः प्रकाशमानः सन् लिङ्गात् सोमेशलिङ्गाद् उदितम् उद्भूतं सानुकम्पं कृपासहितं शाङ्करं वचनं शिवसम्बन्धिवचनं पूर्वोक्तवाक्यं श्रुत्वा, जातोत्कण्ठैर् उद्भूताश्चर्यवद्भिः, अनुचरैः सहचरैः शिवयोगिभिः परमधिकतया स्तूयमानः सन्, तदानीं तस्मिन् समये परं सर्वोत्कृष्टं स्वप्रकशं निजप्रकाशरूपं ज्योतिर्लिङ्गं 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'[१], 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्'[२] इति श्रुतिसिद्धचिल्लिङ्गममविशत् स्वरूपहानिवृद्धिव्यतिरेकेण सामरस्येन प्रविष्टवानित्यर्थः ॥ ५२ ॥

ओहि शिवलिङ्गसँ बहराएल कृपायुक्त शङ्करक वचनकेँ सुनि गणेश्वरक चित्त प्रसन्न भए गेल आ ओ ज्योतिसँ प्रकाशित भए गेलाह । तखन अत्यन्त उत्कण्ठासँ युक्त अपन सेवक योगी सभक द्वारा स्तुति कएल जाइत ओ ओहि समयमे स्वप्रकश ज्योतिर्लिङ्गमे प्रवेश कएल गेलाह ॥ ५२ ॥

---

१. क०उ० ५ । १५

२. क०उ० ५ । १५

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लीने तस्मिन् शाङ्करे स्वप्रकाशे
दिव्याकारे रेणुके सिद्धनाथे ।
सर्वो लोको विस्मितोऽभूत् तदानीं
शैवी भक्तिः सप्रमाणा बभूव ॥ ५३ ॥

दिव्याकारे मनोहरस्वरूपे रेणुके सिद्धनाथे रेवणसिद्धेश्वरे स्वप्रकाशे शाङ्करे तस्मिन् लिङ्गे सोमेशलिङ्गे लीने ऐक्यं गते सति शैवी भक्तिः शिवसम्बन्धिनी भक्तिः सप्रमाणा प्रमाणेन सह वर्तमाना बभूव आसीदित्यर्थः ॥ ५३ ॥

जखन दिव्याकार सिद्धनाथ श्रीरेणुकाचार्य ओहि शाङ्कर प्रकाशमे लीन भए गेलाह तँ ओहि समय सब लोक आश्चर्यचकित भए गेल आ शैवी भक्ति प्रमाणित भए गेल ॥ ५३ ॥

श्रीवेदागमवीरशैवसरिणिं, श्रीषट्स्थलोद्यन्मणिं
श्रीजीवेश्वरयोगपद्मतरणिं, श्रीगोप्यचिन्तामणिम् ।
श्रीसिद्धान्तशिखामणिं लिखयिता, यस्तं लिखित्वा परान्
श्रुत्वा श्रावयिता स याति विमलां, भुक्तिं च मुक्तिं पराम् ॥ ५४ ॥

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते
वीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ रेणुकविभीषणसंवादे
रेणुकशिवलिङ्गैक्यप्रसङ्गो नामैकविंशः परिच्छेदः ॥ २१ ॥

॥ श्रीसिद्धान्तशिखामणिश्च समाप्तः ॥

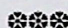
श्रीवेदागमवीरशैवसरणिं मङ्गलकरसकलसमयशास्त्रोत्तरवेदागमप्रतिपाद्य-वीरशैवसरणिरेव सरणिर्यस्येत्यर्थः, श्रीषट्स्थलोद्यन्मणिं मङ्गलात्मकैकोत्तर-शतस्थलरूपाङ्गलिङ्गषट्स्थलमार्गप्रकाशनशाणोल्लीढरत्नम्, श्रीजीवेश्वरयोग-पद्मतरणिं शोभमानजीवपरमैक्यलक्षणकमलविकसनार्कम्, श्रीगोप्यचिन्तामणिं मङ्गलकरशिवहरस्यार्थप्रकाशनचिन्तारत्नं तं श्रीसिद्धन्तशिखामण्याख्यं वीरशैवशास्त्रं यो लिखित्वा परान् लेखयिता, यः श्रुत्वा परान् श्रावयिता, स विमलां भक्तिं परां मुक्तिं च याति प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां
तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां रेणुकविभीषणसंवादे
रेणुकशिवलिङ्गैक्यप्रसङ्गो नामैकविंशः परिच्छेदः ॥ २१ ॥

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीवेदागम वीर शैवसिद्धान्तक मार्गस्वरूप, मङ्गलमय षड्लिङ्गस्थलक चमकैत मणि, जीव ओ ईश्वरक योगरूपी कमलक लेल सूर्यस्वरूप, गोपनीय चिन्तामणिस्वरूप श्रीसिद्धान्तशिखामणि नामक एहि ग्रन्थकेँ जे लिखताह वा लिखिकए अनका देताह वा सुनओताह अथवा स्वयं सुनताह से व्यक्ति निर्मल भोग एवं परम मुक्तिकेँ प्राप्त करताह ।। ५४ ।।

एहि प्रकारेँ श्रीसिद्धान्तशिखामणिक विद्यावाचस्पति डॉ० शशिनाथ झाक रचित प्रबोधिनी मैथिली व्याख्यामे रेणुक-विभीषणसंवाद तथा रेणुकशिवलिङ्गैक्य नामक एकैसम परिच्छेदक संग ई ग्रन्थो सम्पूर्ण भए गेल ।



CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri





शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के 89 वें ग्रन्थपुष्प के रूप में **'प्रबोधिनी' मैथिली भाषात्मक व्याख्या** के साथ **श्रीसिद्धान्तशिखामणि** ग्रन्थ का शिवार्पण करते हुए हम अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं । कामेश्वर सिंह–दरभंगा–सस्कृत विश्वविद्यालय के व्याकरण विभागाध्यक्ष प्रोफेसर एवं साहित्य अकादेमी से भाषासम्मान प्राप्त विद्वान् **डॉ० शशिनाथ झा** ने इस ग्रन्थ पर 'प्रबोधिनी' नामक मैथिली व्याख्या लिखकर इसकी उपादेयता को बढ़ा दिया है । अभी तक अनेक विद्वानों ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि का संस्कृत, हिन्दी, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, मराठी, उड़िया, अवधी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद कार्य किया है, लेकिन पूर्वीभारत की समृद्ध भाषा मैथिली में इसका अनुवाद कार्य अभी तक नहीं हुआ था ।

गतवर्ष विद्वद्वर डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी एवं डॉ० कमलेश झा ने इस ग्रन्थ के मैथिली अनुवाद करने हेतु डॉ० शशिनाथ झा के नाम का प्रस्ताव रखा । शैवभारती शोध संस्थान के प्रस्तुत कार्य सम्बन्धी अनुरोध को डॉ० झा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और तन्मयता से इसमें लगकर इन्होंने इस गुरुतर कार्य को पूरा कर लिया । पण्डित झाजी ने श्रीसिद्धान्तशिखामणि के मूल श्लोकों की व्याख्या लिखते समय कुछ विशिष्ट स्थलों पर जहाँ तत्त्वदीपिकाख्य संस्कृत व्याख्या में विशेष बातें लिखीं गईं हैं उनको भी प्रबोधिनी व्याख्या में साररूप से समाविष्ट किया है ।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान

डी.३५/७७, जंगमवाडीमठ, वाराणसी - २२१००१

ISBN : 978-93-82639-29-9

Price : Rs. 400/-

CC-0. Jangumwadi Math Collection. Digitized by eGangotri